

प्रेसचन्द-पूर्व हिन्दी-उपन्यास

(दिल्ली सिटी पब्लिशिंग कंपनी द्वारा प्रकाशित)

प्रेसचन्द-पूर्व हिन्दी-उपन्यास

(हिन्दी विलिखितन का पीएच डी कारि के निर सोह्य राखनव)

लखिष

डॉ० कंभादात्रकादा एम ए० पीएच०डी
द्वितीय विभाग इन्टरम्य कानेन और बीएन
हिन्दी विद्वद्विद्यालय दिल्ली



हिन्दी अनुसन्धान परिषद् हिन्दी विद्वद्विद्यालय दिल्ली
के निमित्त

हिन्दी साहित्य संसार
हिस्सी ६ = पटना ४
द्वारा प्रकाशित

प्रकाशक
रामकृष्ण शर्मा
हिन्दी साहित्य संसार
१३९१ बँदबाड़ा दिल्ली-६

क्रांति—
गन्नाऊनी रोड पटना ४

मुख्य
लाइव बायल वचना (१२ १०)

मुद्रक
राजनी देव
दि. १० ६

हमारी योजना

‘प्रियचन्द-युर्व हिन्दी-उपन्यास’ हिन्दी-धनुसम्बान-परिपद्-ग्रन्थमासा का पञ्चीसवाँ ग्रन्थ है। ‘हिन्दी धनुसम्बान परिपद्’ हिन्दी-विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय की संस्था है, जिसकी स्थापना अक्टूबर सन् १९५२ ई० में हुई थी। ‘परिपद्’ के मुख्यतः दो उद्देश्य हैं हिन्दी-भाषा मध्य-विषयक गवेषणात्मक अनुशीलन तथा उसके फलस्वरूप प्राप्त साहित्य का प्रकाशन।

प्रबतक ‘परिपद्’ की धीरे से अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है। प्रकाशित ग्रन्थ तीन प्रकार के हैं—एक तो वे जिनमें प्राचीन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों का हिन्दी-रूपांतर विलुप्त भाषाभाषात्मक भूमिकाओं के साथ प्रस्तुत किया गया है दूसरे वे जिन पर दिल्ली विश्वविद्यालय की धार है पी०एच० डी० की उपाधि प्रदान की गई है और तीसरे, वे ग्रन्थ जिनका धनुसम्बान के साथ—उसके सिद्धान्त और व्यवहार दोनों पक्षों के साथ—अवयव सम्बन्ध है।

प्रथम वर्ग के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रन्थ हैं

- (१) हिन्दी काव्यालंकार-सूत्र
- (२) हिन्दी कविक्रिती जीवित
- (३) धरतू का काव्यशास्त्र
- (४) हिन्दी काव्यालय
- (५) अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग (हिन्दी-अनुवाद)
- (६) पादशास्त्र काव्यशास्त्र की परम्परा
- (७) काव्य कला (होरेसट्ट)
- (८) धीन्द्र्य सत्य
- (९) हिन्दी अभिनव भारतीय
- (१०) हिन्दी नाट्य-दर्शन

द्वितीय वर्ग के प्रकाशित ग्रन्थ हैं

- (१) मध्यकावीन हिन्दी कविविधियाँ
- (२) हिन्दी नाटक उद्भव और विकास
- (३) सुषीमल और हिन्दी-साहित्य
- (४) मध्यम व साहित्य
- (५) राधास्वामि मध्यम साहित्य और साहित्य
- (६) मूर की काव्य-कला
- (७) हिन्दी के अन्तर्गत काव्य और उन्नी परम्परा

- (८) मैथिलीतरंग गुप्त कवि धीर भारतीय सङ्गति के आह्वाता
 (९) हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य
 (१०) मतिराम कवि धीर आचार्य
 (११) आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य-विज्ञान
 तीसरे वर्ष के अन्तर्गत तीन वर्षों का प्रकाशन हो चुका है
 (१) अनुसन्धान का स्वप्न
 (२) हिन्दी के स्वीकृत शोध प्रश्न
 (३) अनुसन्धान की प्रक्रिया

प्रस्तुत वर्ष द्वितीय वर्ष का आरम्भ प्रकाशन है जिसे हम उपस्थापक-महोदय एवं
 आलोचकों की सेवा में समर्पित कर रहे हैं ।

परिपद की प्रकाशन-योजना को सार्वभौमिक करने में हमें हिन्दी की अनेक प्रतिष्ठित
 प्रकाशन-संस्थाओं का सक्रिय सहयोग प्राप्त होता रहा है । अब सभी के प्रति हम परिपद
 की ओर से कृतज्ञता व्यक्त करते हैं ।

डी० नयेन्द्र

अध्यक्ष

—नयेन्द्र

हिन्दी अनुसन्धान परिपद

जिम्नी बिरह-विद्यालय दिल्ली ।

१० मार्च १९९२

भूमिका

हिन्दी साहित्य की उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही छोटी बोली ने माया का रूप ग्रहण करने का प्रयत्न किया। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही छोटी बोली ने माया का रूप ग्रहण करने का प्रयत्न किया। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही छोटी बोली ने माया का रूप ग्रहण करने का प्रयत्न किया।

मड़ी बोली हिन्दी के उस प्रभाव में जिसकी लोकप्रियता 'उत्प्रास' को प्राप्त हुई उसकी किसी अन्य साहित्य-रूप को नहीं। दूसरी भाषाओं से अनुवाद तो हुए ही यौनिक रचनाएँ भी प्रसन्न प्रकाशित हुईं। काशी बुद्धाइन कलकत्ता आगरा आदि नगरों में घनेक प्रकाशन-केन्द्र खुल गये और ध्वस्त्या-पूर्वक 'उत्प्रास' नामधारी पुस्तकें प्रकाशित होने लगीं। 'उत्प्रास' 'उत्प्रास बहार' 'उत्प्रास-सामर' 'जामून' 'दारोवा' आदि घनेक साहित्य-निर्माण घटने घटों में केवल उत्प्रास छात्रों को जो प्रेम होने पर पुस्तकालय प्रकाशित कर लिये जाते थे। यह निरन्तरता हिन्दी में प्रेम-बन्ध के प्रदर्शक होने तक चली रहा।

श्रीमन्नन्द का ध्यामयन हिन्दी उपासना के लिए एक विस्तृत पठना है । उनमें चरित्र-विशेष एवं व्यवहार दृष्टिकोण की छाया दृष्टिगत होने मयता है । श्रीमन्नन्द के एक ध्यामयन में सामान्यतः पाठ यह भूत जाता है कि श्रीमन्नन्द ने पूर्व या उपासना का उद्देश्य हरकृत एवं विस्तृत था । एक तो हमारे आनन्दों में उपासना-साहित्य की धोर ही ध्यान कम दिया है । दूसरे यदि हिन्दी-उपासना के विषय में कुछ निष्ठा भी है तो उसमें श्रीमन्नन्द-पूर्व-साहित्य को ध्यान नहीं दिया । सामान्यतः यह धारणा बनी हुई है कि श्रीमन्नन्द ने एक हिन्दी में लक्षितकर कर के अनुवाद तो वे मौलिक उपासना नहीं थीर जो पुस्तकें मौलिक उपासना बनाई जाया है वे धर्मार्थ विचार एक नाली में बहानी मात्र हैं । इस धारणा का एक कारण श्रीमन्नन्द-पूर्व-ध्याम में उपासना का धर्म विमल प्रकाश है । यदि धर्म बर्ण के कारण उपासना-धारा पवित्र न हुई होती तो श्रीमन्नन्द पद तक धारण के एक बहु निष्कर्ष निम्न एवं धर्मार्थ स-ती ।

उम परमपूज्य पारवा बा मैरे हरम मे सुपार उम गमम हमा अब मैने

हिन्दी बिभाव के अध्ययनपूर्ण डा० नयेन्द्रजी से उद्योग-साहित्य के विज्ञान पर एम० ए० कक्षा में व्याख्यान हुआ। तभी से उस काल के विषय में मेरे मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई। एम० ए० परीक्षा के उत्तीर्ण होने के अनन्तर मैने प्रेमचन्द-युव उद्योग-साहित्य पर गोप नाथ की अनुमति धामी ओ डाक्टर साहब से सहय के दो घोर कानरेवा घाति में महायत्ना देकर मुझे प्रोत्साहित भी किया। धागे बसकर प्रस्तुत प्रबन्ध के छास्त्रीय भाग में धारने मुझे समुचित परामर्श प्राप्त हुआ। जिनके लिए मैं अत्यन्त आभारी हूँ।

प्रस्तुत प्रबन्ध में प्रेमचन्द-युव-युग के भौतिक उद्योग-साहित्य का अध्ययन किया गया है। उस युग में इनके अधिक उद्योग-साहित्य गये कि उनका ऐतिहासिक विवरण एक स्वयम्भू प्रमाण हो जाता है। मैने सभी रचनाओं का विवरण देकर प्रेमचन्द-युव उद्योग-साहित्य का इतिहास नहीं किया। प्रस्तुत केवल प्रकाश-विद्युत की प्रतिनिधि रचनाओं तक घटने अध्ययन का सीमित रखा है। प्रतिनिधि रचनाओं का अध्ययन ऐसी विषयों को हो सकता है और प्रकृति विषयों को। इस दोष प्रबन्ध में केवल प्रकृति विषय अध्ययन है। प्रस्तुत प्रेमचन्द-युव युग की भौतिक उद्योग-साहित्य में के प्रतिनिधि रचनाओं का अध्ययन करना हुए युग प्रकृति का विवेचन प्रस्तुत प्रबन्ध का लक्ष्य है। वह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह प्रकाश-विद्युत भौतिक है। उस साहित्य का अभी तक न ऐतिहासिक अध्ययन हुआ है और न विवेचनात्मक।

विशेष सामग्री पर ध्यानपूर्वक से बहुत कम ध्यान दिया है। इसलिए प्राक्किक अध्ययन का संकेत भी किसी आलोचनात्मक रचना से मिलना संभव नहीं। ऐसी परिस्थिति में सर्वप्रथम प्रमाण स्वयं लेकर माने गये हैं। जिस रचना को लेकर मैं 'उद्योग' कहा उसका प्रस्तुत अध्ययन मैं 'उद्योग' मान लिया गया। जिन कथों में लेकर मैंने उद्योग को रचाना दिया उसी कथ में मैंने भी रंग दिया। कुछछ प्रमाण सराही-नील समाचार पत्र एवं पत्रिकाएँ हैं। उनमें यह विदित होता है कि रचना—विद्युत प्रकाश प्रकृति विद्युत का सम्बन्ध में सराही-नील साहित्यिकों को क्या प्रतिनिधि थी। तीसरा प्रमाण रचनाओं का विज्ञान है जो कम-से-कम इनका अध्ययन बनना देते हैं कि उद्योग का पार्श्व क्या कहता था। इन प्रकार उद्योग मानने का विवरण करने हुए जो निष्कर्ष निकाले गये हैं। उनको बहुत बड़ी शक्ति वह साहित्यकारों हैं—केवल प्रकाश यह रहा है कि पद्यालम्बन सराही-नील साहित्यिकों की सम्बन्धी न साम उद्योग का।

प्रस्तुत प्रबन्ध में पाँच अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में 'उद्योग' तथा उसके मूल का 'आरेख' पदों तथा उनके अधिकार का सम्बन्ध की विवेचनाओं का अध्ययन किया गया है। मूल का 'उद्योग' पद बनना से एक विद्युत धर्म में भी प्रकृत होने लगा। द्वितीय में उस धर्म का अनुकरण हुआ। पद्यों में भी 'आरेख' पद विद्युत में धारण एक विद्युत धर्म का स्वरूप बन गया था। 'आरेख' का पद दोन एवं परिभाषा में परिभाषा होता रहा है। 'आरेख' का पद ६ है मूल 'उद्योग' के साथ माने जाते हैं।

‘भावत प्रपदा’ उगम्यास के अनेक भेद हो सकते हैं, जिनमें से कुछ भेद बहुत स्वाभाविक हैं।

द्वितीय अध्याय में संस्कृत से लेकर प्राकृत पंजाबी पालि एवं अपभ्रंश भाषाओं के कथा-साहित्य पर विचार करते हुए यह प्रयत्न किया गया है कि उगम्यास में किस रूप का कितना साम्य तथा कितना वैषम्य है। साम्प्रदायिक दृष्टि में कथा के विभिन्न रूप तथा उगम्यास की उनमें तुलना प्रस्तुत की गई है। मध्ययुगीन कथा-साहित्य में उगम्यास की तुलना कर यह प्रतिपादित किया गया है कि उन साहित्य में उगम्यास का सम्बन्ध ओड़ना आसक है। लड़ी बोली की प्रारम्भिक कहानियों को उगम्यास मानने का लक्ष्य किया गया है। संवभाषा के प्रारम्भिक उगम्यासों पर साम्प्रदायिक दृष्टिपात कर उनकी विशेषताओं का विवेचन है। तदनन्तर इस विचार-पूरा प्रश्न पर विचार है कि ‘यानी कहानी की कहानी से लेकर ‘चन्द्रावली तक के उगम्यासों में से किसको हिन्दी का प्रथम मौखिक साहित्यिक उगम्यास मानना उचित है। हिन्दी-उगम्यास-साहित्य का ऐतिहासिक नाम विभाजन प्रस्तुत करके अन्त में अशोक-साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियों का विवेचन तथा अन्तःप्रमाण के आधार पर उन उगम्यासों की सामाजिक ऐतिहासिक एवं बहुराष्ट्रिकताओं में वर्गीकरण है।

तृतीय अध्याय में सामाजिक जीवन और उसका चित्रण करने वाले उगम्यासों का अध्ययन है। राजा राममोहन राय द्वारा ब्रह्मसमाज एवं महाविद्यालय द्वारा धर्म समाज की स्थापना के प्रभाव से पूर्व हिन्दी में समाज-नीति के कुछ उगम्यास मिले मने जिनका उदाहरण ‘परीक्षा दूक’ में तथा जिनकी अवस्थिति ‘मुन्दर मरोजिनी’ पर है। तदनन्तर सामाजिक धार्मिक आन्दोलन प्रारम्भ हो गये जिनका प्रभाव विद्यार्थीनाथ गोस्वामी ग नर मन्त्र द्विवेदी तक की रचनाओं पर निरन्तर पाया जाता है। इस सब के मुख्य मुख्य उगम्यासों का अध्ययन उन काल के सामाजिक जीवन पर अच्छा प्रकाश डालता है। सामाजिक व्यवस्था एवं आदर्श होना की दृष्टि से यह सामग्री अमूल्य है। उगम्यासकारों ने ‘समाजसमाज’ और ‘समाजसमाज’ अनेकों वर्गों की और ‘भारतीय प्रेम’ का मूल्य अन्तर निगताया है। साथ ही बहु-विवाह दहेज प्रथा विवाह पूर्व प्रेम अत्यन्त अमान्य धृष्टांत नीचता आदि आदि समस्याओं का चित्रण एवं समाधान के प्रचार तथा शिक्षा के समर्थन का मूल्य प्रकट है।

चतुर्थ अध्याय में ऐतिहासिक उगम्यासों का अध्ययन है। साम्प्रदायिक नाम में समाज का चित्रण प्रमुख है जाने के कारण उगम्यासकार ऐतिहासिक उगम्यासों के प्रति अत्यन्त गहरी कर पाये। लोगों का संस्था भी कम है और रचनाओं की मात्रा। फिर भी विद्यार्थीनाथ गोस्वामी के ऐतिहासिक उगम्यासों में ऐतिहासिक गहृष्यों को प्रकट करने की क्षमता है। इतिहास के उदयान द्वारा पाठकों को मनोरंजन एवं उद्योग प्राप्त करने में ये सफल हैं। समाज के प्रति दृष्टि होने के कारण इन काल के रचनाकार गहुर अवगत के इतिहास में गहरी गहरा पाये। साम्प्रदायिकों के प्रति कृपा पाठकों के ध्यान में दिखाने और की पराधर्य एवं सब की बिजय इन रचनाओं में प्रकट

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

'उपन्यास' या 'नावेल'	१ ४१
१ 'उपन्यास' शब्द की व्युत्पत्ति	१
२ 'नावेल' शब्द का इतिहास	२
३ 'उपन्यास' या 'नावेल' की परिभाषा	३
४ उपन्यास और काव्य	१०
उपन्यास और नाटक	१३
उपन्यास और रोमांस	१५
उपन्यास और कहानी	१८
उपन्यास और इतिहास	१९
५ उपन्यास के लक्षण	२२ ४०
कथावस्तु	२२
चरित्र चित्रण	२३
कथोपक्रम	३१
दृश्याप (वातावरण)	३३
संक्षेप	३४
उद्देश	३५
रस	४०
६ उपन्यास के प्रकार	४१ ४३
काल्पनिक तथा चरित्र प्रधान	४२
चरित्र-प्रधान तथा नाटकीय	४२
ऐतिहासिक	४३
बनोईजातिक	४४
सैतानिक	४५
काल्पनिक	४५

द्वितीय अध्याय

हिन्दी-उपन्यास	४६ ७८
१ हिन्दी उपन्यास—प्रारम्भ	४६

२ प्राचीन कथा-साहित्य	४७
३ मध्ययुगीन कथा-साहित्य	१४
४ गरी बोनी की उपन्यास-पूर्व कहानियाँ	१८
५ बयला के प्रारम्भिक उपन्यास	६१
६ हिन्दी का प्रथम उपन्यास	६४
७ हिन्दी उपन्यास-साहित्य का काम विभाजन	६८
८ प्रेमचन्द-पूर्व उपन्यास की सामान्य प्रवृत्ति	७१
९ प्रेमचन्द पूर्व उपन्यास-साहित्य का वर्गीकरण	७५

तीसरा अध्याय

सामाजिक उपन्यास

१ सामाजिक जीवन की रीखाएँ	७८
२ 'बरीछाबुख' के पूर्व	८४
३ 'बरीछाबुख'	८५
४ 'बरीछाबुख' की परम्परा	१०१
(क) नृपत ब्रह्मचारी	१०२
(ख) लो छत्राज घोर एक मुजान	१०६
(ग) सुन्दर नरोजिनी	११६
५ नव प्राचीन के उपन्यास	१२०
६ विचारीमान गोरखजी के उपन्यास	१२८ [४५]
(क) त्रिवेणी का मोमगंधेवी	१२८
(ख) लो लावनी का भारघोसती	१३०
(ग) राजकुमारी	१३२
(घ) बाला या नव नमोत्र बिज	१३६
(ङ) पुनर्दण्ड का लोनिता दाह	१४०
(च) मापवी-मापक का मदन-साहित्य	१४२
(छ) चमूरी का नवीना	१४३
७ नवप्रकाश लाल के उपन्यास	१४८ [४४]
(क) विनोद का मुबारक का लो मुनदेवी	१४८
(ख) धारण रिपू	१५०
८ महात्मा दुर्गा के उपन्यास	१५५
गरी देवी	
९ दीनानाथ दिवानी के उपन्यास	१५
गुरुकुमारी	

१० कृष्णत रार्मा के उपन्यास	१६०
स्वयं में महामाया	
११ व्यासविश्वरूप रार्मा के उपन्यास	१६३
काशी यात्रा	
१२ रामजीराम रार्मा के उपन्यास	१६४
घोषे की टट्टी	
१३ प्रयोप्यामिह उपन्यास के उपन्यास	१६८
प्रपत्तिता फूल	
१४ रामप्रसाद सत्याम के उपन्यास	१७०
किरणवर्षा	
१५ कृष्णमाल रार्मा के उपन्यास	१७१
बन्ना	
१६ प्रमद सुधारवादी उपन्यास	१७७
(क) राधा	१७७
(ख) उदय बीबी	१७८
१७ ब्रजनन्दन सहाय के उपन्यास	१८२
राजावास्त	
१८ मनमन्त्र त्रिबेदी के उपन्यास	१८८
रामनाम	

अन्य ग्रन्थें

ऐतिहासिक उपन्यास

१ अलीश के उपन्यास	१८८-२९०
२ किशोरामाच गार्गावा के उपन्यास	१८८
(क) ताप का दास-कुल वसन्तिनी	२ १ २४८
(ख) मुकुता रजिया बैगम का रसमहल में	०३
हुनाहल	२१६
(ग) हुनाहलिनी का धारवास्त	२२९
(घ) नरसिंहना का धारवास्त	२३०
(ङ) मन्मिवादेवी का रसमहल	२३२
(च) मोना घोर मुग्ध का पन्नाबाई	-३८
(छ) मनमन्त्र का धारवास्त	२४१
(ज) नगलक की बह का धारवास्त	२४३
(झ) नरसिंहना का मन्मिवादेवी	-४६

१ मकराप्रसाद वर्मा के उपन्यास	
मूरजही बैगम	२४०
४ जयरामदास गुप्त के उपन्यास	
मवाकी परिवर्तमान	२१०
२. ब्रह्मनन्द महाय के उपन्यास	
मानवीय	११२
१ निषधामुखों के उपन्यास	
बीरमणि	२१७
सर्वत्र उपन्यास	
घटनाक्रम उपन्यास	
१ नवयुग में पृथ्वी परम्परा	२६१ १११
२ निमरुपी उपन्यास	२६१
निमरुप	२६४
ऐवार	२६७
'बालबाला' उपन्यास	२६८
'बालबाला' की परम्परा	१२२
१ बामुनी उपन्यास	१६
बामुनी	२६१
महामहोपाध्याय मजुमदार के उपन्यास	२६१
राजप्रसाद नाथ व उपन्यास	२६६
जयप्रसाद गुप्त के उपन्यास	२६८
महामहोपाध्याय वर्मा के उपन्यास	१००
मकीनामक दृष्टि	१०
४ अर्जुन उपन्यास	१०१
विहीन अथवा अथवा	११
रोमांचकारी पत्रों का रहस्य	११
अर्जुन प्रेम का रहस्य	११
भारत का अर्थ का रहस्य	१०९
दण्ड व अर्थ का रहस्य	११
नदीन अथवा का रहस्य	११
महामहोपाध्याय वर्मा के उपन्यास	११
उपन्यास	११
परिनिष्ठ	११२ ११४
महामहोपाध्याय वर्मा के उपन्यास	११४ १२१

१ मधुरप्रसाद शर्मा के उपन्यास मूरजही बैंगम	२४८
४ बयारामदास गुप्त के उपन्यास नवाबी परिस्ताम	२१०
१ बहानम्बन सहाय के उपन्यास नामकीन	२१२
६ विमलबहूषों के उपन्यास वीरमणि	२१७

वैचय सप्ताह

घटनाक्रमक उपन्यास	२६१ १११
१ तबसुब से पूर्व की परम्परा	२६१
२ तिलस्वी उपन्यास	२६४
तिलस्म	२६७
देमार	२६८
'बग्नकाता' उपन्यास	२८२
'बग्नकाता' की परम्परा	२८६
३ बासुकी उपन्यास	२८३
बासुत	२८३
मोनासराम बहमरी के उपन्यास	२८६
रामप्रसाद लाल के उपन्यास	२८८
बयारामदास गुप्त के उपन्यास	३००
रामलाल वर्मा के उपन्यास	३००
समीक्षात्मक कृति	३०१
४ अद्भुत उपन्यास	३०३
'मिस्त्री' सचवा 'रहस्य	३०३
रोमाञ्चकारी घटना का रहस्य	३०३
अद्भुत घम का रहस्य	३०३
भाष्य या व्यक्ति का रहस्य	३०३
मन के घामन्य का रहस्य	३०५
नवीन सम्पत्ता का रहस्य	३०६
राष्ट्रदोषार की शक्ती का रहस्य	३०६
उपसंहार	३१२ ३१४
परिशिष्ट	३१३ ३१४
सहायक पुस्तक-सूची	

उपस्थास' शब्द को व्युत्पत्ति

[illegible][illegible]

- १ कमु जारो ।
२ मानिक विविजम समभूत-विश्व विपारनी ।
३ वी ।
४ कजिपय ममेर निरं ह-मोहमोहति । ११ २।
— कसकर कपय, मन्द प्रकाश)
११ ४।

—(प्रतिपक्ष पक्षों के सदस्यों द्वारा)

५. पुनः पुनः विचार्य ॥ (अथवा विचार्य)
 ६. पुनः पुनः विचार्य ॥ (अथवा विचार्य)
 ७. पुनः पुनः विचार्य ॥ (अथवा विचार्य)
 ८. पुनः पुनः विचार्य ॥ (अथवा विचार्य)
 ९. पुनः पुनः विचार्य ॥ (अथवा विचार्य)
 १०. पुनः पुनः विचार्य ॥ (अथवा विचार्य)
 ११. पुनः पुनः विचार्य ॥ (अथवा विचार्य)
 १२. पुनः पुनः विचार्य ॥ (अथवा विचार्य)
 १३. पुनः पुनः विचार्य ॥ (अथवा विचार्य)
 १४. पुनः पुनः विचार्य ॥ (अथवा विचार्य)
 १५. पुनः पुनः विचार्य ॥ (अथवा विचार्य)
 १६. पुनः पुनः विचार्य ॥ (अथवा विचार्य)
 १७. पुनः पुनः विचार्य ॥ (अथवा विचार्य)
 १८. पुनः पुनः विचार्य ॥ (अथवा विचार्य)
 १९. पुनः पुनः विचार्य ॥ (अथवा विचार्य)
 २०. पुनः पुनः विचार्य ॥ (अथवा विचार्य)

- [illegible]

—‘कथन’ ‘नियोजन’ ‘निर्देश’ ‘मकेन’ ‘बोधना’ ‘परिनिवार’ तथा ‘सुगम्य’ । ‘उप-
पाद’ शब्द के कथन’ ‘नियोजन’ तथा निर्देश’ अर्थ ही प्रस्तुत प्रकरण में प्रामाणिक हैं ।
कोप के ‘बाह्य मुग’ ‘अभिज्ञान-बाहुस्तसम्’ तथा अमर-घातकम्’ के ‘बचनोपन्यास’ में मैं
ही मुख्य प्रामाणिक पद्य ललित होते हैं । सामान्यतः बचन या ‘कथन’ के ‘नियोजन’ का
नाम ‘उपन्यास’ है । कालान्तर में ‘पट्टमात्रों का नियोजन’ भी ‘उपन्यास’^१ कहा जाने
लगा । प्रत्यक्ष रूप से नाट्य के ‘प्रस्तावन’ काव्य के ‘नियोजन’ समसादन के ‘कथन’ तथा
कोप के ‘बाह्य मुग’ का ‘उपन्यास’ के साधुनिष्ठ पद्य में कोई याम प्रतीत नहीं होता ।

संस्कृत से ‘उपन्यास’ शब्द धातुनिष्ठ मातृणीय बापाधों में भी आया । तमिः और
कन्नड़ में ‘उपन्यास’ का अर्थ ‘व्याख्यान’ है जिसे ‘कथन’ से दूर नहीं कह सकते । बंगला
में उपन्यास शब्द के मुख्य अर्थ दो हैं—एक नवीन और दूसरा प्राचीन । प्राचीन अर्थ
में ‘उपन्यास’ का व्यवहार ‘वाचस्पत्यम्’ ‘अमरम्’ ‘उपन्यासम्’ तथा ‘वाच’ के लिए होता
है^२ । इन अर्थों की समिति संस्कृत-परम्परा में बैठ जाती है । नवीन अर्थ में ‘उपन्यास’
बचा-नाहित्य का कथन-विशेष है । यह नवीन अर्थ अष्टादश शताब्दी के प्रारम्भिक काल
में ‘ब्रह्मचार-जनक सामारिक प्रस्तावनात्मक पद्य-रस’^३ ‘सम्भाषाविक कलित उपन्यास
उपकथा पद्य’^४ अथवा ओता का पाठकदिनेर चित्तविनाशार्थ कलित वृत्तान्त’^५ ‘उपन्यास’
शब्द के कई नवीन अर्थ हैं । हिन्दी में भी ‘उपन्यास’ के अर्थ दो संस्कारों के छोड़कर हैं ।
संस्कृत की परम्परा से इसका अर्थ ‘वाक्य का उपाय’ ‘बचन’ ‘बात की लपेट’ या
‘बात का लच्छा’ है और अष्टादश शताब्दी के अन्त में कलित साक्षात्कारिक ‘बचा’ या ‘नावेन’^६ ।

‘उपन्यास’ शब्द का नवीन अर्थ में प्रयोग बंगला और हिन्दी में एक ही परिस्थिति
में हुआ । बंगला में यह कहिये है और हिन्दी में कुछ पीछे और कदाचित् हिन्दी में इन
का आगमन बंगला के स्नेह में ही हुआ था । इसलिए इन रिता में हिन्दी बंगला की चली
है । सन् १७७४ में कमलता में मुनीम बोर्न की स्थापना ने उपरान्त अष्टादश शताब्दी के
आवाज का महत्त्व बढ़ने लगा । रामराममिश्र नायर ब्राह्मण ने सर्वप्रथम अष्टादश शताब्दी में
रचना प्राप्त शब्द अनेक बाहुधों को अष्टादश शताब्दी में आने का स्थापना

१. द्वितीयतः गणेशजी के अर्थों के सुन्दर वर ‘उपन्यास-वाचस्पत्यम्’ कहा हुआ है,
का प्रतीक और नवीन अर्थों के विषय की उपमा देता है ।

२. अमर-वाचस्पत्यम् ।

३. अमर-वाचस्पत्यम् ।

४. अमर-वाचस्पत्यम् ।

५. वही ।

६. अमर-वाचस्पत्यम् ।

७. हिन्दी-उपन्यास ।

८. रामराममिश्र । ९. अमर-वाचस्पत्यम् ।

हूँ और उम्मीदों की छायाओं के मध्यमार्ग तक बंगाल पर पाश्चात्य सभ्यता-संस्कृति का रंग छा गया। नवयुवकों में अंग्रेजी कथा-साहित्य का प्रचार हुआ और 'रोमान्स' तथा 'मिस्ट्री नॉवेल्स' के प्रति उत्तरोत्तर रुचि बढ़ने लगी। साहित्यिकों ने बंगला भाषा में भी कमकला के जीवन पर व्यंग्य लिखे। 'बाबू उपाख्यान' (सन् १८२१) 'नवबाबुमिताभ' (सन् १८२५) तथा 'आलाखेरा बड़े दुतास' (सन् १८३८) इन में उल्लेख योग्य हैं। इन की दो विशेषताएँ हैं—'कसिकाठा चापाय कसिकाठास्वदियेर स्नेपनेका' तथा 'धर्म-विद्व पौ हाम्बरधपूर्ण सामाजिक चित्र'। इनके साथ-साथ 'कसिकाठार मुकुबूरि' (कलकत्ता सदान की धुका-सूरी) भी कथासाहित्य के लिए लोकप्रिय विषय बनी। 'रोमान्स' 'मिस्ट्री' 'उपाख्यान' इन रचनाओं के साहित्य-नाम थे। इन्हीं के संयोग से 'उपन्यास' नाम का प्रादुर्भाव हुआ। 'उपकथा' एवं 'उपाख्यान' का उपसर्ग 'उप' और रोमान्स (प्राचीन काल का उपन्यास) का प्रत्यय 'न्यास'। 'उपन्यास' शब्द के प्रथम अर्थ के कारण बने। उपर्युक्त परिस्थितियों से होता हुआ 'उपाख्यान' शब्द स्थिर होकर अंग्रेजी के नवेलि या 'रोमान्स का समानांतर बना। इसमें 'नवेलि' से 'नवाच जीवन का चित्रण' और 'रोमान्स' से 'अतिरंजना' का समावेश हो गया था। उपन्यास के साथ-साथ बंगला में 'उपकथा' और 'नवेल' (नवेलि) शब्द भी चलते रहे। भारत की प्राकृतिक प्रापाओं से अंग्रेजी का 'नवेलि' शब्द और उसका समानांतर एक बेसी समय कुछ काल तक साथ साथ प्रचलित रहे हैं। मुंबराठी में 'नवेल कथा' और 'नार्थ' मराठी में 'नवेलिका' और 'कादम्बरी' तथा उर्दू में 'नवेल' और 'अफसाना' इस के प्रमाण हैं। प्रस्तु, 'उपन्यास' शब्द का मूलोप शब्द में परिवर्तितनाम प्रयोग 'नवेलि' एवं 'रोमान्स' की समवेत प्रति स्थिति के लिए बंगला और हिन्दी में स्थिर हो गया।

१. 'आलाखेरा बड़े दुतास' प्रकाश ४ ३

२. पृष्ठ १०१।

३. पृष्ठ १५३।

४. टेकराद मुनिवर की रचना स्त्रिय का नाव।

५. उन्मत्त शब्द का पुराना प्रयोग निम्नार्थ प्रयोग (शब्द-तन्त्र १७७२ तथा १७७३) में हो अंग्रेजों के लिख है। वे हैं—सरदार उन्मत्त तथा वायुचम्पार मन्डेर उन्मत्त।

—का. मन्मथपुराण भाग ५। ५ 'किञ्चिद्द सखी काज नि लावक ५२' नवेलि का अर्थ निम्नार्थ, पृष्ठ १०३।

६. मुम्बयपुर की एक रचना का नाम 'नवेलिजिम्निक नवकास' (१७७२ ई.) है। या नवेलि के 'नव' तथा रोमान्स (उन्मत्त) के 'न्यास' का योग से बना है।

—(का० मुम्बयपुर तैल : ५ तथा साहिब रविदत्त द्वितीय पृष्ठ ५७५ पृष्ठ १०३)

नवेल गद्य का इतिहास

उपन्यास 'नवेल' का ही प्रतिकार है इसलिए नवेल का पूरा इतिहास उपन्यास के विकास-आर में महायुक्त होगा। 'नवेल' एक घड़ियों का है। इसका जन्म बहुत प्राचीन नहीं है। संस्कृति में कथा-साहित्य के विना सामान्यतः व्यवसाय द्वारा 'उपन्यास' है जो घटने की तरह नवेल 'नवेल रोमान्स' तथा कथामय कथा का समान्य रूप होता है। ध्वनि-गर्क एक का अनुसरण करें ता 'नाटक' भी 'चित्रण' के समान ही घटने। क्रिया में घटने की रचना का संयोग होता है। और इसी युग में वह 'नवेल' एवं 'रोमान्स' में विकसित हो जाती है। कथा की रचना के अनुसार समकालीन घटने की रचना का कार्य बहुत घटने की रचना में प्रचलित होता है।

'नवेल' गद्य का प्रयोग साहित्य में सन् १५५० से मिलता है। वहीं यह विरोध है और वही संज्ञा। इसके मूल केंद्र भाषा के *Novella* एवं *Novus* इन्हीं भाषा के *Novas* एवं *Novella* तथा लैटिन भाषा के *Novella* एवं *Novellas* गद्य है। इन्हीं में ऐसी घटने की जिस में घटने की रचना का एक-एक रूप इस प्रति-मान हो साहित्यिक कवि *Novas* कहने लगे — *Novas* का व्यवहार बहुवचन में होता था उसी में समान परन्तु साधारण में छोटी घटने की बोली-बोली तथा उनके समकालीन के *Novella* कहना प्रारम्भ कर दिया। दो शताब्दियों तक इन्हीं के लेखक बहुवचन में बोली-बोली (रचना की विमलता सन् १५५०) के अनुसरण पर, *Novella* की पुस्तकें लिखते रहे। ऐतिहासिक के साहित्य-ज्ञान में दो रचनाएं संस्कृति में घटने,

१ It includes not only the novel and the prose romance but also narrative poetry in strict etymological sense. It includes drama. (12) Ernest A. Baker The History of the English Novel Volume 1

2 The Novel is a picture of real life and manners and of the times in which it is written. The Romance is lofty and elevated language describes what never happens nor is likely to happen. (Quoted on p. XIV Introduction in 'The Development of the English Novel' by Wilbur L. Cross)

३ रिचार्ड बाल्फोर (रिचार्ड रिचार्ड)

४ For a verse-narrative approaching closer to the manners of real life its intrigues and jealousies—The Provençal poets had employed the word *Novas* (always plural) for a like narrative in prose always short, Boccaccio and his contemporaries were using the cognate word *Novella* (XIII) (Introduction) Wilbur L. Cross The Development of the English Novel

हर्ष और उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यभाग तक बंगाल पर पाश्चात्य सम्प्रदाय-संस्कृति का रज छा गया। नवयुवकों में धर्मोन्नी कथा-साहित्य का प्रचार हुआ और 'रोमान्स' तथा 'मिस्ट्री नवेल्स' के प्रति उत्तरोत्तर रुचि बढ़ने लगी। साहित्यिकों ने बंगला भाषा में भी कमकला के जीवन पर ध्यान लिखे। 'बाबूर उपाख्यान' (सन् १८२१) 'महबाबुबिबात' (सन् १८२३) तथा 'अलाहेर नरैर हुसाल' (सन् १८३८) इन में उल्लेख योग्य हैं। इस की दो विशेषताएँ हैं—'कसिकाता भाषाय कसिकातास्त्रविनैर श्लेषलेखा'^१ तथा 'ध्वन्य-विश्र प श्री हास्यरसपूर्ण सामाजिक चित्र'^२। इनके साथ-साथ 'कसिकातार मुकेश्वरि'^३ (कसकतिमा समाज की मुका-रिखी) भी कथासाहित्य के लिए लोकप्रिय विषय बनी। 'रोमांस' 'मिस्ट्री' 'उपाख्यान' इन रचनाओं के आदि-नाम थे इन्हीं के संयोग से 'उप-न्यास'^४ नाम का प्रादुर्भाव हुआ। 'उपकथा' एवं 'उपाख्यान' का अपसंगे 'उप' और 'रोमान्स' (प्राचीन बंगला 'रमन्यास') का प्रत्यय 'न्यास'^५ 'उपन्यास' शब्द के सप्रत्ययन सम्भव के कारण बने। उपर्युक्त परिस्थितियों से होता हुआ 'उपावास' शब्द स्थिर होकर धर्मकी के नविल या 'रोमान्स' का समानांतर बना। इसमें 'नवेल' से 'बचार्थ जीवन का चित्रण' और 'रोमान्स' से 'घटितकथा' का समानेय हो गया था। 'उपन्यास' के साथ-साथ बंगला में 'उपकथा' और 'नवेल' (नविल) शब्द भी चलते रहे। भारत की आधुनिक बापानों में धर्मोन्नी का 'नविल' शब्द और उसका समानांतर एक बेसी लम्बे कुछ काल तक हाव-भाव प्रचलित रहे हैं। बुजराती में 'नविल कथा' और 'भारती' मराठी में 'नवलिक्का' और 'कावम्बरी' तथा उर्दू में 'नविल' और 'अफनामा' इस के प्रभाव हैं। अस्तु 'उपाख्यान' शब्द का प्राचीन अर्थ में परिस्थितिजन्य प्रयोग 'नविल' एवं 'रोमान्स' की समवेत अनि-व्यक्ति के लिए बंगला और हिन्दी में स्थिर हो गया।

१ 'अलाहेर नरैर हुसाल' जमिना १०१

२ नरै, नरै।

३ नरै २२

४ शैलचन्द्र श्रमिक की रचना-सिरोज का भाग।

५ 'उपन्यास' शब्द का पुराना अर्थो 'निर्दिष्टार्थ संश्लेष' (शब्द सङ्घ १७७३ तथा १७७५) में दो व्याख्यानो के निच है: १ है— सरलर वन्दन तथा 'पादुकाधार गङ्गादेर उपाख्यान'।

—का. चर. कहुमार दास मुद्रा। २ 'ब्रिटिश एजेंसी ऑफ दि लार्ड क्वार्ट मॉविल्ल पाठ ब्रिटिश-पत्र, ५ ३)

६ मुद्राचन्द्र की एक रचना का नाम 'ऐतिहासिक नवगणाल' (१८७२ ई.) है। का. मॉविल के 'नव तथा 'रोमान्स (रमन्यास) के भाग के भाग से बना है।

—का. लुधियार सैम। ५ गला सारि नैर इतिहास सिटीज टावर नवम एडिशन, १० १७२)

नविल शब्द का इतिहास

'उत्पत्ति' 'नविल' का ही प्रतिकृति है इसलिए नविल का पूर्व इतिहास उत्पत्ति के स्वरूप ज्ञान में महत्वपूर्ण होगा। 'नविल' शब्द प्रयुक्त का है इसका जन्म बहुत प्राचीन नहीं है। प्रयुक्तों में कथा-साहित्य व विषय सामान्यतः व्यवहार्य शब्द विद्यमान हैं जो धारण प्रतीत 'नविल' तथा रोमान्स तथा कथानायक नाट्य का समावेश कर लेता है। व्युत्पत्ति परक शब्द का अनुसरण करें ता 'नाटक' भी विद्यमान के सम्मर्पण ही श्रावण। 'रोमान्स' में यथाच घोर कल्पना का संयोग होता है और इसी गुण में वह 'नविल' एवं 'रोमान्स' में विद्यमान हो जाती है। बचारा रीति के अनुसार समकालीन यथाच जीवन का चित्र नविल का व्यवहार्य शब्द है इसके विपरीत रोमान्स में अनिश्चित कल्पना का चित्र नविल का व्यवहार्य शब्द है। इसके पूर्व केंच भाषा के *Novelle* एवं *Novas* इत्यादि विनोद है और वहीं संज्ञा। इसके पूर्व केंच भाषा के *Novelle* एवं *Novas* इत्यादि भाषा के *Novas* एवं *Novella* तथा लैटिन भाषा के *Novella* एवं *Novellus* शब्द हैं। इत्यादि में ऐसी पद्य-कथा को जिस में यथाच जीवन का छव-छव रूप रूप प्रतिभाषित हो प्राथमिक रूप *Novas* कहते हैं—*Novas* का व्यवहार बहुवचन में होता था उसी के समान परम्परा आधार में छोटी पद्य-कथा को बीर्गिया तथा उनके समकालीन *Novella* कहना प्रारम्भ कर दिया। बीर्गिया *Novella* के अनुसरण पर *Novelle* बहुवचन में बीर्गिया (रचना 'बीर्गिया' सन् ११४६) के अनुसरण पर *Novelle* बीर्गिया के लिये रहे। ऐतिहासिक के वास्तव-जान में य रचनाएं संयोजी में या गई,

- १ It includes not only the novel and the prose romance but also narrative poetry in strict etymological sense it includes drama. (12) Ernest A. Baker The History of the English Novel Volume I
- २ The Novel is a picture of real life and manners and of the times in which it is written. The Romance is lofty and elevated language describes what never happened nor is likely to happen. (Quoted on p. XIV Introduction in The Development of the English Novel by Wilbur L. Cross)

- ३ रिचर्ड ब्रुक्सटोर् (नविल विचारणी)।
- ४ For a verve-narrative approaching closer to the manners of real life its intrigues and zealousness—The Provençal poets had employed the word *Novas* (always plural) for a like narrative in prose always short, Boccaccio and his contemporaries were using the cognate word *Novella*. (XIII) (Introduction) Wilbur L. Cross The Development of the English Novel.

धीरे उनके साथ उन अनुचित रचनाओं या उनकी अनुकूल रचनाओं के लिए 'नावेल' शब्द का व्यवहार भी प्रारम्भ हो गया। इस प्रकार सन् १५६६ से अंग्रेजी में नावेल शब्द का व्यवहार बोलचाल की यथार्थ-परक कथा-कथाओं के अनुक्रम पर सिखी गई रचनाओं के लिए पाया जाता है।

सन् १६० के बाद नावेल शब्द का व्यवहार अंग्रेजी में विशेष रूप से दृष्टिगत होता है। १६१२ ई० के आसपास इसका रोमन-लिपि में विशेष धक्का—'नॉवेल' का पुरक नियम या विधान विशेषतः सम्राट् जस्टीनियस द्वारा निमित्त। कुछ काल पश्चात् एक पर्याप्त आकार की कथा-कथाएँ—जिसमें पात्र धीरे उनके कार्य-व्यापार यथार्थ जीवन के प्रतिनिधि होकर संस्पष्ट कथानक में चित्रित हों—'नावेल' शब्द से अभिवृत्त होने लगी। अठारवीं शताब्दी के प्रारम्भ में 'नावेल' शब्द का एक 'नवीन' या धीरे बहुवचन में यह शब्द 'समाचार' या 'समाचारों' का पर्याय बन गया। 'नावेली' शब्द इसी 'नावेल' से भाववाचक संज्ञा बना है। यस्तु, 'नावेल' उस पद्य-नवा को कह सकते हैं जिसमें कथानकों की नवीन रंग से योजना हो जिसमें दृष्टिकोण की नूतनता हो और जो समकालीन जीवन का अनुरोध सीरी से सर्वत्र प्रस्तुत करती हो।

इस प्रकार 'नॉवेल' लिपि-रूप का पोषक एवं 'रोमान्स' का अनुकूल है। सामान्य 'लिपि-रूप' दो प्रकार की थी—'रोमान्स' तथा 'नावेल'। धीरे 'रोमान्स' १५वीं शताब्दी में सामान्य व्यवहार में आने लगी थी। १८वीं शताब्दी तक 'रोमान्स' तथा 'नावेल' दोनों का क्षेत्र स्वतंत्र तथा स्पष्ट था 'वि प्रोप्रेस थाक रोमान्स' (रचना काल सन् १७८५) में बताया कि ने 'रोमान्स' और 'नावेल' का क्षेत्र स्पष्ट करते हुए साहित्यिकी की मायता को इन शब्दों में व्यक्त किया है—

'नावेल यथार्थ जीवन और ऐति-व्यवहारपूर्ण उस युग का चित्र है जिसमें इसकी रचना होती है। रोमान्स अतिरिक्त एवं आकर्षक यापा में उसका वर्णन करता है जो न कभी बटित हुआ और न जिसकी संभावना है'। १९वीं शताब्दी में विशेषतः जस्टर स्कट (रचना काल सन् १८१४ से १८३१ तक) के कथा-साहित्य में 'रोमान्स' और

- १ During the two centuries following Boccaccio the Italians continued to compose books of Novella, and in very great number. In the age of Elizabeth they came into English in Schools, and with them the word Novel as applicable to either the translation or an imitation.

(XIV) (Ibid)

- २ Oxford English Dictionary Volume II

- ३ The Shorter Oxford English Dictionary

- ४ A fiction prose narrative of considerable length, in which characters and actions representative of real life are portrayed in a plot of more or less complexity

'नाबेल' दोनों के पुत्रों का मिश्रण हो गया। तब से साहित्य में 'नाबेल' का शोध व्यापक मान लिया गया और 'रोमान्स' का संकीर्ण 'नाबेल' कथा-साहित्य के लिए सामान्य नाम बन गया। समय-समय पर घटनाओं के इस इतिहास में नाबेल छपर समय-समय पर प्रभाव-विशिष्ट के कारण विभिन्न व्यक्तियों का योगदान करते हुए, फल में पर्याप्त ध्यान की वसार्थमयी मध्य-कथा की सामान्य समझ स्वीकार कर लिया गया है। चायुनिव भारतीय भाषाएं 'नविल' के संज्ञान में धारक 'नवी' नाम-रूप से प्रभावित हुई है।

उपन्यास या नविल की परिभाषा

विष्णु इन्दिरा द्विचतुर्ग के अनुसार 'नाबेल' मध्य में निरती हुई वर्णित घाटार की कम बलिष्ठ कथा को कहते हैं जिसमें वयाव जीवन का प्रतिनिधित्व करते हुए वे पात्र और कार्य-व्यापार कथानक के घटती-बढ़ती बिंदु हैं। बाबू गुलाबराय ने उपन्यास को 'एक प्रकार का कथानक है जिसमें घटती-बढ़ती घटनाएँ तथा ऐतिहासिकी के साथ साथ या बहुत घट-बढ़ानक है जिसमें घटती-बढ़ती घटनाएँ तथा ऐतिहासिकी के साथ साथ या एक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से संबंधित घटनाएँ तथा ऐतिहासिकी के साथ साथ या घटनाओं द्वारा मानव-जीवन के रूप का रसात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है'। वयाव जीवन के घटती-बढ़ती पात्र और कार्य-व्यापार का सूत्र जीवन के मरण की रसात्मक प्रस्तुति करता है। उपन्यास में जीवन का वयाव और मरण का नहीं होना प्रत्युत उम्र का वयाव बिजग रहना है। इसलिए उपन्यास की कथा ऐतिहासिक रूप में मरण नहीं होनी प्रत्युत मरणावस्था होती है क्योंकि साहित्य का मरण तो नहीं है जो स्पष्ट और वयावत् रूप में प्रकट किया जा सके।

मध्यमवीन ईसाई में समाज के दो वर्ग थे—विशिष्ट वर्ग (परम वर्ग) तथा सामान्य वर्ग (सामान्य वर्ग)। दोनों वर्गों की गायकों के मुख से गाये गए कथाओं को सुनने में मजबूती थी। विशिष्ट वर्ग के जीवन का धारक दिन साहसपूर्ण जीवन-कथाओं

१. निम्न रूप में दि विवेकमेव अकारि ईगणित मित इन्द्रावतान १० १५
२. वही।

३. A fictitious prose tale or narrative of considerable length in which characters and actions professing to represent those of real life are portrayed in a plot."

४. कथा के रूप १० १२०

५. "The name given in literature to a sustained story which is not biologically true, but might very easily be so (Encyclopaedia Britannica Vol. 16)

६. "Whatever is clearly and distinctly apprehended is true. (Car- teian) Quoted in "Some Principles of Fiction" by Robert Liddell on page 117

७. दि मू सिवई एनल-रन्सोरीका कल्प ७

में प्रकट रहता था उनसे 'रोमान्स' का उद्भव हुआ। सामान्य वर्ग की प्रिय-कथाएँ 'नावेल' का आधार बनीं। इनमें या तो विचित्र वर्ग (गोदार्थों और पादरियों) पर व्यंग्य-परिहास रहता था या कुछ और दुर्बलों के साहित्यिक कार्य अथवा सामान्य वर्ग का अपना जीवन। इटली की नावेल या 'मनीन कथा' जिमकी जर्नी ऊपर हो चुकी है, जब ईंग्लैंड में आई तो सामान्य वर्ग की इन कथाओं को भी इटली का वही नाम (बुख देसी रूप के साथ) प्राप्त हो गया। प्राचिन साहित्य में नावेल पर्याप्त आकार की उस घुमिष्ट कथावस्तुमयी रचना को कहते हैं जिसमें जीवन का वास्तविक^१ चित्र हो और जिसके पास एवं बटनाएँ यथार्थ या यथार्थ के अनुकरण हों।

प्रारंभ में स्वल्प के साथ-साथ नावेल की परिभाषा भी विकसित होती रही है। प्रॉसिप बेकन के अनुसार नावेल 'कल्पित इतिहास'^२ है तो फ्रीडिंग के अनुसार 'मनोरंजन गद्य महाकाव्य'^३। क्लारा रीब ने नावेल की विशेषता 'स्वर्गीय युग के यथार्थ जीवन और ऐति-व्यवहार का चित्र'^४ मानी है तो बेकर ने 'कल्पित यथ-कथा के द्वारा मानव जीवन की व्याख्या'^५। बोरैस 'कथावस्तुमयी कल्पित कथा'^६ यात्र को नावेल कहते हैं तो फोर्स्टर कालक्रम से निबोधित बटनाओं के वर्णन^७ को। उसल तथा इनके समान अन्य परिभाषाओं में सर्वसाध्य धर्म को ही महत्व देकर हृदयन कहते हैं कि 'नावेल' मने ही धर्म कुछ हो वा न हो कहानी तो अवश्य है^८। फॉमीसी धातोरक की विशेष प्रकार की बत-कथा^९ कहकर नावेल का सामान्य लक्षण करते हैं।

अस्तु, व्याख्याओं में मतभेद न होते हुए भी 'नावेल' की सर्वसाध्य परिभाषा सम्भव नहीं हो सकी है, क्योंकि जितनी रचनाएँ 'नावेल' नाम से प्रसिद्ध हैं वे सब एक

१. निम्न निबद्ध समग्रकालीनिक साम्य *

The term novel is now usually applied to a narrative of considerable length with a more or less intricate plot which pictures life as it is, dealing with characters and events that have been or might be real.

२. Feigned History

३. A comic epic in Prose.

४. Picture of real life and manners, and of the times in which it is written

५. The interpretation of human life by means of fictitious narrative in prose

६. A novel is a fictitious narrative which contains a plot "

७. It is a narrative of events arranged in the r time sequence

८. A novel whatever else it is or it is not is at any rate a story

९. Une fiction en prose d'une certaine étendue M. Abel.

ही प्रकार की नहीं है। नविस्य में भी उनमें स्वल्प भेद संभावित रहेगा क्योंकि उनमें 'स्वकीय धर्म' का विशेष महत्व है। यदि परिभाषा का धारण न रखकर नाबल की बिरोधनाया का स्पष्ट स मूषम की घोर कनन हण यकाकम कथन किया जाण ता अधिउ समीचीन होय। नाबल की सामान्य बिरोधनाए निम्ननिम्न है—

(क) माध्यम गद्य हा पद्य नहीं।

(ख) बिषय-वस्तु जीवन का चित्रण हा—पुनः भवना मुकत कविता व ना के कव में।

(ग) छेत्तो कथ वस्तु को बिद्वन्मयीय बनाने वाली हो यद्यपि कम-न कम जीवन क लघ्या के साथ निरिचन एव व्यवस्थित क्य म सम्बद्ध हो।

(घ) रचयिता के बुद्धिकोष की स्पष्टता।

गद्य में रचिन विनी भी बड़ी कथा का 'नविस' कहा जा सकता है। इसका नियम स्वाधीन है। अनिवाय बसल इतना है कि कलक घोर पाठक के बीच मीन जायन हा सके। 'नविस' धोतायन की घयता नहीं रगना परन्तु रचना के साथ ही गम वालीन रीति-नीति में कविमान पाठकों की इमे घयता है 'नाबल' उम युग म कयना कृतता है जब जनता की बुद्धि घीर सकयविन घययउ मकिर हो कयना यविन लमिन रहे परन्तु बिबेचना बहुत सभत एक जागकक हो। वस्तुन 'नाबल' घय काय-क्या की घयेछा अधिउ बुद्धिवादी रचना है। नत्यानुक्य चित्रण क द्वारा नाबल पाठक की समकालीन जीवन के प्रति अधिउ सावधान कर देना है इनीविन बिदर क इतिहास में 'नविस' बड़ी-बड़ी नाम्तिवी (घोन की राज्यनाम्ति मन् १८३८ ई० तथा कन की मान नाम्ति मन् १६०१ ई०) का कारण बना है। सामान्य जनता की गद्य-कथा क माध्यम के समकालीन जीवन क प्रति स्वकीय बुद्धिकोष प्रस्तुत कर सवेत एव मधिय बना देने में ही उनयाम का इतिव है।

नविस या अन्यास में सामान्य के समान रज्जित घाया मन्नायम के समान जीवन की गर्वाङ्गीयता घीर नाटक के समान मनारमता बिदवान रखी है। 'नवरी' कामयी मुररत कयमान म घानी है यनीन म नहीं। इसमें घायिराय बुद्धि-लभ्य का है

- १ A novel, admittedly obeys few laws, but it must be a story written to be read in silence the silent communion of author and reader. It demands no audience but by the very law of its being it demands the existence of a large reading public attuned to its contemporary contentions. (-)

S Diana Neill A Short History Of the English Novel.

- २ When the intellect and the reason are most active the imaginative faculties may be dormant but the critical are very much awake. (—)

Frederic A Baker The history of the English Novel, Volume 1

हृदय तब का उदना नहीं। नविल का अवन नैतिक शिक्षा नहीं फिर भी मेराक के दृष्टि कोम द्वारा यह पाठक के व्यक्तित्व का निर्माण करता है। नाथेन को इन विशेषताओं का स्पष्ट विवेचन करने के लिए श्रेष्ठ साहित्य-कर्मों हैं इसका साम्य और वैपश्य जानना यदि आवश्यक है।

उपन्यास और काव्य

प्राचीन साधनों में काव्य के मुख्य और श्रेष्ठ दो भेद किये हैं। प्राकृतिक घातोंक उपन्यास-कहानी के सन्निवेश के कारण साहित्य का मुख्य श्रेष्ठ नाथेन या पाठक तीन प्रकार का मानते हैं। उपन्यास-कहानी साहित्य का ऐसा भेद है जो काव्य नाम से प्रसिद्ध श्रेष्ठ दो भेदों (हृदय एवं शब्द) से अलग होते हुए भी एक है। उपन्यास के व्यक्तिकारी-पाठक हैं जिनकी सामाजिक जीवन में रुचि हो और जो मेराक से तद्विषयक मोन संभाव्य कर सकें।

'उपन्यास' को 'काव्य' का ही एक रूप कहा जा सकता है। कथा-साहित्य और चरित्र-प्रधान प्रथम काव्य में तो विशेष निश्चय है। कथा-साहित्य का उद्देश्य ही एपिक या प्रथम काव्य के स्थान पर होता है। जिस प्रकार काव्य कवि के व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब है उसी प्रकार उपन्यास-कथन रचयिता के व्यक्तित्व-चित्र है उन्मुक्त वृत्त और सुनिश्चित होता है। दोनों ही सामाजिक जीवन के चित्र हैं जो कलाकार के व्यक्तित्व की छाप से प्रसिद्ध होकर पाठक के समक्ष अपनी विविधता में उपस्थित हो जाते हैं। व्यक्तित्व का प्रभाव कल्पना का प्रसार, कला की रमणीयता निर्माण की प्रति मानव की दुर्बलता और चरित्र का उद्देश्य का काव्य एवं उपन्यास दोनों में समान रूप से प्रसिद्ध किये जाते हैं। कवि के समान उपन्यासकार बचन का विशेष प्रेमी हो सकता है वे वर्णन उसकी संवेदना से अनुप्राणित होकर उसके स्वीकृत दृष्टिकोण के विशेष चरित्रावक होते हैं। उपन्यास और काव्य दोनों में जीवन के प्रति दृष्टिकोण दोनों की संवेदनाएं, दोनों के मूल्यांकन मापन में बिना हो सकते हैं स्वयं में नहीं क्योंकि दोनों मूल विधियों द्वारा जीवन का कलापूर्ण चित्रण करते हैं।

१. उपन्यास काव्य के रूप।

२. इस उद्देश्य को २ शब्दों हिन्दी भाषा में व्यक्त किया गया है।

३. रिचर्ड बर्न : दि ग्रेट आर्थर दि इंग्लिश गायन।

"—the novel is the child of poetry—" (126)

४. प्रथम उपन्यास हिन्दी-उपन्यास-साहित्य पृ. १२

५. एलेन ए. कैडर दि हिन्दी आर्थर दि इंग्लिश गायन पृ. २३

६. रिचर्ड बर्न : दि ग्रेट आर्थर दि इंग्लिश गायन।

"The novel like the poem, is after all a flower of their individual personality—" (126)

७. रिचर्ड बर्न : दि ग्रेट आर्थर दि इंग्लिश गायन।

"Their approach to life—their conscious apprehensions their inter-

काम्य धीर उपन्यास का मुख्य अन्तर कल्पना की भाषा पर निर्भर है। काम्य की कथावस्तु धीर पात्र वास्तविक न होकर मरुत-मान भी हो सकते हैं। ऐसी भी कविता हो सकती है जिसमें व्यक्ति या वस्तु का निराला अभाव हो और कल्पन एक मात्रता उद्भवताम धर्मवा एव प्राकृतिक रूप मात्र प्रकट कर दिया जाए। उपन्यास की घटनाएं धीर पात्र इतने वायवीय नहीं हो सकने उनका अन्तिम वास्तविकता के डोम परात्म पर ही टिकता है किसी साह-रिषी का महाग मरुत उपायम प्रत्यक्ष में अपनी कल्पना का प्रसार नहीं कर सकता। लक्ष्यकर्मन व काम्य कई बार तो उपायम काम्य की अनेका इतिहास के अन्तिम समीप दिखाई पड़ने लगता है।

उपन्यास धीर काम्य दोनों में कल्पना का तो आधार अविनाश है। परन्तु कवि कहता है प्रति हमारा विवेक वास्तविक-कोटि का होता है। उपन्यास के प्रति हमारे विश्वास में मंगल प्रवृत्ति रहता है उस नास्तिकता का छोटा कह सकते हैं। कवि को पड़ते हुए हमारा वास्तव्य कवि की अनुभूति के साथ हो जाता है। हमारा बोद्धि अस्तित्व अंगत विरोधित हो जाता है। धीर हम कवि के साथ ही वास्तविक धार्मिक मर्मों में मगने लगते हैं। कविता में यदि ऐसी छवि न हो तो हमसे पाठक धीर छोटा हो जाता नहीं मिल सकता। दूसरी धीर उपन्यास का प्रारम्भ ही उपायम वस्तुधन और भाव में होता है। उपन्यास पढ़कर हम यह नहीं स्वीकार कर सकते कि ऐसा हो सकता है। प्रत्यक्ष बार हमारा प्रत्यक्ष महा जाता है कि ऐसा कैसे हुआ। कवि-कल्पना अनेक मात्रा में पाठक के मन को मुक्त कर देने अनेक मूर्ति का अनुभव बना मनी है। परन्तु उपन्यासकार की मूर्ति में पाठक निरीक्षण धीर परीक्षण करना होता ही जाने बड़ करना है।

कल्पना जीवी धीर कहना-अवकाश होन व काम्य वाक्य अविनाश है परन्तु उपन्यास अन्तिम धीर अन्तिम को अन्तिम स्वीकार करता है। उपन्यास सामाजिक जीवन की अनेका करक अविनाश की कल्पना नहीं करता इसीलिए वह 'अमाने में धार्य बड़ने का भी दावा नहीं करता। काम्य अन्तिम की धून कर धानी कना में पाठक को अन्तिम धून करके अनेक अन्तिम के धूनकर मने दिया मनेता है। यह अन्तिम भी धातुवाक्य है। कविता कवि भी अनेक धून धीर अन्तिम में मनेका धातुवा महा रह पाता इसीलिए अन्तिम की उपायम उनके लिए समक मनी। दूसरी धीर अन्तिम उपन्यास अन्तिम भी धानी रचनावा में धानी अन्तिम का विश्व अन्तिम अन्तिम है।

परन्तु काम्य में रचनात्मक प्रकृति अन्तिम होती है। उपन्यास में अन्तिम-अन्तिम

pretations in terms of significant symbols may be different in degree but they are the same in kind. That kind is the presentation of life through images. (3)

१. उपन्यास : अन्तिम-अन्तिम।

२. धीर।

३. धीर।

धनिक^१। कवि-जगत् मग्न-कल्पित होता है उपन्यासकार का जगत् धनूमन्वयम्। कवि वैद्यकालातीत नित्य और शाश्वत भावों के गीत लिखता है उपन्यासकार अपेक्षाकृत स्थूल भौतिक और परिवर्तनशील मृणीय ममम्यापो एव जिनसे ये उमझा रहता है। कवि जीवनानुभूति से प्रेरित होकर अपने व्यक्तित्व का प्रसार करता है परन्तु उपन्यासकार के मार्ग में जीवन के उपकरण बिखरे हुए हैं जो उसे धाकड़ कर उसका मन में उत्पुङ्गता जगाते हैं और वह उनके धन को समय-समय का प्रयत्न करता है^२। सन्धेय में, काम्य अनुभूति का विषय है और उपन्यास अपेक्षाकृत बुद्धि का काम्य जीवन की प्रेरणा का परिधान है और उपन्यास जीवन के निरीक्षण का फल। उपन्यास बौद्धिक और तार्किक युग में धनिक सभ्य होता है।

काम्य साहित्य का रम्यतम रूप है। कवि की वास्तव्य धनूमन्वयी होकर धर्म-व्यक्ति का प्रयत्न करती है और संगीत उस धर्मव्यक्ति को मार्बुर्य प्रयत्न कर देता है। इस के विपरीत उपन्यास की कला बचन प्रयत्न होती है और उपन्यासकार की कृति बहिर्मुखी। उपन्यास में न उतनी सखिप्तता हो सकती है और न उतनी सचनता। कला की दृष्टि से काम्य और उपन्यास दो भिन्न किनारों पर स्थित हैं। काम्य-कला सबसे अन्तिम है, तो उपन्यास-कला सबसे शरत। कम से कम एक उपन्यास तो सब कोई लिख सकता है।

काम्य जीवन की-आलोचना है, परन्तु उस धर्म में नहीं जिस में कि उपन्यास^३। काम्य भाव-जगत् की सृष्टि कर उनकी तुलना में प्रत्यक्ष जीवन और जगत् की आलोचना करता है उपन्यास नहीं सृष्टि नहीं करता प्रत्यक्ष जीवन का निरीक्षण और परीक्षण करके उन पर अपना निबन्ध दे देता है। कवि की अपेक्षा उपन्यासकार जीवन से धनिक

१. दारनेस द वेयर दि मिस्ट्री आफ़ दि ईंग्लिश आयेन काल्पम् १।

Poetry is creative the novel analytical—the kingdom of poetry—is not this world but of the spirit it is not of temporal but of timeless things—the world of enduring ideas or as the poet may conceive it of absolute realities. (18)

२. वही।

Life is behind the poet impelling and sustaining his imagination. It is in front of the prose artist, the object of his attention, curiosity reflection when he portrays if his motive is to bring out the meaning that it has for him. (18)

३. वही।

Poetry is only indirectly a criticism of life in that the ideal world it shapes forth gives a standard and criterion by which we can not help judging and measuring life. The novel on the other hand is a direct interpretation (19)

है।^१ परन्तु नाटक और उपन्यास के मूल तत्त्व बहुत-कुछ एक ही हैं परन्तु साहित्य के उन दोनों रूपों का अन्तर भी स्पष्ट है। नाटककार को रंगमंच की सुविधा का सदा ध्यान रखना पड़ता है इसलिए नाटक का आकार छोटा होता है उसमें रचयिता स्वयं कुछ नहीं कहता और समस्त दृश्यों को पूर्णतः मनोरंजक बनाने की ओर प्रयत्नशील रहता है। उपन्यास में ऐसा कोई बंधन नहीं इसलिए न समय का ध्यान होता है और न लेखक अपने को पात्रों से अलग रखता है। हर्बसन ने इसीलिए नाटक की कला को एक कुच्छ संयुक्त कहा माना है जिस में रंगमंच की कला का भी उतना ही महत्त्व है जितना कि साहित्य कला का नाटक की कला कठोर नियमों में बाधित रहती है और उपन्यास की अपेक्षा-कृत स्वाच्छास्त्र या नियमों के बन्धन से मुक्त।^२ “उपन्यास में उन सब क्लेशों को हटा दिया है जो नाटक में रंगमंच के लिए अनिवार्य हैं”।

उपन्यास और नाटक के कथामूल में भी अन्तर है। कारण यह कि नाटक में प्रत्येक वस्तु प्रत्यक्ष दिखाई जाती है जैसे हो वह मृत्यु में चटित हुई हो^३ इसके विपरीत उपन्यास वर्तमान जीवन की घटनाओं को भी पूरा चटित कथा के रूप में उपस्थित करता है। इसलिए वहाँ उपन्यास का कथामूल नाटक के मन में धाँवरबिध मानना पड़ेगा सक्ता है वहाँ नाटक अपेक्षाकृत अधिक शिक्कसनीय तथा सामान्य बना रहता है। मृत्यु की वस्तु का एक विषय सबसे है परन्तु वर्तमान की कथावस्तु रंगीन न होने के कारण व्यावहारिक एवं उपयोगी ध्वनिक है।

उपन्यास का क्लेशक बड़ा होता है और नाटक का छोटा। उपन्यास में वर्णन के लिए बहुत अवकाश है परन्तु नाटक रंगमंचों^४ से ही वर्णन का काम चलाता है। नाटककार के पास समय का बन्धन है वह निश्चित अवधि में जितना दिखा सका अपनी कला में उतना ही सफल रहेगा परन्तु उपन्यासकार पर समय और आकार का यह प्रतिबन्ध नहीं है।^५

नाटक का एक मुख्य धर्म कथोपकथन है परन्तु उपन्यास में यह वैकल्पिक होता है। पुराने उपन्यास की प्रवृत्ति तो कथामय ही थी आधुनिक अवस्था कथोपकथन की भी आवश्यकता की जाने लगी है। नाटककार के पास कथा कहने का एक ही साधन है कि वह पात्रों के मुख से कथावस्तु की ध्वनित्वविधि करावे परन्तु उपन्यासकार तीन साधनों

१ श्रीचंद्रनाथ कट्टः उपन्यासका साहित्य।

^२ जर्मन का कथा धर्मिक धर्म (४ १)

२ The drama is the most rigorous form of literary art prose fiction is the loosest.
(An Introduction to the Study of Literature, 130)

३ गुप्तारण्यः काव्य के रूप, पृ. १६।

४ निम्बर रत्न गौड दि दिव्यचर्मैः व्याकरि (गणितेय दानेन।

The dramatist can only suggest scenery the novelist may hang his interior with the landscapes. (60)

५ गुप्तारण्यः काव्य के रूप, पृ. १६३।

का उपयोग कर सकता है—कथा सामकिया (हायरी) तथा पत्र^१। उपन्यासों में प्रायः तारीखें ही साधना का उपयोग रहता है।

नाटककार सामाजिकों को धरने पात्रों का परिचय केवल दो पात्रों में ही नहीं करता प्रमुख पात्रों को केवल भूषा भाव भंगी आदि भी पात्रों की आतिथिक विचारणाओं के उद्घाटन में सहायक होते हैं। उपन्यास में पात्रों को पात्रों के प्रत्यक्ष वर्णन का प्रयोग नहीं उठता वह उनके व्यवहार का अनुमान या तो बलिष्ठ परिस्थितियों में लगावेगा या पात्र प्रत्यक्ष संवाद के माध्यम से।

नाटक में नाटककार सामाजिकों का सामान स्वयं उद्घाटित होकर न तो कुछ बतल कर सकता है और न उद्घाटन समस्याओं पर अपना मत ही बतल सकता है—बल्कि प्रविष्ट में प्रविष्ट किसी पात्र को धरना प्रतिनिधि बना कर उपाय द्वारा अपने विचार प्रकट करेगा। उपन्यास में लेखक का किसी एक या कदाचित् पात्रों के माध्यम से धारण किया जाता नहीं। पात्रकर्म तो प्रविष्टों के उपायों प्रचारणिक दृष्टिकोण से ही विचार जाते हैं और प्रविष्टों के माध्यम से प्रविष्टों के व्यवहार में किसी न किसी पात्रों में स्वयं उद्घाटित होने का प्रयत्न करते हैं।

मैंने के अनुसार उपन्यास में मुख्य पात्रों और पात्रों की प्रवृत्ति की जाती है परन्तु नाटक में पात्र और उनके विचारणा^२। वस्तुतः उपन्यास में पात्रों का ध्यान उन पात्रों की ओर आकर्षित होता है जो उपन्यास का संभावित करती हैं। उपन्यास का नायक इतना अधिक नहीं होता जितना की नाटक का—नाटक में हम नायक को प्रत्यक्ष विचारणीय देखते हैं परन्तु उपन्यास में हम को केवल उन की चर्चाओं का विचार ही मिलता है।

उपन्यास और नाटक की समझ में अंतर है। नाटक की प्रवृत्ति प्रत्यक्षता है और उपन्यास का माध्यम केवल नाटक के पात्रों के द्वारा हृदय को प्रभावित करना है और उद्घाटन करना के द्वारा मन का नाटक की आतिथिकता काय में सीधेता जाती है और उपन्यास की आतिथिकता प्रायः सम्पत्ति का विस्तार करती है नाटक के बाहर पात्रों के प्रतिष्ठित और कुछ नहीं जानना उपन्यास में केवल का दृष्टिकोण प्रत्यक्ष तथा वस्तु पात्रों के द्वारा धारण आकर्षण भी जान सकते हैं। नाटक एक विषय बना है उस पर कई प्रकार के प्रतिष्ठित है इस के भी और पात्रों के भी परन्तु उपन्यास केवल रोचकता की कमीषी पर ही बना जाता है—यदि वह रोचक है तो अपने पात्रों को धीरे धीरे धरेता नहीं रहती।

पात्रकर्म उपन्यास और नाटक करती-करती सीमाओं का प्रतिष्ठित बनकर एक दूसरे के बीच में प्रवेश करने लगे हैं पहले व एक दूसरे के पूरक थे। पात्र उपन्यास

१. दम्पत्य एक दामन : दम्पत्य दम्पत्य इति सती चन्दनारोचतः ५० १२३ ।

२. In the novel it is chiefly sentiments and events that are exhibited in the drama it is character and deeds.

(Carlyle's Translation of Goethe)

कथोरकथनों से भरा रहता है और नाटक अभिनेय नहीं भी होता। नाटककार पात्रमुख से अपने बिचारों का प्रचार करता है और बिचारों के प्रतिमिति पात्रों का निर्माण करके उन्हें चितक एवं बाद-विचार द्वारा स्वयं की प्रतिष्ठा में प्रयत्नशील होता है। जीवन-संघर्ष में उपन्यास में वर्णन का कम से कम स्थान देना निश्चय किया है।

उपन्यास और नाटक में परस्पर सामीप्य की वृद्धि होने पर भी उन को वृक्ष करने वाली दो कसौटियाँ स्पष्ट हैं—कथोरकथन की भाषा और आकार। नाटक का कसेबर कथोरकथन-भाव से निर्मित होता है परन्तु उपन्यास में कथोरकथन की केवल योजना ही संकठी है। नाटक का आकार प्रायः छोटा है और उपन्यास का वर्णन बाहुल्य के कारण प्रायः विस्तृत।

‘उपन्यास’ और ‘रोमान्स’

संस्कृत भाषा में ‘आख्यान’ ‘वृत्तान्त’ ‘उपाख्यान’ ‘कथा’ तथा ‘आख्यायिका’ शब्दों का व्यवहार कथात्मक साहित्य के लिए सामान्यतः प्रचलित है। संस्कृत में ‘स्फिञ्ज’ ‘स्तोत्री’ ‘रोमान्स’ ‘नविस’ आदि शब्द उसी प्रकार व्यवहृत हैं। हिन्दी में ‘कहानी’ शब्द अपेक्षाकृत पुराना और ‘उपन्यास’ शब्द नया है। कुतर्क से संस्कृत से और अधिक-कांक्षित संस्कृत से (संकीर्ण माध्यम से) प्रभावित होने पर भी आधुनिक हिन्दी-साहित्य में कथात्मक साहित्य के लिए ‘कहानी’ और ‘उपन्यास’ दो शब्दों का ही व्यवहार होता है, इसलिए ‘उपन्यास’ का सपिण्डत्व केवल ‘कहानी’ को ही माना जा सकता है। बंदबा में जिन जिनो ‘उपन्यास’ शब्द का जन्म हुआ था उस काल में संस्कृत का ‘नविस’ शब्द ‘रोमान्स’ (रोमान्टिक नविस) तथा ‘नविस’ (रियलिस्टिक नविस) दोनों के लिए प्रयुक्त होता था—अब बताया जा चुका है कि ‘उपन्यास’ शब्द में मूल प्रेरणा ‘रोमान्स’ की ही है। अतः, हिन्दी में प्रयुक्त होते हुए भी ‘रोमान्स’ का ‘उपन्यास’ से अन्तर जान लेना आवश्यक है।

साम्यकामीन इंग्लैण्ड में समाज के दो तम—विशिष्ट और सामान्य—अपने आदर्शों का चित्र जिन दो प्रकार के कथा-साहित्यों में देखा करते थे उनसे क्रमशः ‘रोमान्स’ और ‘नविस’ का विकास हुआ। परन्तु नविस शब्द अपने व्यापक अर्थ में रोमान्स को भी अपने अन्तर्गत समाविष्ट कर लेता है। नविस के इतिहास को तीन अवस्थाओं में विभाजित किया जाता है—साम्यकामीन रोमान्स, सवाधेवादी उपन्यास और आधुनिक उपन्यास। आधुनिक नविस (सवाधेवादी और वर्तमान) का जन्म स्काट के बाद से माना जा रहा है। संकीर्ण उपन्यास-साहित्य के वस्तुतः दो ही रूप हैं—रोमान्स नविस तथा वास्तववादी (रियलिस्टिक) नविस।

रोमान्स में कल्पना का अत्यधिक प्रयोग जीवन का घटानामय चित्र और उस बना की प्रवृत्ति ही मुख्य है, चरित्र-चित्रण और वास्तविकता का महत्त्व नहीं। संकीर्ण

१. निम्बर ४४. बीन : रि विनेमरीट अफ रि नविस अर्थ १. १९००।

२. The romance gives greater freedom to the imagination, deals with more unusual aspects of life and is usually more concerned with

साहित्य के प्रारम्भिक दिनों में रोमांस शब्द रोमांस भाषा (फ्रेंच) से अनुवृत्त साहित्य तथा प्रेम की सादरार्थमय गद्य-कथाओं के लिए प्रयुक्त होता था^१। तदनन्तर अंग्रेजी की कथामित्र कहानियों के लिए भी इसका व्यवहार होने लगा और तीसरी अवस्था यह है जब स्वतन्त्र काल्पनिक घटितरंगनायक प्रेमकथाओं और साहित्यिक कथाओं को रोमांस कहने लगे।

इसके विरहित नवेल का प्रायः साधारण जीवन ही अभिव्यक्ति और विदेश मनीय परिस्थितियों का चित्रण है^२। कल्पना के स्थान पर वास्तविकता प्रामाण्य के स्थान पर सामान्यता और उत्तमता के स्थान पर वास्तविकता का विकास और कथा की स्वाभाविक गति नवेल को रोमांस से घटम करती है। “उपन्यास पदार्थ जीवन का चित्र है जिसमें अपने सबसे छोटे गतिविधि का प्रचलन होता है। रोमांस अनिश्चित भाग में उन बातों का बचन करता है जो न कभी हुई और न भविष्य होने की सम्भावना है। उपन्यास में निष्पत्ति के जीवन का महत्त्व मुख्य चित्रण रहता है। ऐसे जीवन का जो हमारे भित्तों के बाहर हमारे माथ पर टिठ होता है। और प्रत्येक दूसरे एक प्रत्येक चित्र की विश्वमनीय स्वाभाविकता इस की पूर्ण मकसद की ओर है^३।

इस प्रकार को गद्य-कथा वास्तविक जीवन का स्वाभाविक चित्रण करनी है। उन नवेल और जो घटितरंगना द्वारा जीवन का अनुभूत व्यवहार या अविश्वमनीय काल्पनिक तन्त्र (माहसि या इतर गुणा द्वारा) प्रस्तुत करनी है। उसे रोमांस कहा

१ श्री विक्टर बल्लभ शर्मा हि डिप्लोमेट आफ डि इन्टरन नवेल।

Then romance meant a highly idealized verse narrative of adventure or love translated from the French that is from a romance language. (Introduction)

२ वही।

“ a novel must possess an ordinary structure but that it shall be a careful study of some phase of real life or of conduct in a situation which however impossible in itself the imagination is willing to accept for the time being as possible (21)

३ मैमरी क्लार्क री : रि ग्राफ़िड बाक रोमांस।

The novel is a picture of real life and manners, and of the times in which it is written. The romance in lofty and elevated language describes what never happened nor is likely to happen. The novel gives a familiar relation of such things as pass every day before our eyes, such as may happen to our friends or to ourselves and the perfection of it is to represent every scene in so easy and natural manners and to make them appear so probable as to deceive us.”

आयेगा^१ ।

एबेन येबेमी^२ के अनुसार रोमांस और नॉवेल का अन्तर इन सम्बन्धों में स्पष्ट किया जाता है कि 'रोमांस साक्ष का व्यवहार उन रचनाओं के लिए होता है जिनमें प्रेक्षक के ऊपर कल्पना का शासन पाया जाय और उपन्यास के क्षेत्र में सर्व-सामान्य का प्रतिबिम्ब का जीवन रहता है ।

उपन्यास और कहानी

स्टोरी और नॉवेल दोनों का किम्वदन्त के अन्तर्गत समावेश होता है । आरम्भिक दिनों में कथा-रत्न-संयुक्त समस्त साहित्य को कथा या स्टोरी कहा जाता था इसीलिए आलोचकों ने कथा-रत्न को उपन्यास का सबसे मुख्य रत्न माना है^३ । आरम्भ की कहानी उपन्यास की ही स्वतन्त्र रूप में विकसित प्रतीत होती है परन्तु उसका इतना स्वतन्त्र विकास हो चुका है कि वह उपन्यास के गुप्त की होती हुई भी उससे भिन्न हो गई है । 'वह बालिका को गल्ल कहलाती है उपन्यास की ही धीरे-धीरे बात है किन्तु कुछ समय से वह अपने पितृपुत्र में निवास नहीं करती इसमें^४ गंभीर दुःख की पर्याप्त इज्जत कर ली है ।

उपन्यास में जीवन का पूरा चित्र होता है और कहानी में जीवन के एक पक्ष की झाँकी मात्र परन्तु वह आकार का स्वरूप यह मात्र ही दोनों का व्यवस्थित नहीं माना जा सकता । उपन्यास और कहानी के कल्प-रस भी अलग-अलग हो गए हैं । आकार मात्र के आधार पर छोटी गद्य कथा को कहानी और बड़ी गद्य कथा को उपन्यास नहीं कह सकते । कहानी को छोटा उपन्यास और उपन्यास को बड़ी कहानी कहना ऐसा ही हास्यास्पद है जैसा कि जीपाए होने की समानता के आधार पर मैडक को छोटा बिल और

१ श्री गिल्लर का शब्द कि डिक्शनरी आदि इतिहास देखें ।

That prose fiction which deals realistically with actual life is called in criticism and conversation prominently the novel. That prose fiction which deals with life in a false or fantastic manner or represents it in the setting of strange improbable or impossible adventures, or idealises the virtues and the vices of human nature is called romance (Introduction)

२ वही The one — romance — is applied to books in which imagination predominates over observation. The other — 'novel' designates the more recent genre which has for its domain the life of every day and of all men.

३ 'The fundamental aspect of the novel is its story-telling aspect (Forester)

A novel, whatever else it is or it is not is at any rate a story" (Hudson)

४ लॉरेन्सोव्स इ. १९०४

ईस को बड़ा मंदिर कहना^१। कहानी और उपन्यास एक ही वर्ग के हैं परन्तु कहानी उपन्यास से पूर्णतया स्वतंत्र हो चुकी है। यद्यपि उपन्यास में कथा-भाव रहता है फिर भी कथा की कहानी उपन्यास से अलग एक स्वतंत्र कथा-रूप है।

कहानी जीवन की केवल एक स्थिति प्रत्यक्ष एक दृश्य का ही चित्रण करती है। उसमें जीवन की केवल एक भूतक या भाँड़ी ही रहती है। इसके विपरीत उपन्यास में जीवन का बहुमुखी और व्यापक चित्र पामा जाता है। कहानी-लेखक के सामने केवल एक ही मध्य है और उसी के निर्बाह में उसकी सफ़लता निर्भर है। उपन्यासकार जिस जीवन को चिन्ता है उसका व्यापक तथा विवरणपूर्ण चित्र उपस्थित करता है। यदि कहानी संचालक संवेदक है तो उपन्यास से उपन्यास को गद्य का महाकाव्य कह सकते हैं।

कहानी की रीति का मुख्य गुण एकाग्रता है। उपन्यास की रीति का मुख्य गुण व्यापकता। एवं में काव्य-व्यापार की शिष्टता रहनी है। तो दूसरे में विवरणमयता। कहानी का चित्र विधान संयुक्त होता है। उपन्यास का विविध। कहानी में प्रमुख विषयों की प्रस्तोचना प्रस्तावना के लिए स्थान नहीं होता परन्तु उपन्यास के विन्यास में प्रस्तावना का विशेषनात्मक चित्रण रहता ही है।

कहानी में चरित्र-विकास के लिए अधिक प्रयास नहीं रहता। उसमें मंदिराए चरित्र की एक स्वरूप दिखाई जाती है जिसमें पूरे चरित्र का भी वृद्ध आश्रय मिल जाता है^२। इसके विपरीत उपन्यास की सफलता चरित्र-विकास पर निर्भर है। कहानी पृष्ठभूमि का चित्रण न करके समीप दृश्य या पात्र की आत्मीय मात्र दिखाती है परन्तु उपन्यास जिस तथ्य को हृदयंगम करता है उसका विस्तृत वर्णन करके उस स्वभाववास्तव्य बना देता है। यद्यपि वह कहता सर्वथा धर्मयुक्त है कि कहानी उपन्यास का अतिरिक्त संस्करण है। उपन्यास का संशोधन करने पर उसकी विशिष्टता भी जो जायेगी जो कि कहानी के लिए समझ है। कहानी उपन्यास का एक संयोजन का रूप है। उसकी एकात्म्यता उसे वैविध्यपूर्ण उपन्यास में प्रकट कर देता है।

कहानी यदि भावना और कहानी में जीवन की प्रति देती है तो उपन्यास उसे विस्तृत की चेतना में बनाता है। कहानी जीवन के एक भाग की उद्भावना है तो उपन्यास उसकी भाव-मनोवि की व्याख्या। दोनों का एक ही ध्येय एक ही वरीति। भाषा जीवन ही के पक्ष का चयन है। किन्तु कहानी जीवन की एक मनोरम भाषा है और उपन्यास जीवन की पूर्ण प्रतिष्ठा—उपन्यास में जीवन की सज्जत भावनाएँ, विचार-वाक्य और व्यवहार प्रत्यक्ष स्वरूप में प्रकट होते हैं।

उपन्यास और इतिहास

कहा करने और सुनने की प्रकृति मनुष्य का एक स्वाभाविक षष्ठ है और इन

१. वा. प्र. १०१४ : १५५ के का. १५५

२. वा. प्र. १०१४ : १५५ के का. १५५

सर्वेद-साधारण गल्प में ही उपन्यास का बीज निहित था। कदा की इस उत्सुकता से ही इतिहास का जन्म होता है। यद्यपि पाठक की दृष्टि से उपन्यास और इतिहास एक दूसरे के बहुत समीप हैं—दोनों ही उत्सुकता को धाम्त करते हैं। इतना ही नहीं पूणात् कल्पित उपन्यास की अपेक्षा इतिहास-निर्मित उपन्यास अधिक आकर्षक होता है। कबिन्दर रवीन्द्रनाथ के शब्दों में 'उपन्यास में इतिहास के मिस जाने से एक विशेष रस का संचार होता जाता है'। परन्तु इतिहास उपन्यास का सहायी ही नहीं उसका अनन्य सहायक भी है। रोमानी उपन्यास में इतिहास का बहुत विषम रखा करता था आज भी इतिहास की कान्ति उपन्यास को अधिक उबीर बना देती है और उपन्यासकता से इतिहास अधिक छाह बन जाता है।

उपन्यास और इतिहास में पर्याप्त भेद भी है। इसका मुख्य आधार है उपन्यास की कला—इतिहास में उस सौन्दर्य-नृष्टि की आवश्यकता नहीं होती। कलाकार की दृष्टि वैज्ञानिक की दृष्टि से भिन्न है। वैज्ञानिक (इतिहासकार) माने ईमान^१ के द्वारा अपनी उत्सुकता को धाम्त करने के लिए समाज पर दृष्टि-निक्षेप करता है। उस दृष्टि में अपने रस नहीं होता। परन्तु कलाकार अपनी भावना का आरोप करके वस्तुओं को अपने रस से प्रस्तुत करता है—इन सौन्दर्य-नृष्टि के हेतु उसे सभी प्रकार की कांट-खांट का अधिकार है। इतिहासकार का सत्य उपन्यासकार के सत्य से भिन्न है। इतिहास का शुष्क सत्य उपन्यास का सरस सत्य बन जाता है—कलाकार भूत या वर्तमान की गीरस गटनाओं में से सरस रसों का चुनकर उन पर अपनी कथावस्तु को आधारित करता है। आचार्यों ने इसीलिए बहु सम्मति दी है कि इतिहास में जो वस्तु धनूषित हो उसे या तो छोड़ देना चाहिए या बदल देना चाहिए^२। स्टीवेंसन के मत में उपन्यास जीवन की ठीक-ठीक प्रतिमिति नहीं है। प्रत्युत जीवन के किसी पक्ष का सहज चित्र है जिसकी सफ़ाता इन सहजता पर निर्भर है^३। वास्तव में उपन्यास इतिहास के समान निरपेक्ष और वस्तुपरक नहीं रह सकता। जमज मिलाऊ का व्यक्तित्व न केवल सौन्दर्य चयन में विशेष सक्रिय रहता है प्रत्युत उन सौन्दर्य की प्रतिव्यक्ति पर भी मेखक के

१ Art creations are emotional representations of facts and ideas, they can never be like the product of a photographic camera. Our scientific mind is unbiased like the camera eye it accepts facts with a cold blooded curiosity that has no preference the artistic mind is strongly biased (The Meaning of Art.)

२ "वस्तुवस्तुचितं वस्तु भावकरम् एतत्तथा ।
निर्दयं तत्परिवाक्यकथा वा प्रकल्पयेत् ॥

३ The novel is not a transcript of life, to be judged by its exactitude but a simplification of some side or point of life, to stand or fall by its significant simplicity

व्यक्तित्व की छाग रहती है। इस दृष्टि से उपन्यास इतिहास और वाच्य के बीच में
बसता है।

इतिहास व्यक्तित्वों के व्यापक समूह समाज की कथा कहता चलता है उस
व्यक्तित्व के चित्रण का कोई अवकाश नहीं आता परन्तु उपन्यासकार के लिए व्यक्ति
मुख्य है और समाज गीत। उपन्यास में व्यक्तियों की घटनाओं का चित्रण व्यक्तिगत क
विशेष के अध्ययन व निमित्त ही होता है इसलिए उपन्यास में उन कथा की बहुत सी
राजनीतिक घटनाएँ छोड़ी भी जा सकती हैं। दूसरी ओर इतिहास बारीक समाज की
सूक्ष्म परिस्थितियों का चित्रण है इसलिए व्यक्तित्वों व मन पर प्रभाव डालने वाली बहुत
सूक्ष्म रीति-उपन्यास में चित्रण पर ध्यान नहीं दिया जाता। इतिहास समाज का चित्र
है तो उपन्यास सूक्ष्म भावनाओं का अध्ययन। इतिहास साम्यवादी चित्रण है तो उपन्यास
एक नववैज्ञानिक चित्रण।

उपन्यास अपनी सामग्री इतिहास से लेता है परन्तु निमित्त इतिहास का संबंध
से स्वीकार नहीं करती अपनी उपरचना में न वह बस उन कथा को चुन लेता है जो
सुन कदियों के संयोजन तथा उपन्यास सच्चा की व्यक्तित्वों में गहवार डाले हैं। घट
... इतिहास में विशेषज्ञ बहुत से सत्य उपन्यास में व्यक्तित्वों का जोर है। साथ ही इतिहास
के कुछ सत्य सत्यता का उपन्यास में परिवर्तन हो जाता है। इसीलिए व्यक्तित्वों का
मत है कि इतिहासकार घटनाओं का बयान करता है उपन्यासकार उनका निर्माण करता
है। वह संसार का रहस्य और उसके संकीर्ण में न सिर्फ स्वर अर्थ प्रत्यक्ष और विवाह
जैसी सामान्य घटनाओं का लेगा-लेगा करने वाला है बहुत ऊँचा उठ जाता है।
इतिहास और उपन्यास के पार्श्वों में भी भेद है। इतिहास में वाच्य ध्यान विद्वान्
का न पाठ के समय घटने है इसका विपरीत उपन्यास में सभी प्रमुख वाच्य विरामोन्मुख
रत में वृत्तिगोचर होते हैं। कथन उपन्यास व वाच्य ध्यान पूरा अधिक निश्चित
ध्यान बाह्य और अधिक समीप दिगाई पड़ते हैं। इसीलिए उपन्यास में सजीवता
होती है और इतिहास में सुखता। उपन्यास जीवन का चित्र है और इतिहास तथ्यों
का। उपन्यास के वाच्य नविवि होने के कारण पाठक की प्रेरणा के सम्बन्ध बनने हैं
इतिहास व वाच्य नविवि अर्थ और विस्मय व ही आधार बन रहते हैं।

The novelist is more and of a nobler heredity than the mere
recorder of birth deaths and marriages that he is concerned
with the mystery of worlds and their music and with events as
representing something larger than one social comprehension can
envisage
(Church p. 2)

People in a novel can be understood completely by the reader
if the novelist writes their inner as well as the outer life can
be exposed. And this is why they often seem more definite than
characters in History
(Forster p. 62)

हुआ उपन्यासकार जिस कथानक का निर्माण करता है वही उपन्यास की 'स्याबस्तु' है। कथाबस्तु में घमिषाय घटनाओं के उस कथारमक जनसम्पन्न म है जिसमें एक विशेष प्रकार का नियोजन घमिषयणित है। एडविन म्यूर^१ धनुवार कथा के घमयत घटनाओं की शृङ्खला और उनके नियोजन-मिज्ञान्त का नाम कथाबस्तु है। ई० एम० होस्टर्^२ के मन में संयोगाभित घटनाबन्धी का शृङ्खलाबद्ध नियोजन कथाबस्तु कहाता है।

कथा का घान उपन्युवता है और कथाबस्तु का जिज्ञाना। कथा में लम्बीन पाठक 'तत्तु' पर घपना मन केरित करना है परन्तु कथाबस्तु म उनका घान 'कथमिध पर' रहता है। ऐसी कथा कथा की दृष्टि म मध्यम न मानी जाएगी जो पात्रक की उत्पुनता-मान को घान्न करती रह। उमम पाठक क मन में यह घान उठना चाहिए कि 'ऐसा क्यों हुआ और क्या ऐसा ही होना है' इममें मिम्य नहीं हो सकता। मध्यमगीन कहानी में कथा-लक्ष मुन्य का जिमम पाठक का बुनूहम घान्न होना या परन्तु घान्न का उपन्यास बुद्धि-मवमिन कथाबस्तु की मुष्ट घान्न नियोजना द्वारा जिज्ञाना की तुष्टि करता है।

उत्पुनता और जिज्ञाना दोनों कथा की रोचक बनाने हैं। उत्पुनता घघान मध्य मुवीन कहानिया और जिज्ञानावरक घाधुनिक उपन्यास दोनों की बसीटी रोचकता ही है। एक घानोचक^३ ने रोचकता को उपन्यास-कथा की घघुन विशेषता माना है। स्वभाव में ही मानव का हृदय घपने ममान ही हूमरे स्त्री-पुरुषा उनकी मावना घावांघाधी, उनके मुन-मुन घघांन् उनके मामारिक बीजन के घमि मदाधय होना है। उनके उत्बान-जनन में घपने उत्पान-जनन और उनके मियाहमार में घपने मियाहनाय की छाया हेगने के मिम ही तो पात्रक कथा-माहित्य का घाधय मना है।

काय और उपन्यास का मेर बनने हुए काय को कल्पना का और उपन्यास को वास्तविक जीवन का विमय माना जाता है। परन्तु यह वत्र लक्षणीय है। घय कथा-दृष्टिों के लघान कहाना-मधुन कवित्व या मीनर्न उपन्यास का भी घनिबार्न उकरता है। उपन्यास 'मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा' है। उपन्यास

१ The chain of events in a story and the principle which knits it together

२ A plot is narrative of events the emphasis falling on causality (110) {Aspects of the Novel}

३ In a story we say "and then" and in a plot we ask "why" (२२)

४ The only condition James was prepared to attach to the composition of the novel was that it should be interesting (A Short History of English Novel)

५ ए० एम० होस्टर् : म० ए० ए० ए०

जीवन नहीं है। प्रत्युत जीवन का चारम्भय प्रकाश है।" 'वास्तविक जीवन की कोई भी मनोरम बटमा इसीलिए रोचक लगती है कि हम उसके घटित होने में प्रयत्न करते हैं। कथा की बटमा के विषय में हम जानते हैं कि वह घटित नहीं हुई फिर भी वह विस्वासीप्रायः चित्रण के कारण हमको रोचक लगती है'। यदि उपन्यास की कथावस्तु पाठक के मन में जीवन की स्वाभाविक घटितविधि और विकास के प्रति विवक्षा जगा सके तो वह कथा की दृष्टि से सफल मानी जाएगी।

कथावस्तु में जीवन की अनुकृष्टता का प्रयत्न हमको यथार्थवाद के निकट ले जाता है। कथा में कथाचित्रण भी होता है और अनुकरणीय घटना भी। मानव-व्यवहारिक जीवन में वे कथा सुन्दर का भयन करती हैं अनुभूति उपेक्षित हो जाता है। जीवन और मूर्खता साव-साव चलते हैं। उपन्यास में जितनी रक्षा मूर्खता की होती उतनी ही वह जीवन का पोषक होता है। धन वास्तविकता के नाम पर यथार्थवादी दृष्टि का चित्रण कथावस्तु को अति पहुँचाता है। उपन्यास की यथार्थता बटमाओं के यथार्थ में नहीं प्रत्युत ऐसी की यथार्थता पर निर्भर है। पाठक के मन में यह धारणा बूझ करना कि वे गहर नहीं सुन रहे हैं वास्तविक जीवन का अनुभव कर रहे हैं। उपन्यास का यथार्थ है। कोई भी उपन्यास उस समय तक महान् नहीं हो सकता जब तक उसका सत्य महान् न हो।^१

वास्तविक या यथार्थ से अनुप्राणित होते हुए भी उपन्यास और इतिहास में अन्तर है। ऐतिहासिक उपन्यास इसी कारण इतिहास नहीं है दोनों का अन्तर बहुत मात्रा में कथावस्तुगत है। इतिहास बटमाओं का चरित्र वर्णन करता है उपन्यास बटमा के बटाटोप में छिपे हुए सत्य के अनुकूल को पहिचान कर उनके घासीक में कथावस्तु की दृष्टि करता है। कथा सत्य का नाम नहीं सत्य के सुन्दर अनुकूल का नाम है। उपन्यास में सत्य यथार्थ नहीं यथार्थ है। इतिहास सत्य को जान कर उसका वर्णन करता है उपन्यास सत्य को जानने के लिए बटमाओं की योजना करता है। इतिहास बटमा-जान पर 'इत्यम्' की छान लगा देता है उपन्यास बटमाओं को 'इत्यम्' से घटित करता हुआ 'कथावस्तु' का निर्माण करता है। सत्य के चार रूप संयुक्त सम्भव असम्भव तथा संभाव्य हैं। 'संयुक्त' सत्य इतिहास का और 'संभाव्य'

१. टीनैट सिद्धांत : व. इतिहास और इतिहास

A marvellous event is interesting in real life simply because we know that it happened. In a fiction we know that it did not happen and therefore it is interesting only as far as it is explained (198)

२. कथा-सर्वाङ्ग रवीन्द्रनाथ टैगोर

In the long run the quality of a work of fiction depends on the quality of thought of the time in which it is written. (40)

पश्चिम के प्रामाणिक व्यक्ति ईश्वर को ही काव्य का प्रधान ध्येय मानने लगे। भारतीय प्रामाणिक काव्य में जो स्थान रस को देता है उन्मास में वही स्थान पाश्चात्य प्रामाणिक चरित्र-चित्रण को देता है। क्योंकि उन्मास व्यक्ति-वैयक्तिक-प्रधान समाज का साहित्य रूप है। अस्तु, यदि उन्मासकार अपनी दृष्टि मानव-चरित्र के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु पर केन्द्रित करता है तो वह इस कर्म के लिए पाठक के समक्ष उत्तरदायी है। यदि उसकी रचना में रोचकता के कार्य कारणात्मिक साहसिक कार्य मात्र हैं तो हम उसके धीमाध्यात्मिक कर्तव्य-कर्म को समझने की दृष्टि से देखने के लिए स्वतन्त्र हैं।^१ उन्मास 'मानव चरित्र का विश्व साज' है 'मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रस्यों को खोजना ही उन्मास का मूल लक्ष्य है'।^२

चरित्रचित्रण की प्रथम विशेषता सजीव पात्रोंकी सृष्टि है। जो कलाकार विभिन्न एवं अद्भुत नर-नारियों का निर्माण करता है उसकी कवाचस्तु बौद्धिक बन जाती है। परन्तु जिस उन्मास में मर्बसाभाव्य के अनुभव में जाने वाले सजीव प्राणी प्राप्त विचारे रहते हैं उसका दीव विवर्णन तो काल के करों से पोख दिया जाता है कम से कमर पात्र पाठक के हृदय-बटक पर अंकित रह जाते हैं। अस्तु पात्र अमर सभी हो सकते हैं जब उनकी पिढाओं में वही रक्त हो जिससे हमारी हृदयित संज्ञानित होती है। चरित्र चित्रण की कुशलता इस व्यापार में निहित है कि पाठक पात्रों को कलाकार का निर्माण न समझ कर अपनी आजी-जहानगी सृष्टि समझे उनके प्रत्येक अनावरण में पाठक का मन समुद्र होता चले।

उन्मासकार अपने पात्रों का भावना करता है कवाचस्तु के विकास के साथ साथ पात्र अपना स्वयं दर्ज दर्ज बनायून करते हैं—मानो कलाकार ने पात्रों को कथा की बरिता के बीच स्वतन्त्र छोड़ दिया हो और वे अपने किन्ना कलाप द्वारा बदनामगी की सृष्टि स्वयं कर रहे हो। बँकरे ने इनीलिए कहा है कि वे पात्रों के धामक नहीं प्रसूत उनमें शामिल^३ हैं। पात्रों की सजीवता इनी कुछ में निहित है क्योंकि ऐसे पात्र बाह्य वस्त्रों से घासित न हो कर साम्यन्तर मुला में परिचासित होते हैं। प्रामाणिकों का मन है कि लेखक को अपने विषयम में रखने वाला पात्र स्वयं पाठक का प्रामाणिकी

१. इस दीर्घन रिच सि डीवड बाफ रि प्रिंसिप

If a novel throws emphasis upon anything except human character in action it is summoned before the bar. If the centre of interest is in external adventure, the author is suspected of mistaking the real business of the novelist. (131)

२. प्रेमचन्द दृष्टिचित्र

- १ "I do not control my characters, I am in their hands and they take me where they please."

० यदि हमने पाठक के इच्छानुसार आचरण न दिखा हो तो उसका प्रति पाठक को हानिमूर्ति नहीं हो सकती - भय या विस्मय में भये ही पाठक उन रूपा रहें। उन आचरण की सबसे बड़ी विमूर्ति ऐसे चरित्रों की मूर्ति है जो अपने सम्पूर्ण आचरण की आलोचना में पाठक को मोहित कर दें।

पात्रों का स्वभाव अपने पाठकों के समक्ष उपस्थित होकर पात्रों के गुण-दोष का आचरण में समक्ष में निष्पत्ति विवेचन करता हुआ यह कहना चाहें कि समुक्त चरित्र का स्वभाव समुक्त आचरण का है इसमें समुक्त गुण हैं या समुक्त दोष हैं। जबकि उपन्यासकार उन्नीत भाव में पात्र की मूर्ति का एक दृष्टि बना जाए और पाठक को उस चरित्र में स्वयं निष्पत्ति निरामय दें। सामान्य पात्रों का चित्रण में प्रथम बिंदु अधिक उद्घुस्त है क्योंकि इन पात्रों का उद्देश्य आचरण नहीं होता इसविषय पाठक इसके विषय में अपने निष्पत्ति स्वयं नहीं निकाल सकते। उनके विपरीत विशेष या मुख्य पात्रों के लिए चित्रण की दृष्टि प्रभावी अधिक समीचीन है। इसी पात्रों का वर्णन उपन्यास का विषय है यदि उपन्यासकार दुर्भाग है तो पात्र के मत पर पात्रों का बड़ी चित्र चरित होगा जो उसकी अपनी भावना में चरित है। प्रायः हमारा दोनों प्रभावित हो मिश्रित कर दिया करते हैं। मुख्य पात्रों के विषय में सामान्य और इन मुख्य पात्रों का आचरण का वर्णन करता हुआ उपन्यासकार ऐसी परिस्थिति बिबिन कर देता है जो एक-एक अधिक पात्रों के स्वभाव पर प्रभाव डाल सकती है। पुराने उपन्यासकार पात्रों का भाव-निष्पत्ति के लिए अपने अपने छोटे दिवा करत में परन्तु आचरण लक्ष्य रह कर चित्रण कर देने में ही उपन्यास बना की सफलता मानी जाती है।

जब उपन्यासकार मुख्य पात्रों में से किसी एक के साथ सम्पूर्ण स्थापित कर देता है जबकि यह कहना अधिक उचित होगा कि अपने स्वभाव का किसी विशेष पात्र पर आरोप करके हमने आचरण में स्वयं उपस्थित होता है। या जब हमारा वह उद्देश्य पर न विर जाता है। उस कारण से ऐसा प्रतीत होता है कि हमने कहना का पत्राधिकार उपन्यास को उन चरित्रों और परिस्थितियों में बाँट दिया है जो उपन्यासकार की

१. A character is the creation of the reader not of the writer " Apparently all a novelist needs do is to provide bold outlines and the reader will cooperate to persuade himself that he is in contact with a real people

२. रमो गुनड : The novelist can either present the character from outside as an impartial or partial onlooker or he can assume omniscience and describe them from within or he can place himself in the position of one of them and affect to be in the dark as to the motives of the rest ..

घरनी प्रवृत्तियों से मिलती-जुलती हैं^१। ऐसी परिस्थिति प्रतिमा का कुञ्ज घोर बना) का हास सूचित करती है। स्वकीय व्यक्तित्व के प्रसारण की यह प्रवृत्ति घातक के कतिपय घण्टापूर्वी कमाकारों में दिखाई पड़ती है। कुछ लेखक प्रचार को दृष्टि में रख कर ऐसे उपन्यास लिखते हैं। कदाचित् वे सोचते होंगे कि बिजली बचि घरनी कहाँगी ये हो सकती है। उनकी कास्परिक कथा में नहीं। यस्तु ऐसी रचनाएँ अपने पात्रों के प्रति नित्य सहानुभूति उत्पन्न न कर सकने के कारण खर नही बन पाती।

पात्र-सृष्टि के प्रथम में उपन्यासकार का मुख्य कर्तव्य अभिन्नत्व में प्रिन्नत्व और विभिन्नत्व में अभिन्नत्व^२ का विधान है। जिस प्रकार मग्न प्रतीत होने वाले मानवों में कोई न कोई ऐसी विशेषता अवश्य होती है जिसके कारण वेकते ही हम उन को प्रसन्न-खलम पहिचान लेते हैं। उसी प्रकार उनके चरित्रों में भी उनके स्वकीय व्यक्तित्व की एक विशेषता होनी है। एक ही परिस्थिति में सब व्यक्तियों की प्रतिक्रियाएँ एक नहीं होती। उपन्यासकार इसी व्यक्ति-वैविध्य को घरनी रचना में प्रकट करता है। परन्तु वैविध्य-मात्र पर्याप्त नहीं। वैविध्य के मूल में रहन वाला साम्य वैविध्य के समान ही वा उस से भी अधिक महत्वपूर्ण है। घात का उपन्यास नाम्प्रवीणी वैविध्य का विधान करता है। और वह साम्य है पात्र का मानवत्व जिस के कारण पाठक की इन पात्रों के प्रति सहानुभूति होती है और उपन्यास उस को रोचक समन समता है। केवल वैविध्यमिष्ठ कलागामवी सृष्टि करने वाला घटनात्मक उपन्यास घात कला की दृष्टि से निगत सुम की वस्तु नमन्य जाता है।

प्राचीन साहित्य में पात्र दो प्रकार के थे—देव और दानव। एक मुकनिधि का और दूसरा दोषामार। परन्तु घात मनोविज्ञान अधिक व्यापकता से मानव-मन का विवेचन करता है। उसके अनुसार व्यक्तित्व में इनका अतिचार नहीं होता। मानव देवी और धातुरी दोनों प्रवृत्तियाँ से बना है, परिस्थितियाँ एक समय उसका देव का व्यवहार करा सकती हैं तो दूसरे समय धातुरी बन। 'मानव चरित्र न निताल उन्मत्त है और न एकान्त अपामत' यह विवेचन साम वालों से ही बीरन गट का विस्तार हुआ है। विरापी पुत्रों का यह समन्य अन्तर्गत को उन्नत देना है। विपरीत चितवृत्तियाँ अन्तर्गम्य का अन्त देती हैं। जिस चरित्र में विपरीत चितवृत्तियों से समुत्पन्न अन्त सवर्ग नहीं है उसको हम पूर्ण और स्वाभाविक नहीं कह सकते^३। जिस बीरन में दुर्बलताएँ नहीं हैं वह हम लोड का नहीं है। कास्परिक है—उपन्यास का विषय न हो नर काय के लिए उपयोगी है। यस्तु, उपन्यासकार विपरीत-भूति का परिस्थिति-विशेष में विधान करना हुआ चरित्र को अधिक मनीम बना देता है।

१. लीटमान कपुर्वी साहित्य-समीक्षा

२. प्रेमचन्द का विचार पृ. १८

३. ये लक्षण चरित्र के लिये एक अन्तः का मान, निरति-विश्रुति पर संतान का अन्तर्निहित काय का स्वाभाविक बीरन समुत्पन्न वस्तु प्रदान करने वाली है।

उपन्यास की कथावस्तु आकस्मिक परिणतता में रमचीय लगती है परन्तु पात्रा स्वाभाविकता मध्यम गति में है^१। पात्र जिस रूप में पाठक के सामने पहिनी जाए वे बहु रूप उसके व्यक्तित्व का आधार बन और फिर समुद्रम प्रतिकूल परिस्थितिमा उसका घर्न घर्न बिदास होता रहे। व्यक्तित्व का घनावरण न ता एक साथ हो र न धक्कसातु ही उपन्यास की कथा पात्रों के मध्य बिदास में है^२। स्वर्गीय शारदचन्द्र तिला है कि चरित्र-चित्रण ही उपन्यास का प्रधान धर्म माना जाता है, चरित्रों के निम्न विकास के लिए मैं बहुत अधिक सावधान रहना हूँ।

चरित्रचित्रण में स्वाभाविकता से अभिप्राय जीवनानुकूलता से है। यद्यपि घनक पन्यासकार (संघर्षों में डेफा तथा हिन्दी में चिछोरीमान पोस्वामी आदि) यह निग र कि उपन्यास का आधार एक लक्ष्मी घटना है उनका अभिप्राय रोचक बना दिया रते थे परन्तु जीवन में जैसे-जैसे पृथीय पात्र एकत्रता (माताटनी) का ही संचार करते हैं। घन उपन्यासकार कथा के घमास पात्रों में भी जीवन का अनुकरण करना। आधुनिक नही पात्रों में जीवन का रूप भरता है उनका जीवन स जीव कर उपन्यास न नही प्रतिष्ठित करता। दुगमस में शोचार विद्या है कि उसने जीवन न कभी कोई रास विद्या ही नहीं^३ प्रकृत पात्र मनोकरण के बिना आकर्षक नहीं लगता। हिन्दी के कुछ आधुनिक उपन्यासकार भी घमों रचना पर दिग देख हैं कि इनके सभी पात्र कल्पित हैं^४। पात्रों की स्वाभाविकता उनको बिदासोत्पन्न गति में है इतिवृत्ता घटना में घरी जयोधि कथा की रंगा उपन्यासगत पात्रों को सामान्य प्राणियों के समान कर देती है। घानोचर गजीव चित्रण के लिए जीवन का यथाय प्रतिष्ठान घनिष्ठता नहीं मानने^५।

ई। एम. फोर्स्टर में उपन्यासगत पात्रों के दो रूप बताये हैं—*प्लॉट तथा लाइव*।

१ ई. एम. फोर्स्टर *समवेकल चॉइस गजेस*

Characters to be real ought to run smoothly but a plot ought to cause surprise (122)

२ The slow shaping of character is the problem of the novel.

३ I have never tried to draw a figure from life. My creed is that a human character however engraving however convincing and true to itself must be modelled anew before it can become material for fiction.

४ ई. एम. फोर्स्टर *समवेकल चॉइस गजेस*

५ ई. एम. फोर्स्टर *समवेकल चॉइस गजेस*

The barrier of art divides them from us. They are real not because they are like ourselves (though they may be like us) but because they are convincing (87)

६ ई. एम. फोर्स्टर *समवेकल चॉइस गजेस*

A living character is not necessarily true to life (106)

स्वर्ग या जाते हैं वे सभी इस कथा के 'पात्र' हैं परन्तु 'चरित्र' केवल वे ही व्यक्ति हैं जिनके सहारे 'कथावस्तु' का निर्माण होता है। उपन्यासकार को जिन पात्रों का चित्रण करना पड़ा है वे ही उसके 'चरित्र' हैं। धर्मजी का 'करक्टर ड्राफ्ट' एक घोर पात्रों की प्रतिबिम्बित करता है, दूसरी ओर यह भी बताता है कि व्यक्तिगत विषयताओं के कारण ही पात्रों का 'करक्टर' संज्ञा प्राप्त हुई है। व्यक्ति ने जो कुछ कुछ काम किया वह उसका 'कंठध्वन' या 'कर्म' है, परन्तु जो कुछ वह स्वभावतः इष्टापूर्वक करता है वह उसका 'करक्टर' या 'चरित्र' है। उपन्यासकार अपनी कथा में इसी 'चरित्र' का चित्रण कर पात्र का व्यक्तित्व प्रकट किया करता है। जिन व्यक्तियों का चित्रण वह नहीं करता ऐसे धनेक सामान्य या धर्मसामान्य पात्र कला की दृष्टि में 'चरित्र' नाम के अधिकारी नहीं हैं।

स्वतन्त्र रूप से उपन्यास का आधार उसकी कथावस्तु है परन्तु कथावस्तु का सामान्यव्यक्ति धर्म से चरित्र-चित्रण है। कथावस्तु में चरित्रों का विकास जाना है और चरित्र-विकास से कथावस्तु परिचित की ओर जानी है। अतः कथावस्तु और चरित्र-चित्रण—उपन्यास के दो प्रधान अंग—उत्थान विकास तथा परिष्कार की दृष्टि से सम्बन्धित हैं। उपन्यास का सम्पूर्ण मुख्यतः इसी का सम्बन्ध धर्म का अध्ययन है।

कथोपपन्न

उपन्यास के उपर्युक्त दो अंगों में से एक (चरित्रचित्रण) का निम्न-मन्त्रवर्धी अंग कथोपपन्न है। यदि कथाकार अपने उपन्यास में नयनोन्मिल मनुष्य तब डा दुस्त बचोरदमनों की योजना कर सकता उसकी दृष्टि में मनीषणा एवं मरमता के साथ साथ स्पष्टता एवं स्वाभाविकता की भी बलि होनी है। भाषण का यह अनिवार्य उपकरण उपन्यास में प्रयुक्तमान होकर पाठक के हृदय को अधिक अभिभूत कर सकता है। अतएव अनुपातम उपन्यास में कथावस्तु का महत्व जाना जा रहा है। 'इस तरह के द्वारा हम उनके पात्रों से वितीय परिचित होते और दुःख-काण्ड की मनीषणा और वास्तविकता का बहुत कुछ अनुभव करते हैं'। उपन्यास की वास्तविकता चरित्रावली के बचोरदमनों की स्वाभाविकता पर बहुत कुछ निर्भर है कथन इतना ही नहीं बचोर दमन को धारा और धर्म की विविधता के भीतर उपन्यास-वर्णन चरित्रावली के व्यक्ति के स्वतन्त्रता प्रस्तुति होती है और के 'पात्र' में रहकर इतिवृत्त हो जाते हैं'।

कथोपपन्न का मूल उपयोग पात्रों के मनोभाव उनकी प्रवृत्तियों उनकी दृष्टि अभिमाना तथा राग दुःख का पात्रों के सम्बन्ध प्रतिबिम्बित द्वारा प्रस्तुत है। पात्रों के धर्म धर्म की भीति प्रवृत्तियों पन्थाओं की प्रतिबिम्बित-स्वरूप धर्म का धर्म पात्रों के चरित्रावली-धर्म प्रकट होने के लिए धर्म का माध्यम रहने पर मनीष है और परमपर धर्मधर्म में पात्रों के सामान्यव्यक्ति के धर्मधर्म ही निर्धारण हो जाना

है। इस प्रकार कथोपकथन विस्तेष्य एवं व्याख्या की संयुक्त प्रक्रिया का विकस्य है। परन्तु कथोपकथन विस्तेष्य एवं व्याख्या का निरावर नहीं करता। प्रत्युत उनकी सन्धि को अधिक बलवती बनाता है—इस प्रकार अह पात्रों के विस्तेष्य का साधन भी है।

कथोपकथन का दूसरा उपयोग प्रत्यक्ष धमका परीक्षा भाव से कथावस्तु का विकास करना है। उपन्यास के विभिन्न कालों में भी समी बटनाएँ समाविष्ट नहीं हो सकतीं कुछ का वर्णन होता है कुछ का परिचय दिया जाता है तथा कुछ घटनाओं का संकेत पात्रों के परस्पर वार्तालाप से ही जान लिया जाता है। कथोपकथन का यह कथोपकथी रूप इतने महत्व का है कि कुछ घटनाओं ने उस कथोपकथन को निरर्थक एवं भार स्वरूप माना है जो कथा के रूप या रूप में उद्घटन की सिद्धि न करे, मने ही वह आकर्षक तथा मनोहर हो। यथावश्यक एवं अनुपयुक्त कथोपकथन की योजना रचना के आकार में बृद्धि करनी है पात्रों के व्यक्तित्व का यथावश्यक नहीं करनी। उपन्यास में यह तत्त्व जितना आकर्षक है उतना ही अपने अतिबाह्य में विकर्षक भी क्योंकि पाठक का ध्येय कथा है संवाद नहीं। जो कथोपकथन न तो कथा को प्रति प्रदान करे और न पात्रों के रूप को ही अधिक स्पष्ट करे वह निष्प्रयोजन होने के कारण त्याग्य है।

कथोपकथन में स्वाभाविकता में धर्मिप्रत्यक्षता में व्यक्तित्व की धार से है। गणराज्यी स्वतन्त्रता एवं वाक्य-विश्राम शक्तिमय पर नियंत्र है इनका व्यवहार कथोपकथन में होना है। मध्य कथोपकथन का मुख्य गुण लक्ष्य शक्ति के व्यक्तित्व की स्पष्ट प्रकट है। इसी गुण को धृष्टि में रखकर कुछ उपन्यास एक ही दृष्टि में भाषा के अनेक रूप प्रयोग में लाते हैं और कुछ पात्रों को तत्कालीन कला का धारी बना देते हैं वाक्यों का विस्तार एवं संकोच भाषा में सम्पन्नता तथा निबिन्नता धादि कथोपकथन में प्रयुक्त व्यक्तित्व-स्पष्टीकरण के साधन हैं। पात्रों के सामाजिक स्तर, शिक्षा संस्कृति प्रवृत्ति एवं मर्यादा का सर्वोत्तम परिचायक कथोपकथन ही है। कथोपकथन के द्वारा पात्रों की विचारधारा का परिचय प्राप्त होता है। कलाकार का जीवन-दृष्टान्त भी बोध-मय बन जाता है। जो उपन्यासकार स्वकीय विचारों की अभिव्यक्ति के लिए ही उपन्यास लिखते हैं वे मुख्य पात्रों में से किसी एक के रूप में उपस्थित हो जाते हैं और कथोपकथन द्वारा अपने मत की प्रतिष्ठा करते हुए दृष्टिगत होते हैं।

कथोपकथन को उपन्यास करते समय यह नहीं भूलना चाहिए कि समापन या आत्मनिर्णय का ही यह परिणाम रूप है। जिन प्रकार संभाषण और मौखिक भाषण में बड़ा अन्तर है उसी प्रकार कथोपकथन और विचार वर्णन में भी होना है। एक ही पात्र अपने

१ श्री हजम Even where the analytical method is freely used, dialogue will prove of constant service as a vivifying supplement to it. (154)

२ श्री हजम Conversation extended beyond the actual needs of the plot is to be justified only when it has a distinct significance in the exposition of character

तदनुसार आचरण करके ही वह अपनी कला से पाठक को मोह सकेगा। श्रीमच्छन्द के उपन्यास इसी कला में परिपूर्ण हैं। उनमें ग्रामीय जीवन का ऐसा मानिक रूप है कि अपरिचित पाठक भी स्थित्य भाव से उस प्रवाह में निमग्नित हो जाता है। धीरे-धीरे आता-वरा की सृष्टि में आत्मनिर्भर हो अपने को भूल जाता है।

आता-वरा की सफलता जिसकी कला पर निर्भर है, उससे अधिक कलाकार के व्यक्तित्व पर। उपन्यासकार वेद-काश की जिन परिस्थितियों समस्याओं आत्मोन्नति से प्रभावित होता है, उन्हीं का चित्रण अपनी रचना में करता है। जिस तत्परता से वह परिस्थितियों का चित्रण करता है, यदि वही शक्ति कमकर पाठक के मन में जय गई तो उसकी कला सफल मानी जायगी अन्यथा नहीं। श्रीमच्छन्द ग्रामीय किसान जीवन से प्रभावित हैं। उनकी सूक्ष्म विवेचना सामान्य से सामान्य समस्या आत्मसर्वपथ पर स्थितियों श्रीमच्छन्द के मन पर प्रकीर्ण हैं। उनके उपन्यासों को पढ़कर पाठक भी उनका सहचित्रण बन जाता है। धीरे-धीरे उनकी प्रति महानुभूति ही नहीं बल्कि-सी रचने लगता है। यही उपन्यासकार का कीर्तन है। आता-वरा का चित्रण करते हुए श्रीमच्छन्द ने जो भविष्य का भावना किया है (जैसे 'श्रीमच्छन्द' में बगीचारी का अनुभव) वह इसीलिए ऐतिहासिक दृष्टि से भी सत्य प्रतीत हो गया है। जयसंकरप्रसाद की हिन्दू-काल के इतिहास में विशेष शक्ति भी उनका चित्रण भी पाठक पर उतता ही पहला प्रभाव डालता है। आता-वरा का सफल चित्रण उपन्यासकार की प्रतिभा का संकेत है। वह जिस-जिसको छोड़ें 'अनित्य' व्याप्त जीवन में से किस-किस का जीवन करे, वह प्राप्तिमान ज्ञान का विषय है। जीवन के उपरान्त मनुष्य चित्रण तो धीरे-धीरे कठिन कर्म है। यस्तु, वेद-काश का आत्मज्ञान उपन्यासकार और उसके उपन्यास दोनों को समझने के लिए अनिवार्य है।

शैली

साहित्य के अन्य कर्षों के समान उपन्यास का एक तत्व शैली है। एक दृष्टि से साहित्य के विभिन्न रूप भी विभिन्न-विभिन्न शैलियों के प्रकार-भेद ही हैं। एक कलाकार जब पाठक न लिख कर उपन्यास की रचना में प्रवृत्त होता है, तब इस बात का अनुभव कर के ही होता है कि उपन्यास में उसकी व्यक्तिगत विशेषताएँ अधिक प्रकट हो सकती हैं। यस्तु, शैली व्यक्तित्व की ही अभिव्यक्ति का माध्यम है—व्यक्तित्व की धार्मिक अभिव्यक्ति है। एक आलोचक का मत है कि पाठक शैली में ही रस का अनुभव करता है। विचार भी शैली ही है। शैली कलाकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होने के साथ-साथ पाठक को मुग्ध करने का साधन भी है। इसीलिए आलोचना करते समय शैली के लिए रोजक धार्मिक धारि विशेषताओं का प्रयोग प्रायः किया जाता है।

१ What does the mind enjoy in books? Either the style or nothing. But, someone says what about the thought? The thought that is the style too. (An Essay on Criticism)

२ All styles are only means of subduing the reader. (T. E. Hulme)

'दीनी' का सामान्य अर्थ विचार-रम एव मति है^१ अर्थात् लेखक जिस मति में विवेच्य वस्तु का परिचय देना है, और जिस मति में योजना करना है उसे दीनी कहते हैं। यह मानी व्यक्त्यात्मकता प्रकृति की धारक है। साहित्यशास्त्र में हमको ऐतिहासिक परिचयस्थिति या दीनी कहते हैं। इसका अन्वयन साधन-साधन के रूप में रहना अन्तःधार-योजना वस्तु-विभाजन यात्रा का परिचय इत्यादि सम्निहित है। दीनी का यह रूप साहित्य में मुख्य उपद्रव्य है। उत्पत्त्याम के सदर्भ में दीनी से क्या कहने का प्रचार ही प्राप्त सम्पदा जाता है।

उत्पत्त्याम की क्या उत्तम मध्यम और अधः तीन पुरदा में बड़ी का मरनी है। इन विभिन्न पुरदों में क्या कहने का तात्पर्य है एक विचार दृष्टिकोण की^२ स्वाभाविक विमर्श मनावेदानिह मध्यम है। प्राचीन उत्पत्त्याम में पात्रों को अल्प पुरदा में रग कर लेखक उनका विराजमान मयोग तथा परिमिश्रितता का चित्रण करना जाना का और कभी तो यह भी कहना पड़ता था कि पात्रक हम प्रचार माध रूढ़ होने का वि उपयुक्त है। हिन्दी के प्राग्निता उत्पत्त्याम इसा दीनी पर मिले पर ये। उत्पत्त्याम लेखक पात्रक तथा पात्र दीनों के तीन व्यक्तित्व मरदा उत्तम मध्यम तथा अधः पुरदा में रहा करने से और लेखक पात्रक के सामीप्य का इतना अधिक अनुभव करना या कि बीच-बीच में उनका चार्चार्च करता जाया या और उन चार्चार्च में सामयिक प्रमत्ता की धामोचना भी हानी बनती थी।

क्या कहने की इसका दीनी उत्तम पुरदा की है। क्याकार एक पात्र का स्वकार धारण करके क्या को अक्षर कर रहा है यह दीनी अन्तर्निहित है। चार्ल्स रिचम्स का 'पेट एक्सप्लेनैटोन्स' ध्येय का शीघ्र एक जीवनी और अक्षर का गिरती हीकारे हम दीनी का उदाहरण है। इस दीनी की मरने मुक्त विवेचना है उत्तम पुरदा में होने का कारण पात्रों के मन को बसाभूत कर लेना और राबिन्सन क्रूसा के समान परिचय नीय जन्माधों से ही पात्र का विवरण जय जाना। इतरी-दीनी के उपद्रव्य दीनी में पाते हैं। उन उत्पत्त्यामों में मरम बड़ा हाथ पड़ दे कि लेखक और पात्र में म रों भी धाने निमय में मरम नहीं है और जो पात्र क्या वह रहा है उसका निम्न साम्य-मा बन जाता है। यदि क्या सामान्य पात्र के गुण न कहना^३ अथ मा रर और भी कम धार्य है। क्योंकि ऐसा पात्र लेखक का प्रतिनिधित्व मति कर मरना। इन मुख्य पात्र के माध्यम में ही तथा उत्पत्त्याम निगा जाना चाहिए। अक्षर पात्र यदि धारकी धामो क्या करते कम तो हीन धर्मिक रोचक हो मरना है और पात्रक के समान अक्षर दृष्टिकोण का मरम है। किन्तु इसका निर्वाह मरम है क्योंकि अक्षर दृष्टिकोणों का अनुमान विवर करवा दुर्गाध्य है।

१ Style consists in the order and the movement which we introduce in our thoughts.
(Boileau)

२ अन्तरात्मकता, पृ. १८२

कथा कहने की सीखरी सीखी मध्यम पुरुष की है। समस्त उपन्यास तो मध्यम पुरुष से लिखा भी नहीं जा सकता। अतः इस सीखी से अभिप्राय यह है कि उपन्यास में पाठक का भी सक्रिय सहयोग हो। परन्तु जब उपन्यास का कोई पात्र कथा को इस प्रकार बढ़ावे कि दूसरे पात्र (या पात्रों) से प्रत्यक्ष या परीक्ष बाध कर रहा हो तो उपन्यास मध्यम पुरुष में लिखा जायगा। पत्र गैमी पर लिखी गई कथाएँ इसी वर्ग में आती हैं।

सीखी का दूसरा तत्व जो काव्य नाटक उपन्यास सभी में समान रूप से व्याप्त रहता है अभिव्यञ्जना-कीर्तन है। अभिव्यञ्जना के समस्त उपादान—सुन्दर वाक्य समस्तुत-विधान प्रतीक-विधान आदि उपन्यास में भी ब्राह्म्य होते हैं और उनकी विवेचना उपन्यास के रस और वस्तु के आधार पर की जानी चाहिए। औररस के उपन्यास की सीखी गूढ़ार रस के उपन्यास की सीखी से भिन्न होती है। भाषा के वक्ष्य और मुद्र होने के प्रतिष्ठित प्रतीकों उपमानों और चर्चकारों के प्रयोग में भी सापेक्षिक भेद होता। बातावरण और देश-काल का भी सीखी-विन्यास पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। नायक बातावरण के उपन्यास के पात्रों की अभिव्यक्ति सामान्यतः क्षमीय बातावरण के अपरिचितों की अभिव्यक्ति की अपेक्षा किसी मात्रा में प्राक्ल होती। प्रान्त-विषय की किसी सांकेतिक पृष्ठभूमि पर चित्रित उपन्यास की सीखी में भी दूसरे उपन्यासों से सीखी-वार्धन्य होता स्वाभाविक है। सीखी केवल परिधान मात्र नहीं है बल्कि अभिव्यक्ति को रूप और आकार देने का यत्नरत साधन भी है।

उद्देश्य

भारतीय काव्य-शास्त्र के अनुसार साहित्य का एकमात्र उद्देश्य रस वा आनन्द है। इससे पूर्वक उद्देश्य की कल्पना गीत रूप से तथा धर्म व्यवहार ज्ञान आदि के रूप में की गई है। रस वा आनन्द मूल उद्देश्य है और यद्यपि अर्थार्थि स्मृक एवं मीठिक रस वा आनन्द कलाकार तथा श्रोता (या पाठक) के लिए है परन्तु स्मृक उद्देश्य श्रोतों के के लिये पूर्वक-पूर्वक है। मात्र के बुद्धिवादी साहित्यिक के समस्त भी मात्र के ही उद्देश्य है, रस वा आनन्द की अवधारणाओं एवं सर्वगत ज्ञान कर वह विचार के लिए आधारक नहीं समझता इसलिए मात्रकम स्मृक उद्देश्य अर्थार्थि व्यवहार ज्ञान और उपदेश तक ही उपन्यास का उद्देश्य सीमित समझा जाता है। सामाजिक के लिए विचारणीय वह है कि उपन्यासकार अपनी कृति द्वारा पाठक के सामने जीवन-सा सम्बन्ध प्रेरणा चाहता है उपन्यास की मुख्य समस्याएँ जीवन जीवन की हैं और लेखक ने उनका विवेचन एवं समाधान किन्तु हीन में किया है। शरीर में उपन्यास का मूल प्रतिपाद रचयिता का कृति पत्र जीवन-वर्धन ही है। नहीं उपन्यास वा उद्देश्य मात्रा जाता है।

उपन्यास का प्रथम उद्देश्य जगत् और जीवन का विवेचन है। लेखक अपनी अनुभूतियों को पात्रों के माध्यम से कथा में प्रकट करता है। इन कार्य में वह श्रितना तथा होमा जगत् ही करने उद्देश्य में लक्ष्य कहनायगा। प्रत्येक कृति में कोई न कोई दृष्टिकोण अनिवार्यतः स्थित रहता है वह आधारक नहीं कि कलाकार कृति में इनके लिए प्रयत्नशील हैं। जीवन-विवेचन-मात्र जीवन-ज्ञान है क्योंकि निरीक्षण और विवेचन

होना ही नैतिक संस्कारों से संनिष्ठ रहने हैं। अतएव जो कथाकार प्रयत्नतः अपने दृष्टिकोण को उभित नहीं कर सकत उत्पत्ति में भी एक-एक विचार दृष्टि संपादित रहती है।

आधुनातन उत्पत्ति में जीवनाभिव्यक्ति के स्थान पर जीवन-दर्शन की स्थापना होने लगी है। समाकार प्रत्यक्ष मित्रागो का प्रतिपादन करने हैं और ऐसे पात्रों का मूजन करने हैं जो उस समय के मूल रूप में हैं। यह एक दाय है। जीवन-मन इतना प्रत्यक्ष न हो कि वह पग-पग पर सबकोषक बन जाए और बसा न बिहूनि धाम नये। फिर भी यह स्वीकार करना पड़ता है कि समस्त की धर्मसाधना करने वाला उत्पत्ति का प्रथम ध्येय न तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि वह अपने सुव की ऊँची के-ऊँची विचारधारा का धारण न करे। कोई भी उत्पत्ति उस समय तक महान् नहीं हो पाता जब तक कि उसका उद्देश्य महान् न हो।

आलोचकों का मत है कि नैतिक उत्पत्ति का वास्तविक मन्त्रिण उत्पत्ति एवं उत्पत्तिवादी दोनों को हो गया है।^१ परन्तु यह कथन अत्यंत ही गलत है क्योंकि नैतिकता और कथा में अन्तर्भावधर्मिता भी है। अतः उत्पत्तिवादी नैतिकता के प्रतिफल न बने। प्राचीन साहित्य में मनु की उम्र और अमरु की पराजय होती थी धातु के युग में जीवन का संघर्ष और मृत्यु का महत्त्व कथाकार के पूर्वाग्रह का चुराव होने के कारण है। वह किसी एक निश्चित धारणा पर ध्यान नहीं रह सकता। फिर भी कथाकार नैतिक विचार द्वारा पाठकों की धारणा में नैतिकता को प्रोत्साहित तो कर ही सकता है। यदि कथाकार प्रचार का बिरोधी है तो भी उसका धारा निम्न दृष्टिकोण से होना ही जिसमें प्रचार की भावना छिपी रहेगी।^२ कथाकार को पाने अनुभव में तो होना ही जिसमें प्रचार की भावना छिपी रहेगी। वह पग-पग पर पाठक के चिन्ता विचार होना उसकी ही उम्र की स्थापना दृष्ट होगी। वह पग-पग पर पाठक के

1 It should be implicit not palpable any attempt to preach in fiction must inevitably destroy the integrity of a work of art. (Veill p 230)

2 In the long run the quality of a work of fiction depends on the quality of thought of the times in which it is written. (P H Newby The Novel p. 40)

3 the studied presence of a moral intention spoils the novel as well as the novel. (p. 390-391 History of English literature Vol VII)

The moral sense and the artistic sense be very near together... (Veill)

4 It is probably near the truth to say that art cannot exist without propaganda that the lack of formulated belief will lead to sterility or at the best a literature of mindless sensation. (The Novel p. 11)

बहु कहता है कि मेरे निष्कर्षों को मत स्वीकार करो अपनी धीर्जी से देखो धीर पढ़-
 चानो^१। कसाकार को प्रकार से अपना दृष्टिकोण पाठक से स्वीकृत करा सकता है।
 एक तो यह कि यह पाठक को वहाँ ले जाना चाहे उसी प्रकार का साक्ष्य जुटाने धीर
 दूसरा यह कि अपनी मोहक कसा के धानोक में उसकी दृष्टि को स्तम्भित करके उस
 को मन्त्रमुग्ध कर स। यस्तु नैतिकता उपवेश या प्रकार या दृष्टिकोण के बिना कसा
 का प्रसार सम्भव नहीं।

जीवन में सत् धीर यस्तु बोली ही पस है धीर कदाचित् यस्तु सत् से भी अधिक
 है परन्तु इसीलिए तो उपन्यासकार को यमत से दूर रह कर सत् का प्रतिपादन करना
 चाहिए—यथाचं जीवन में कुछ धीर वेचना का प्रसिद्ध बँस ही क्या कम है जा कात्म
 निक कुछ चिन्तित किया जाए^२ धीर जीवन को यस्तु चोपित किया जाए अनेक दुस्स
 ऐसे हैं जो जीवन में प्रपन्न दिखाई पड़ने पर भी उपन्यास में वर्ण्य रहे^३। वो क्रुत्ता से
 बचकर नहीं निकल सकता उसे उन सब विषेपताया को पचा लेना चाहिए, परन्तु इस
 कथन में केवल इतना ही सार है कि जीवन का समग्र चित्र ॥ उपन्यास का विषय है,
 केवल माया और हम्नबाल में उमक कर पाठक को बहु वास्तविक का विस्मरण न करा
 दे^४।

केवल ग्वाय की भाषणा वा सत्-यस्तु का ही प्रकृ नहीं उपन्यास के द्वारा राज-
 नीतिक और सामाजिक मसवारों का भी प्रचार किया जाता है। विद्वान्वादियों और
 स्वायकारों ने उपन्यास को प्रचार का साधन एवं सामाजिक धातोचना के लिए एक
 माध्यम जानकर इसकी अपना लिया है और वे कथायस्तु में यथाचं चित्रों का संयोजन
 करके जनसाधारित समान पर कटु प्रहार करने लगे हैं।^५ परन्तु धातोलेखों ने कसा
 अपने उक्त उद्देश से पठित ही जाती है राजनीतिक प्रचार साहित्य को विहृत कर

- १ 'Don't take my valuation he seems to say "See for yourself."
(Ibid)
- २ Why write imaginary unhappiness when there is so much real
unhappiness in the world (Robert Liddell, p. 80)
- ३ There are scenes in life that cannot be written even if they can
be proved to have happened! —George Moore (Quoted by Liddell)
- ४ the truly comic novel does not succeed by making us forget
the ugliness of reality but by assimilating it (Newby p. 7)
- ५ Theory-mongers and Satirists stared upon the novel as a means
of propagating ideas, and realising the almost limitless possibili-
ties of using it as a vehicle for social criticism combined story
and realistic characterisation with attacks on the foundations of
contemporary society (Liddell p. 106)

देता है और उसको पथन के गत में डुबो देता है^१। इसलिये समस्त के समिन्तारी उप-
न्यास को प्रचार के सिद्धये दलबल में नहीं लेना चाहिए। वह केवल जीवन के प्रवाह
धारा में बार-बार डुबकी मचाकर कुछ समुच्च रत्न निकालने को अपनी आशा में मगो
मोहक तथा अपने मुख में अनुसमीप हो।

नैतिक उपदेश तथा राजनीतिक प्रचार के प्रतिरिक्त साधनिक व्याख्या मनो-
वैज्ञानिक सत्य एवं वैज्ञानिक और भौगोलिक अनुसन्धान भी उपन्यास के वर्ण्य हो सकते
हैं। ऐसे उपन्यास मुद्रिबाध से इनने प्राप्तवान ही जाते हैं कि उन का मुख्य तत्व कथा-
तत्व उपेक्षित रह जाता है। कथत ऐसी उपन्यास पाठ्य-मुष्क का का कारण कर
बैठता है।

जीवन के प्रति अपना दृष्टिकोण उपन्यासकार को प्रचार से समिन्तार कर
सकता है—व्यापक जीवन से कवि के अनुकूल बिन्दु का चयन करके और नैतिक मूल्यों
का प्रत्यक्ष प्रतिपादन करके। जीवन समस्त तथा अपार है और यह दुस्समाय जगत्
भी उसी के लक्ष्य प्रवाह है। सभी ओप उसी में से अपनी उचित और समता के अनुकूल
दृश्य बिन्दु और व्यक्तियों को छांट लेते हैं। उपन्यासकार भी जीवन के जिन संग
और प्रस को लेता है उसका कारण उसकी अपनी प्रकृति या स्वभाव ही है। स्वत-
वस्तु की कल्पना से ही उपन्यासकार की समिन्तार का पूरा परिचय मिल जाता है।
दृष्टिकोण का चुनाव कथ कथावस्तु के लक्ष्यन में नैतिक मूल्यों का प्रत्यक्ष है वह
उत्पात-वर्तन विकास ज्ञास तथा विस्तार-संकोच में जिन विशेषताओं की महत्त्व देता
है वे उद्देश्य की प्रतिपादिका हैं।

जीवन का चित्र होने के कारण उपन्यास में विभिन्न प्रतिक्रियाएं भी प्रचय
म्मायी हैं। उपन्यासकार प्रतिपादन से सावधान रह सकता है परन्तु प्रतिक्रियाओं से
उदासीन नहीं। क्योंकि परिस्थिति-विशेष की प्रतिक्रिया को छिपाने का प्रयत्न प्रवाह
में बाधा तथा पक्ष में समिन्तारिता का अपन कर सकता है। जीवन-दृष्टि को सात्व
पूर्वक प्रकृष्ट करने की प्रया स्वयमेव एक प्रकार है। उपन्यास जीवन-दृष्टि से बन
नहीं सकता परन्तु साम्प्रदायिक मठबादों की बस-बस में बँधकर यह अपना कमेवर
कबुजित न करे, उपन्यासकार की सम्मता इसी में है।

कथत यह कहा जा सकता है कि उपन्यास उद्देश्य-विहीन रहना नहीं हो सकता।
किन्तु उपाय एवं अवकाश उद्देश्य की पुष्टभूमि में ही उपन्यास की कथा सार्थक बनती
है। तत्काल लेखक नहीं जो उद्देश्य का जगत् जगत् और जीवन के साक्षर मूल्यों का
प्रचार कर करता है। चिरस्मयी मूल्यों का प्रत्यक्ष और प्रतिपादन उपन्यास में स्व-
स्व एवं साक्ष जीवन-दमन की प्रतिष्ठा करने वाला होता है। सत्-ममार् की पक्षि
विधि से समिन्तार और मानव मन के ग्राह्य की समझने वाले कथाकार अपने उद्देश्य का

१ "Politics is a stone tied to the neck of literature which sinks it
in less than six months. (Liddell p. 108)

यह कहता है कि मेरे निष्कर्षों को मत स्वीकार करो अपनी धार्यों से देखो धीर पढ़-
नाओ^१। कलाकार को प्रकार से अपना दृष्टिकोण पाठक से स्वीकृत करा सकता है।
एक तो यह कि वह पाठक को जहाँ से जाना जाहे उसी प्रकार का साध्य चुटावे धीर
दूसरा यह कि अपनी मोहक कला के आलोचक से उसकी दृष्टि को स्वमिश्र करके पद
को मन्मथ कर से। अस्तु नैतिकता उपदेश या प्रचार या दृष्टिकोण के बिना कला
का प्रसार सम्भव नहीं।

जीवन में सत् धीर असत् दोनों ही पक्ष हैं धीर कथानि सत् सत् से भी अधिक
है परन्तु इसीलिए तो उपन्यासकार को अस्त से दूर रह कर सत् का प्रतिपादन करना
चाहिए—अर्थात् जीवन में कुछ धीर वेदना का अस्तित्व जैसे ही क्या कम है या काल्प-
निक कुछ अतिरिक्त किया जाए^२ धीर जीवन को असत् बोधित किया जाए अनेक दृश्य
ऐसे हैं जो जीवन में प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने पर भी उपन्यास में वर्ण्य रहे^३। जो कृपा से
बचकर नहीं निकल सकता उसे उन सब विषेपताओं को पचा लेना चाहिए, परन्तु इस
कम में केवल इतना ही सार है कि जीवन का समग्र चित्र ही उपन्यास का विषय है,
केवल भावा धीर इन्द्रजाल में उलझ कर पाठक को वह वास्तविक का विस्मरण न करा
हे^४।

केवल श्याम की भावना या सत्-असत् का ही प्रश्न नहीं उपन्यास के हाथ पद
नैतिक और सामाजिक मठवालों का भी प्रचार किया जाता है। सिद्धान्तवादियों और
श्लोकाकारों ने उपन्यास को प्रचार का साधन एवं सामाजिक आलोचना के लिए एक
माध्यम मानकर इसको अपना लिया है धीर के कथावस्तु में यथार्थ चित्रा का संयोजन
करके समसामयिक समाज पर कटु प्रहार करने लगे हैं^५ परन्तु आन्दोलनों से कला
अपने उच्च उद्देश से पठित हो जाती है। राजनीतिक प्रभाव साहित्य को विहृत कर

- १ 'Don't take my valuation he seems to say 'See for yourself'
(Ibid)
- २ 'Why write imaginary unhappiness when there is so much real
unhappiness in the world (Robert Liddell p. 60)
- ३ 'There are scenes in life that cannot be written even if they can
be proved to have happened' —George Moore (Quoted by Liddell)
- ४ '...the truly comic novel does not succeed by making us forget
the ugliness of reality but by assimilating it (Cowby p. 7)
- ५ 'Theory mongers and Satirists seized upon the novel as a means
of propagating ideas, and realising the almost limitless possibili-
ties of using it as a vehicle for social criticism combined story
and realistic characterisation with attacks on the foundations of
contemporary society (Neill p. 205)

देना है और उसकी पतन के गर्त में डुबो देता है। इसलिये धर्मरत्न के अभिलाषी उप-
न्यास को प्रचार के सिद्धि के समर्थन में नहीं फँसना चाहिए। वह केवल जीवन के प्रवाह
सागर में बार-बार डूबकी मनाकर कुछ समुत्पन्न रत्न निकाले जो अपनी भाषा में मना
भीड़क तथा अपने मूल्य में अतुलनीय हों।

नैतिक उपदेश तथा राजनीतिक प्रचार के अतिरिक्त दार्शनिक भाष्यमा मनो-
वैज्ञानिक सत्य एवं वैज्ञानिक और भौतिकीय अनुसन्धान भी उपन्यास के वर्ण्य हो सकते
हैं। ऐसे उपन्यास बुद्धिवाध से इतने धार्मिक भावित हैं कि उन का मुख्य सत्य कथा-
सत्य उपेक्षित रह जाता है। कथत ऐसा उपन्यास पाठ्य-पुस्तक का रूप धारण कर
बैठता है।

जीवन के प्रति अपना दृष्टिकोण उपन्यासकार दो प्रकार से अभिव्यक्त कर
सकता है—व्यापक जीवन से बच के अनुकूल चिन्ता का प्रयत्न करके और नैतिक मूल्यों
का प्रत्यक्ष प्रतिपादन करके। जीवन समग्र तथा अपार है और वह दृश्यमान अवस्था
भी उसी के समग्र प्रवाह है। सभी लोग उसी में से अपनी बचि और समता के अनुकूल
दृश्य चिन्ता और व्यक्तियों को छांट लेते हैं। उपन्यासकार भी जीवन के जिस प्र-
योग को लेता है उसका कारण उसकी अपनी प्रकृति या व्यवधान ही है। कथा-
वस्तु की कपरेखा से ही उपन्यासकार की व्यक्तिबचि का पूर्ण परिचय मिला जाता है।
दृष्टिकोण का दूसरा रूप कथावस्तु के संवादन में नैतिक मूल्यों का प्रत्यक्ष है वह
उत्थान-पतन विकास क्षाब्ध तथा विस्तार-संकोच में जिन विधेयताओं को मूर्त देता
है वे उपेक्ष्य की प्रतिपादिका हैं।

जीवन का चिन्ता होने के कारण उपन्यास में विभिन्न प्रतिक्रियाएँ भी अवश्य
आती हैं। उपन्यासकार प्रतिपादन से सावधान रह सकता है परन्तु प्रतिक्रियाओं से
जवाबी नहीं क्योंकि परिस्थिति-विशेष की प्रतिक्रिया को छिपाने का प्रयत्न प्रवाह
में बाधा तथा बचि में अनैतिकता का अपन कर सकता है। जीवन-दृष्टि को प्राप्त
पूर्वक प्रकट करने को प्रवा स्वयमेव एक प्रचार है। उपन्यास जीवन-दृष्टि से बच
नहीं सकता परन्तु साम्प्रदायिक मताचारों की दस-दस में फँसकर वह अपना कनेवर
कमुपिठ न करे, उपन्यासकार की सफलता इसी में है।

कथत वह कहा जा सकता है कि उपन्यास उपेक्ष्य-विहीन रचना नहीं हो सकती।
किसी सवाल एवं प्रश्नवाचक उद्देश्य की पूर्णतः पूर्ण में ही उपन्यास की प्रमा सार्थक बनती
है। सफल लेखक नहीं है जो उपेक्ष्य का चयन समग्र और जीवन के सामान्य मूल्यों के
साधारण पर करता है। निरवस्थापी मूल्यों का प्रत्यक्ष और प्रतिपादन उपन्यास में स्व
स्व एवं बाह्य जीवन-दर्शन की प्रतिष्ठा करने वाला होता है। प्रत्य संसार की गति
विधि से अभिन्न और सामान्य मन के प्रवाह को समझने वाले कथाकार अपने उपेक्ष्य को

१ "Politics is a stone tied to the neck of literature which sinks it
in less than six months. (Liddell p. 108)

अप्य रचते हुए भी उपन्यास को महत् उद्देश्य की ओर उसी प्रकार से जाते हैं जैसे महाकाव्यकार युग इष्टा कवि से जाते हैं। उद्देश्य के इस चरमबिन्दु पर महाकाव्य और उपन्यास में बहुत धार्मिक साम्य लक्षित होने का वही कारण है।

रस

भारतीय काव्य-शास्त्र रस को काव्य का प्रमुख घण स्वीकार करता है। उपन्यास काव्य नहीं है परन्तु काव्य के सहवर्गी साहित्य का ही एक रूप है। घट काव्य के संज्ञान उपन्यास में भी रस का विशेष महत्त्व है—उपन्यास की सार्थकता रस की पूर्णता में है।^१ पाश्चात्य साहित्य-शास्त्र में रस-शाब्दकाव्य किसी काव्यत्व का प्रतिपादन नहीं किया गया घट किसी भी कलाकृति में भारतीय काव्य-शास्त्रियों की भाँति रस का संज्ञान नहीं किया जाता। उपन्यास का तो उद्भव एवं विकास पश्चिम में ही हुआ था इसलिए उपन्यास की आलोचना में रस की जहाँ नहीं की गई। भारतीय आलोचक वरहम ही उपन्यास की आलोचना करते हुए रस को एक अनिवार्य घण के रूप में स्वीकार करने लगे हैं।

यदि रस घण का सामान्य अर्थ स्वीकार किया जाए तो साहित्य में ही नहीं जीवन के प्रत्येक क्षण में रस ही मुख्य है परन्तु उपन्यास में रस से अभिप्राय उस लोकोत्तर आनन्द का है जो काव्य की आत्मा माना जाता है। उपन्यास में लोकोत्तर आनन्द के स्थापन पर विचार-विमर्श ही मुख्य उद्देश्य मान लिया गया है। यदि यही सत्य है तो भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विचारों के आचार भी तो मात्र ही हैं—‘हमारे विचार भी हमारे जीवन के प्रति आत्मिक या विराट्मात्रक दृष्टिकोण के ही फल-फूल होते हैं विचारों के फूल में भी मात्र ही रहते हैं धर्मात् के ग्राम मात्र-पेरित होते हैं।’^२ घट यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाये तो प्रत्येक चरित्र के मूल में मानव-मन का राय-द्वेष ही आचार बना रहता है इसलिए बुद्धिवादी युग के प्रमुख साहित्य-रूप उपन्यास में भी मात्र और रस को अनिवार्य घण चरित्र के रूप में स्वीकार करना चाहिए। प्रवृत्ति में गृह्यार उल्हाह में बीर कदवा में घाव भय में अमानक और भूमा न बीमारत रस का लक्षण मानना चाहिए। अमुना तन उपन्यास में कदवा भूमा और उल्हाह आचार-विमर्श के मन्त्रा सचन ही उद्देश्य है ऐसी दृष्टि में सचार ही नये पाश्चात्य तक सम्भव है। ‘सोशल’ में समाज सापक्षों के प्रति सत्य और अहिंसा के बल पर आत्मसुख का उल्हाह बिगई पड़ता है इसलिए उन उपन्यास में बीर रस लगी है मुल्कराम आनन्द के ‘भूमी उपन्यास में मूल्य अनिपट ठोकरें खाता है और अन्त में अस्पृश्यता में शरीर छोड़ता है उसका

१. उपन्यास काव्य और रस-रचना। हर उपन्यास सार्वक जाते रस पक्षे रररुर्न दृष्टि प्रत्य करवाई।

—उपन्यास रस-रचना १० २३

भी अस्तित्व में आता है (अकरी अस्तित्व)

पाठ जीवन करना की कहानी है। तिमस्ती उपन्यास अनुभूत रस के उदाहरण है। यत् 'संस्कृत के धातुकारिक बिस् रस को काव्य की धातु कहते हैं वो धनी है बहो कथा और धातुकारिक का भी धान है।'^१

यह निश्चय हो जाने पर कि उपन्यास में रस वृष्टि अनुपपन्न नहीं है यह विचारणीय है कि साहित्य के इस रूप में रस को जितना महत्व देना चाहिए। यह पाठक-भाव का अनुभव है कि उपन्यास का समस्त प्रभाव सहृदय-संवेद्य नहीं होता बुद्धिवादी होता है—अधुनातन उपन्यासों में यह सत्य विशेष रूप से ध्वनिमय होने लगा है। रस-विमोह करने वाले धार्मिक उपन्यास का पदभूत समस्त भाव है। संस्कृत धातुकारिकता में रस-विमोह करने की ध्वनि की पश्चात् तत्कालीन हिन्दी धातुकारिकता में भी बड़ी मात्रा-वत् कार्य करता रहा। धातु उपन्यासकार स्वकीय वृष्टिकोण के समक्ष ही उपन्यास की रचना करता है वृष्टिकोण ही मुख्य है भाव नहीं। यदि धातुकारिक उपन्यास में भावों का एक-तम संवर्णन भी मिलता रहे तो भी न्यायी भाव जैसी वस्तु तो होती ही नहीं। यत् रस धातुकारिक उपन्यास का धातुकार है प्राण नहीं।

उपन्यास के प्रकार

उपन्यासों का वर्गीकरण कई प्रकार से हो सकता है। तत्त्वों के सापेक्षिक महत्त्व को ध्यान में रख कर उपन्यास 'व्यक्ति प्रधान' 'चरित्र प्रधान' तथा 'उद्देश्य प्रधान' हैं। कथावस्तु में तत्त्वों की सत्यता को वृष्टि में रस का उपन्यास 'व्यक्ति प्रधान' तथा 'वास्तविकता-प्रधान' कहे जा सकते हैं। काम की वृष्टि से वे 'ऐतिहासिक' तथा 'सामाजिक' हैं। कथावस्तु के विशेष गुण को ध्यान में रख कर सामाजिक 'मनोवैज्ञानिक' 'नैतिक' तथा 'तिमस्ती' 'आधुनिक' धातु उपन्यासों के भेद हैं। धनी की वृष्टि से उपन्यास 'पाठकीय' और 'विवरणात्मक' हो सकते हैं। धातुवत् रस के सम्बन्ध से 'भाव प्रधान' और केवल बहिर्मुख के सम्बन्ध से 'व्यक्ति-देखाऊ-सापेक्ष' वर्ग में रखा जाता है। उपन्यास के इतने धार्मिक प्रकार हैं कि एक सामान्य धातु को लेकर सभी उपन्यासों का वर्गीकरण नहीं हो सकता अनेक ऐसे उपन्यास हैं जिनको किसी एक ही रूप में रखना सम्भव नहीं।^२ वस्तुतः विषय प्रसिद्ध उपन्यास हैं इतने ही उपन्यास के प्रकार भी माने जा सकते हैं।

उपन्यास-कला के विकास की वृष्टि में रस कर कुछ धातुकारों ने उपन्यास के

१ धातुकारिक हिन्दी साहित्य पर विचार पृ. ६६

२ There are so many varieties of novel that it is hard to find for them all a common critical denominator. And there are other kinds of narrative which shade into the novel so artfully that it is difficult to know where to draw the line. (The Craft of the Critic p 120)

वीर मुख्य यह लिए है—चरित्र-प्रधान नाटकीय तथा घटना-प्रधान।^१ हम इन दोनों पर विचार करते हैं।

घटना प्रधान तथा चरित्र प्रधान

सामान्यतः उपन्यासों के दो श्रेय किए जा सकते हैं। एक तो वह जिस में कथा-वस्तु का व्यवस्थित विकास हो और पात्र उसी विकास की दृष्टि से बढ़ दिए गये हों। दूसरा वह जिस में पात्रों का सुनिश्चित विकास दिखाया गया हो और बटमावनी उसी उद्देश्य की पूर्ति करती हो—अथवा जो घटना-प्रधान और द्वितीय को चरित्र-प्रधान कह सकते हैं। प्रायः चरित्र प्रधान उपन्यास की कथावस्तु सिद्धि एवं मरन होती है और घटना प्रधान उपन्यास की सुपेठित^२। ये दोनों श्रेय सिद्धान्त का से मिलने स्पष्ट है जब हार में उतने नहीं क्योंकि सामान्यतः उपन्यासों में ये दोनों ही प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। घटना-प्रधान उपन्यासों में प्रायः का संयोग का बड़ा सहारक है और पाठक उस में घाँस मूँद कर विश्वास कर लेता है।

चरित्र-प्रधान तथा नाटकीय

चरित्र-प्रधान उपन्यास की एक मुख्य विशेषता है यथार्थ और आदर्श में विरोध—जैसे सोम बिनाई पड़ते हैं और जैसे वे वस्तुतः हैं उनके इन दोमा कपो का अन्तर^३। इसके विपरीत नाटकीय उपन्यास प्रासंगिक (appearance) तथा वास्तविक (Reality) की एकता सिद्धांता है और इन बात पर बल देता है कि पात्र और उनकी क्रियाएँ समान हैं। चरित्र प्रधान उपन्यास का कार्य पहले एक पात्र से प्रारम्भ होता है और फिर धीरे-धीरे विस्तृत होता जाता जाता है। इसके विपरीत नाटकीय उपन्यास का कार्य कम से कम दो या अधिक पात्रों से प्रारम्भ होता है और सज्जन होता रहता है। चरित्र प्रधान उपन्यास में जो पात्र दिए जाते हैं उन पर परिचित कथा का प्रभाव विशेष परिवर्तन नहीं आता परन्तु नाटकीय उपन्यास में विविधता की प्रवृत्ति पाई जाती है क्योंकि नाटकीय उपन्यास मिल्न-मिल्न अनुभवों का चित्र है और चरित्र प्रधान उपन्यास जीवन के मिल्न मिल्न कपों का^४।

१ prose fiction into three main divisions—the character novel, the dramatic novel and the chronicle (Edwin Muir p. 146)

२ It has been a convention that the plot of a novel of character should be loose and easy. As in the novel of action the characters are designed to fit the plot (Edwin Muir p. 9)

३ The novel of character brings out the contrast between appearance and reality between people as they present themselves to the society and as they are (Ibid p. 47)

४ The dramatic novel is an image of modes of experience the character novel is a picture of modes of existence (Ibid p. 50)

नाटकीय उपन्यास में न ता पात्र कथावस्तु के साधन होते हैं और न कथावस्तु पात्रों के चारों ओर घुमा हुआ होता है। प्रत्युत दोनों एक दूसरे से अपृथक भाग से मिले होते हैं। इस तरह नाटकीय उपन्यास तुल्यवाक्य (Tragedy) के अधिक उपयुक्त है और अरि-प्रधान उपन्यास तुल्यवाक्य के। कथावस्तु और पात्रों का यह विरोध सम्बन्ध नाटकीय उपन्यास को अतन्त्रप्रधान और अरि प्रधान उपन्यासों से पृथक करता है। नाटकीय उपन्यास में आकस्मिकता अधिक रहती है इसीलिए उसमें जीवन का एक ही क्षण दिखाना या सक्रिय है। नाटकीय उपन्यास का अर्थ उस समस्या का सुझाव होता है जो चरम में गति पाती है या मृत्यु होती है। प्रायः यही दो सम्बन्ध अन्य नाटकीय उपन्यास के द्वारा करते हैं।

अतन्त्र-प्रधान उपन्यास की सबसे बड़ी शक्ति है पाठक के मन पर ऐसा प्रभाव डालना कि वह अपने कथा के पात्रों से एकीकरण करके उनके साहित्यिक कार्यों में स्वयं भाग्य ले सके। ऐसे उपन्यास प्रायः आसुखी द्वारा करते हैं, इनका प्राण कुपुहल एवं विविधता है। पश्चिम में ऐसन को ने सर्वप्रथम सन् १८४१ में आसुखी उपन्यास लिखा था।

ऐतिहासिक उपन्यास

उपन्यास में इतिहास के योग से एक विशेष जीवन की सृष्टि हो जाती है। कथावस्तु की पृथक् के दृष्टिकोण से ऐतिहासिक उपन्यास तीन प्रकार के हो सकते हैं एक घुम-प्रतिनिधि को व्यक्ति-प्रतिनिधि और तीन अतिरंजनकारी। घुम प्रतिनिधि उपन्यास इतिहास के विस्तृत घुम का चित्र उल्लिखित करने का प्रयत्न करता है। उस में लेखक का व्यक्तिगत दृष्टिकोण ही मुख्य है क्योंकि अधिकतर नामची कल्पित द्वारा करती है। हिन्दी में 'राहुल' की के उपन्यास इसी कोटि में आते हैं। व्यक्ति-प्रतिनिधि ऐतिहासिक उपन्यास विस्तृत ऐतिहासिक व्यक्तियों का कल्पनात्मक वर्णन करता है हिन्दी में 'इरावती' इसी वर्ग का है। अधिकतर ऐतिहासिक उपन्यास अतिरंजनकारी या कुछ ऐतिहासिक होते हैं। इनमें विस्तृत घुम या व्यक्ति आधार नहीं बनाये जाते परन्तु इतिहास में उल्लिखित किशोरों की साहित्यिक अतिरंजना से चित्रित किया जाता है। वृत्तावतमान वर्गों के उपन्यास इसी कोटि के हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासों के विषय में आलोचकों का दृष्टिकोण भी है वे इन को निरादर की दृष्टि से देखते हैं और उपन्यास के इन वर्ग को असफल इतिहास और असफल उपन्यास दोनों का द्विगुण मिश्रण कह देते हैं।^१ वस्तुतः ऐतिहासिक उपन्यास

१ सीनारम अग्रवेदी-१०

१ The end of any dramatic novel will be a solution of the problem which sets the events moving (Edwing Muir p 38)

१ ...the historical novel is bad history and worse fiction that it falls between the two modes, and succeeds in being neither one nor the other (Craft of the Critic p. 121)

की रचना मननसाध्य है विस्तृत धम्मयन के उपरान्त उक्त युव की चिरकालीन भावना करके ही लेखक उक्त युव का प्रभावपूर्ण चित्र उपस्थित कर सकता है। यदि लेखक में उसकी सामर्थ्य नहीं है तो वह ऐतिहासिक उपन्यास लिखने का हुस्नाहस क्यों करे— ऐसे प्रसक्त लेखक अपने ही युव की बात लिखें तो धन्य है। परन्तु धार्मिकों का यह सोचना प्रबल सारवभूत नहीं जो समकालीन परिस्थितियों का सफ़्त भावन कर सकता है वह पूर्वकालीन का भी प्रविष्ट दार्शनिक काष्ठ धपनी कल्पना के द्वारा दूसरे स्थानों का इतना वचावध्व एवं आकर्षक वर्णन करता था कि प्रत्यक्ष दृष्टा की भी अपने निरीक्षण के कल्पन का अनुभव होने लगता था। जो बात विगत इतिहास के विषय में कही गई है वही भावी इतिहास पर भी लागू होती है 'राहुल' की का 'बाईसवीं सदी' इसी सेबी का उपन्यास है जिसमें व्यक्तिगत भावनाओं के आधार पर भविष्य की मनोरम कल्पना की गई है। भावी इतिहास के उन्मास निरीक्षण पर निर्भर नहीं प्रत्युत धर्मव्यक्ति और वर्णन की अनुभव सचाई पर निर्वाह करते हैं।

मनोवैज्ञानिक

वर्तमान के उपन्यास बटना-प्रधान चरित्र प्रधान धारि दोनों में विभक्त किसे जा चुके हैं प्रत्यक्ष के उपन्यास को मनोवैज्ञानिक कहा जाता है क्योंकि इनमें मन और हृदय के रहस्यों का ही उद्घाटन होता है। इस वर्ग के उपन्यास बाह्य बटनाओं और कथोपकथन धारि को मनोवैज्ञानिक के प्रपञ्चीकरण का साधन बनाते हैं। कठिनायि स्त्री और पुरुष के प्रत्यक्ष में आकर कर अनेक नियुक्त तथ्या का विश्लेषण कर सकता है और हृदय में कारण-स्वरूप बने हुए तथ्यों को विभक्त कर देता है। सामान्यतः मनोवैज्ञानिक कलाकार उपन्यास की अपेक्षा मनोविज्ञान का विषय महत्त्व मानकर समस्याओं के मूलमूल भाविक कारणों का खनन और समस्याओं के फल-स्वरूप होने बात मानसिक परिवर्तनों के विषय में दर्ज रखता है।

पश्चिम के प्रभाव से हिन्दी में भी मनोविज्ञान के प्रति एक विशेष आकर्षण बढ रहा है और साहित्य के दूसरे रचना की अपेक्षा कथा-साहित्य में इसका अधिक आधार है। या तो घटानामय मन की गति-विधि और अथवा व्यावहारिक जीवन पर प्रभाव उपन्यास का विषय है या विशेष परिस्थितियों की मनोवैज्ञानिक छाया में व्याख्या कलाकार का प्रतीक है।

यहाँ तक ध्यान रखना आवश्यक-ता है कि मनोवैज्ञानिक उपन्यास धम्मयन संकीर्ण मन जाता है क्योंकि उनमें मनोवैज्ञानिक के धर्मिक रहस्या का नहीं प्रत्युत कुछ नये विज्ञानों का ही सारस्वत वर्णन होता है। हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में हीनता-बन्धि को किसी न किसी रूप में आधार माना गया है या कम से कम मनोविज्ञान समाज मनोविज्ञान विद्या-मनोविज्ञान धारि धारणाएँ ता विज्ञान ही धारणी नहीं हुई है। 'सकल' /

घीर 'ग्रह' इन दो मूल प्रवृत्तियों को भागवीय स्रष्ट करण का सञ्चालक मानकर कथाकारों ने उपन्यासों की रचना की है और समाज के निरीक्षण की अपेक्षा अपवादों की व्याख्या इन उपन्यासकारों की विशेषता रही है।

वैज्ञानिक उपन्यास

आवकम मावगा के स्थान पर बुद्धि और ज्ञान के स्थान पर विज्ञान का प्रचार साहित्य के क्षेत्र में बढ़ रहा है और उपन्यास में इस परिवर्तन में सबसे अधिक सहयोग दिया है। जन्मा भरिण इतिहास मनोविज्ञान आदि मानवीय व्यवस्था से सम्बन्ध रखने वाले विषयों के स्थान पर ज्ञान-विज्ञानपरक रहस्य उपन्यास का विषय बनने लगे हैं और वैज्ञानिकों की अनुसन्धानपूर्ण कल्पना का साहित्यिक विस्तार करके कलाकार उपन्यासों की रचना करता है। ये उपन्यास बासूची उपन्यासों के समान घटना-वैचित्र्य से आक्रान्त तो नहीं होते परन्तु वर्णन-वैचित्र्य इनकी मुख्य विशेषता है और इनको विज्ञान का ऐसा सबल अवलम्बन प्राप्त होता है कि वे किसी भी सीमा तक बढ़ सकते हैं। हिन्दी में 'ब्रह्मलोक की यात्रा' 'थंयल ग्रह का मानव' 'ब्रह्म मानव' आदि उपन्यास इसी वर्ग के हैं। वैज्ञानिक उपन्यास का उद्देश्य विज्ञान के ज्ञान को साहित्यिक माध्यम से पाठक तक पहुँचाना है ज्ञान और साहित्य इन दोनों का संतुलन ही वैज्ञानिक उपन्यास का चरम मूल्य है।

कलात्मक उपन्यास

पश्चिम में फ्लावर्ट लुवेनबैक्स और कानरेड आदि उपन्यासकारों ने जो उपन्यास लिखे हैं उनका विषय निश्चित और सीमित होता है। उन लेखकों के विचार में उपन्यास में कथा की ही विशेषता होती है और उसकी कथावस्तु कलात्मक दृष्टि से निर्मित की जाती है। एकमात्र प्रभाव को निमित्त करने के लिए ऐसे उपन्यासों की रचना होती है। इन उपन्यासों को घाट मानव (Stage) कहते हैं। प्रश्न यह है कि क्या उपन्यासकार व्यापक जीवन में से जिस घंटा को चुनता है उसके भी नेचर एक पक्ष का संकेत करे और जीवन की सख्तता को छिन्न-भिन्न कर दे। क्या प्रकृत जीवन का व्यापक चित्र प्रस्तुत करे? कथावस्तु की व्यवस्था पर ही इस प्रश्न का उत्तर निर्भर है। कलात्मक उपन्यास जीवन ॥ उतनी दृष्टिगत नहीं मानता जिसकी कि कथा से। इसलिए यह विशेषता की ही विषय बन गया है।



1. What a psychologist would call a case study is to the novelist a final end in itself. (S. Stephen Smith p. 106)

हिन्दी उपन्यास

हिन्दी उपन्यास—उपक्रम

‘उपन्यास’ या ‘नवेल’ के स्वरूप का अध्ययन करने के उपरान्त यह प्रासंगिक है कि भारतीय कथा-साहित्य से उनकी शक्ति पर विचार किया जाय। हिन्दी-उपन्यास को भारतीय कथा-परम्परा का विकास-आश स्वीकार करना एक भ्रान्त धारणा का समर्थन करना है क्योंकि वह निश्चय ही यूरोप से बगल होकर हिन्दी-क्षेत्र में प्राया है। फिर भी हिन्दी-उपन्यास के अध्ययन में उस कथा-साहित्य का महत्व निम्नलिखित है जिसमें उन प्रवृत्तियों का रक्षण और पोषण किया जो १९वीं शती में उपन्यास के लेखकों को सुझा दीं। यदि हिन्दी उपन्यास के सभी उत्काशीन लेखक अंग्रेजी और बंगला के प्रसिद्ध विद्वान् होते तो उनके विषय में यह सम्भावना की जा सकती थी कि उन्होंने उन मापामापों की समुद्धि से प्रभावित होकर हिन्दी में भी उसी प्रकार की रचनाएँ करने प्रारम्भ कर दीं। परन्तु स्थिति वैसी नहीं है। इसलिए ऐसा समझा है कि लेखकों की प्रेरणा का स्रोत जिस मात्रा में गंभीरता है उससे अधिक मात्रा में पाठकों की रसि है। लेखक के रस की साहित्यिक प्रवृत्ति से अपरिचित नहीं है। परन्तु उन परिचय का प्रभाव कथा-रूप (उपन्यास नाम) पर ही है। यथार्थ में तो जनता की कथा-विषयक-भावना हम दिना हमनी प्रवृद्धि की कि जा तनिक भी सहभाग है सज्जता वा बहु उपन्यास के क्षेत्र में जा रहा और उत्तरा स्वागत किया गया। राजनीतिक प्रवृत्ति से उत्पन्न हिन्दी प्रदेश के कर्माध्ययन में प्रकाशन केन्द्र गुप्त वष उपन्यास गतिजाएँ निकलन नवीं और बाकेसाल अनुर्वरी तथा बिटुलवास लागरों जैसे व्यक्ति उपन्यासकार बन गये। धरु प्राधुनिक गुप्त तत्त्व का अधिष्ठान अध्ययन करने के लिए कथा-साहित्य के प्राधुनिक गुप्त से पूर्व तीन काम हो सकते हैं —

- (क) प्राचीन कथा-साहित्य
- (ख) मध्ययुगीन कथा-साहित्य
- (ग) नवीं शती की उपन्यास पूर्व कथाविवरण

प्राचीन कथा-साहित्य

मनुष्य का विकास उसकी सामाजिकता से निहित है। इसलिए वह स्वभाव से ही हमारे की सुनने और अपनी सुनाने को प्रस्तुत रहता है। यही कथा का बीज है जिस का प्रथम निर्वर्णन संस्कृत के प्राचीन धार्मिक-साहित्य में उल्लेख होता है। वेद ब्राह्मण श्रुति उपनिषद् और पुराण सबमें सबाद और भाष्यमय भरे पड़े हैं। 'रामायण' और 'महाभारत' भी कथा-काव्य ही हैं। परन्तु जहाँ साहित्यिक कथा-रत्न के लिए महत्त्वपूर्ण है कथा-साहित्य नाम के लिए नहीं।

संस्कृत-साहित्य

कथा-साहित्य के संस्कृत में दो रूप हैं—नीतिकथा एवं रंजनकथा। पाठकों को सामान्य नीति का उपदेश देने के लिए बीच-बीच में श्लोकों से युक्त गद्य-कथा नीति कथा भी इसके उदाहरण 'पंचतन्त्र' और 'हितोपदेश' हैं। इनमें पक्ष-भाग प्राप्त सम्भूत है गद्य भाग रचित मूल-कथा के भीतर अनेक उपकथाएँ प्रायः किसी पक्ष के दृष्टि से चुनी हुई हैं। पशु-पक्षियों में भी मानव-गुणों और मानव-व्यवहार की कल्पना कर मानव को उनके माध्यम से उपदेश दिया गया है। रंजन-कथाओं के दो रूप हैं—साहित्यिक और लौकिक। साहित्यिक रंजनकथाओं की 'धाक्यायिका' और 'कथा' दो संज्ञाएँ हैं (जिन पर अगम्य विचार किया जाएगा) इनके उदाहरण हैं 'ब्रह्मकुमारचरित' 'भवविमुक्तरी कथा' 'आप्तवचन' 'हर्षचरित' 'काव्यमयी' आदि। ये रचनाएँ कला रूप हैं। इनमें कथा-रत्न और सौन्दर्य-रत्न का समान समीप है। लौकिक-रंजन-कथाओं में 'बृहत्कथामञ्जरी' 'कथा-सरित्सागर' 'शुक सप्तति' 'वैतालपंचविधति' और सिंहासन शासिका' आदि हैं। इनकी मूल प्रेरणा पुराणों की 'बृहत्कथा' है। इनका उद्देश्य कौतूहल और मनोरंजन है। इनका न साहित्यिक स्तर बहुत अच्छा है न सामाजिक स्तर उच्च न इस लोक के हैं और न निरवतनीय हैं। समस्त कथामय अतिरंजित यथावत्ता से भरा हुआ है। इस साहित्य का विदेशी मापदण्डों में भी समुदाय हुआ और विदेश में 'अधिकम्बिका' जैसी अमरकथाओं को इसने जन्म दिया।

प्राकृत साहित्य

वास्तव में भोज-रंजन-साहित्य का उद्भव संस्कृत में न मिलकर वैद्याकी भाषा में पाया जाता है। किम्बदन्ती है कि राजा शातवाहन के शासन-काल में कुशाब्ध पवित्र ने 'बृहत्कथा' को वैद्याकी भाषा में सुते चर्म पर रत्न की स्थायी से लिखा था इसके बाद भाषा में ७ लाख श्लोकों के अथ पुस्तक का उचित स्थापन न हुआ तो कवि

२. कथामञ्जरी का कला मीमांसा इत्युक्तम् ।

भाष्यमय शिल्पविदो गुणावलो वाक्यम् सत्यम् १८६१

(सहायक-मञ्जरी, प्रथम अंक, कनारीक)

कथा बयों के अनुकरण है (जिस पर धागे विचार किया जाएगा^१) केवल 'कहानी' मौलिक है जिसकी परम्परा मध्ययुग में वृद्धित होती है परन्तु जिसका सम्बन्ध साहित्यिक युग से नहीं जोड़ा जा सकता ।

शास्त्रीय धर्मिमत्त

प्राचीन साधारणों के इस कथा-साहित्य पर काव्यशास्त्रियों ने भी विचार किया है और इनको 'कथा' 'धास्यायिका' तथा 'धास्यान' (या 'धास्यामक') नाम दिये हैं । शैली की दृष्टि से धाचार्य नामहूँ के मत में काव्य के २ भेद हैं—'समकथा' धर्मिनेधार्य 'धास्यायिका' 'कथा' एवं 'धर्मिबद्ध' । 'धास्यायिका' की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं —

(क) गद्य के उच्छ्वासों^२ में विभक्त

(ख) नायक द्वारा स्वचेष्टित का वर्णन

(ग) वृत्तान्त भावी समृद्धि का सूचक

इसके विपरीत 'कथा' की विशेषताएँ हैं —

(क) कवि-कल्पित कथानक^३

(ख) संस्कृत प्राकृत धाचका धाचका याया

(ग) उच्छ्वासों में निमाचन नहीं

(घ) नायक अपना वर्णन स्वयं नहीं करता

'धास्यायिका' का माध्यम गद्य होता है 'कथा' के लिए यह आवश्यक नहीं । 'धास्यायिका' का विभाजन 'उच्छ्वासों' में होता है 'कथा' का नहीं । 'धास्यायिका' में नायक स्वयं स्वचेष्टित का वर्णन करता है, 'कथा' का कथानक कवि कल्पित होता है ।

१ दे. पृ. २५

२ ब्रजेश मुकुन्दरायार्यो लोच्यवताकथायिका यथा । १२ ।

उच्छ्वासवत्तै लक्ष्यं धाचकैव स्वचेष्टितम् ।

कथा च वरवर्तनं कथैव नायकवर्तनम् ॥२३॥

(काम्यवताकार, प्रथम परिच्छेद)

३ कवेरिप्रियावहृतैः कथामैः केरिचवद्विष्टा । २७

न वरवर्तनवत्तानां मुक्ता, भोजवत्तवत्तवि ।

संस्कृतं संस्कृता केच्य कथानकं साधारणम् ॥२८॥

कथैः स्वचेष्टितं लक्ष्यं नायकवत्तं तु मोक्ष्यते । (परी, पद्यो)

४ भावह में लम्ब रूप से 'कथा' के वाच्य का निर्देश नहीं किया परन्तु 'धास्यायिका' के लिए यह का वाच्य करने से 'कथा' का माध्यम गद्य हो जा सकता है—यह सही है । प्रायः वक्त कर शिवनाथ ने साहित्यकारों के गद्य परिच्छेद में 'कथा' के लिए भी यह कर कर दिया है—'कथाओं सरल वस्तु गद्यैव विनिर्मितम्' । शिवनाथ की दृष्टि में कथाविद् संस्कृत की कथा (नामवत्त काव्यवत्त) ही थी । हेमचन्द्र ने काव्यतुलाय के अष्टम अध्याय में वक्त-मुक्तावत्तिका और गद्य वक्त वक्तवत्त का सर्वाकार कथा' निम्नरूप लम्ब कर दिया है कि कथा वक्त और वक्त दोनों में हो सकती है—'वक्तव्य कथा का कथावत्त काव्यवत्त और वक्तव्य का लोच्यवत्त' है—अथवा लम्ब संस्कृत काव्यवत्त की कथाओं की थी ।

‘शास्त्रात्मिका’ संस्कृत में लिखी जाती है। ‘कथा’ सभी भाषाओं में। हेमचन्द्र ने इन सभी विधेयताओं का सूचक^१ में सम्मिलन करके हुए यह भी स्पष्ट कर दिया है (जो मामूह में संकेतित था) कि ‘शास्त्रात्मिका’ का नायक भीरोद्धत और ‘कथा’ का भीरुप्रसाध होता है। ‘शास्त्रात्मिका’ का सर्वमात्र उदाहरण ‘हर्षचरित’ है।

शास्त्रार्थ पद्धति में मामूह के मत का लक्षण दिया और इस मत की स्थापना की कि ‘कथा’ और ‘शास्त्रात्मिका’ एक ही जाति के दो धर्म-धर्म नाम हैं —

‘एक को स्वयं नायक कहता है दूसरी (कथा) को कहीं नायक और कहीं कोई और जब नायक भूतार्थ का कथन करेगा तो उसमें अपने गुणों का कथन भी करेगा कहीं-कहीं शास्त्रात्मिका को भी नायकेतर कहते हैं। इससे मन्तर क्या आता है कि वक्ता नायक है या श्रम्य कोई। इसीलिए ‘कथा’ और ‘शास्त्रात्मिका’ इनकी संज्ञाएं दो हैं जाति एक ही है’।

दूसरी का यह लक्षण चल न सका और इनके बाद भी संस्कृत में ‘कथा’ एवं ‘शास्त्रात्मिका’ नाम दो भिन्न जातियों के बोझ बने रहे। इतना ही नहीं रोप ‘शास्त्रात्मिका’ जातियों भी कम से कम साहित्य-शास्त्रियों के लिए विवेच्य बनी रही। ब्राह्मण सत्ताधी के शास्त्रार्थ हेमचन्द्र ने ‘शास्त्रात्मिका’ (प्रबन्ध के मध्य में पर प्रबोधनार्थ उचित) ‘निर्घणन’ (पद-वही का इतर की जेष्ठियों से जहां कार्य और शकार्य का निरूपण हो) ‘प्रवाहिका’ (प्रबंधप्राप्त में उचित जो के विवाद का कथन) ‘मठलिका’ (श्रेष्ठ महापुरुषभाषाओं में उचित मुद्रकथा) ‘अभिदुक्का’ (गुण-वस्तु का जहां परचा प्रकाशन हो) ‘परिकथा’ (बहुत से प्रतिबोधियों की जाती-जाती से कथा) ‘लक्षकथा’ (अन्त्यान्तर प्रसिद्ध इतिवृत्त) ‘सकलकथा’ (चरित) ‘उपकथा’ (एक चरित के आधे से प्रसिद्ध कथा का कथन)^२ योंही का कथन किया है। सम्भवत इनमें से अधिकतर भेद संस्कृतेतर भाषाओं में देखे जाते थे। वस्तु, संस्कृत-शौचकार की दृष्टि में ‘शास्त्रात्मिका’ और ‘कथा’ दो मोटे भेद ही थे इनका स्पष्ट मन्तर यह है कि शास्त्रात्मिका सत्यार्थविधायिणी^३ कथा को कहते हैं

१. नायक-कथा-संस्कृत शास्त्रार्थ-विशेषज्ञ-सोक्तवाक्य संस्कृत मन्त्रमुक्ता-कथाभिधः ।
भीरुप्रसाधकथा मन्त्रे मन्त्रे वा सर्वज्ञा कथा ।

(कथासुतासनम् अधम अध्याय)

२. नायकेनैव नाम्ना, नायकेनैवोक्तं वा ।
समुक्तविधिभारो मात्रं भूतार्थरसिन् ॥२०॥
अपि लक्ष्मिणो रथस्यवाक्येकीरितवात् ।
अथो वक्ता स्वयं वेति की एका वैशकारणम् ॥२१॥
उक्तवाक्यकिंविधं जातिः संज्ञावाहिता ॥२२॥

(अन्त्यान्तरं प्रथम परिच्छेद)

३. अत्रैवाप्यर्थविधिनि शेषतयात्मकमन्त्रकः ॥२३॥ (वरी, वरी)

४. कथासुतासनम् अधम अध्याय ।

५. शास्त्रात्मिकेतरात्मिका । (अपरच्छेद)

भी कहा है। महामारत धीरे पुराण के शास्त्रान भी कहा है। धीरे सुबाहु (सुबन्धु) की वास्तवता बाध की काव्यमयी सुबाहु की वृत्तकता बाध भी कहा है। परन्तु विविष्ट धर्म में यह धर्म धर्मज्ञ गणकाय के लिए प्रयुक्त हुआ है।^१ अथ हो नामों में से 'शास्त्राधिकार' अत्यन्त कमपुन्य होने के कारण बहुत प्रागे तक न कम सका क्योंकि इस के स्वाम पर 'वरिष्ठ' शब्द का भी प्रयोग हुआ। केवल 'कहानी' शब्द ही मध्ययुग धीरे आधुनिक युग तक चल रहा है। यद्यपि उसका रूप बदल गया है। उपन्यास नाम से पूर्व कहा धीरे कहानी नाम बसते थे। परन्तु दोनों के अन्तीकटार्थ में अधिक अन्तर न था। 'शास्त्राधिकार' नाम आशङ्कन कई बार छोटी कहानी के लिए धारा है। परन्तु वह न तो शास्त्र के अनुकूल है धीरे न शास्त्राधिकार की परम्परा में ही ठीक बैठता है।

'कहानी' धीरे 'उपन्यास' आधुनिक युग की उपज है। हमारे प्राचीन साहित्य में ही क्यों विषय के किसी भी प्राचीन साहित्य में उपन्यास नहीं कोई वस्तु नहीं मिलती।^२ अथ यह कहना उचित नहीं कि हमारे के कमिक विकास तथा अन्त-वेष्टीय प्रमाण को लेते हुए वर्तमानकाल के उपन्यास-साहित्य ने उत्कर्ष प्राप्त किया है।^३ यह धारणा गलत है कि उपन्यास धीरे कहानियों संस्कृत की कहा धीरे शास्त्राधिकार की सीधी उत्पत्ति है।^४ इतना अवश्यक है कि इस नवीन रूप के धा जाने पर जब नामकरण की समस्या आई तो हमारे साहित्यिक सर्वप्रथम संस्कृत के पास पहुँचे धीरे उसके आधार पर 'कथा' 'उपाख्यान' 'उपकथा' 'काव्यमयी' 'शास्त्राधिकार' आदि नामों का व्यवहार करने का प्रयत्न किया गया। वस्तु 'शास्त्राधिकार' धीरे 'कथा' दोनों की कुछ विशेषताएं 'उपन्यास' में अवश्य मिलती हैं। 'शास्त्राधिकार' के समान 'उपन्यास' पद्य में लिखा जाता है। धीरे इसका विनाशन भ्रमों में होता है। परन्तु न तो नायक स्वयं वर्णन करता है धीरे न भावी समृद्धि की सूचना ही मिलती है। 'उपन्यास' में 'कथा' के समान कथानक दो कवि-कल्पित होता है, परन्तु 'कथा' के विपरीत पद्य को स्वाम नहीं मिलता। भाग के उपन्यास की प्रथम विशेषता मध्ययुगीन सामाजिक श्रद्धा से युक्ति दिखाकर व्यक्ति स्वातन्त्र्य का उद्बोधन है।^५ यह व्यक्ति-स्वातन्त्र्य मध्य-युग की विशेष देन है। इसका एक प्रभाव अरिज-विजय में व्यक्ति के वैविध्य का विषय है। दूसरी विशेषता निम्न तम धनी के समुच्च के भग में भी एक प्रकार की आत्मनयार्थि का नय जाना है जिस के फलस्वरूप एक धीरे तो जीवन में वास्तवीय धीरे सर्व उत्तम हो गया है, दूसरी धीरे विद्यमान मूर्खों के प्रति अथवा की भावना बग गई है। यथार्थवाद वास्तववाद,

१ डा इकारिमलत द्वितीय : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५२

२ श्री मोकुमार बन्योपाध्याय : वैंग साहित्ये उपन्यास परा ५ १

३ श्री मज्जिमलत : हिन्दी-उपन्यास-साहित्य ५० ७३

४ डा इकारिमलत द्वितीय : आधुनिक हिन्दी-साहित्य पर निबन्ध, पृ० १०३

५ श्री मोकुमार बन्योपाध्याय : वैंग साहित्ये उपन्यास परा ५० १

६ श्री मोकुमार बन्योपाध्याय : वैंग साहित्ये उपन्यास (साहित्य-निबन्ध) ५० १ ४

७ श्री मोकुमार बन्योपाध्याय : वैंग साहित्ये उपन्यास परा, पृ० २

धार्मिक सिद्धान्त इसी लिए उपन्यास के क्षेत्र में था वैसे ही जो प्राचीन लोक-साहित्य की पद्य-मधीमयी कथाओं में इस रूप में प्राप्य नहीं होते। धार्मिक का उपन्यास भावना और रूपरंग के क्षेत्र को पीछे छोड़कर चिन्तन के क्षेत्र में था गया है जहाँ जीवन का वास्तविक चित्र ही दर्शित किया जाता है। समस्याओं और चरित्रों का विक्षेपण सत्-असत् के रूप में न करके उनका मनोवैज्ञानिक विक्षेपण उपन्यास-कथा की विशेषता है। कथा-साहित्य के इस रूप में धार्मिक कथा गौण है और व्यक्तित्व का चित्रण मुख्य। संक्षेपतः प्रागुक्त उपन्यास नये रूप के ज्ञान-विज्ञान से सुमन्यित होकर जीवन की गहराइयों में जीवन के लिए ही प्रवेश करता है। प्राचीन साहित्य में कम से कम कथा के लिए इतने बल्लभ न थे।

मध्ययुगीन कथा-साहित्य

अपभ्रंस के अस्त होते होते प्रागुक्त भाषाओं का युग प्रारम्भ हो गया। अपभ्रंस और लड़ी बोली के बीच के युग को साहित्य का मध्ययुग कहा जा सकता है। इन काल में जनता की चित्तवृत्ति औरत-मकितरस और गृहाररस की ओर कामकाज से झुकी रही। इस काल में अपभ्रंस-साहित्य का सूत्रन हुआ इसमें से एक बड़ा अनुपात कथनात्मक साहित्य का था। इस साहित्य के सम्बन्ध में पहली समस्या तो यह है कि 'काव्य' और 'कथा' का अन्तर किस प्रकार किया जाए। यदि 'मुक्तक' को अलग कर लें तो बचे हुए प्रबन्ध-शब्दां और 'कथा'-काव्यों के बीच कोई स्पष्ट विभाजन-रेखा नहीं है 'अनुपात' को यथेष्ट 'काव्य' भी कह सकते हैं और उत्तम 'कथा' भी। दूसरी समस्या काव्य रूप की है 'चरित' कथा 'कहानी' 'उपन्यास' 'मंगल' धार्मिक साहित्य रूपों का इतना शिथिल प्रयोग है कि प्रयोग के आधार पर सामान्य निष्कर्ष निकालना कठिन है। अस्तु, मध्ययुग में हमको सामान्यतः निम्नलिखित मुख्य-मुख्य साहित्य-रूप मिलते हैं—

- | | |
|---------------------|--------------|
| (क) रासा | (ख) उपाख्यान |
| (ग) बात | (घ) कथा |
| (ङ) चरित (चरित्रवा) | (च) कहानी |
| (ज) मंगल | |

इनके अनिश्चित शृङ्खली कवियों की कहानियों का नाम केवल नायिका का नाम पर है वाक्य-रूप नाम का संग नहीं है जैसे 'अनुपात' इत्यादि धार्मिक। उक्त काव्य-रूपों में 'रासो' और 'बात' (जैसे बारा-बादल की बात चन्द्रकुंवर की बात धार्मिक) तो राजस्थानी हिन्दी के हैं 'मंगल' वा सम्बन्ध किसी देवी के विवाह से है। यद्यपि 'चरित' 'उपाख्यान' 'कथा' और 'कहानी'।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है 'चरित' 'उपाख्यान' 'कथा' और 'कहानी' ये चारों रूप परम्परा में चल आ रहे हैं। इनमें से 'कथा' का शिथिल प्रयोग वाक्यान्त के अन्त से ही 'वाक्यिक कहानियाँ' या सामान्य कहानियाँ अर्थ में होत लगी वा मध्ययुग में 'कथा' शब्द का प्रयोग पुराणों धार्मिक की कथाओं के लिए प्रायः होता था साथ ही नहीं-

कहीं नायिकेतर साहित्य के लिए भी इसका प्रयोग है। देखिए 'चतुर्मुख' या 'त्रिमुख' की कथा' 'भृंगवती की कथा' 'सत्यवती की कथा' 'छवीवी भटिवारी की कथा' 'मकरध्वज की कथा' 'सिंहासनवती की कथा' आदि। 'चरित' का अर्थ-रूप मस्तूल की 'मास्थायिका' और ध्वज के 'चरित' का हो रूप है। यह नायक-नायिका के आश्रय के सिद्धा प्रबन्ध का। मध्ययुग में इसका कथानक के रूप में इतिहास प्रसिद्ध अरिक्त या कथानाप्रसृत महापुरुष का जीवन ही धारण करता था। जैसे रामचरित, भुगमाचरित, 'प्रबचरित' 'पद्मिनी चरित' 'ऊषा चरित' आदि। 'उत्तममान नायिक कहानियाँ' की जो प्रबन्धकाव्य के रूप में लिखी जाती रही हैं जैसे 'माधवानन्दारगतम्' 'नायिकतोपाख्यान' (सुखमिथ कृत) 'महाजनोपाख्यान' (भास्कर कृत) आदि। 'कहानी' उस युग का मौखिक कथा-रूप प्रतीत होता है।

तत्कालीन साहित्यिकों के प्रमाण पर भी उस समय 'चरित' कहानी' और 'उत्तमान' ही मुख्य कथा' रूप थे। सूखी कवियों ने अपनी कथाओं को 'मोक कहानी' और 'प्रेम कहानी' कहा है —

कोई न रहा बग रही कहानी। (पद्यावत)

आनहि आनक कहै कहानी। (चित्रावती)

प्रेम की कहानि साह बिठ गहेऊ। (पद्यावत)

॥ हौं कहानी प्रेम की जेहि निसि बाप बिहाय। (चित्रावती)

जो महु पड़ कहानी हनु संबरे दुख सोम। (पद्यावत)

किमकत सोमल लोक-कहानी। (माधवानन्द कामकम्पना)

हम-जवाहिर प्रेम-कहानी। (सुमुख पुजेबा)

इसका काव्यरूप तो 'मसनवी' है। परन्तु इसकी परम्परा 'प्रेम' तथा 'मोक' से सम्बन्ध रखती है। इसके सम्बन्ध में इस बात पर जोर दिया जा सकता है कि बिन्सी प्रभाव के कारण पूर्वी हिन्दी में जो मौखिक प्रेम-कहानियाँ लिखी गईं उन्होंने जपता के मन पर बहुत काम तक छात्रण किया और कथा-साहित्य के प्रति रुचि को बुद्धिमती बनाये रखा। कुछ विद्वान् तो यहाँ तक मानते हैं कि 'ध्यान दे कर देखने से धारकल के उपन्यासों की परम्परा इन प्रेमकाव्यक कवियों के पक्षों से ही धारम्भ होती दिखाई देती है। उन्हीं को इनका प्राचीनतम रूप सम्मत्ता चाहिए। इन कथाओं की रूपरेखा प्रबलनका उपन्यासों जैसी है। यदि आध्यात्मिकता का पुट न होता तो इन्हें हम सफ-भाऊ 'रोमांस काव्य' कह सकते। हिन्दी-उपन्यास की परम्परा प्राचीन-कथा-साहित्य या मध्ययुगीन-कथा-साहित्य से उस सघन धारम्भ होती जाती जा सकती की जब उपन्यास अपना सीधा विकास होता या कम से कम उपन्यास का अधिकांश उची मामरी से निर्मित होता। मध्ययुगीन परम्परा लोकजीवन का प्रतिबिम्ब होने के कारण वास्त

१. डॉ. हरिकृष्ण श्रीवास्तव भारतीय प्रेमकथन काव्य, पृ. ४४३

२. श्री शिवनन्दन श्रीवास्तव : हिन्दी उपन्यास पृ. १८

जिसे बिना के समीप मानी जा सकती है। परन्तु इसमें प्रथम तो काव्यरस सदा प्रतिष्ठित है, दूसरे इस कथानुसार से बाहर की प्रचुर सामग्री भरी पड़ी है। तीसरे, योजनापूर्वक रहस्यवादी कथन है, चौथे इसमें विश्व धर्म का चित्र है वह उस समय का पूरा प्रतिनिधित्व नहीं करता पाँचवें इसमें प्रबन्ध-वैविध्य है। अधिकतर विद्वान् इस परम्परा को सरसी-साहित्य (प्रसिद्ध लेख) की सन्तान मानते हैं। कुछ भारतीय नहीं। 'मधुसायनी' की कहानी को लेकर सुसज्जमान मन्थन और काव्यरस बहुमुखी भाषा में जो कथानक बनाये हैं उनके अन्तर को भी अजरालास ने दो संस्कारों का प्रभाव माना है। 'एक ने अलख लेखा थाकि की परम्परा के अनुसार परिया जिनमें द्वारा वर्णन सहित प्रेमियों को उठा कर प्रेमिका के कुछ पहुँचाना और फिर लौटा ले जाना समुद्र में उड़ाव देना टापू पर देव जिन से किसी सुन्दरी की रक्षा करना थाकि निवा है—दूसरे ने स्वयं की देवी देवता थाकि को ही लेकर बटनाएँ उड़ाई हैं। यदि उपन्यास की परम्परा मध्ययुगीन प्रेमकहानियों से मानी जा सकती है तो 'अलख लेखा' के किस्से से भी मानी जा सकती है। और 'बहुत्कथा' से क्यों नहीं मानी जा सकती। निम्नरूप इतना ही उचित है कि जो उपयोग 'बहुत्कथा' और 'बाठक—कथाओं' का था या जो मध्ययुग में प्रेमकहानियों का था वही भारतीयक किन्हीं में उपन्यास का या अर्थात् कथा-साहित्य अपने मुख कम में पाठक की कौतूहल-वृत्ति को तृप्त करना है।

'उपन्यास' और 'प्रम कहानी' की तुलना करते पर इनका अन्तर अधिक स्पष्ट हो जाता है। एक का सामान्य यथ है, दूसरे का यथ। एक की कथा सामाजिक होती है दूसरे की सम्मान-विधित। एक में कथावस्तु का वैज्ञानिक विभाजन होता है दूसरे में विभाजन नहीं होता मने दीर्घक से कर मया वर्णन प्रारम्भ कर दिया जाता है। एक में जीवन का वास्तविक चित्र होता है दूसरे में अतिरिक्त। उपन्यास की कथा में अल्प तक विज्ञान का निर्वाह होता है। प्रम कहानी का अल्प कहिन ही निरिक्त होता है। उपन्यास की चटनामा पर परिस्थितियों का ध्यान होता है प्रेमकहानी में चटनाएँ संयोग के अधीन हैं। उपन्यास का अर्थ अति-विशेष है, प्रेमकहानी में पात्र तो सर्वत्र या प्रतिनिधि हैं न उनका स्पष्ट रूप है न विचार। उपन्यास में वर्णन को उतना स्वातन्त्र्य नहीं मिलता जितना कि प्रेमकहानी में। प्रेम कहानी काव्य-कला से भी रमणीय होती चाहिए, उपन्यास अलंकार-योजना और अन्य योजना से विरहा नहीं रखता। देश-जन का साक्षात्कार उपन्यास का महत्वपूर्ण धर्म है, परन्तु प्रेमकहानी में सब कुछ पदानुवर्तिक होता है। वस्तुतः मलमली की समस्त कथरेखा निश्चित है, मनीष करि उसमें मन्त्र-मन्त्र काव्यिक सम्पादन कर सकता है। इसके विपरीत उपन्यास वैविध्य के बिना बासी नहोपायेगा। प्रेम-कहानी की हीली परम्परायुक्त है—पुत्र का बचन, फिर रमूय का वर्णन फिर साहचर्य का चित्र थाकि—परन्तु उपन्यास में इस

प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं है। ध्यानपूर्वक देखा जाय तो प्रेम-कहानी की जो-जो विशेषताएँ हैं उपन्यास-कला की दृष्टि से वे होय हैं। समानता केवल इतनी है कि दोनों में तत्कालीन जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत होता है। परन्तु उपन्यास में यह प्रतीक है प्रेम-कहानी में संयोग-व्यय। अतः मध्ययुगीन प्रेम-कहानी आधुनिक उपन्यास की बननी नहीं मानी जा सकती।

योस्वामी तुमसीदास से मध्ययुगीन कथा-साहित्य के हमको कुछ और संकेत मिलते हैं —

(क) कीन्हे प्राइत-जन बुन-गाना ।

मिर बुनि मिर लागि पकिताना ॥

(ख) रामचरित जे सुनत मयाही ।

रस-विषेय जाना तिनहु नाहीं ॥

(ग) कसप-कसप हरिचरित मुहाये ।

जाति घनेक मुनीसन पाये ॥

(घ) साखी सबही बोहरा कहि कहिनी उपखान ।

भगति निरूपहि मयत कनि निरुहि देव-पुन । ॥

उनके सामने सगुण भक्ति से भिन्न धर्म का प्रचार करने वाले दो सम्प्रदाय के एक को 'साखी-मबही-बोहरा' की रचना करते थे कबीर धादि निर्मूल भक्त हुए, या कहिनी-उपखान' लिखते थे जाबरी धादि सुफी कवि। निर्मूल भक्तों का सम्बन्ध किसी कथा-रूप से नहीं है। प्रसंगागुक्त 'कहिनी-उपखान' लिखने वाले प्रेम-कहानीकारों पर यहाँ कुछ और विचार करें। तुमसी के मत में 'कहिनी उपखान' की चरित-काव्य है। सामान्य कथा-रूप 'चरित' ही या उसके दो भेद थे—'हरिचरित' ('रामचरित') एवं 'प्राइत-जन-बुन-गाना', पहिले को 'सगुण भक्ति के प्रबन्ध-काव्य' कह सकते हैं, और दूसरे को 'लौकिक प्रेम की कहानियाँ'। वह ऊपर दिखाया जा चुका है कि प्रेम-कहानियों को 'कथा' 'चरित' तथा 'आख्यान' भी कहा गया है। परम्परा की रक्षा करते हुए या तुमसी धादि के प्रयत्न से 'चरित' का स्तर कुछ ऊँचा ही बना रहा और एक को छोड़ कर दो प्रेम-कहानियाँ चरित नाम न पा सकीं। 'कहिनी-उपखान' में से 'कहिनी' तो प्रेम-कहानी है, 'उपखान' के विषय में कल्पना से काम लिया जाए तो ऐसा सपता है कि 'कहिनी' नाट्यनिक-लौकिक को 'उपखान' प्रामाणिक-पौराणिक 'पद्यावली' की कथा 'कहिनी' है 'ऊँचा' 'बसमन्ती' 'उर्बशी' धादि की 'उपखान'। तुमसी इन दोनों को लोक-साहित्य और लौकिक रस से पूरा मान कर हेम बतलाते हैं।

मध्ययुगीन 'चरित'-काव्य और 'उपन्यास' की तुलना पर यदि 'चरित' को

१ कथा लागि पकित नर पाया । (पद्यावली)

२ कनि बुद्धत लिखित 'बसमन्ती' ।

३ निरुप ५६३ प्रेम के बारा । (पद्यावली)

तुमसी के व्यापक धर्म में न लेकर उक्त युग में प्रतिष्ठित संकीर्ण धर्म में तो मुझ परस्तर यह है कि 'चरित' का माध्यम पद्य है यद्यपि 'चरित' में प्रबन्धकाव्य के गुण हैं कथा-माहिर के नहीं और 'चरित' का उद्देश्य धनुकरणीय चरित्र का विमर्श है सामान्य जीवन का प्रतिफलन नहीं। समकालीन यथार्थ जीवन की दृष्टि से तो 'चरित' की अपेक्षा कहानी 'उपन्यास' के अधिक समीप है। 'रामचरितमानस' तो महाकाव्य या पुराणकाव्य है, 'सुखसा चरित' लघुकाव्य और 'बीरसिंह देवचरित' 'हरिचरित' धार्मिक प्रबन्ध काव्य हैं। इसी प्रकार 'प्रकाश' 'विमला' धर्म वाले काव्य भी प्रबन्ध काव्य हैं। जो परस्तर 'काव्य' और 'उपन्यास' के विषय में सामान्यतः स्वीकृत किया जाता है वह इन प्रसंग में ज्यों का त्यों लागू होता है।

अस्तु, पद्यकाव्य के अन्तिम दिनों से काड़ी बोसी के प्रथम व्यवहार तक के काल में बिना कथात्मक काव्यों की रचना हुई है उनके सिद्ध सिद्ध रूप हैं और कतिपय रूप 'उपन्यास' से व्यभिचरित साम्य भी रखते हैं छिन्न भी उनका वैषम्य अधिक है। अतः साहित्यिक दृष्टि से उपन्यास की उनमें से किसी भी रूप के साथ परम्परा नहीं जोड़ी जा सकती।

काड़ी बोसी की उपन्यास-युर्ब कहानियाँ

काड़ी बोसी गद्य का साहित्य में प्रयोग तो मुझ बारहाह पंखर के धामन नाम से ही प्रारम्भ हो गया था परन्तु इसका सिलसिलेवार साहित्य तन् १८० के आसपास से मिलता है, जब कौन् विनियम काव्य (सन् १८०० से १८१४ ई तक) में हिन्दी और उर्दू की व्यवस्था हो गई। मध्यम नाम बसाहिबों तक भाषा-विषयक संदर्भ जलता रहा। अन्त में हिन्दी नई बात में इसी सन् १८०३ ई०^१। काड़ी बोसी के इस ७० वर्ष के इतिहास में कथा-साहित्य का महत्त्व कम नहीं रहा परन्तु वे कथाएँ या कहानियाँ 'हिन्दुस्तानी' में मिली नहीं हैं इनमें से अधिकतर का उद्देश्य धर्मकों को इसी भाषा का परिचय कराना था इनमें भाषा के धार्मिक कोई नूतनता नहीं मिलती। ईसाग्रन्थान्ना कृत 'उद्देश्य चरित या रानी बेतली की कहानी' (सन् १८० के मध्यम) सन्तुलनपूर्वक 'विद्वान्महत्ती' (१८१२) 'बैतालपञ्चमी' 'आयोन' 'सचनविमल' 'कथावली या नागिकेतोपाख्या' (१८०३) के धार्मिक नाट्यकहानी (१८२८) 'विमला साहेबीनवार' 'आर दरवेश' 'हातिमगई' 'हुनबकावसी' 'आदि

१ ८ उपन्यास युग का साहित्य-काल काव्य' से उत्पन्न।

(हिन्दी-साहित्य का विकास पृ ४१८)

२ का विनियम काव्य के विषय में डा. लक्ष्मीनारायण काव्य के ४४ पृष्ठ पर बात में टिप्पणी दी है — "सन् १८०६ का गद्य नाम उर्दू (गिराजदत्त) से (अभिज्ञान) का कविनाम भी मिला। विमला साहेबीनवार के बाद आकर हिन्दुस्तानी में हिन्दी मुद्रा का प्रयोग था। इसमें (मध्यम) विनियम का भाषा-विषय की बात बताता है। कोई विनियम काव्य पृ ४१

३ श्री शिवनारायण श्रीवास्तव हिन्दी उपन्यास पृ १४

उस युग की रचनाएँ हैं। इन रचनाओं के सम्बन्ध में पहिली बात तो यह है कि ये जिस लड़ी बोली में हैं उसको 'साहित्यिक' तो कह ही नहीं सकते हिन्दी कहना भी निश्चिन्त नहीं है—शुभ की ने सम्बुलाम तक की इन कहानियों की भाषा को हिन्दुस्तानी माना है। यद्यपि बजरत्नबाह इनसे सहमत नहीं है। दूसरी बात यह है कि इनका सामान्य नाम 'कहानी' या 'किस्सा' था। तीसरी बात यह है कि न तो ये मौलिक हैं और न प्रथम बार रचित सम्बुलाम ने जबभाषा में अनुवाद किया है। सत्यमित्र ने संस्करण की कथा ली है, 'किस्से' उर्दू से भाय हैं। इच्छाप्रभा की रानी बत्तरी की कहानी को मौलिक माना जाता है। परन्तु वह मध्ययुगाम प्रेमकहानी मसनवी परम्परा में है जिसमें नाम-नाम के पतिरिक्त कोई नवीनता नहीं होती। धन्नु, भारतेन्दु से पूर्व हिन्दी में जो कथाएँ लिखी गईं उनसे नवीन युग की सूचना नहीं मिलती उनका स्तर सनोप बनक नहीं माना मिश्रित है। प्रयत्न हिन्दी-साहित्य से धनमित्र लोगों का मनोरञ्जन और त्रास-ज्ञान है। महत्त्व सामयिक है। 'रानी कैतकी की कहानी' के समकाल ही राजा विजयनाथकृत 'राजा मोर का सपना' को समझना चाहिए। छोट करनी हो तो इन्हीं से कहानियों में साहित्यिकता मिल सकेगी। वरन्तु ये भी यद्यप्य की ओर न झुकती हुई निकट भूत का हो संकेत देती हैं।

भारतेन्दु के उद्यम से हिन्दी-साहित्य ने एक निश्चित मार्ग और स्तर ग्रहण कर लिया। भारतेन्दु का जन्म काशी में हुआ था। परन्तु उनके पूरब सेठ प्रमीलचन्द्र बंगाल के मराठ के उच्च पञ्चाधिकारी थे। उस सरकार से या बयम्भाष की की यात्रा के फलस्वरूप १५ वर्ष की आयु से भारतेन्दु का बंगाल साहित्य विशेषतः नाटक और उपन्यास से अनिष्ट परिचय हो गया। सन् १८६८ में उन्होंने बंगाल के नाटक 'विद्यासुन्दर' का अनुवाद किया और 'कवि-वचन-मुखा' नामक पत्रिका निकाली। वस्तुतः भारतेन्दु की संस्कारों से साहित्यिक दृष्टि और वैतुल्य की प्रतिमा प्राप्त हुई थी। उन्होंने देश और काल की परिस्थिति को ध्यान में ही समझ लिया और भाषा-द्वारा राष्ट्र एक मनाब की सेवा का प्रयत्न किया। उनकी विद्यप छाप लड़ी बोली गद्य पर है। गद्य के मिश्र-मिश्र वर्गों में से नाटक और निबन्ध के लिए उन्होंने समिनय का वातावरण चुनाया और पत्रिकाएँ निकाली। आलोचना और कथा के क्षेत्र में भी उनका प्रयास स्तुत्य है। भारतेन्दु ने बंगला और मराठी से उपन्यासों के अनुवाद कराये। संस्कृत में कादम्बरी बंगला से 'हुपेंसनमिनी' और मराठी से 'चन्द्रप्रभा-मृगप्रकाश' हिन्दी में उपन्यास के प्रथम अनुवाद हैं। 'चन्द्रप्रभा-मृगप्रकाश' का अनुवाद श्रीमती मस्तिका देवी 'चन्द्रिका' ने किया था और भारतेन्दु ने स्वयं उसे सुद्ध किया था। इस प्रकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समान किसी कहानी का अनुवाद न कर के भारतेन्दु की ने सामाजिक और साहित्यिक उपन्यासों को हिन्दी में ज्ञान का सफल प्रयत्न किया।

भारतेन्दु की ने अनुवाद ही नहीं कराये स्वयं भी कथा-साहित्य की रचना की।

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ४२१

२ हिन्दी-उपन्यास-साहित्य पृ० १२१

जनका 'मदावसोपाख्यान' सन् १८७३ ई० के आसपास लिखा गया था यह पौराणिक परम्परा पर है परन्तु इसमें किसी-कहानी के सस्तेपन की जगह भावी सामाजिक उपन्यास के लिए उज्ज्वल स्तर तैयार हो गया है। नया-आश्चर्य की उनकी घमर रचना तो एक कहानी 'कुछ आपसीती कुछ जगसीती' है जिसका 'कवि-वचनमुधा' में वे केवल एक 'खेल' लिख पाये थे यदि यह रचना पूर्ण हो गई होती तो भारतीय-भारमक उपन्यास के क्षेत्र में प्रथम एवं समुत्कर्षीय बन जाती। यह आत्मकथा शैली पर लिखित उपन्यास है। इस कहानी के 'प्रथम खेल' में एक घट घोर ४ घट के परिच्छेद है। इसको आत्म-कथा नहीं कह सकते मने ही इसके कुछ मकेत (जन्म-निधि आदि) मेखक के जीवन पर झरते हैं। उपन्यास-कथा की दृष्टि से इस कहानी की कई विशेषताएं हैं। प्रथम तो यह कथनात्मक शैली में न होकर आत्मकथात्मक शैली पर है। ध्याने बल पर किसीहीनाम गोस्वामी ने इसी शैली पर कतिपय उपन्यास (उदाहरणार्थ 'श्री श्री का साधु ब्रून') लिखे हैं। दूसरे इसमें ब्रह्म-विषय का हिन्दी में प्रथम प्रयास है घोर कहा ही सफल। तीसरे इसमें सामाजिक जीवन का सबसे महत्वपूर्ण विषय (रहित मुक्क का कुलामयी वातावरण) प्रस्तुत किया गया है श्रीनिवास बाबू का 'परीक्षा कुल' भी इसी आचार-धिता पर निर्मित हुआ है। चौथे इसमें पात्रानुक्रम माया है जो श्रीमन्नन्द की कथा का एक विषय गुण है। पात्रों इसमें अतीकृत-परिचित को कोई स्थान नहीं मिलता मानवीय-स्वाभाविक ही वर्ण है। छठे इसमें मध्यवर्गीय कौतुक को ध्यात नहीं किया गया जिज्ञासा जगाई गई है। सातवें उस युग की प्रथा के समान इसके 'प्रेम' का प्रारम्भ मुक्त-स्वतः से होता है। इन युगों के कारण हम इस 'कहानी' में आधुनिक उपन्यास की सभी विशेषताएं पाते हैं। यदि जीवन के प्रति उत्साह जवा कर पाठक को वास्तविक जीवन के निकटतर लाना ध्या के उपन्यास का लक्ष्य है तो वह भारतेन्दु की इस 'कहानी' में पूरी तरह दिखाई पड़ता है। इन समय तक समाज-विशेषों की बरन्धन बंधमाया में प्रारम्भ हो गई थी टेक्निकल ठाकुर के 'धामाभेर बरेर बुलाम' का दूसरा संस्करण (सन् १८७०) निरत बुद्धा का टेक्निकल ठाकुर पुनिवर का 'कनिकागार नूरोचुरि' (सन् १८६६) प्रकाशित हो गया था। लक्ष्मण इन्हीं दिनों 'धामाभेर बरेर बुलाम' का सबसे छोटा संस्करण (सन् १८६२-६३) तैयारनाम मित्र ने किया और श्रीनिवास बाबू ने 'परीक्षा-मुक्त' (सन् १८८२) नामक मौलिक उपन्यास

१. बंगला में आत्मकथात्मक शैली पर लिखा हुआ प्रथम उपन्यास मधुसूदन चन्द्राणी का 'मधुसूदन चन्द्राणी' (सन् १८६१) है जिसमें अधुनिक उपन्यास की दृष्टि से दो मुख्य कमियां हैं—एक का मायका और प्रेम की कथा। एक कहानी कुछ आपसीती कुछ जगसीती इन दोनों से गुल है इसे मध्यवर्गीय जीवन के साथ मशीनोड लगने, इसमें कथारंगी बरन्धन-बरन्धन के बीच है। (बंगला रचना के लिए देखिए डॉ. लुमार् सेन इस संस्था सदस्यरे रजिस्ट्रार सिटीय छपर १, १९)।

लिखा। सामाजिक जीवन को चित्रित करने की परम्परा तत्कालीन नाटकों में भी दिखाई देती है।

व्यमाया के प्रारम्भिक उपन्यास

हिन्दी के समान बंगला में भी प्राधुनिक कथा-साहित्य का प्रारम्भ मनोरंजनार्थ प्रयुक्त कहानियों से ही होता है। व्यमायाप भी त्रिपुराधर सेन के अनुसार सन् १८०१ से १८२१ तक जो ७ पुस्तकें प्रकाशित हुईं उनमें ३ कथा-सम्बन्धी हैं—मृत्यु-पञ्चम विद्यालंकार की 'बलीसहिहासन' (सन् १८०२) मोलोकनाथ शर्मा की 'हिमोपदेश' (सन् १८०२) और बन्धीचरण मुंशी की 'छोटा इतिहास' (सन् १८२१)। जिस प्रकार के 'किस्साकों का उत्सव' डा० सक्मोनायर बार्नर्य ने किया है उस प्रकार के 'कथक' पूर्वी भारत में समाज के विविध घंम हैं—उपमान नै कथा-प्रिय चार जातियों में 'कथक' का भी नाम मिलाया है। इसी कथा-रस ने प्राधुनिक साहित्य का प्रारम्भ किया। अस्तु पाश्चात्य संस्कृति का बंगाली समाज पर प्रभाव बहुत दिनों तक कथा का विषय बना। इस वर्ग की खण्ड मौलिक रचना प्रमथनाथ शर्मा (महानाथ चरण बन्धोपाध्याय) का 'नवबाहुविज्ञास' (सन् १८२१)^१ है। महानाथ चरण (१७८७-१८४८ ई.) बड़े प्रतिभाशाली और प्रभावशाली व्यक्ति थे वे 'समाचार-चन्द्रिका' और 'संवाद-वीथुरी' के सम्पादक तथा घरेलू-समा के संभो थे। महानाथ चरण ने 'नवबाहु विज्ञास' में ११वीं शती के प्रथम चरण के बाहुओं का बड़ा व्यापक चित्रण किया है। इस रचना को बड़ी लोकप्रियता मिली और इसका अनुकरण भी किया गया। वास्तविक जीवन के चित्रण का व्यमाया में यह प्रथम प्रयत्न है, कुमारों से प्रसन्न करने वाले घनपतियों के पुत्रों का इसमें बिलासी जीवन अंकित किया गया है। इसी परम्परा का विकास 'भातालेख-बरेर बुलास' में हुआ है।

'समाचार-चन्द्रिका' (फरवरी १८२१) में प्रकाशित 'बाबुर उपाख्यान' नामक हास्य एन-यून सामाजिक चित्र 'नवबाहुविज्ञास' का पूर्वगामी है और कुछ लोग इसे भी 'महानाथचरण की ही रचना मानते हैं'।^२ इन दोनों रचनाओं की कला का विकास 'भातालेख-बरेर बुलास' (सन् १८२७) में हुआ। इसके लेखक डेक्कन अकुर (प्यालीबाद

१ कनिरा शपेटेर कोल्का ठाविल १० १०

२ स्टोर्ट रिस्त्रिक्शन कोलेज पृ २

३ डा. कल्प कुमार बाग्य मुषा २ रिस्त्रिक्शन ठानी बाँक दि तामक पत्रक मन्त्रक मन्त्रि रिस्त्रिक्शन पृ १

४ घनपत बाँक चरण मुषा १ मुषिक्शन कहीं नीम पुनि गावा १

कथन देखावर्हि कथा बलागो १ बर बर बालक कहीं कथली ११

(पियावली कथक पत्रक

५ इस वर्ग में प्रकाशन सिद्धि भी त्रिपुराधर सेन के अनुसार ३१ गव है।

६ भातालेख बरेर बुलास मुषिक्शन १० २

मित्र) के। 'धन्नालेर घरेर कुमान' ही बंनभाषा का प्रथम उपन्यास माना जाता है। लेखक ने धरोही भूमिका में अपनी रचना को 'प्रथम मौलिक उपन्यास' कहा है। इस का सम्पादित्व कुमार के पुर्ण शिक्षा के बीच हिन्दू-समाज की बड़ा और धनपतियों का सुखमयी बातावरण^१ है। नववाङ्मितास में कई स्त्रियों पर प्रसन्नता या गई है और बातावरण साहित्यिक नहीं रहा। इसके विपरीत 'धन्नालेर घरेर कुमान' में सर्वत्र चिप्टता का ध्यान रखा गया है। पुस्तक में ३ अध्याय हैं जिनमें नामक मठिनाम की शिक्षा से बाराणसी-नग्न तक की कथा की गई है। बाबुराम बाबू के एक पुत्र और दो कन्याएं भी पुत्र मठिनाम बहुत लाडिला वा उसे बंनभा संस्कृत फारसी और धरोही की शिक्षा दी गई परन्तु वह बंन प्यार और कुमन में बिगड़ता ही बना गया। इन उपन्यास में कसकटा के समाज का वर्णन है उसी बरिज एवं समस्त बातावरण मयार्ब जीवन का है। लेखक का उद्देश्य मुद्राहो को दूर करके समाज को सुधारना है।

'नववाङ्मितास' और 'धन्नालेर घरेर कुमान' के बीच में उत्प्रेक्षणीय पुस्तकें 'भूमीवितास' (१८२३ ई.) 'आरम्भ उपन्यास' (१८३० ई.) 'जबबीबीवितास' (सन् १८३३) और मनोहर उपन्यास (१८३३ ई०) आदि हैं। 'धन्नालेर घरेर कुमान' (१८३८ ई०) और 'बुबेसगमिनी' (सन् १८६३) के बीच में लिखित इसी प्रकार की कई वर्णन कथा-कृतियाँ प्राप्त हैं इनमें से अधिकतर ही मध्ययुगीन कथों की या संस्कृत कर्तु आदि से प्रभावित हैं। येन में ध्यान देने योग्य धूरेन मुखोपाध्याय की 'ऐतिहासिक उपन्यास' (प्रथम विस्व १८३७ दूसरी विस्व १८६२ ई.) और रामकानि रामसरन मट्टाचार्य की 'मद्भुत उपन्यास' (सन् १८६१) हैं। मूदेन मुखोपाध्याय की रचनाओं से बंनभा में ऐतिहासिक उपन्यास वा भूतपाठ हुआ और रामकानि रामसरन मट्टाचार्य की कृति से चट्टारमक उपन्यास का ये दोनों लेखक अपने-अपने क्षेत्र में प्रथम मौलिक उपन्यासकार हैं। डा. मुकुमार सेन के अनुसार 'मद्भुत उपन्यास' से ही 'रोमांटिक वास्तविकता' का आरम्भ होता है। परन्तु, मध्ययुगीन प्रवृत्ति का प्रचलन रहने पर भी बंकिमचन्द्र के समय तक बंनभा में साहित्यिक उपन्यास की तीन मुख्य बाराएं विकसित होने लगी थी—'नामात्रिक' 'ऐतिहासिक' एवं 'मद्भुत'। हिन्दी में भी इसी प्रकार की बाराएं वृष्टिगत होती हैं किछोहीलात बोल्बानी ने इनको क्रमशः 'नामात्रिक' 'ऐतिहासिक' तथा 'चट्टारमक' नाम दिये हैं^२।

बंनभा के प्रथम साहित्यिक उपन्यासकार, जिन्होंने उपन्यास-क्षेत्र की एक-एक करके १४ रत्नों में विभूषित किया बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय (सन् १८३८ से १८९४ ई०) थे। आरम्भ में वे धरोही में कहाँतियाँ लिखा करने के ही ऐद्वैतचरण पाक ए

१ विद्वत् निवेदन क मित्र ३० १ १९६

२ डा. बंकिम चन्द्र राय गुप्त : २ विविधित छठी भा. ३ दिनांक बरत बनेस्त भा. ३ बंकिम चन्द्र १० १-१२

३ बाल्मा लवि-वेद वंजित हिन्दी सभर ३ १९६

४ देवेने १ १ १

यंग हिन्दू' उनकी पहिली और राजमोहन बाईफ उनकी अंतिम रचना है। इनके बाद उन्होंने बंगला में लिखना प्रारम्भ किया और अंग्रेजी के द्वितीय-तृतीय श्रेणी के बंगाली लेखक होने के स्थान पर वे बंगला के सबसे बड़े उपन्यासकार बन गये। सन् १८९१ से १८८७ तक बंकिम के १४ उपन्यास प्रकाशित हुए, इनमें से अंतिम दो को छोड़कर शेष बीजिवासराय के समय तक प्रकाशित हो गये थे। प्रकाशन-काल के अनुसार इन उपन्यासों का क्रम इस प्रकार है —

दुर्योधनचिन्ती	(१८९१ ई.)	बन्धुसागर	(१८७५ ई.)
कपाम कुण्डला	(१८९१ ई.)	रजनी	(१८७७ ई.)
मुवासिनी	(१८९२ ई.)	हृत्पकान्तेर बिल	(१८७८ ई.)
विप्लव	(१८७१ ई.)	राजसिंह	(१८८२ ई.)
इन्दिरा	(१८७१ ई.)	धानन्द मठ	(१८८२ ई.)
मुपलापुंरीय	(१८७३ ई.)	देवी जीधुरानी	(१८८४ ई.)
राधारानी	(१८७५ ई.)	सीताराम	(१८८७ ई.)

अंग्रेजी में 'कपामकुण्डला' का अनुवाद सन् १८७९-७७ में दुर्योधनचिन्ती का १८८० में और विप्लव का १८८४ में हुआ। हिन्दी में १८७१ में 'दुर्योधनचिन्ती' का और १८८० में 'मुवासिनी' एवं 'मुपलापुंरीय' का अनुवाद हुआ। देवकीनन्दन खत्री और किशोरीनाथ गोस्वामी के लेखन से पूर्व बंकिम की कुछ रचनाएँ अवश्य बंगाल से बाहर भी लोकप्रिय हो गई थी। दुर्योधनचिन्ती का अनुवाद स्वयं भारतेन्दु के अनुरोप तथा उत्साह से डा० मन्नाकर सिंह ने और 'राधारानी' का श्रीमती मल्लिका देवी ने सन् १८८२ ई.) किया था 'राजसिंह' का अनुवाद पूरा हो गया था प्रथम परिच्छेद स्वयं मन्नीन लिखा थावे कुछ छुड़ किया था—परन्तु प्रथम परिच्छेद ही लिखकर चल बसे। परन्तु, भारतेन्दु के अन्तिम दिनों में बंगला उपन्यासों के अनुवाद का कार्य प्रारम्भ हो गया था और अंग्रेजी तथा बंगला के अनुकूल पर मन्नीन द्वय के उपन्यासों की ओर हिन्दी-अवध की रुचि होने लगी थी।

बंकिम के समकालीन एवं परवर्ती साहित्यिकों में उपन्यास-लेखन का विशेष उत्साह या अधिकतर उपन्यासों के हिन्दी में अनुवाद भी हो पाया करते थे। बंकिम बाद के समकालीन तारकनाथ वर्मापुष्पाय (१८४१-८९) ने 'स्वर्धसता' (१८७१) नामक उपन्यास लिखा जिसका अनुवाद भारतेन्दु जी ने राधाकृष्णराय से कराया। इन उपन्यास में समाज का विश्व बंकिम के चिन्तों की अपेक्षा अधिक अनुमूल एवं सजीव

- १ डा० बजरंगकुमार दास गुप्त : २ विद्विमत स्वामी बाबू दि नारायण दास लोकेत बाबू बंकिम-कम्प, पृ० ११
- २ बरी, पृ० १७०
- ३ मन्नाकर सिंह द्वारा स्व० राधाकृष्णराय से कराया (हिन्दी कथासंग्रह, पृ० १२८)
- ४ मन्नाकर सिंह : हिन्दी-उपन्यास-साहित्य, पृ० ११६
- ५ मन्नाकर सिंह : हिन्दी-उपन्यास-साहित्य, पृ० ११६

है। संजीवचन्द्र बट्टोपाध्याय का 'माधवीमता' पूर्वचन्द्र बट्टोपाध्याय का 'संघसहचरी' रमेशचन्द्र शर्मा का 'माधवी कंकण' स्वर्णकुमारी का 'बीपनिर्वाण' प्राणि उपन्यास हिन्दी में अनुदित होकर बड़े लोकप्रिय हो गये थे। भारतेन्दु ने उपन्यास-क्षेत्र में अनुवाद और भौतिक रचनाओं का जो सुवर्णमान किया वह उत्तरोत्तर विकसित होता रहा। फलस्वरूप हिन्दी में कई अच्छे उपन्यासों की रचना हुई।

अस्तु यह विचारणीय है कि हिन्दी का प्रथम भौतिक उपन्यास कौनसा है ? इस प्रश्न का उत्तर धाने के पृष्ठों में दिया जाएगा।

हिन्दी का प्रथम उपन्यास

पण्डित अज्ञातम कुन्जोरी का परिचय देते हुए पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि 'माम्बरी' नाम का एक साप्ताहिक उपन्यास भी मध्यम् १९१४ में उन्होंने लिखा जिसकी बड़ी प्रशंसा हुई।^१ पण्डित अज्ञातम भारतेन्दु भुव के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे वे अष्ट व्याख्यामहाता और प्रतिष्ठित समाज-सुधारक थे। पंजाब में हिन्दी-भाषा और हिन्दू धर्म के लिए उनकी सेवाएं स्मरणीय हैं। परन्तु उनका उपन्यास प्राप्य नहीं था। पण्डित शुक्ल जी ने प्राप्ति कर कर यह स्वीकार किया है कि 'संघजीवन' का भौतिक उपन्यास पहले-पहल हिन्दी में सामाजिक-निराशा का 'परीक्षा-मुक' हो निकला था।^२ 'मपनी भाषा में यह न' नाम की पुस्तक होगी जिसका लेखन ने स्वयं जी 'परीक्षा' की प्रथमता और भौतिकता का दावा किया है।

पण्डित रामचन्द्र शुक्ल जब गद्य-साहित्य के 'द्वितीय उत्थान' का परिचय देने लगे तो उन मुख के श्रेष्ठ उपन्यासकारों को प्रमत्त-प्रमत्त उपन्यास के उद्भव का पथ उन्होंने दे दिया —

(i) पहले भौतिक उदयमान लेखक त्रिनके उपन्यासों की लक्ष्मणधारण में कम हुईं काशी में बाबू देवकीमण्डन धनी थे। वे वास्तव में बट्टा प्रमाण बयानत या किन्ने हैं त्रिनम जीवन के विविध पक्षा के विचित्रता की कोई प्रशंसा नहीं इनसे वे साहित्य-कोटि में नहीं धाने। (हिन्दी-साहित्य का इतिहास पृ. ४६६-४६६)

(ii) उपन्यासों का दौर लगा देने वाले दूसरे भौतिक उपन्यासकार पण्डित विद्योतीनाथ पोस्वामी हैं। उनकी रचनाएं साहित्य-कोटि में धानी हैं। साहित्य की दृष्टि से उन्हें हिन्दी का पहला उपन्यासकार कहना चाहिए। और योग ने भी भौतिक उपन्यास लिखने पर वे वास्तव में उपन्यासकार न थे। और जीवें लिप्यन्त-सिगरे के उपन्यास की ओर भी जा पड़ते थे। पर पोस्वामी जी वहीं पर बरके बैठ गए। एक भ्रम उन्होंने घड़ने लिए कुल लिया और उन्नी में रम गए। (हिन्दी-साहित्य का इतिहास पृ. ४६६, ४७०)

पुस्तक जी के इन कथना की नगणपूर्वक ग्रहण किया जाए तो निम्नलिखित

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास १. ४७६

२. वही, १. ४७६

निष्कर्ष निकल सकते हैं —

- (१) हिन्दी-उपन्यास के उदय में चार व्यक्तियों के नाम उल्लेखनीय हैं—भट्टाराम फुलसीरी श्रीनिवासदास देवकीनन्दन खत्री और किशोरीदास पोस्तामी ।
- (२) भट्टाराम की ने समान-सुधार की भावना से प्रेरित होकर 'भाष्यवती' नाम का उपन्यास लिखा जिसमें उनका विशेष दृष्टिकोण तो प्रबल है परन्तु कथा घासई की लेखनी से प्रेरित है इसलिए उसे सामयिक जीवन का 'वास्तविक' चित्र नहीं कह सकते अतएव 'भाष्यवती' 'अंग्रेजी इन का' (साप्ताहिक जिसमें मेरुचक विशेष दृष्टिकोण से सामयिक जीवन का वास्तविक चित्र प्रकट करता है) उपन्यास नहीं है ।
- (३) साप्ताहिक कथा की दृष्टि से 'परीक्षा-गुरु' प्रथम उपन्यास है, परन्तु न तो इसे बहु लोकप्रियता प्राप्त हुई थी उपन्यास का सम्मिश्रित प्रविकार है और न उसके लेखक उपन्यासकार-नाम के रूप में साहित्य में प्रसिद्ध होई है ।
- (४) देवकीनन्दन खत्री की उपन्यास-श्रेष्ठ में सबसे पहिले क्वालि प्राप्त हुई, और वे उपन्यासकार-नाम ही हैं, परन्तु उनके उपन्यासों का स्तर साहित्यिक स्तर से कुछ नीचा है ।
- (५) किशोरीदास पोस्तामी तक बाते-बाते उपर्युक्त कमियाँ दूर हो गई थीं, वे प्रथम नहीं हैं परन्तु उन पर आकर उपन्यास का पुर्ण विकास हो पाया है ।

मुसल की के इन कथनों का माने के बिहारीने बलिकम्बित हेर-हेर के सान धर्मे मगाबा । डा० श्रीकृष्णदास के मत में 'हिन्दी का प्रथम साहित्यिक उपन्यास देवकीनन्दन खत्री का 'चन्द्रकांठा' है जो १८२१ में प्रकाशित हुआ' । श्री शिवनारायणन श्रीवास्तव के अनुसार 'रानी केतकी की कहानी को हम प्रथम उपन्यास कह सकते हैं' ।^१ श्री बजरत्नदास ने भी समय-समय ऐसा ही मत प्रकट किया है । यहाँ केवल ठेठ हिन्दी में लिखे गये इनके एक उपन्यास से काम है जिसका नाम उवेमानुचरित का रानी केतकी की कहानी है^२ । डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी भारतेन्दु की प्रथम उपन्यासकार मानते हैं । द्विवेदी की के शब्दों में 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'पूर्वप्रकाश और चन्द्रप्रभा' नाम का सर्व प्रथम सामाजिक उपन्यास लिखा था ।'^३

'रानी केतकी की कहानी' न तो उपन्यास है और न साप्ताहिक कहानी । ऊपर दिखाया जा चुका है इस कहानी में भाषा के अतिरिक्त दोष सारी विशेषताएँ पक्कपुग की हैं । रानी पद्मावती और रानी केतकी की कहानियों में भाषा और आकार का ही मुख्य अन्तर है । ईशाचन्द्राणा के जीवन-काल में 'उपन्यास' नाम से तो लोग अपरिचित थे ही, बंगला तक में कथा-साहित्य मध्ययुगीन कहानियों के रूप में या उपन्यास के रूप

१. आधुनिक हिन्दी-साहित्य का विकास पृ० २०५

२. हिन्दी-उपन्यास पृ० ६६

३. हिन्दी-उपन्यास-साहित्य, पृ० १९९

४. हिन्दी-साहित्य पृ० ४१५

में नहीं। इसीलिए डा० हुजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि 'ये सब कहानियाँ उपन्यास नहीं हैं क्योंकि इनमें लेखकों का अपना कोई वैयक्तिक दृष्टिकोण नहीं है और उनकी बटनामों की योजना में किसी प्रकार वैयक्तिक मत के समर्पण का सम्भव नहीं है'।^१ श्रीवास्तव भी ने इस कहानी के विषय में प्रथमता की खर्षा जमाती हुई ही की है, उनके निष्कर्ष में बम नहीं है। इसीलिए भावे जमकर उन्होंने अपना मत बरत दिया 'हिन्दी का पहला मौलिक उपन्यास जाला भीमिनासवास का 'परीक्षा पुत्र' (१८८२ ई०)'^२ है। इस महीन मत के बीच उनकी पूर्वकथित रचना में भी ये कथावस्तु तथा वर्णन-प्रचाली दोनों ही की दृष्टि से 'परीक्षा पुत्र' उस युग की प्रथम रचना है।^३

भारतेन्दु की प्रथम उपन्यासकार मानने में भी मतभेद है। द्विवेदी भी ने भारतेन्दु के 'पूर्व प्रकाश और चन्द्रमामा' को 'सर्वप्रथम सामाजिक उपन्यास'^४ बतलाया है परन्तु यह मौलिक रचना नहीं मराठी से अनुबाह है^५ बाबद धनुबाद भी भारतेन्दु का स्वद किया हुआ नहीं^६ सञ्चित है। यस्तु 'पूर्वप्रकाश और चन्द्रमामा' के प्रमाण पर भारतेन्दु को प्रथम उपन्यासकार नहीं माना जा सकता। फिर भी वह निष्कर्ष सबको मान्य न होया कि भारतेन्दु ने एक भी मौलिक उपन्यास की रचना नहीं की^७। क्योंकि 'उन्होंने स्वयं एक उपन्यास लिखना शुरू किया था वह अचूरा उपन्यास' कुछ आप बीती कुछ बमबीती' है जिसमें 'उन्होंने जैसे 'परीक्षा पुत्र' की सांकेतिक धूमिका ही प्रस्तुत कर दी है'।^८ इन कहानी का परिणाम ऊपर दिया जा चुका है। यह आश्चर्य की बात है कि आधुनिक उपन्यास क लगी मुग बिसमान रहने पर भी इन झकूटी कहानी को आलोचकों ने प्रथम उपन्यास नहीं माना। कारण वो हो सरते है। पहिला तो यह कि इसका केवल एक 'देत' ही लिखा गया था यदि यह रचना पूर्ण हो गई होती तो आलोचकों का ध्यान इसकी ओर अवश्य जाता। दूसरा यह कि भारतेन्दु ने इनको 'कहानी' नभा दी है 'उपन्यास' या 'नवेल' नहीं इसीलिए बिज्ञान् इसको कहानी समझ कर छोड़ बैठते है। जो भी हो कता की दृष्टि से यह कहानी बबस्य ही 'उपन्यास' पर की अधिकारिणी है और इसके आधार पर भारतेन्दु अन्य गद्य-रपा के समान उपन्यास के भी उगवाता माने

१. हिन्दी-साहित्य, पृ ४११

२. हीरक उपन्यास पृ १०५

३. हिन्दी-साहित्य, पृ ४१

४. हिन्दी साहित्य पृ ४११

५. श्री निजरायकर मण्ड : प्रबुद्धाल-प्रेमचन्द कि आत्मनस तक (आनोचना कथस आदोरोक, पृ ११

६. हिन्दी उपन्यास-साहित्य, पृ १११

७. हिन्दी उपन्यास पृ ११

८. श्री निजरायकर मण्ड : आत्मनस उपन्यास (प्रीतक पृ ६५

जाने योग्य हैं। अगस्त्यर प्रश्न यह है कि भारतेन्दु ने उक्त 'कहानी' को 'उपन्यास' नाम क्यों नहीं दिया जिसका जब कि वे 'उपन्यास' नाम से परिचित थे^१। उत्तर यह हो सकता है कि 'उपन्यास' नाम का उस समय एक एकल शब्द नहीं हो पाया था। विशेषतः हिन्दी का पाठक 'कहानी' के समान अपेक्षापत्र 'उपन्यास' में न समझता था—अन्तिमपर्यन्त तक न धपते कुछ बीच के उपन्यासों ('राजसिंह' रचना काल १८८२ ई०) को कुछ कहा^२ और 'छद्म उपन्यास' दोनों नाम दिये थे।

'परीक्षा घुड़' (रचना काल सन् १८८२ ई०) को सभी पाठकों ने किसी-न-किसी रूप से हिन्दी का प्रथम धर्मोपदेशी रंग का मौलिक उपन्यास माना है। इसमें प्राचीन और मध्ययुगीन परम्परा को स्थापित कर नवीन सरसिका उद्घाटन तो है ही बरमा का नाम भी कम ही है। इसका हीरा बरमा के रास्ते हिन्दी में नहीं आया बल्कि कह सकते हैं कि सीधे धर्मोपदेशी से आया लेकिन धर्मोपदेशी का प्रच्छन्न आकार था और उसने धर्मोपदेशी के उपन्यासों को ध्यान में रख कर ही यह नई नाम चलाई होगी^३। 'परीक्षा घुड़' का विस्तार-पूर्वक विश्लेषण अगस्त्यर किया जाएगा। यहाँ वह ध्यान रखना चाहिए कि श्रीनिवास बाबू की प्रतिभा बहुमुखी थी इन्होंने साहित्य के एक से अधिक धर्मों की पूर्ति की है नाटक तो उनके हीन हैं 'उपन्यास' एक नया रूप था उस घोर कदम बढ़ा कर उन्होंने मार्ग प्रदर्शन कर दिया। उपन्यासों का डेर तो पाठक को उपन्यास-रूप से परिचित करा देने के साथ ही बनाया जा सकता है। दूसरी बात यह है कि भारतीय भाषाओं (सहायकभाषा बरमा) में उपन्यास-रूप का प्रारम्भ सामाजिक रचना से हुआ है क्योंकि उपन्यास सामाजिक जीवन का वैयक्तिक दृष्टिकोण से वास्तविक चित्र है यद्यपि ऐतिहासिक और कालांतरमय उपन्यास अलग प्रथम हैं तो मौलिक नहीं हो हो सकते और अन्तर मौलिक है तो प्रथम नहीं रहे जा सकते। अस्तु हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यासकार भारतेन्दु हैं परन्तु प्रथम मौलिकता पूर्व उपन्यास 'परीक्षा घुड़' है।

वैयक्तिकतः सभी ने हिन्दी में उपन्यासों की नई परम्परा बनाई, वे प्रेमचन्द पूर्व-युग के सब से लोकप्रिय उपन्यासकार थे उनकी रचनाओं ने हिन्दी का बड़ा प्रचार किया। फिर भी उनकी कृतियों को साहित्यिक हिन्दी की रचना मानने में कुछ संकोच होता है। यह भी विचारणीय है कि जमका दृष्टिकोण जिस अनुपात में साहित्यिक था और जिस में सुदृढमार्मिक। अन्तर्गत उपन्यास के क्षेत्र में वे हिन्दी के शिरोमणि

१. अगस्त्यर प्रश्न १० सप्ताहिक को सारथीनु का प्रश्न—“कैसे पाया मैं जब कुछ अन्तर्गत था तब है अब एक उपन्यास नहीं बने है—” का उत्तर हिन्दी के सभी द्वारा (धर्म-उपदेश-सूत्र, १० १९४) उद्धृत।

२. का अन्तर्गत काल नाम सुत ५ प्रिन्सिपल सभी जाति रि सादर पत्र यथेष्ट भों २ प्रिन्सिपल, १० १९९

३. हिन्दी उपन्यास, १० १९५

लेखक है परन्तु साहित्यिकों ने अठ्ठाधमक उपन्यास किसी भी तो कम है। यह उन्हें दिया जा सकता है कि सभी जी की लेखनी से ही उपन्यासों की सिलसिलेवार रचनाएं प्रारम्भ हो जाती हैं परन्तु इस दृष्टि से भी किछोरीलाल मोस्वामी का प्रथम उपन्यास 'प्रसमिनी परिणय' और भी पहिले का है। यस्तु, देवकीमन्दन सभी का महत्त्व तो निरन्तर ही निर्विवाद है परन्तु समस्त ८१० वर्ष पूर्व के इतिहास की ज्ञेयता नहीं की जा सकती।

किछोरीलाल मोस्वामी प्रथम उपन्यासकार नहीं है। बुनखजी ने उनकी दो विशेषताएं मानी हैं—रचनाओं का साहित्यिक स्तर, और उपन्यास के क्षेत्र को चुनकर उसी में रम जाना। ये दोनों विशेषताएं उदय-काल की नहीं हैं विकास-काल की हैं। अतः मोस्वामी जी हिन्दी के 'प्रथम' उपन्यासकार (साहित्यिक-उपन्यासकार या यद्यपि ईंग के उपन्यास लिखने वाले) नहीं हैं परन्तु प्रारम्भिक लेखकों में उनका महत्त्व विशेष है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि अठ्ठाधम की 'भाम्बवटी' के उपरान्त हिन्दी-उपन्यास के उद्भव में चार साहित्यिकों के नाम स्मरणीय हैं—भारतेन्दु, श्रीनिवासदास, देवकीमन्दन सभी और किछोरीलाल मोस्वामी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जिस उपन्यास का बीज-रूप दिया था वह श्रीनिवासदास में संकुचित हुआ परन्तु उसको पल्लवित और पुष्पित करने का श्रेय कमश देवकीमन्दन सभी और किछोरीलाल मोस्वामी को है। अठ्ठाधम ने धारण के इतने से उस भूमि को बोझ कर तैयार कर दिया था जो अविष्य में इतनी ज्वरा सिद्ध हुई। उपन्यास के इस इतिहास में ईशान्यस्ताली को कोई स्थान नहीं दिया जा सकता और न सदानन्द मिश्र एवं सम्मुनाथ मिश्र की मिहोमि 'मनोहर-उपन्यास' नामक किसी पुस्तक का 'संपादन' सं ११९८ में ('भाम्बवटी' से १-२ वर्ष पूर्व) किया था संभव है यह 'मनोहर-उपन्यास' (?) या 'मनोहर उपन्यास' हरिमोहन कर्मकार द्वारा रचित बंभला की कथा-पुस्तक 'मनोहर-उपन्यास' (सन् १८३२)^१ का सामानुदाह नाम ही हो—'संपादन' शब्द से ऐसा ही संकेत मिलता है।

हिन्दी-उपन्यास-साहित्य का काल-विभाजन

भारतीय जनता की कथाप्रिय 'मनोमूर्ति' में प्राचीन कथा-साहित्य और मध्य युगीन कथा-साहित्य एक के बाद दूसरी 'कल' के समागम पैदा हुए, तत्पश्चात् उपन्यास-पूर्व सङ्कीर्ण-कथा-साहित्य उन कृष्णविहीन 'स्वाणुषों' के समागम का जो प्रथमर पा कर अपने प्राण हरियाने लगे हैं। अठ्ठाधम ने उस भूमि को पुराने घट भंजकों से छाक करके अपने सामाजिक 'हल' से नवीन उषस के लिए तैयार कर दिया। भारतेन्दु ने 'बीज-रूप' दिया जिसकी श्रीनिवासदास ने 'संकुचित' किया और फिर देवकीमन्दन सभी के प्रयत्न से उपन्यास-राज्य 'पल्लवित' तथा किछोरीलाल मोस्वामी की प्रतिभा से

१. किसी पुस्तक का 'संपादन', ४ १३

२. डा० बलरामदास दास द्वारा द हिन्दू क्वी ऑफ़ दि लाइफ़ एवम् वॉलेस ब्रॉड वॉलेस-कथा, १ १

‘मुमित’ हुआ। प्रेमचन्द का साहित्य सरस एवं स्वादु ‘फल’ के समान है। उनके बाद के कलाकार छद्म-छद्म के ध्वजार और मुरझी बजाकर बाजार में बेचते रहे हैं।

इस प्रकार इस नई फ़सल की तीन अवस्थाएँ हैं—हस चताने से पस्तव धाने तक फल और फलों का मुरझा। अक्षरि अक्षराराम से प्रेमचन्द-पूर्व तक प्रेमचन्द, और प्रेमचन्द से अब तक। अक्षराराम का उपमास उपबैधात्मक है और मारतेनु का केवल ‘जैन’ मान। इसलिए अन्वयन की सुविधा के लिए हिन्दी-उपमास का प्रथम काल भीमिमास बाद के ‘परीला नुव’ (सन् १८८२ ई०) से प्रारम्भ होता माना जाता है, और इस की अवधि प्रेमचन्द के समय तक है। प्रेमचन्द के दो प्रारम्भिक उपमास ‘प्रतिभा’ और ‘बरदान’ उनसे पूर्व की प्रवृत्तियों से मरे हुए हैं उनको सन्न्यासिकापीन माना जा सकता है युग-प्रवर्तक नहीं। परन्तु ‘वेबासवन’ का प्रकाशन हिन्दी-अपम की एक विधिष्ट बटना है। इस उपमास में नवीन युग की स्पष्ट सूचना मिल जाती है। जिस प्रवृत्ति का ‘वेबासवन’ में उपक्रम दिखाई पड़ता है वही प्रेमचन्द के जीवन-मर्यत्त ‘मंगल-सूत्र’ के प्रकाशन (सन् १९१९) तक उसी प्रकार प्रवहमान है। प्रेमचन्द के जीवन-काल में ही उनसे मिल प्रवृत्ति के उपमास मिले जाने लगे थे और उनके बाद जो स्पष्ट ही नवीन प्रवृत्तियों का माध्याम्य जा गया। वह प्रेमचन्दोत्तर युग है।

पविष्ठ ‘प्रेमचन्द युक्त’ ने गद्य-साहित्य के तीन भाग—प्रवर्तन (सं० १९२४ से १९२० तक) प्रसार (सं० १९२० से १९७५ तक) और वर्तमान गति (सं० १९७५ से)—किये हैं। द्वितीय उत्थान की अवधि सं० १९२० (सन् १८९३) से सं० १९७५ (सन् १९१८ ई०) तक है। इस काल विभाजन में कथा-साहित्य को अन्वयन में रहना सम्भव न था फिर भी संयोगवश एक भाग सन् १९१८ में समाप्त हो जाता है। युक्तजी के इस विभाजन को प्रयाग विश्वविद्यालय के रिसर्च-स्कॉलरों ने ‘प्राधुनिक हिन्दी साहित्य’ (सन् १८२० से १९०० तक) ‘प्राधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास’ (सं० १९०० से १९२५ तक), और ‘प्राधुनिक हिन्दी साहित्य’ (सन् १९२५ से १९२० तक) के रूप में पत्रिकावत् हेर-फेर के साथ ग्रहण कर लिया है इनके विधेय अन्वयन में भी कथा-साहित्य को स्वतन्त्र रूप से दृष्टि में रहना सम्भव न हो सका।

और विभाजनक भीमिमास ने हिन्दी-उपमास के दो काल माने हैं—‘प्राधिकार’ (सन् १८०० से १९१८ तक) और ‘प्राधुनिक काल’ (सन् १९१८ से धार्य)। इस विभाजन में पहिली कठिनाई तो यह है कि ‘प्राधिकार’ का प्रारम्भ सन् १८०० से क्यों माना गया है जब कि सन् १८०० में एक भी उपमास की रचना नहीं हुई। लेखक का तर्क है—‘सन् १८०० ई० के आसपास बार-बार अनुभाव ऐसे हुए जिन्होंने लड़ी बोली पद्य को एक साथ धाने बढ़ाया। ... इन गद्य प्रवर्तकों के द्वारा ही हिन्दी-गद्य में कथा-कहानियों का प्रवर्तन भी हुआ’। विद्वत् लेखक ने ‘कथा-कहानियों को ‘उपमास’ के साथ पर्वतानिक ढंग से मिला दिया है, उत्तमस्वरूप ‘उनी केतकी की कहानी’ ही ‘प्रथम उपमास’ बन गई है। ऊपर दिखाया जा चुका है कि यह मिथ्य धनुविध है। दूसरी

कठिनाई आदिकान के घन्ट की है। लेखक की माय्गता है कि प्रथम महामुद्र के बाद से श्री प्रेमचन्द करिब प्रधान उपन्यास लेकर साहित्य-क्षेत्र में आए। इसी तथ्य को दृष्टि में रखकर आदिकान सन् १८०० से १९१८ ई० माना गया है^१। यहाँ ध्यापित का विषय 'प्रथम महामुद्र' है। इस मुद्र का प्रभाव उपन्यास-कला पर पड़ा हो—ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता। यथार्थ होता कि 'महामुद्र' की अपेक्षा 'सेवामदन' को कामपरिचलन का गौरव दिया होना। (आधुनिक काल के विषय में लिखना बहुत प्राचीनिक नहीं है)।

श्री बजरत्नबास ने उपन्यास-साहित्य के दो उत्थान माने हैं—'प्रथम उत्थान' (सं० १९४० से १९७० तक) और 'द्वितीय उत्थान' (सं० १९७० से २००० तक)। उनके अनुसार प्रथम उत्थान सं० १९४० से आरम्भ होकर सं० १९७० तक चलता है। लेखक का तर्क है कि सं० १९४० से १९७० के मध्य में ऐवारी तिनित्सी जादू आदि से भरे हुए बहुत से उपन्यास मिले परन्तु अब इस प्रकार के चलनमाने उपन्यासों के लिखने की प्रथा बन्द-नी हो गई^२। यह तर्क ठीक है परन्तु इस स्थान पर प्रथम उत्थान की अवधि सं० १९७१ मिली है और विषय-सूची में सं० १९७० धावद लेखक का समीक्षक सं० १९७१ ही है, क्योंकि पाँचवें अकरण के बीचक में भी 'सं० १८४०-७१' लिखा है।

आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी के अनुसार 'सन् १८८२ से लेकर सन् १९११ तक हिन्दी-उपन्यास का आरम्भिक और सक्रान्ति काल रहा है'^३। यहाँ १९११ ई० प्रेमचन्द की उपन्यास रचना की शायिल मानी गई है। इन आरम्भिक युग को पार करते ही हम हिन्दी-उपन्यासों के उमर में युव में प्रवेश करते हैं जिसका उल्लेख प्रेमचन्द जी ने किया^४। सामान्यतः १९१८ तक हिन्दी उपन्यास का प्रथम चरण माना जाता है। १९१८ से हिन्दी उपन्यास का उचित चरण आरम्भ होता है। जिसके प्रवर्तक प्रेमचन्द है 'उनका पहला उपन्यास सेवामदन १९१८ ई० में प्रकाशित हुआ था'^५। 'उत्तरकाल प्रेमचन्द के आगमन तक' प्रेमचन्द-युग आधुनिकमुख बचाने और 'प्रेमचन्दोत्तर काल नये परास' हिन्दी उपन्यास-साहित्य का यह कामविभाजन आचार्य सर्वमान्य-सा बन गया है। इन कालों की शायिलें जी १८८२ से १९१८ १९१८ से १९३९ और १९३९ से उत्तर निर्दिष्ट ही हैं।

इन सर्वमान्य विभाजन में दो मुद्दे और हाँ सकते हैं। प्रथम तो यह कि 'उत्तर काल नाम देने से ऐसा लगता है माना उन काल तक साहित्य के मध्य गया की अपेक्षा उपन्यास लिखना हुआ था परन्तु वस्तु स्थिति वैसी ही नहीं। उपन्यास सामयिक

१ हिन्दी उपन्यास पृ. ४

२ हिन्दी उपन्यास-साहित्य पृ. १२१

३ आधुनिक-साहित्य पृ. २३८

४ वही पृ. १४

५ श्री शिवशंकर लाल श्रीवास्तव हिन्दी-उपन्यास काल (द्वितीय अंक) प्रथम पृ. १०१

जीवन का वास्तविक चित्र है और साहित्य के दूसरे कला की अपेक्षा उपास में यह कुछ अधिक होता है। समाज की सामान्य स्थिति जैसी होती वैसा ही उसका उपास साहित्य होता। अतः प्रेमचन्द-पूर्व युग के उपास-साहित्य को उदात्त काल-मान का साहित्य नहीं मान सकते। अतः पहिला काम उपन्यास का उद्बोधन है तो मात्रक प्राप्ति सबका भी सम्म-काल है। अस्तु, उद्बोधन की अपेक्षा प्रेमचन्द पूर्व-युग अधिक उपबुद्ध है। इससे आगे प्रेमचन्द-युग में समाज प्रयोग उपासों की रचना हुई और प्रेमचन्दोत्तर-युग में व्यक्ति प्रधान उपन्यास मिले जाने लगे।

दूसरा सुचारु बह हो सकता है कि काल विभाजन में सन् की अपेक्षा गान्धिका रिपी रचना का महत्त्व अधिक होने से प्रवृत्तियाँ का कम व्यक्ति स्पष्टता से लक्षित हो सकता है। अधिकतर आलोचकों ने प्रेमचन्द से युग-परिवर्तन माना है। फिर भी कोई १९१३ मानता है, कोई १९१२ और कोई १९१६। इस भ्रान्ति का कारण रचनाविशेष से परिवर्तन न मान कर व्यक्ति-विशेष को महत्त्व देना है। सन् १९१८ के बाद भी पुराने कई उपन्यास-कार (जैसे किशोरीलाल गोस्वामी) लिखते रहे और उनमें परिवर्तन न आया। यदि रचना-विशेष को महत्त्व दिया जाए तो किसी प्रकार की गड़बड़ न हो सकेगी।

अस्तु, हिन्दी-उपन्यास-साहित्य का काल-विभाजन नीचे निम्न प्रकार से किया जा सकता है —

- १ प्रेमचन्द-पूर्व-युग सन् १८८५ से सन् १९११ तक
‘चरीखा मुँह’ से ‘सिंहासवन’ तक।
- २ प्रेमचन्द-युग सन् १९१८ से १९३९ तक
‘सिंहासवन’ से ‘सुनोता’ तक।
- ३ प्रेमचन्दोत्तर-युग सन् १९३९ से आज तक।

प्रेमचन्द-युग उपन्यास की सामान्य प्रवृत्ति

समाज के समाज हिन्दी में भी उपन्यास का सुवर्णयुग समाज की आलोचना के रूप में ही गुणा का। परन्तु जैसे-जैसे इसकी लोकप्रियता बढ़ती गई वैसे-वैसे इसमें मनो-रंजन का समावेश अधिक होता गया। कुछ लेखकों ने मनोरंजन को सामाजिक चित्रण

१ श्री अमरनाथ ने सन् १९०० वर्षीय सन् १९११ माना है।

२ अर्थात् कन्नडुसारे रामदेवी सन् १९१५ मरने हैं। (‘आधुनिक साहित्य’ ४० १३८ तथा प्रेमचन्द साहित्यिक विवेचन, पृ. २२)

३ श्री सिधनाथक श्रीवास्तव।

४ ईश्वरप्रसाद शर्मा ने ‘सर्वजन की भाँति करनी वैसी करनी’ उपन्यास में अतः समाज की सामान्य कला का कर्तव्य माना है। ‘बरा बरसी-युगपती गानिका’ का सुन्दर-सताना मायक हा कुम्हिलों की कृत् प्यारों की प्यारी, मायक-व्यक्तिक के आचरणों, विचारों की कथार कथ हो कर उपन्यास की कथार होगी है। (डा. श्रीरामनाथ शर्मा ‘हिन्दी उपन्यास और कथा-काल’ की ‘वर्णिका’ में अमरनाथ)

बर्ष की है। इनमें केवल उपन्यास छपते थे एक-एक उपन्यास को एक या एक से अधिक अकों में छाप कर पुस्तकाकार प्रकाशित कर दिया जाता था। इस प्रकार 'उपन्यास-ग्रन्थ मासा' 'उपन्यास-उदय-मासा' 'उपन्यास-कुसुम-मासा' आदि तैयार होती जाती थी।

उपन्यास की सफलता पाठकों की धाकपट कराना और प्रतियोगी के हाथ-हाथ बिक जाने मात्र में मानी जाती थी। यही जन उपन्यासों की आलोचना भी है। पुस्तक का मुख्य पुस्तक के पन्ने ऊपाई और बिना ठका मन पर पुस्तक का प्रभाव—इस बार तुमों से उसकी सफलता का मुख्य धाका जाता था। कुछ आलोचनात्मक विज्ञापन देखने योग्य है—

(क) इसमें 'राजकुमारी का रंगीन चित्र' तो ऐसा दिया गया है कि बीसा सुन्दर चित्र बाजार में बार जाने में भी न मिलेगा। ('राजकुमारी')

(ख) इसके पढ़ने में कभी तो आँखों से आँसू बहने लगते हैं कभी प्रामाण्य की लहरें आती हैं और कभी हँसते-हँसते पेट फटने लगता है। ('कुसुमकुमारी')

(ग) इसमें बाजार के समय की उन कुछ घटनाओं का वर्णन है जो कि बड़े छिपे छिपे रूप में होती थीं। और अश्रियों पर कैसे क्या आत्याचार हुए हैं? किस-किस प्रकार प्रजा को वहाँ के कर्मचारी-सोम पीड़ा पहुँचाते थे? -- इसादि बातों को पढ़कर धाप बरतें उठेंगे। ('भस्मा-हो भस्मर')

(घ) इसका आकार 'डिवाई आठ पेजी' पाँच पार्स भर्षि ४० पृष्ठ है। ('उपन्यास'—मासिक)

(ङ) मैंने इस उपन्यास को प्रशंसा प्राप्त करने समया अपना बटोरने की स्तुति से नहीं भिजा है बल्कि देखते-बा की हार्दिक इच्छा मन में रखते हुए इसको प्रत्येक चर्चालंकार से विभूषित कर । ('पतिव्रता विपुला' सन् १९१६)

(च) जो तो सब एक ही ऊँची उपन्यास छप चुके हैं बिनसे मनोरंजन या ऐतिहासिक बातें बताने के सिवा और कोई विषय कुछ लाभ नहीं हुआ, किन्तु हमें आशा है कि इस उपन्यास से अनुपम जाति मान का उपकार होगा। ('आशी')

(छ) इस समय जब कि लोगों के मनों में चर्मबन्धों से घरबि हो रही है यह टरफ्ट जिसमें सत्य सनातन वैदिक धर्म के सिद्धांतों की महिमा बर्णनी गयी है जनता की अँट किया जाता है। ('कापीबान')

(ज) जब बटनापूर्व घरनीनतामय अरिजनासी रसीली कहानियाँ पढ़ते पढ़ते धाप सोचों का भी ऊब जाय तब धाप लोग इसे अपने हृदय में भीजिएया और देखिएया कि धाप लोगों के मन को इससे कुछ विधाय मिलता है या नहीं। ('सीतबोवासक')

(झ) आधो भाग हम धाप लोगों को धाप बीती सुना उस मायावी की

माया का विविध रंग-रूप दिखाते हैं। (दीनानाथ^१)

उपन्यासकारों का पाठक से निकट सम्पर्क रहता था अर्थात् उपन्यास निकले-निकले से पाठक से बात करते जाते थे और अपनी कला से उस ऐसी-ऐसी चीजें दिखाते थे जिनसे उनका मन लगा रहे। यह ही ही जय भुज की नाटक-प्रियता का प्रभाव मानी जा सकती है। वस्तुतः उपन्यासकार उस मूकबोध के समान थे जो पाठकों के परितोष से श्री धामे 'उपन्यास-विभाग' को लफट मानता है। पाठकों का ध्यान रखकर लिखना यदि लेखक का ध्येय है तो श्रीमद्वैष्णव-सूत्र उपन्यास में यह विषय कर से दर्शनीय है।

कतिपय उपन्यासकार कथा का कई भागों में विभाजन करके उपन्यास निकाले थे। किछोरीनाथ पोस्वामी का 'सम्बन्ध की कथा' यदि सात भागों में है तो सम्प्रदायवादी बाबूबाबू की 'मदनमंजरी' के भी सात भाग हैं, और देवकीनन्दन खत्री की 'चन्द्रकायासन्तति' के भी सात। सामाजिक उपन्यास इतने बड़े न होते थे फिर भी मेहुता मज्जादार का 'भादस हिन्दू' तीन भागों में है। उपन्यास की धाकार-बुद्धि लफट लफट हो सकती है जब पाठक की धनुरक्षित उत्तरोत्तर बढ़ती जाए, इस बात का बदनसम्बन्ध उपन्यासकारों को पुरा विश्वास था। प्रायः पूर्ण चरित्र या भागी कथा की ओर ध्यान देने के लिए फुटनोट में उन प्रकार का संकेत कर दिया जाता था वह कुछ किछोरीनाथ से अधिक है।

श्रीमद्वैष्णव-सूत्र भुज 'ऐतिहासिक' 'पारसी रंगमंच' 'उर्दू धामरी' 'धीर-संस्कृत-साहित्य' के चार सहस्रों उपांगों से घिरा हुआ था। इसलिए कोई भी लेखक इनकी शुरुआत से बच नहीं सकता है। प्रभाव की भाषा में यह भ्रम ही हो। 'ऐतिहासिक से उपांग' रंगमंच से कथापत्रकों में चुप्पी धामरी से रंगीनी धीर-संस्कृत से चरित्र-नीम इस काल में ध्यात हो गया था। इन उपन्यास-साहित्य के तीन सहस्र सहस्रकालीय नाटक धीर-धनधार हैं। काम्य से रमिकता नाटक से पाठकों का भागीप्य धीर-सनाधार-गनों से उपन्यास को मरव घटनाओं का आधार बना था।

उपन्यासकारों की सबसे बड़ी कमजोरी अपने दृष्टिकोण का अभाव है। उनका ज्ञान धीर-उद्देश्य दोनों में से किसी पर भी लगे हुए व्यक्तिगत की छात्र नहीं मिलती। किसी भी उपन्यास के विषय में यह दावा नहीं किया जा सकता कि वह धनुरक्षित लेखक की ही इच्छा है अगर की नहीं। लेखक ने या तो तरह-तरह के प्रभाव किये हैं या पाठकों की रचित म धपने का बहा दिया है। यही कारण है कि उपन्यास अथवा कर उपन्यास नहीं बन सके। जिन उपन्यासकारों का व्यक्तिगत अवन था और अपनी रचना पर जिन की छात्र है (जैसे माया भीतिवासदास) वे सबका से बहुत कम हैं। और अर्थात् एक-दो से अधिक उपन्यास नहीं मिले।

यह धुन धनुरक्षित धीर धनुरक्षित का था। इनजिन भीतिरता की कभीटी पर उसे घातना उचित नहीं। दूसरी रचनाओं (इतिहास भाषाचार तक नाटक अथवा उपांग)

१. श्रीमद्वैष्णव-सूत्र के प्रकाशक के नाम का प्रयोग-विभाग की लफट-विभागों का दर्शनो-बान्ना है।

न्यास) से संकेत लेकर लेखक उपन्यास सिद्ध झामते हैं। क्योंकि कल्पना सदा उनकी सेवा को प्रस्तुत रहती थी। कतिपय उपन्यासकारों ने सच्ची बटनाओं के आधार पर कथानक बनाया है। कुछ लेखकों ने सुनी-सुनाई बातों के आधार पर। परन्तु प्रत्येक लेखक यह धारणा बाँटता था कि उसकी कल्पना पर विश्वास किया जाए। अंधवी के उपन्यास-लेखक डेप्टे की विश्वास बनाने वाली कथा हिन्दी के इन उपन्यासकारों में भी पाई जाती है। वे भूमिका में यह जोड़ना कर देते हैं कि उनकी कृति का आधार एक सच्ची बटना है। व्यक्तियों और स्थानों के नामों के अतिरिक्त सारी बातें सच्ची हैं।

प्रेमचन्द से पूर्व हिन्दी में जो उपन्यास लिखे गये थे वे आत्मकथा की दृष्टि से व्यक्तिगत या घटफट माने ही मान लिये जाएं उनका ऐतिहासिक महत्त्व निश्चित है। वे हिन्दी-साहित्य के इतिहास की महत्वपूर्ण कड़ी ही नहीं हैं। उत्पासीन जनता के जीवन का प्रामाणिक प्रतिबिम्ब भी है। सामान्य जनता का मनोबैज्ञानिक इतने जितना उन उपन्यासों में हो सकता है उतना धन्य है नहीं। क्योंकि उनका निर्माण ही जनता के मनो-रंजन के लिए हुआ था।

प्रेमचन्द-पूर्व उपन्यास-साहित्य का वर्गीकरण

हमारे आलोच्य-काल में जो धार्मिक साहित्यिक एवं लोकप्रिय उपन्यास लिखे गये उनकी मुख्य विषयता पाठक की कुतूहल-वृत्ति को परिपूर्य करते हुए उसका मनोरंजन करना है। इसलिए, आधुनिक पश्चात्तरी में वे उपन्यास बटना प्रवाण ही हैं। डा. सी.एम्.ताल^१ ने उन उपन्यासों को दो वर्ग माने हैं—'कथाप्रधान' तथा 'चरित्रप्रधान' परन्तु 'चरित्र प्रधान' वर्ग में नाम मात्र के ही लिए (हरिऔध लखाराम मेहता तथा मन्नन त्रिवेदी के) कुछ उपन्यासों को स्थान दिया है। इसके विपरीत 'कथाप्रधान' उपन्यासों के क उल्लेख बतावे हैं। 'कथाप्रधान' उपन्यासों का यह उल्लेखीकरण निम्न-लिखित है—

- (क) तिलस्वी।
- (ख) साहित्यिक—इकैगी-नम्बन्नी सम्य व्यक्ति के पाप से सम्बन्ध एवं राजनीतिक जाति-सम्बन्धी।
- (ग) आधुनिक।
- (घ) प्रेमाकप्रधान—ऐतिहासिक परम्परा पर आधारित पारम्परिक प्रभाव से।
- (ङ) ऐतिहासिक।
- (च) पौराणिक।

यह वर्गीकरण धर्मागत है। इस पर एक बार दृष्टिपात करने से ही यह ज्ञात हो जाता है कि यदि कुछ उपन्यासों को 'चरित्रप्रधान' नाम भी दिया जाय तो भी उन को अपवाद कहा जायगा उस पुत्र की प्रकृति नहीं। उन काल के उपन्यास 'कथाप्रधान' ही हैं यदि कोई अपवाद है तो वह भ्रम-अज्ञान से अलग है। उनका स्वयं बर्ण नहीं बन

सकता। यस्तु, उन 'कथा प्रधान' उपन्यासों का विषय-वस्तु के अनुसार ठीक-ठीक साहित्यिकी में भी वर्गीकरण किया है। 'गार्हस्थ्यकुमार या मदनमोहरी' उपन्यास के पीछे मुबराकी के प्रसिद्ध उपन्यास 'सरस्वतीचन्द्र' का परिचय देने वाला विज्ञापन बतसाटा है कि 'सरस्वतीचन्द्र' में (क) सामाजिक (ख) ऐतिहासिक (ग) राजनीतिक (घ) धार्मिक (ङ) ऐश्वरी (च) तिलस्म (छ) बामुची धादि सभी प्रकार के उपन्यासों का आनन्द मिलता है। यद्यपि 'विज्ञापन' की 'समीक्षा' के समकक्ष आधार नहीं माना जा सकता फिर भी हमसे इतना तो सकेत मिल ही जाता है कि उस युग में उपन्यास कितने प्रकार के होते थे। डा० भीष्मदास ने भी 'कथाप्रधान' उपन्यासों का उप-वर्गीकरण लक्ष्मण इन्दी बारासों से किया है।

विषय-वस्तु की दृष्टि से लेखकों ने स्वयं भी अपने उपन्यास की जाति बतला दी है और वह उपन्यास उस जाति में लक्ष्य हो लक्ष्य प्राप्त उस जाति का अस्तित्व तो सिद्ध हो ही जाता है। कतिपय नाम उन उपन्यासों के हैं जिनके ऊपर उनकी 'जाति' या 'प्रकार' पंक्ति है—

'और लक्ष्मण'	—	'ऐतिहासिक उपन्यास'
'किले की रानी'	—	'शिक्षाप्रद बहुमुख उपन्यास'
'कुसुम कुमारी'	—	'सत्य-वदना-मूलक उपन्यास'
'लक्ष्मी देवी'	—	'सिन्धुप्रद सामाजिक उपन्यास'
'बाकी'	—	'गार्हस्थ्य उपन्यास'
'नूरजहाँ'	—	'ऐतिहासिक उपन्यास'
'सावित्री'	—	'गार्हस्थ्य उपन्यास'
'रामकुमारी'	—	'सामाजिक उपन्यास'
'घनूठी का लीला'	—	'सत्य वदना-मूलक गार्हस्थ्य उपन्यास'

इनके धारित्वित सामाजिक उपन्यास 'ऐतिहासिक उपन्यास' तथा 'तिलस्मी उपन्यास' 'बामुची उपन्यास' तो इतने उपन्यासों पर लिखा हुआ है कि उनकी गिनती नहीं हो सकती। 'गार्हस्थ्य' 'धार्मिक' धादि भेद 'सामाजिक उपन्यास' के ही हैं। यस्तु, किशोरीप्रसाद पोखारी ने अपने उपन्यासों को सामाजिक 'सामाजिक' 'ऐतिहासिक' तथा 'वदनात्मक' लिखा है—यद्यपि कथ में एक-दो नाम भी हैं जैसे 'घनूठी का लीला' उपन्यास 'सत्य-वदना-मूलक गार्हस्थ्य उपन्यास' है परन्तु इस प्रकार के 'प्रकार' को 'वर्ग' न मान कर 'वर्ग' या 'समस्या' चाहिए। अतः यस्तु प्रसन्न में प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी उपन्यासों में तीन वर्ग स्वीकार किये गये हैं—

- (क) सामाजिक
- (ख) ऐतिहासिक
- (ग) वदनात्मक

धीरे-धीरे 'वर्ग' का सम्बन्ध एक महीन सम्बन्ध में किया गया है। इस वर्गीकरण में ऐसी नीति यह रही है कि सर्वप्रथम लेखक का कवन सामाजिक माना जाय यदि लेखक एक विशेष उपन्यास को ऐतिहासिक कहता है तो उस उपन्यास का सम्बन्ध जनी वर्ग में हो। यही उस उपन्यास में ऐतिहासिकता की दृष्टि में भुटि हो। किपौरीमान मोस्वाभी ने 'राजकुमारी' उपन्यास को 'सामाजिक' बतसाया है यद्यपि इसमें लेखक के ऐतिहासिक उपन्यासों के भी गुण हैं, मने उसे 'सामाजिक' वर्ग में ही स्थान दिया है। मास्वाभी जी ने 'कटे घूंघ की दो-बो बाले' उपन्यास को 'बटनात्मक' लिखा है यद्यपि इसमें ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी है। इसलिए प्रस्तुत प्रकरण में उसे 'बटनात्मक' ही माना गया है। यदि लेखक ने अपने उपन्यास का स्वयं कोई वर्ग नहीं बतसाया तो सर्वप्रथम यह देखना है उसकी पृष्ठभूमि में इतिहास तो नहीं है यदि इतिहास है तो उपन्यास को 'ऐतिहासिक' वर्ग में स्थान बिल बायगा। इतिहास-रहित उपन्यास में यदि समकालीन समाज के किसी धर्म या समस्या का बिचल है तो उसे 'सामाजिक' संज्ञा मिली है, अन्यथा वह 'बटनात्मक' है। इस प्रकार 'बटनात्मक' वन बड़ा व्यापक एवं अनिश्चित है। 'बटनात्मक' वर्ग में सामान्यतः दो प्रकार के उपन्यास आते हैं। विष-विषय बटनाओं से घरे हुए—'बामुभी' 'तिलस्मी' धीरे 'देयाही' के इन के 'बकुटे' उपन्यास तथा वे उपन्यास जिसमें 'रपीने' 'भकुडीने' 'बकुटे' धीरे 'बानदार' कथानकों में 'किस्म का बेल' 'प्रेम का धन' 'बालाओं की बालाकी' 'धोरी की बालाबाड़ी' 'ज्यों की बकुडीने' धीरे विष-विषय विषय प्रकट किये गये हैं।

इस वर्गीकरण को बंगाली साहित्य का समर्थन भी प्राप्त है। बंगाली-उपन्यास पर विचार करते हुए एक विद्वान लिखते हैं कि भारत के साहित्यिक तथा वैयक्तिक साहित्यों में रोमान्स उपन्यास (रिज) एवं नीतिकथा (केवल) रूप तो वे परन्तु प्राकृतिक सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यास नहीं—यह पाश्चात्य प्रभाव का प्रत्यक्ष फल है। इस परिप्रेक्ष्य में प्राचीनक बंगाली उपन्यास पर दो प्रभाव स्वीकार किये गये हैं भारतीय परम्परा की रोमान्स 'उत्कथा' एवं 'नीतिकथा' का तथा पाश्चात्य परम्परा के 'सामाजिक' एवं 'ऐतिहासिक' उपन्यास का। एक दूसरे विद्वान ने बंगाली क प्राचीन उपन्यासों के तीन वर्ग किए हैं (क) 'लोकप्रियक' तथा 'आदित्य टाट्ट-विशे-

१. 'राजकुमारी' उपन्यास के रूप में विचारण से।
२. 'कपटी' उपन्यास पर 'हिन्दी' शरीर का विचारण।
३. 'निहारा' शरीर का उपन्यास।
४. 'मिश्र' शरीर का उपन्यास।
५. 'कपट' शरीर का उपन्यास के उपन्यास से।
६. 'विश्व' शरीर का उपन्यास।
७. 'श्री' शरीर का उपन्यास, १० १२२

पेर अल्पविस्तर स्वल्प-विशेष थाछे (क) 'अध्वुत रससमक उपकथा' 'आदि रसात्मक पुरानी रोमान्टिक आकाशिका' 'नीतिमूलक काहिनी' (ग) 'ऐतिहासिक काहिनी'। हिन्दी में इनमें से प्रथम नवें को सामाजिक और दूसरे को 'नटमाला' कहा गया है। अन्धभाषा में सामाजिक उपन्यास का श्रेष्ठतम ठाकुर के 'अन्धमेर घरेर कुशल' (सन् १८२८) से ऐतिहासिक का यूँके मुन्शेबाघ्याय के 'ऐतिहासिक उपन्यास' (प्रथम जिल्द सन् १८२७ द्वितीय जिल्द सन् १८३२) से तथा अध्वुत उपन्यास का रामचन्द्र मट्टाचार्य के 'अध्वुत उपन्यास' (सन् १८३२) से सुरुवात हुआ था।



सामाजिक उपन्यास

सामाजिक जीवन की रेखाएं

पारिवारिक जीवन और साहित्य के सम्पर्क से हमारे समाज में जो घनेक किया प्रतिक्रियाएँ हुईं उनसे नव युग का सूचपात माना जाता है। इस नवचेतना का इतिहास सामान्यतः दो कालों में विभक्त है—कांग्रेस पूर्व-काल तथा कांग्रेस-काल। सन् १८२१ में राजा राममोहन राय ने 'सम्भार कोमुरी' नामक पत्रिका द्वारा सामाजिक धर्ममुन्धान का कार्य अपने हाथ में लिया। सन् १८८१ में महर्षि ब्रह्मानन्द ने निर्बाण-नाम किया। सन् १८८५ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। इस प्रकार धर्मयम की मुखिया के लिए सन् १८२१ से १८८४ तक का काल राममोहन से ब्रह्मानन्द तक के नेतृत्व का युग कांग्रेस-युग नाम से परिचित किया जाता है। हिन्दी के प्रथम साहित्यिक उपन्यास परीक्षा-मुक्त की रचना (सन् १८८२) के साथ-साथ काद्य स-पूर्व-काल का प्रवृत्त हो रहा था परन्तु उस युग की चेतना का प्रभाव सामाजिक जीवन पर बलि सीमाका बान काण्ड (सन् १९१७) तक चलता ही रहा। फलतः हमारे आलोच्य काल (सन् १८८२ से १९१८) को काद्य स-पूर्व काल की चेतना ही अधिक प्रभावित करती रही है।

बंगाल में

पारिवारिक किरणों का आलोच्य सर्वप्रथम बंगाल में विकसित हुआ था। इसके वैचारिक राजा राममोहन राय (सन् १७७२ से १८३३ तक) हैं। राममोहन के व्यक्तित्व में शारीरिक सुधारक एवं राजनीतिक सीमा का सुन्दर समन्वय था। उपनिषदों का विस्तार करते हुए वे जीवन की प्रवृत्त से उत्पन्न हो उठे परन्तु समाज की दुर्दशा ने उनके मन को क्षिप्त कर दिया तब उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि सांस्कृतिक प्रतिभार (एसेंस इन सिमिलिटाइजेशन) एवं सामाजिक आतिथेय (डिविजन इन्टू कास्ट्स) भारतीय जीवन के धर्मशास्त्र हैं इसलिए कम से कम राजनीतिक लाभ एवं सामाजिक मुक्त के लिए तो विद्यमान धर्म-रीति में कुछ परिवर्तन आवश्यक ही होने चाहिए।

१ बिप्लो आन्ध्र रीतिरिक्त बीर प्रीति ३

२ दि इतिहास कर्त आन्ध्र राममोहन राय, दि आन्ध्रिक रीतिरिक्त ३ १४३

३ गरी १० ४३

उस युग में संघ जी शासन तथा संघ जी सम्पत्ता जूना की दृष्टि से नहीं देखे जाते थे बरबास ने नबाबी दरवाजों से कूटकर संघ जी सम्पत्तियों में संशोधन की बात भी की सत्य दृष्टि था एवं धार्मिकों के प्रति समान व्यवहार करने के लिए नबाब के रिश्तेदारों की अपेक्षा ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारी धार्मिक निरवस्थानीय थे। फलतः बंगाल के जमानों में भी संघों को रक्षक एवं पालक माना गया। जमानों में राममोहन जैसे प्रमुख व्यक्ति का यह प्रस्ताव था कि यदि बहुसंख्या में सभ्य अंग्रेज लोग भारत में बस सकें तो देश की राजनीतिक उन्नति^१ बहुत ही सकती है। राममोहन को भारतीय गौरव का सतत विश्वास नहीं था जिसकी कि सामाजिक सुधारों की विन्या उनके विचार इतने सामयिक थे कि उनको धर्म का पराग सुरक्षित न कर सका। उनको हिन्दू, मुसलमान या ईसाईयत तक सीमित नहीं कहा जा सकता क्योंकि वे किसी विशिष्ट विचारवादी में बँधे हुए नहीं थे। एक बार ईसाईयत में उन्होंने यह मत माना कि कानूनी धर्मशास्त्र में मुसलमान बढ़कर हैं इसलिए वे हिन्दुओं की अपेक्षा न्यायविकरण के लिए धार्मिक उपर्युक्त हैं। अतएव सन् १८३२ के पार्लियामेंट अधिनियम के अनुसार^२ एक अंग्रेज अधिवक्ता के भारतीय सरकार के लिए योजनाएँ—मादक^३ लिखकर प्रस्ताव रखा था कि राजा राममोहन राम को भारत का पब्लिक जजमान बनाया जाये न्यायविकरण के सब पक्ष मुसलमानों को मित्रों और मानविधाय के पक्ष हिन्दुओं को तथा बुद्धि ईस्ट इण्डिया या इण्डो-ब्रिटिश लोगों के हाथ में रहे।

राममोहन के बाद बंगाल का मेलन समन्वित न रह सका। राममोहन के अनुयायियों में से वैद्यनाथ ठाकुर और हरिचन्द्र मुखर्जी ने उनके सामाजिक सुधार स्वीकार किन्तु गोविन्दचन्द्र बसु ईसाई हो गये और राधोपाल घोष प्यारीचन्द मिश्र निरीपणध घोष आदि नेताओं ने हिन्दू धर्म को ही सम्मान्य बोधित किया। परम्परा सम्पत्ता का सब निरपवाद स्वागत न होता था। संघर्षी पंडितों के विपरीत प्रतीकित बंगालियों ने भी संघर्षी प्रभाव की भारतीय समाज के लिए वास्तव पाया। फलतः राजनीतिक-धार्मिक परा सामाजिक-धार्मिक पक्ष से प्रलग माना गया। समाज की सम्पूर्णता के लिए भारतीय धर्म-रीति में परिवर्तन आवश्यक न समझा जाने लगा। बंगाल के प्रथम साहित्यिक उपन्यास 'पञ्चांग के चरित्र' के लेखक एवं समाज धर्म के नेता प्यारीचन्द मिश्र ने इस बात पर जोर दिया कि विवाह बालविवाह, धुमायूँ भाव एवं

१ हिन्दी भाषा, १ ११८

२ सन् १८३२ के पार्लियामेंट अधिनियम में कुछ नए राज अधिकारों के लिए, जो बंगाल में राजा राममोहन के लिए थे लिखे थे—

He deemed the English more capable of governing his countrymen well than the natives themselves. (20)

(Life and Letters of Raja Ram Mohan Roy)

३ हिन्दी भाषा १०६

मूर्तिपूजा विषय सामाजिक-धार्मिक (सोशल एण्ड रिलीजियस) हैं। इसमिए ये सरकारी कानून (लेजिस्लेशन) के क्षेत्र नहीं हैं। सन् १८७९ में राजनारायण बसु ने 'नेशनल सोसाइटी' में एक सम्मीर व्याख्यान दिया जिसका विषय था—'हिन्दू धर्म की धन्य सब बर्गों से खेप्टा'। इन्हीं दिनों राजा कमलहृदय बहादुर एवं काशीकृष्ण बहादुर ने 'समाज न धर्म रक्षिणी सभा' की स्थापना की और इस विशेष अवसर पर स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती को विशेष निमन्त्रण पर कसकता बुलाया।^१ इसी समय केसवपन्थ सेन ने रामकृष्ण परमहंस के सपुत्रदेशों द्वारा नवविशित नवयुवकों के मन में भारतीय धर्म्यता एवं संस्कृति के प्रति भगुराम एवं सम्मान जगाने का सफल प्रयत्न किया। यह बंगाली जन-पुति का दूसरा युग था जिसमें समाज-सुधार का एक यूरोप के हजर-उधर बूम कर बमकने की अपेक्षा धात्वसंस्कार द्वारा डीपठ होने लभ गया था।

हिन्दी क्षेत्र में

हिन्दी-क्षेत्र में इस पुनरुत्थानवादी धात्वोलन का खेप महर्षि ब्रह्मानन्द द्वारा प्रतिष्ठित 'धार्म समाज' को है। इसकी कतिपय स्वकीय विशेषताएँ हैं। प्रथम तो इसकी प्रेरणा बिदेशी प्रभाव न होकर धात्वविवर्णन है। इसमिए यह धर्षणी धापा-संस्कृति को प्रताबस्वक ही नहीं बाणक समझता है और बेशाबि प्राचीनतम धार्म बर्ग-धन्वा को धार्मसं अनुकरणीय एवं प्रमाण मानता है। दूसरे, समाज की राजनीतिक-धार्मिक पुर्ववस्था से सुपरिच्छिन्न होते हुए भी इसका मूल मन्ध धार्मधायक द्वारा राष्ट्र का धात्वुत्थान है। तीठरे हुए को बगाना ही परीप्य है जगा हुआ भोजन की व्यवस्था तो स्वयं कर लेता। तीठरे माध्मम संस्कृत एवं हिन्दी होने के कारण इसका प्रभाव कतिपय दिने चुने लोगों पर ही न होकर जन-सामान्य पर रहा है। ब्रह्मसमाज के कुछ समय बाद धार्म समाज की स्थापना (सन् १८७५) हुई परन्तु बंगाली चेतना के द्वितीय जवान से पुर्व ही समस्त देश में महर्षि ब्रह्मानन्द का यथ डील मया था। कमल कसकता सनावन-धर्म-रक्षिणी सभा की प्रतिष्ठा के अवसर पर ब्रह्मिन्वीभायी नेदाधों ने श्री स्वामी ब्रह्मानन्द को विशेष निमन्त्रण देकर उनका गौरव स्वीकार किया। हिन्दी उपन्यास के प्रथम काल (सन् १८८२ से १९१८) का प्रविकाशित धार्मसमाज (स्थापित सन् १८७५) ही धार्मिक प्रभावित करता रहा है।

धार्मसमाज के सामान्यतः दो पक्ष माने जा सकते हैं—(१) वैदिक विचारधारा में अटुट विश्वास एवं (२) समाज में विद्यमान कुटीरिधों का वैदिक धालोक में निरा करन। प्रथम पक्ष को पारिभाषिक ब्रह्मधर्मी में 'धास्तिकता' कहा जाता है क्योंकि वैद-निन्दक को 'धास्तिक' की उपाधि हमारे यहां परम्परा से प्राप्य है। धार्मसमाज का तीसरा विषय—'वैद सब सग्य विद्याधों की पुस्तक है' केड का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब धायों का परम धर्म है—इसी धास्तिकता का धाधह करता है। हिन्दी-

धर्मसमाज ने वैवशाह मान कर जिन मतों और रीतियों का सङ्गन किया उनके विषय में मतभेद स्वाभाविक था। परन्तु जो सम्प्रदाय हिन्दू धर्म से घसग माने जाते थे उनका सङ्गन सबसे अधिक प्रिय तथा सभी हिन्दू नेता इसीलिए और ईसाइयत से हिन्दूधर्म को बचाने में एक-मत रहे अंग्रेजी सम्प्रदाय में कुप्रभाव भी सब लोग स्वीकार करते थे। किछोटैलाम बोस्वामी ने मुसलमानों का भविष्य विचार किया है। वेवकीनन्दन शर्मा ने मुसलमानों के धर्म के विचारों को बुराचारिण बर्हमान समाज एवं विचित्रता राजम कपतन का मूल कारण माना है। स्वामीकिछोर बर्मा ने 'क्रिश्चियनिटी' की तुलना विपरीत भय कर सर्व से की है। परन्तु, वहाँ तक यह हिन्दू मतों का सम्बन्ध है उस काल के सभी उपन्यासकार एकमत हैं कि वे हिन्दू धर्म के लिए बाधक हैं उनसे बच कर ही हिन्दूधर्म रक्षित एवं बृद्ध रह सकता है। यह बृद्ध बच उन मतों का है जो भारत में जन्म लेकर भी वैद-शास्त्र का विरोध करते थे। इनमें नाम धर्म मुख्य है। अन्य सामाजिक मत भी इनके अन्तर्गत हैं। धर्म समाज ने इनका सङ्गन किया और सब हिन्दुओं ने इस सङ्गन को स्वीकार कर लिया। जैन और बौद्धमत भी वैव-शाह हैं परन्तु जैन मत हिन्दी साहित्य के आरम्भ काल से ही वैदिक मत का सहचर बन कर रहता आया है इसलिए 'सत्याग्रहप्रकाश' में सङ्गन होने पर भी किसी उपन्यास में इनके विरुद्ध कुछ नहीं कहा गया अतः धर्मसमाज से प्रेरणा लेकर जोहना निवासी कृष्णलाल बर्मा ने 'धर्म' उपन्यास में जैन समाज से सुधार करने का प्रयत्न किया है। बौद्धमत भारत में दोष नहीं रह गया था उसका विरुद्ध एक दूषित कर ही अनेक मत-सम्प्रदायों में प्रसरित हो गया था।

वैव के अनन्तर दूसरा प्रमाण पुराण है। वैदिक एवं वैश्वमत अपनी शक्ति पुराणों से ही संश्लिष्ट करते हैं। 'सत्याग्रहप्रकाश' ने एकादश सम्प्रदाय में पौराणिकों की तुलना ईसाई पौरों से करके पुराणधर्म की पीपनीला के समकक्ष माना गया है। समाज की अनेक कृषिधर्मों के विरोध में धर्मसमाज ने धार्मिक उठाई की पुराण से ही अपना उत्पन्न मानती है। अतः धर्मसमाज का सबसे बड़ा विरोध हिन्दुओं ने पौराणिक रीतियों के सङ्गन पर किया। बलात् में 'ब्रह्मसमाज' की स्थापना बायोरीम उच्छ्वास से हुई थी। इसलिए राममोहन के बाद आत्मविश्वासी हिन्दुओं ने 'सनातन धर्म' नाम से अपना संगठन किया। 'धर्म समाज' कुछ भारतीय धान्दासन है फिर भी इसके सङ्गन से बचने के लिए पौराणिक हिन्दुओं ने 'सनातन धर्म' नाम से ही अपनी रक्षा करना चाही।

उपन्यास-साहित्य

प्राचीन-काल की प्रीतिता में अधिकतर सामाजिक उपन्यास वैदिक और पौराणिक धर्मों का धर्मसमाज और सनातनधर्मों विचारधारा का विरोध ही विचार करते हैं। एक ओर ईसाई धर्म की कहानियाँ सुना-सुना कर अपने धर्म का प्रचार कर रहे थे दूसरी ओर हिन्दुओं ने अपने प्रतिपादन तथा इतर के सङ्गन में रोचक कथाएं रच कर उपन्यास के विकास में योग दिया। अतः, विचारधारा की दृष्टि से उन सामाजिक

उपन्यासों के तीन बग बन सकते हैं — (क) धार्यसमाजी (ख) समाजनी घोर (ग) सामान्य-सुधारवादी । धार्यसमाजी उपन्यासकारों में स्वामीविश्वेश्वर वर्मा हृदयमाम वर्मा घोर अद्वैत वर्मा के नाम लिखे जा सकते हैं । समाजनी उपन्यास-लेखक किशोरी-साम पोद्दामी बनाप्रसाद कुल घोर सत्यनाथ वर्मा धारि हैं । वीर सुधारवादी उपन्यासकारों में रामजीशश ब्रह्म समाध्यासिह उपाध्याय ब्रजनन्दन सहाय मम्मन द्विवेदी धारि मुख्य हैं ।

सामाजिक उपन्यासों का विषय-वस्तु की दृष्टि से दूसरा वर्गीकरण भी हो सकता है । 'परीक्षा घुड़' (सन् १८८२) 'नूतन चरित्र' (सन् १८८३) 'नूतन बहू-बादी' (सन् १८८६) 'निम्नशालि हिन्दू' (सन् १८८६) 'सौ धनान घोर एक सुदान' (सन् १८८१-८२) 'कुम्हार सरोजिनी' (सन् १८८३) धारि उपन्यासों में सामाजिक जीवन का पण्डित-मरण नहीं है प्रयुक्त व्यवहारमोक्ष रोमाण्टिक प्रेम बनाबटी जीवन धारि के दर्शन चित्र हैं । ये जीवन का भ्रम हो समझ रहे । धार्य बनकर विचार-बाध में मोड़ धारा जिसका प्रारम्भ किशोरीनाथ मोड़वादी की रचनाओं से होता है । इनमें 'नव्य-नव्य' घोर 'समाज समझ' का तुलनात्मक चित्रण प्रारम्भ हुआ । मम्मन द्विवेदी मुख्य-परिवर्तन के प्रकाश-समझ हैं ।

यस्तु प्रमचन्द-पूर्व-युग के सामाजिक उपन्यासों का अध्ययन निम्नलिखित व्यवस्था के अनुसार करना अधिक समीचीन होगा —

(क) 'परीक्षा घुड़' न घुड़

(ख) 'परीक्षाघुड़'

(ग) 'परीक्षा-घुड़ की परम्परा

(घ) नव साम्राज्य के उपन्यास नवमान वर्मा धार्यसमाजी सामान्य सुधारवादी ।

‘परीक्षा घुड़’ से घुड़

बगला घोर हिन्दी में उपन्यासों का प्रारम्भ सामाजिक रचनाओं से हुआ । यह ठहर रहा जा चुका है कि पाश्चात्य सभ्यता आहिन्व घोर व्यक्तिगत के सम्पर्क में कलरनिया जीवन का कुछ बग बहता जा रहा था जिसकी उत्पत्तीन धार्मिक-सामाजिक नेताओं ने समझ न दिया । फलतः इस 'नव' जीवन को महसूस करके कुछ उन्माही लोगों ने 'नव-धारा' या 'नवन' बीबी पर व्यप-विज्ञान गई हास्वल्पूप सामाजिक चित्र धार्मिक विम । 'नव-बाबु-विनाय' (सन् १८८६) इस वर्ग की प्रसिद्ध रचना है । इसमें लेखक प्रमचनाय वर्मा बगला भवानीचरण बघोराध्याय के । 'नव बीबी-विनाय' 'दुनीविनाय धारि रचना' उनी अनुकरण पर है । इसी वर्ग की परम्परा कुछ बग घुड़ की रचना 'बाबु उपाध्याय' (सन् १८८१) 'भवाचार-वर्णन' नाबक बग में प्रकाशित हुई की । इस प्रकार 'बाबु घोर' 'बीबी' को महसूस कर के सिमी गई इन रचनाओं में नव्य नव्य पर व्यप है 'कल' से रचनाएं नववा साहित्यिक

सुरभि प्रदान नहीं करती 'भव-बाबु-बिलास' में तो कठिपय प्रसंग घरनील बन गये हैं।

कुछ दशाविवर्धों बाद सामाजिक रचनाओं का दूसरा जन्म दृष्टिगत होता है। इसमें सस्ते ब्यंग के स्थान पर भयंभीर शोष-निर्दोष या इसके लतक समाज-मुबार की भावना से साहित्य-क्षेत्र में घाये थे। इन रचनाओं को साहित्यिक उपन्यास का पद प्राप्त हुआ। टेकचन्द डाकुर धनका प्यारीचन्द मित्र का 'घातालेर घरेर दुलाल' (सन् १८३८ ई०) इस वर्ग की प्रथम एवं पूर्वज रचना है। हिन्दी के प्रारम्भिक सामाजिक उपन्यासों से 'घातालेर घरेर दुलाल' का अनिष्ट साम्य है।

घातालेर घरेर दुलाल

'घातालेर घरेर दुलाल' बंगला का प्रथम उपन्यास है। इसके लेखक प्यारीचन्द मित्र का जन्म सन् १८१४ ई० में कलकत्ता में हुआ था। बंगला का रसी और धर्मेजी की विद्या प्राप्त करने के बाद वे सन् १८३६ ई० में पब्लिक (कालाप्तर में 'इंग्लिशमन') लाइब्रेरी में नियुक्त हो गये और मुख्य लाइब्रेरियन एवं सिक्रेटरी पद पर पहुँचे। कालाबाई सेठ के साथ उन्होंने 'कालाबाई सेठ एण्ड कम्पनी' नाम से व्यापार भी प्रारम्भ किया जो १८३३ ई० में 'प्यारीचन्द मित्र एण्ड सन्स' नाम से चलने लगा। सन् १८३४ ई० से प्यारीचन्द मित्र ने एक 'मासिक पत्रिका' निकाली जो 'जर्बसायाम्य विद्यपन अस्पष्टिछिता महिलाओं' के लिए थी। इसी पत्रिका में बारा प्रकाश रूप से 'घातालेर घरेर दुलाल' छपा था इसका पुष्पकाकार प्रकाशन सन् १८३८ में हुआ।

बंगला साहित्य की दृष्टि से 'घातालेर घरेर दुलाल' का दो प्रकार का महत्व है। इससे पूर्व ईश्वरचन्द्र बिद्यासागर की संस्कृत-बहुभाषा बंगला भाषा साहित्य में प्रतिष्ठित थी परन्तु 'मासिक-पत्रिका' और विशेषतः 'घातालेर घरेर दुलाल' ने 'मोक्ष-प्रचलित सङ्घ बंगला' का जन्मदाता किया। यह 'घातालेर घरेर दुलाल' बहुत समय तक 'ईश्वरचन्द' और 'घातालेर' भाषाओं का विरोध बना। जिसका समझौता 'बंकिमी' भाषा में हुआ। 'घातालेर' की रचना भाषा की दृष्टि से सुव्यक्तकारी है। दुमरा महत्व यह है कि 'घातालेर घरेर दुलाल' बंगला का प्रथम उपन्यास है जो सामाजिक उपन्यासों में धात्र भी बपाव विषय के कारण सम्मान प्राप्त करता है। इसका द्वितीय संस्करण सन् १८७० में निष्पन्न था। सन् १८८२-८३ में नरेन्द्रनाथ मित्र ने 'दि स्वीटरड बाब' नाम से और सन् १८८३ में ओ० डी० बोम्बेस ने 'दि स्वीटरड बाइरड ए टेल थाफ हिन्डू डोमेस्टिक साइक' नाम से इसका धर्मेजी में अनुवाद किया। हिन्दी में 'घातालेर घरेर दुलाल' का कभी अनुवाद हुआ हो ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता।

'घातालेर घरेर दुलाल' की धर्मेजी में 'प्रीयेम' और बंगला में 'भूमिका' लेखक द्वारा ही लिखी गई है। धर्मेजी प्रीयेम में लेखक ने इस रचना को 'मौलिक उपन्यास' ('मोर्टिजियन नावेल') गया अपने रंग की प्रथम रचना ('दि कर्टे बर्क थाफ दि काईड') बतलाया है। इसका उद्देश्य सामान्यतः नागरिक जीवन और विशेषतः हिन्दू-

समाज के रीति रिवाज का विचित्र करने हुए बच्चों के संशोधन विकास विद्यमान शिक्षा एवं धार्मिक संस्कृति का वर्णन था। बंगला भूमिका में उसने बताया है कि जिस देश में धार्मिक साग पुस्तकालि पढ़ने में समय व्यय नहीं करते वहाँ उपन्यासों का विशेष प्रादुर्भाव होता है। इसी को महसूस करके उसने उक्त उपन्यास की रचना की है। पुस्तक को पढ़कर भी मही निष्कण निकलता है कि जिसके वा उद्देश्य गम्भीर एवं रचनात्मक है वह तत्कालीन हिन्दू-समाज की दुर्दशा का मूल कुक्षिमा में पाता है जिसके कारण धार्मिक-संस्कार सम्भव नहीं हो पाता। कुक्षिमा का प्रभाव उत्तराध्यात्मिक माता-पिता का अनुचित साह-प्यार है और यौन है शिक्षकों की साधनीय दशा।

'आत्मालोक चरेर बुझाव' में ३० अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में बाबू राम बाबू का परिचय और उनके एकमात्र पुत्र एवं उपन्यास के नायक मतिमान की बचपन संस्कृति तथा पारसी शिक्षा का वर्णन है। फिर उसकी संवेदी शिक्षा के निमित्त कलकत्ता नगर में प्रवेश की शिक्षा का वर्णन किया गया है। नायक कुशल में पड़ गया। पुनित ने उसे गिरफ्तार कर लिया। प्रत्येक कलकत्ते की पुनित म्यामातय धार्मिक का विचित्र भाषा है। मतिमान के विवाह प्रत्येक से महान-मात्र की रीति प्रचार्य धर्म की गई है। बहु विवाह आदि धार्मिक की चर्चा प्रत्येक से गई है। पुनित और मुकुन्द ने धर्म के धर्म विचार विवेक और बेगार, जमींदार और सामाजिक जीवन विषय विवेचना के स्वतन्त्र रहे हैं। धर्म में मतिमान बाराबती बना जाता है और सत्य से निज-मुक्ति करने का प्रयत्न करता है। इस उपन्यास का मुख्य ब्योक्ति यह दिखाता है कि जमींदार सम्पत्ति धार्मिकों के पुत्र साह-प्यार के कारण धर्म की शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। धर्म में जब पाप का बड़ा भर जाता है तब धर्म गूनी है। परन्तु उन समय भी निज-मुक्ति के बिना साधित नहीं मिल सकती और निज-मुक्ति का एकमात्र उपाय मत्तव है। उपन्यास धर्म और सत्य, मनुष्य का सत्यार कथन इन्हीं दो में जाता है। इनके समाज में मन संस्कार से वंचित ही नहीं रहता बिनार की ओर भी धर्मात्मक बना जाता है क्योंकि मन स्थिर नहीं रह सकता यदि समाज की ओर न में जाओगे तो बुझाव की ओर बना जाएगा। आत्मालोक धर्मात्मक धर्मिकों की समाज दशा प्रचार कुशलित बन कर विमर्श जाती है।

आत्मालोक

'आत्मालोक चरेर बुझाव' (मन् १८३८ ई०) और 'बरीसा बुझ' (मन् १८५२ ई०) के बीच बचपान में बरिचमन्त्र के ऐतिहासिक उपन्यास तथा हिन्दी में दो सामाजिक उपन्यास उपन्यास हैं—'आत्मालोक' तथा 'एक बहाली कुछ घात बोली कुछ बच बोली'। बहाली के प्रसिद्ध हिन्दी बचन एवं सामाजिक पैना में धर्मात्मक धर्मिकों की 'आत्मालोक' (मन् १८७७ ई०) का धार्मिक रामचन्द्र मुकुन्द ने हिन्दी का प्रथम उपन्यास बताया है। कुमारी की नाहिरीयक नहीं वे मूलतः समाज-मुद्धारक ने 'आत्मालोक'।

१. इन उपन्यासों का प्रत्येक दोहरा अध्याय में था कुछ है।

की रचना उन्होंने इस उद्देश्य से की थी कि उसको पढ़ने से 'भारत खण्ड की स्त्रियों को घृहस्थ धर्म की शिक्षा प्राप्त हो'। इस रचना को मनीष सीनी का 'उपन्यास' कहने में संकोच होना। मायिका मायवती ही नहीं सभी पात्रों में धार्मिक मुक्त की स्थापना की गई है। धामे बमकर धार्मिक पृष्ठभूमि पर जो सामाजिक उपन्यास लिखे गये उनमें धृ-मन-धृ का हम्ह एवं चरित्रांकन का प्रयत्न बिलम्बाई पड़ता है। मस्तु यदि सहज एवं स्वाभाविक शैली में समकालीन जीवन का वैयक्तिक दृष्टिकोण से मधार्मिकवादी विषय धार्मिक उपन्यास की कसौटी है तो 'मायवती' को उस वर्ग में स्थान देना सम्भव न हो सकेगा।

एक कहानी, कुछ धारणीती कुछ बगानीती

'एक कहानी कुछ धारणीती कुछ बगानीती' भारतीय हरिश्चन्द्र की अपूर्ण रचना का प्रस्ताव है। यद्यपि इसका उठना ही माय मिलता है जो 'कवि-बचन-मुखा' (वैताल संवत् १८३३ वि.) में छप गया था फिर भी उससे लेखक की योजना का अनुमान लगाया जा सकता है। यह कहानी नहीं उपन्यास है। आत्मकथात्मक शैली में होने के कारण इस रचना से आत्मकथा की भी गन्ध धा सकती है। लेखक ने इसका वर्गीकरण 'सेतों' में किया था प्रस्ताव केवल 'प्रथम सेत' मात्र ही है। इस पृष्ठी धीरे धाकाव के बीच ईश्वर ने जो धृष्टि की है वह अत्यन्त रहस्यमयी है। यही रहस्य इस 'सेत' की कड़ी है जिसका संकेत धीर्धृष्ट धीरे से मिलता है :—

धर्मीने बमन धुन बिलाली है क्या क्या ?

बमलता है रंग धाधमा कंठे कंठे ?

'प्रथम सेत' में ४ पैराघाफ हैं। प्रथम पैराघाफ में नायक अपना परिचय देता है जिसका प्रारम्भ अत्यन्त नाटकीय है 'हम कौन हैं धीरे किन्तु धुन में उत्तम हैं धाधम नोय पीछ जायेंगे। धाधम नोयों को क्या किसी का रोना ही पड़े बसिए की बहाने से काम है'। यह 'कहानी के उमरों में बुर, बमाने के ऊँच-नीच से बेलबल, अपनी रसिकाई के नसे में मस्त धुनिया के मुक्कलारे सिफारसियों से बिरा हुआ' है धीरे किन्तु-राधस्या की लहर में प्रेम की मनी भाँति पहचानता है। बूझते, लौझते धीरे बीजे पैराघाफों में उत 'मुक्कलारे सिफारसियों' (कुसामधियों) का वर्णन है। धीरेन बलसम्यति धधिकार, धीरे धधिवेक से बार धुर्धुन जहाँ इकट्ठे हो जाते हैं वहाँ क्रिसमन ही नहीं धुँह के बल पिरता है। नायक में वे धारों धुर्धुन हैं जिनके कारण उसे अपना माबी जीवन विपादमयी परिस्थितियों में बिलाला पड़ता है। 'धामान' का नायक मठिलाल धनुषित साङ्ग-ध्वार से बिलग गया था धीरे 'परीक्षा-मुक्त' का नायक मयनमोहन धधिवेक के कारण बरबाद हो गया। इस कथा का नायक धारों धुर्धुनों का केन्द्र है उसके साम धिक जीवन में भी धाधनत सत्य झोंक रहा है संसार में मधार्मिक धधिवेकी धुवक धम्म

१ जो लिख 'मायवती' के लिख में लिखलता है वह वैरागी मिठावी की कथानी के लिख में भी सच है।

सेठे रहते हैं जिनके पास धन तथा अधिकार का बंट है और इसी कारण जो अपना प्रभुत्व जीवन मिट्टी में बिना देते हैं। बंगला उपन्यास की प्रेरणा भारतेन्दु की रचना में धास्वत तरह धबिक्त है जो गौरव का चिह्न है। 'परीक्षा-गुरु' का नायक किछोर नहीं बौद्ध मुक्त है दृष्टिपूर्वक जीवन में महपित्त और धारण तो है पर बिना धीर बाधना नहीं। परन्तु प्रस्तुत नायक पर 'ज्योती जान बारी' है और 'देस बिना ठग रही है' क्योंकि वह इस छोटी प्रवस्था में भी प्रेम को मनी माति पहचानता है। नायक के पग की मह बहानी वस्तुतः पूर्ववर्ती बंगला उपन्यास और परवर्ती हिन्दी उपन्यास से धबिक्त 'जो बहाने बांधी जाती'।

भारतेन्दु की इस रचना में सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण है। उस युग में ऐसे रईमों की कमी नहीं थी जो रातदिन जीवन का मुक्त भोगने के लिए कज के-नैकर दीवानघाने को सुभासदियो की सजाह से सजावा करते थे। इस बरबारी में हिन्दी और मुसलमान दोनों ही के बलाग बबाज जोहरी बहुत सभी पसि दखते और स्वामि भक्त बनने थे। कोई कल की लारीक करता था कोई बुजों की किमी को घपूड़ी पतल घाई किसी को बकूतर। जो बहुत पल्लव है वे कर्ज दिमाने का प्रवस्थ करते हैं। पैसा उधार लेना और पर्व करना—दोनों ही के मुनाहिबो का कमीछन बसा हुआ है। जिस वस्तु की लरीज में जितना धबिक्त कमीछन मिने उसमी ही धबिक्त प्रधना उसकी बीबा लगाने में होती है। इस बाठाबरध का लमबल धीनिबामराम की रचना से भी होता है।

परीक्षागुरु

हिन्दी के प्रथम मौलिक उपन्यास 'परीक्षागुरु' के लेखक नामा धीनिबामराम (मृ १८२१ म मृ १८८७ ई. तक) का जन्म मरुा के एक माहौरवी बंस परिवार में हुआ था। वे बड़े मेरावी नाबवान तथा बरहरकृपण थे। किछोराबसा पार करते ही वे हिन्दी की कोरी के प्रधान बन गये। मयाज और सरकार बानों में इनका बड़ा सम्मान था। धान हिन्दी के म्युनिमिशन कमिशनर तथा धानरेरी मेडिसिन ट की निपुक्त क्रिये बने। लालाजी की मयुव्यगरी के विद्या में इनका यत्नाधारण अनुपम था। विश्व इतिहास माहिर और नीति का यबाह मन्डार इनकी रचनाया में मय बसा है। 'परीक्षागुरु' के हिन्दी मरुत यथ जो ही नहीं धारमी और धारवी तक के उठरधी में उनरी बिठता का कुछ अनुमान लग सकता है। विश्व-माहिर और विश्व इतिहास का जितना ज्ञान लाला धीनिबामराम की इन रचना में है उसका हिन्दी के किमी उप न्यास में तो जितना ही नहीं उपायोगेन रचना म भी जितना बटिन है। धामित बैलन का बुद्धि बैबल उनसे मरुत ज्ञान हो गया था। बारिबार्मिक बयारार यवकताप की बलागुरुंड निकाले हुए इनका बरबीर पारिशरय था तो ययसेकरययार में का मा धीनिबामराम थे। लालाजी के बार माटक और कैवल एक उपन्यास की रचना की वरन्तु उनका प्रमिड माटक 'रघुपीर और प्रेमबोहिनी' भी धाने धेन में धिरोमबि है एक उपन्यास उपन्यास 'परीक्षागुरु' भी। धाने 'मयाररी' नामक बज विद्याता और

समकालीन पत्र-पत्रिकाओं में भी धाप मिलते रहे ।

‘परीक्षापुर्ब’^१ ४१ प्रकरण धीरे २७६ पृष्ठ की रचना है । लेखक ने इसको धप बी में नाबेल धीरे हिन्दी में संसारी नागा कहा है ‘उपन्यास’ नाम नहीं दिया । मुख-पृष्ठ पर ‘परीक्षा पुर्ब’ की व्याख्या लेखक ने ‘अनुभव द्वारा उपदेश मिलने की एक संसारी नागा’ लिखकर की है नीचे कतिपय स्थलों पर इस नाम की व्याख्या संक्षिप्त है —

- (क) धावक सच्चे मास की निश्चित नकली या झूठे मान पर व्यापार चमक हमक मामूम होती है । (प्रकरण ४ पृ० १०)
- (ख) परीक्षा रूप बिना किसी को सूचना मिल भी नहीं कह सकता । (प्रकरण २ पृ० ३४)
- (ग) मने कुदे मनुष्यों की परीक्षा समय पाकर अपने धाप हो जाती । (प्रकरण ६ पृ० ४३)
- (घ) ऊपर से बिजाने वाले लोग अपना निज स्वभाव छिपा कर सज्जन बनने के लिए सच्चे सज्जनों के स्वभाव की नकल करते हैं परन्तु परीक्षा के समय उनकी नकल तत्काल खुल जाती है । (प्रकरण ११ पृ० ८०)
- (ङ) जो बात छी बार समझने से समझ में नहीं आती वह एक बार की परीक्षा से सभी भाति मन में बैठ जाती है और इसी बातसे लोग ‘परीक्षा (की) पुर्ब’ मानते हैं । (प्रकरण ३७ पृ० २७१)

इन घटकरनों से स्पष्ट है कि कौन द्वितीय मित्र है और कौन बनाबटी मित्र है इस परख की समझ दूसरे के उपदेश से प्रायः नहीं आ पाती परन्तु कठिन समय आने पर यह सिद्ध हो जाता है कि सच्ची मित्रता और झूठी मित्रता में क्या अन्तर है तब व्यक्ति परीक्षा से ही स्वयं शिक्षा लेता है । अतः मनुष्य को विवेक सिखाने वाला सबसे बड़ा गुरु कठिन समय की परीक्षा है । पुस्तक का ३३वाँ प्रकरण ‘मित्र परीक्षा’ ही है । रहीम कवि के शब्दों में—

रहिमन बिपदा हू भली जो बोहै दिन होय ।

दिन प्रसन्नित या अगत में जान पड़े सब कोय ॥

इसी ‘बिपदा’ को इस रचना में ‘परीक्षा’ कहा गया है । ‘अनुभव द्वारा उपदेश मिलने की एक संसारी नागा’ इस भावना में अनुभव ही ‘परीक्षा’ है ‘उपदेश’ ही ‘पुर्ब’ का कर्म है ‘संसारी नागा’ रचना की जाति है । मुख-पृष्ठ पर लेखक ने निम्न नीति से इस रचना का सार-स्वरूप जो शोक उद्धृत किया है उसका भावार्थ है कि ऐश्वर्य में एक प्रकार का मग्न होता है जो महिला धारि के मन से धार्मिक बातें हैं क्योंकि दूसरे मन तो कुछ काम की धर्मादि पर उत्तर आते हैं परन्तु ऐश्वर्य का मन तब तक नहीं उठता जब तक कि मनुष्य पर जोर निहित न आवे । ‘परीक्षा पुर्ब’ का नायक

१ द्वितीय बार : प्रकाशक मोतीलाल साह, सभी नाम-वर्ण-लिपि (सारणीकृत) हैं —
१११ हरिचन्द्र रोड कलकत्ता ।

विशेष के घाने पर ही होत में आया और मित्र-मित्र की पहिचान करने योग्य बन सका ।

'परीक्षा' पुन की प्रकाशन-तिथि सन् १८८२ वाली जाती है। द्वितीय मुद्रण से पूर्व मजदूर का स्वयंसेवक (सन् १८८७) हो चुका था क्योंकि 'द्वितीय बार' प्रकाशित प्रति में लेखक का नाम स्वयंसेवक श्रीनिवासदास लिखा है । सन् १८८४ में लेखक ने 'न' रचना का समर्पण करने में 'माता श्रीराम एम. ए.' को किया था । यह समर्पण घ बड़ी में है । इनसे माता श्रीनिवासदास की माता श्रीराम से अनिष्ट विवता (सिन्धोपर छँडविष) का पता चलता है । और यह भी स्पष्ट मिलता है कि माता श्रीराम देवदासियों की उन्मत्ति एक उत्थान में बड़ी शिवरक्षी लेते थे । यह समर्पण द्वितीय मुद्रण का तो है नहीं क्योंकि उस समय तक लेखक अपनी इहमीला का संवरण कर चुके थे प्रथम संस्करण का ही हो सकता है । यहाँ यह अनुमान युक्तिसंगत होगा कि 'परीक्षापुन' का प्रकाशन सन् १८८२ में प्रारम्भ होकर सन् १८८४ तक पूरा हुआ था । मुन्नी पर प्रकाशन-तिथि न होने से यह समस्या उत्पन्न होती है । परन्तु इस का उत्तर उस नाम की इस सामान्य प्रवृत्ति में भी मिलता है कि रचनाएँ पहिले पकि-बादों में उपरी भी फिर कुछ समय बाद पुस्तकाकार प्रकाशित होती थी । श्रीनिवास दास का 'तत्तासवरण' नाटक 'हरिवन्द्य भिन्नी' में करवरी १८७४ में छपा था परन्तु उसका पुस्तकाकार प्रकाशन सन् १८८३ में ही हुआ । इसी प्रकार 'परीक्षापुन' सन् १८८२ में छप गया होगा । परन्तु उसका पुस्तकाकार प्रकाशन सन् १८८४ में पूर्व हुआ होगा ।

इस उपन्यास के विषय में एक प्रश्न यह उत्पन्न है कि लेखक ने इसको 'तत्तासी बार्ता' क्यों कहा 'उपन्यास' क्यों न कहा । 'उपन्यास' मंदा बनता आया में सन् १८३१ ई. से प्राप्त होने लगनी है । आत्मान (सन् १८३८) के प्रकाशन-काल तक 'नविन' के पक्ष में 'उपन्यास' नाम निश्चित हो गया था । हिन्दी में मारलेमु ने 'नविन' के पक्ष में 'उपन्यास' नाम स्वीकार कर लिया था । सन् १८७८ की 'हरिवन्द्य भिन्नी' में 'नाट्योपन्यास' पारिष्टिक पुस्तिका का विज्ञापन है । जिसमें 'उपन्यास' को 'नविन' का पर्याय माना गया है—'अनेक वृत्तियों में बंजना और घ बड़ी से घटे घटे नाटकों और उपन्यासों (नविन) का अनुवाद करना भी स्वीकार किया है' । यह दो सम्भव नहीं कि माता श्रीनिवासदास 'हरिवन्द्य भिन्नी' के इन प्रकाह से अपरिचित हों और इनको यह ज्ञान न हो कि 'नविन' क पक्ष में 'उपन्यास' नाम चल रहा है । सब यही अनुमान लग सकता है कि घ बड़ी समर्पण में 'नविन' और हिन्दी मुद्रण पर 'बार्ता' मिलने से तात्पर्य है कि 'नविन' का हिन्दी-वर्णन 'बार्ता' माना है । 'उपन्यास' नहीं—बंजना में गई हुए 'उपन्यास' नाम की अनेक सुदृशी में प्रकाशित 'बार्ता' नाम उसकी अधिक उपयुक्त लगा होगा । यह 'बार्ता' पुरानी 'बीरानी' बीरानों की बार्ता एवं बी बी बाबन बीरान

की बातों से इस मूढ़ में भ्रम है कि यह 'समारी' है यद्यपि इसने वर्णन 'मिनिस्टिक' है और 'कालेम्परेरी' भी^१। धीनिबामदास की यह रचना 'अपनी भाषा में नई बात की पुस्तक' की, उसके लिए संघता का नाम रचना भावश्यक नहीं था। यदि हमना से अनुशासनों का इतना दृष्टान्त था थाया होता और प्रथम मौलिक रचना 'परीक्षा सुख की परम्परा में अन्य मौलिक पुस्तकें मिली नई होतीं तो 'नॉबिस' के लिए हिन्दी में 'ममारी बातों' नाम का 'अन बाणा अमममम' नहीं था भारत की धर्म धाधुनिक भाषाभाषा में 'नॉबिस' को 'उपन्यास' ही तो नहीं कहते।

पुस्तक के प्रारम्भ में बार पुष्ठ का 'मिनेशन' लिखकर धीनिबामदास ने अपनी रचना की कतिपय विशेषताओं पर प्रकाश डाला है। ये विशेषताएँ यहाँ कथानक उल्लेख तथा महत्वक पुस्तकों से सम्बन्ध रखती हैं।

'परीक्षा सुख' की खीची मौलिक है। आपसी और उर्दू में उस समय तक 'अनेक तरह की बन्धी बन्धी पुस्तकें तैयार हो चुकी थी परन्तु 'इस रीति से कोई नहीं मिली गई इसलिए अपनी भाषा में यह नई बात की पुस्तक होगी। इन कथन से यह निष्कर्ष स्वामाजिक है कि 'परीक्षा सुख' हिन्दी एवं उर्दू में प्रथम मौलिक रचना है। इस से पूर्व 'पुरानी रीति की पुस्तकें तो बहुत की परन्तु 'नई बात' की यह सबप्रथम है। इस 'नई बात' या 'नई रीति' का सत्य यह है कि पुरानी बान्धी में 'अक्षर नायक नायिका बन्धे का हाल अन्य विलम्बेवार (यथाक्रम) लिखा गया है। जैसे कोई गया बाबसाह बैठ साहूकार का लड़का या उसके मन में इस बात में यह बलि हुई और उसका यह परिचय लिखा' परन्तु इस नई रीति की बातों में ऐसा विलम्बित नहीं होता। इसमें बात पहले से कुछ भी नहीं अछाई गई है। वह पढ़ने वाले बीच में पुस्तक पढ़ लेगे तो अपने अपने भीके पर सब नेत्र खुलता जाता' आपणा। संजन में, इस रीति की बातों का प्रारम्भ नाटकीय होता है और कथानक एवं पात्रों का विकास क्रमशः ही प्रविष्ट किया जाता है। नाटक की रीति से इस रीति का नेत्र बनात हुए धीनिबामदास लिखते हैं कि 'नाटकों में विलम्बित बचन होना है उसका नाम धारि में लिख बैठ है और वह पैदाशाप उसका बचन समझ जाता है परन्तु इसमें उल्लेखिकीमा के भीतर कहने वाले का बचन निम्न आता है और कहने वाले का नाम बचन के बीच में या अन्त में— 'अबना नाम निम्न लिखा' — भी नाम बच आता है। सबक न बहिन की प्रावणरुता को प्रान्त में रखकर लड़ी जायी वध में विरामविम्बों के प्रचलन पर और दिया है।

क्रकानक को दो विशेषताएँ मिलती हैं— हिन्दी के एक कमिशन रॉय का चित्र और उस चित्र को 'जैसे का तैमा (यद्यपि स्वामाजिक) दिखाने का प्रयत्न। ये दोनों विशेषताएँ धाधुनिक उपन्यास की हैं, इसमें कहना के सहारे सफलता प्राप्त

१ 'मिनेशन' में पुरानी बातों और नवीन बातों का एक और नेत्र बल्लाया ग देखाक में है (विशेष)

पड़ा। उस विषय परिस्थिति में सब स्वार्थी मित्र कोई न कोई बहाना करके लियक मये साहूकारों ने पीछे का बकसा दिया। काम भाये केवल बजकिछोर जिन्होंने नायक का उद्धार कराया। उस विपत्ति की परीक्षा में नायक को बिबेक हुआ उसे पता चला कि सच्चा मित्र तो नहीं है जो विपत्ति में काम भाता है। 'परीक्षा' उसकी मुह बन कर उसको समझदार बना गई, जिससे उसका भावी जीवन सावधानी से कटा।

उपन्यास में दो पात्र मुख्य हैं—नायक मदनमोहन और धार्ष्ण्य बजकिछोर। कथानक का समस्त आधार मदनमोहन का जीवन है इसलिए बजकिछोर का व्यक्तिगत सबल होते हुए भी नायक-वश मदनमोहन को ही प्राप्त होता है। मदनमोहन की छिछोर अवस्था की कुछ भ्रमक हमको बाद के वर्णन में मिल जाती है। परन्तु हमारे सामने वह ब्रौह्म-मुक्त के रूप में उपस्थित होता है। वह दो मर्ह-मर्ह बच्चों का पिता है। उसके माता-पिता बीबित नहीं हैं। उपन्यास में नायक का कुछ ही दिनों का जीवन विविविध किया गया है। वह धर्मीर है इसलिए उसके पास ऐश के सिवाय और क्या काम है। वह अत्यन्त दुर्बल है। उसे न मित्र-समिध की पहिचान है न हित-सहित का ज्ञान जिस तरह दुष्टामयी लोक उसे बहका देते हैं उसी तरह वह मुड़ जाता है। समझी सबसे बड़ी कमजोरी उसका झूठा ईश्वर है। प्रशंसा करके बाहे उसके प्राण में बीजिए। स्वर्ग कर्म लेकर दुष्टों को कष्ट देने में वह समझता है कि उसने अपनी प्रतिष्ठा रख ली। बाहे जिसना पैसा कर्म हो बाय परन्तु बाय उसी की रहे—यही उसका मायस है। मड़कर वह बजकिछोर को बर से निकाल देता है परन्तु 'बाबा बजकिछोर के मये पीछे मदनमोहन के भी में कुछ-कुछ पछतावा सा हुआ—सोच विचार में बड़ी देर बैठे रहे परन्तु मन की निर्बलता से कोई बात निश्चय न कर सके'। मदनमोहन के दुर्बल स्वभाव की उसकी पत्नी तक समझती है परन्तु उसे यह भी विश्वास है कि बजकिछोर के कारण सब कुछ ठीक रहेगा। मदनमोहन को हिन्दी फारसी और अरबी की शिक्षा मिली थी परन्तु उसको सखंमति न मिल पाई, 'और सखंम बिना जित पर अक्षर नहीं होता'। अस्तु 'उरनाई की तरन सिन्धूदयाल और और कुलीनाम प्रादि की समति इन्व और अतिकार के मये में ऐसा बकचूर हुआ कि सोह-वरसोह की कुछ टावर न रही'। नायक का व्यक्तिगत इतना दुबल है कि बजकिछोर के उपदेश भी वह सुनता है और दुष्टामयियों की सलाह भी। उसे मड़का बीजिए वह छट हो जायगा उसकी तारीफ कर बीजिए वह पिथम जायगा। न उसके व्यक्तिगत में कोई हिमाय किताब है न जीवन में। उसमें कामना (विध) है, रक्षा (विचार) निश्चय (डिटरमिनेशन) और क्रिया (एक्शन) नहीं।

बजकिछोर बकील उपन्यास का धार्ष्ण्य पात्र है। जिस प्रकार नायक कबल दुर्बलता का पुत्रा है उसी प्रकार बजकिछोर केवल लक्ष्मणों की प्रतिमा। दोनों एक-

दूमरे के बिररीन घीर एक-दूमरे के पुरक हैं। मुनन रोनों भले हैं परन्तु उनके बिकास मिल-जिल हो चुके हैं। मदनमोहन का व्यक्तित्व यथार्थ है। दुर्धन सब प्रकार के प्रभावों के लिए तय्यार हुआ। ब्रजकिशोर भावस्थ है बूढ़ एवं निश्चित। उसका कोई भी कार्य सावधानी और ईमानदारी से दूर नहीं। इसी धार्षिक के कारण धनुमान किमा जाता है कि ब्रजकिशोर में लम्बक का व्यक्तित्व झपक रहा है। धार्षिक के उपजन्त ब्रजकिशोर की दूमरी बिटीयता सादे-सुति है। 'उनकी बातचीत में एक बड़ा ऐब यह था कि वह बीच में दूमरे को बोलने का समय बहुत कम देते थे'। इस बात को वे स्वयं भी स्वीकार करते हैं। 'मुझको बकासत के कारण बड़ा कर बात करने की धारत पड़ गई है और मैं बम्बी-कम्बी घणना मतलब नमझने के लिए हरेक बात इतनी बड़ा कर कहता जाता हूँ कि मुझे बाने उफता जाते हैं'। उचित सम्मान न करते हुए भी नायक मदनमोहन और उनके सब घरबारी भागो ब्रजकिशोर को मुँह पान कर उनसे प्रश्न करते हैं और वे बिस्तार में उनका जबाब देने हैं। सैय पाव तो एक छोटा-सा प्रश्न करते हैं। उत्तर में ब्रजकिशोर उदाहरण और वृष्टान्त देकर मानो सब की संकाया का समाधान करते हैं। बिनाति घाने पर मदनमोहन ब्रजकिशोर के घर गये और स्वभावस्थ पूछ बैठे—'ज्या बातचीत के भी कुछ नियम हैं' (प्रकरण ३)। तत्काल ही ब्रजकिशोर तपस्विनी मुनना का वृष्टान्त लेकर व्याख्यान शुरू कर गये। ऐसे स्वयं प्रवेक हैं जिनसे निश्चिन्ता है कि बकील ब्रजकिशोर भावा धीनिबानबास की ही प्रतिकृति है।

ब्रजकिशोर की बुद्धिमत्ता की कोई माप नहीं परन्तु उनके गुणों का संक्रमन उन्हीं के ज्ञानसे से किया जा सकता है। वे 'प्रामाणिक' नायकान विद्वान् और सरल स्वभाव हैं। इनकी व्यवस्था छाटी है तथापि धनुमन बहुत हैं। यह था कहते हैं उसी के अनुसार चमन है^१। वे जलुर नायकान मज्जन ईमानदार, कृतज्ञ नीतिदुष्टन निमंत्रण एक धारिक हैं। मेनक के अनुसार धार्षिक व्यक्ति का मुख्य गुण प्रामाणिकता है। 'प्रामाणिकता प्रवेदी के धीनेम्' वाक्य का अनुवाद है। धनेचरैन्दर पोर के अनुसार एक प्रामाणिक मनुष्य परमेस्वर की मर्तोत्प्रेष्ट रचना है^२। ब्रजकिशोर में यह गुण कूट कूट कर घरा हुआ है। उल्लेख में २३वें प्रकरण का धीरेक भी 'प्रामाणिकता' ही है। मदनमोहन में प्रामाणिकता की बम्बी भी इसीलिए मज्जन होने पर भी वे दुम्बी से ब्रजकिशोर की बुद्धिमत्ता में गरीबानु के जल्ल प्रामाणिक भाव से रहने में मदनमोहन का घर बैठे^३ मज्जा मुख मिल गया। प्रामाणिकता के बाद परन्तु उसने कम धार इतक नहीं नायकानी है। उपन्यास का मध्यम प्रकरण 'नायकानी' ही है। 'मनुष्य भी

१ प्रकरण ८ पृ १४

२ प्रकरण ११ पृ ११७

३ म १३ पृ २६६

४ दम कीमेद पिन १३ दि मौरपेसद बई बाक गाव

५ म ४१ पृ ३१

प्रकृति में बहुत-सी उत्तमोत्तम मूर्ति मौजूद है परन्तु सामान्यी के बराबर कोई हिनकारी नहीं है। 'यम प्रकृति की प्रवसता रखन वाले बन्धे घादमी भी सामान्यी बिना किसी काम के नहीं है क्योंकि वे कुटी बातों का बन्धा समझकर बोका जा जाते हैं'। सामान्यी और आत्माकी में अन्तर है 'सामान्यी घादमी की बूढ़ बुद्धि को कहते हैं और वह ज्या-ज्यों लोग। ये प्रकट होती हैं सामान्य मनुष्य की प्रतिष्ठा बढ़ती जाती है परन्तु आत्माकी प्रकट हुए पीछे उसकी बात का असर नहीं रहता आत्माकी होशियायी की मकम है'। प्रामाणिक और सामान्य व्यक्ति संसार में सुखी एवं सम्पन्न रहता है। ब्रजकिशोर के ये दोनों गुण उपन्यास के प्रतिपाद्य विषय हैं। ब्रजकिशोर निष्ठान् है यह तो उनके कपरेणो से सर्वत्र प्रकट है। उनका स्वभाव सरल है अर्थात् वे ईश्वर के नियम का पालन करते हुए 'मध्यम भाव से 'जीवन व्यतीत करते हैं। केवल एक बार जब नायक पर विपत्ति या बड़ी घोर वे तत्काल ही कुछ न कर सके' वे उद्विग्न बिछाई पड़ते हैं अगवधा वे सामान्य कमबोरियो से बहुत ऊंचे चित्रित किये गये हैं।

मदनमोहन और ब्रजकिशोर के बाद ध्यान चाहूँट करने वाले मुन्शीबुन्नीसाह और मास्टर सिमुद्रमान हैं। ये दोनों कुसय की मूर्ति हैं। बुन्नीसाह के स्वभाव में आत्माकी थी। इसने बड़ी-बड़ी पुस्तकों में से कुछ-कुछ बातें ऐसी याद कर रखी थी कि नए घादमी के सामने झड़-बाध देता था। वह स्वामी कपटी आत्माक, झूठ और बुध्दामयी था। स्वाभ के लिए वह ब्रजकिशोर की बुराई करना है स्वाम की कारण नायक को सताह देता है कि वह ब्रजकिशोर के घर जाये और अपनी सुहृदुस्व पाकट बैंक उसे में करे। वह आखीर तक नायक का भिन्न बना रहता है और दोनों घोर काम बनाता हुआ एक दिन नायक होकर जाता जाता है। उसके कठ जाने से यह बात सामान्यतः प्रकट नहीं होती कि नायक के बुरे दिन जाने पर वह उसे छोड़ कर बना गया है। मुन्शी बुन्नीसाह में कचहरियों में छोटी नौकरी करने जाये मुंसियों का बचार्थ करिज भ्रंक रहा है। मास्टर सिमुद्रमान भी नीच है परन्तु उतना आत्माक नहीं। 'वह पहाड़ी घादमियों की तरह टेढ़ा राह में अकड़ी तरह बस सक्ता था परन्तु समझति पर उसकी घादत न थी'। फिर भी वह बुन्नीसाह से मेलजोल रख कर अपना मउमह निकामता है स्वयं सब तरह से नाम निकामता नहीं जागता। 'परीक्षा' के समय महरदे की लाचाटी बठा कर वह नायक से दूर हटता है उसकी नीचता प्रकट हो जाती है। यदि लेखक की सामान्यी का ही प्रयोग करें तो कहा जायगा कि बुन्नीसाह और सिमुद्रमान दोनों ही सामाजिकता रहित हैं, परन्तु बुन्नीसाह सामान्य (अर्थात् आत्माक) भी है सिमुद्रमान नीच और मूर्ख।

१. पृ० २६ पृ० १७२

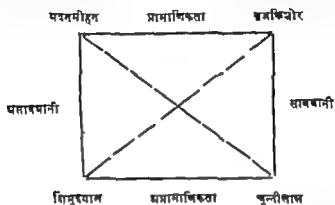
२. पृ० ७ पृ० ४२

३. पृ० १३, ४ १७२

४. पृ० १५ पृ० ६०

५. पृ० ६, १० १५

'परीक्षा गुरु' उपमास के चरित्रों का चतुर्मुख बनाने पर ब्रजकिशोर का कोषक बिपरीत (बायगोनरी ओपोजिट) सिम्बलवास है। और मदनमोहन का कोषक बिपरीत चुम्बीलास। इन चारों को इसी नियम से चार कोषों पर स्थित करके प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता सावधानी-सावधानी भुजाओं वाला चित्रांकित चतुर्मुख बनेगा —



ब्रजकिशोर की भुजाएं प्रामाणिकता और सावधानी हैं। मदनमोहन की प्रामाणिकता सावधानी चुम्बीलास की अप्रामाणिकता और सावधानी (बालाकी) तथा सिम्बलवास की अप्रामाणिकता और सावधानी। इन चारों के अनिश्चित नामक की पत्नी और ब्रजकिशोर के दूर के भाई ब्रजकिशोर का भी कुछ महत्त्व है परन्तु इनका बिजय कम है। पंडित पुरुषोत्तमदास हकीम महमद हुसैन बाबू बीरनाथ मिस्टर ब्रान्ड धारि में घाने घाने बग की कुछ बिधिराए देखते को मिलती है। मदन चरित्रविशेष में कुमल है। अपने महत्त्व के अनुसार ही व्यवहार की रक्षाओं को तीन घण्टा गुप्त बनाया है। उपमास में एक ही स्त्री है नायक की पत्नी उस की भी भक्त दूर में मिलती है। साविक-व्यावहारिक जीवन की रचना होने के कारण परीक्षागुरु में स्त्री-गाथों को अधिक उचित स्थान न मिल सका।

यदि 'परीक्षागुरु' को कथोपकथन-प्रमाण उपमास कहा जाय तो कोई धारणा न गैरा क्योंकि कथोपकथन का शिखा महत्त्व इस उपमास में बिना है उनका द्विती धर्म उपमास में नहीं। २६० पृष्ठों में के लगभग है तो कठिनाई न ३० पृष्ठ ही में कुछ कहा होना—विषय समानता का बिषय (प्रकरण ६ भाग पृष्ठ) इंग्रजता (प्रकरण २ भाग पृष्ठ) ब्रजकिशोर का चरित्र (प्रकरण २३ के पृष्ठ) धारि भी सम्मिलित है। लगभग है इन बिधिरा को 'नई रीति माना है और 'निवेदन' में इन रीति की लार्थ पोसा की है। ३। रामचन्द्र गुप्त ने 'धर्मकी उपमासों के संग पर भाषण के बीच में या घल में धनुष में कहा 'समुद्र बहने लगे' धारि अविष्यविषयों को रोग माना

है—'परिपठ हुई कि इस प्रथा का अनुसरण हिन्दी के उपन्यासों में नहीं हुआ'। इसमें सन्देह नहीं कि संभाषण के अर्थ में ब्रह्मा का संकेत हिन्दी भाषा की प्रकृति के अनुकूल नहीं है। यह इस उपन्यास के कथोपकथन पाठक को क्षान्ति मर रोह देने में ठीक भी नहीं। बोली के उप-संग-भाष में इस प्रकार के प्रयत्न भाषा-विज्ञान नहीं समझे जायेंगे। इस उपन्यास के कथोपकथन अति-विचित्र एवं अत-स्वाभाव में प्रयत्न मकन है। ब्रह्माचार के सभी कथन दर्शपूर्ण हैं। कथोपकथन की भाषा साहित्यिक एवं परिनिष्ठित है। प्रेमचन्द के सनान श्रीनिवासदास पाशों की आकृति और चेष्टाओं द्वारा उनके कथना को अधिक समीक्ष्य बना देने हैं। प्रेमचन्द के समान ही कहीं कहीं लेखक के संभाषण बड़कर भाषण बनने लगे हैं। प्रेमचन्द-पूर्व युग के उपन्यासकार कियोपीलास गोस्वामी आदि उपन्यास लिखते समय अपने व्यक्तिगत को पृष्ठभूमि में रखकर कथानक-निर्माण के अग्रणी नहीं थे। इसलिए वे बीच में पाठकों में बाधें करते जाते थे। श्रीनिवासदास उन रीति को पसन्द नहीं करते। मिलमिलेदार बना कहना या अपनी बात करना उन की नई रीति में अत्यन्त समझा गया है। कथोपकथन द्वारा ही समस्त रहस्य सने-धने प्रकट करने में नई रीति की सफलता है।

'परीलाप' की भाषा पूछ साहित्यिक हिन्दी है परन्तु अर्थ-वचन में ही बना गट में नहीं। बनाबट को देखते हुए तो वह 'दिल्ली के रहने वालों की साधारण बोल-चाल' की भाषा है। दिल्ली की इस भाषा की कुछ विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

- (क) बोलचाल की दृष्टि से कुछ शब्दों में स्वर-साधन हैं जैसे 'सन्ता' 'मिलता' उनके इसकी 'मुन्ने' 'मिस्तर'।
- (ख) 'ने' का मानुस्कार प्रयोग है जैसे 'हमने' 'पशने'।
- (ग) 'से' और 'से' विभक्तिओं का विशेष उच्चारण है—
'बीजों से' 'विचार में' 'भिरठ से' 'इन वृत्तियों में से'।
- (घ) कुछ शब्दों का स्थानीय प्रयोग है—'कीमत की कुछ परवा नहीं' 'नकल करनी क्या जरूर है' 'बजाव के हूँ' 'बारह हों', 'बालाजी ठेठ से बी' 'आभिषुओं की ऐसी वैदग्ध्यता नहीं किमा चाहता' 'आये चलकर' उलठा जाते हैं।
- (ङ) साधारण शब्द संस्कृत से तथा फारसी संघेड़ी आदि से भी आये हैं—
'निराहृत्य' 'भुगासिब' 'मनकावा' 'बारट' इत्यादि 'पाकटबैन'।
- (च) यह साहित्यिक ब्रजभाषा में अनुचित है।
- (छ) धर्तृको धर्तृ के उच्चारण है—'फारान' (फैदान) 'काच' (काऊच) 'इलाहाबाद' (इलाहीबाद)

सामान्यतः इस उपन्यास की भाषा साहित्यिक एवं संस्कृतमिश्र है, यथावश्यकता सग्न या बजावट पर स्थानीय प्रभाव है। एक उदाहरण पढ़ाएँ होगा—

'दिल्ली के नियमानुसार समुप्य जिन विषय में मूल करता है बहुधा उसकी उड़ी

विषय में बख्त मिठा है जो विज्ञान-परिची मासूम होते हैं वह अपनी विद्या में निपुण हैं परन्तु साधारण व्यवहार नहीं जानते अपना ज्ञान-बुद्धि उसके अनुसार नहीं बरतते — बहुधा धनवान् रोमी होते हैं और गरीब मीरोम रहते हैं इसका यह कारण है कि धनवान् इच्छापूर्वक करने की रीति जानते हैं परन्तु गरीब की रसा उचित रीति से नहीं करते और गरीबों की गरीब रसा उचित रीति से बन जाती है परन्तु वे धनवान् होने की रीति नहीं जानते । (प्रकरण ७ पृष्ठ ४६)

यदि उपन्यास समकालीन जीवन का यथार्थ चित्र होता है तो 'परीक्षा मुह' एक सफ़्त उपन्यास है। इसका कथानक खड़ीबोली और भारतदेश के कन्न गहर दिल्ली के एक कनिष्ठ रईम का जीवन घटित करता है। इस चित्र में उत्कामीन सामाजिक-राष्ट्रीय समस्याओं का स्पर्श भी हो गया है। लेखक के सम्पूर्ण व्यवहार-नीति मुख्य की हमलिये राजनीति घम आदि पर उसमें विचार नहीं किया उनका मुख्य बन उन राष्ट्रीय समस्याओं पर है जो सामाजिक-आर्थिक है। समस्त कथानक उपन्यास की हानि और मितम्यमता के साथ बिताना है। उस युग में बाप-बादा की कमाई से मुमकिन उठाकर उग बर्बाद करने वाले रईम प्रत्येक बड़े नगर में वे सभासद उनके पक्ष में उहावन बनकर अपना काम निवासते रहते थे। यह कहा जा चुका है कि कलकत्ता और काशी के १० विधानसभा क्षेत्रों में भी अपने उपन्यास के लिए यहा कथानक पसन्द किया जा। श्रीनिवासदास कुमल प्रवण तथा मध्य व्यवहारविद् थे। उन्हीं कुमलों का पाठक-मार्ग में प्रचार करने के लिए उन्होंने यह उपन्यास लिखा था। लेखक ने उन भारतीयों का दसा पर पर प्रकाश किया है जो इन कापीगरी की निरवक बीमा के पक्ष अपनी जीवन कृपा लोभे बैठ है। वे आर्थिक बुद्धि का रहस्य समझने में और नीकरी की अपना आधार को अधिक बचीबोली समझते थे। अमानातदार को दूर करने के लिए वे अपनी भाषा में उभासी पुस्तकों का अनुवाद आचरयक मानते हैं कई वष लो नवन अठेसो भाषा सीगन में विद्या के द्वार पर लड़े-लड़े बीग^२ जाते हैं। अमीरों की देश-दसा के प्रति उभाभानता^३ समाचार पत्रों की रोचनीय दसा ज्यो निय का मुताबा^४ बीपाशनी पर धनवीरों आदि समस्याओं पर सैराक में ममीरता से विचार दिया है। प्रेमचन्द के समान श्रीनिवासदास का विचार है कि भारत में निष्कमे रईम नाम का जो बर्ग निगित^५ हो गया है वह बडा पातक है। मुक्त में धरान हो गरीब विचार भुर्ला मरन हा। आपन^६ वही रईम-राज से ही हा-हा ही-हा रहेगी परमेश्वर ने आता हो मनमानो भोज करने के लिए रोचन है ही फिर धीरा के बुकबई

में पढ़ने की थापको क्या जरूरत रही"। 'स्वाभाविक ऋतुका लपे बिना—सुबहने की कोई रीति न दिखाई' देती है। इसलिए ऐसे बेलबरो पर बीबी विपत्तियाँ बबल्य भावें प्रगल्भा ये प्राबल्य सम्पत्तियों की बेड़ी में अकड़ें रहेंगे और देश एवं समाज पर भी बोर कट सावेंगे।

'परीक्षागुरु' की बीबी नबीन है जिस पर घट की प्रभाव धबिक है। मेसक स्वयं पृष्ठभूमि में रहकर पात्रों के पारस्परिक कार्य एवं कथोपकथन द्वारा कथा एवं चरित्र का निरास दिखाता जाता है। उसकी यह सीसी नाटकीय है। यद्यपि उसने नाटक की 'रीति' से इस 'नबीन रीति' का मोड किया है फिर भी यह मानने में कोई आपत्ति नहीं होगी कि उन काम में नाटक का घासन था इसलिए समस्त उपन्यास साहित्य पर नाटक का प्रभाव है 'परीक्षागुरु' में इस नियम का समर्थक है। प्रथम प्रकरण मात्रा प्रथम दृश्य है जिसके पात्रों का परिचय कथोपकथन प्रारम्भ होने से पूर्व रोग-विकट की बीबी पर लेखक ने दे दिया है। 'लाला महममोहन एक मद्रकी मीठानर की दुकान में गई, गई कामन का घबकी प्रस्ताव देल रहे हैं लाला बजरिगोर, मुसी बुनो साज और मास्टर विमुदयास उनके साथ हैं'। अन्यत्र भी परिचय वर्तमान काल की क्रिया में वर्णित है जिसमें रंग-संकेत की यह धानी है 'इस बचन में मिस्टर बाइट अपने प्रस्ताव की लरीदायी के लिए लाला महममोहन को ललवाता है'। पाठक के समस्त उपन्यासकार बहुत कम उपस्थित होता है और वह भी रंग-यक्तों के लिए कथा कहने के लिए नहीं। समस्त उपन्यास 'प्रकरणों में विभक्त है परन्तु प्रत्येक प्रकरण अपने घान में पूर्ण नहीं है। प्रकरण बदल जात है परन्तु न बाध बदलते हैं न विषय बदलता है और न बटना-स्थल बदलता है। पात्रों के बब छल और सावली प्रकरण निरन्तर हैं बचों के बाह गायद्वारा और बायद्वारा प्रकरण उनी निरन्तरता में है। यह निरन्तरता मात्र के पाठक को ललेवी परन्तु जब बजरिगोर की बाध पूरी हो तब तो विषय बदले और उनिक विद्या के लिए प्रकरण या बदलता हां हां। प्रत्येक प्रकरण का एक धीर्बक है जो उस प्रकरण का वच्य विषय समझता है और प्रत्येक धीर्बक के साथ धीर्बकण है यद्य या यद्यकी भूम या अनुदिन सूचित है। ये विषय साथ बाह के उपन्यासों में भी मिलती हैं। लयक की बचि प्रवृत्ति या ममाज न बदलना में कम है यह उद्य कमी को दृष्टान्तों से पूरी करता है। 'परीक्षा यह कुटिबारी उपन्यास है उनमें छहदवगा तो है परन्तु बचित नहीं। यह विषयता उन ममजामीन उपन्यासों में एक एवं कथन सिद्ध कर देती है।

'परीक्षागुरु' उपन्यास का उद्देश्य समाज के महममोहन का बजरिगोर का अनु-बर्ती बनाना है। हरिद्वार चरित्रा' (सं० १९१९) में इस उपन्यास का परिचय देते

एक निष्ठा पदा का भी यगिको ए राजगर्भों हे निरस्तारों, हे कञ्जैवतामो हे प्रेम के पति जवानों हे बाजारी का बाजार के बैठेबासी कुमिया का मजा सीसमे चाहो कठपुतलिया का दमदा देखने चाहो भुधामरियों के छुप देखने चाहो उड़ियों का पाना मुनने चाहो याममे मुनइसा मैं बह्य सीखने चाहो या अपनी मूर्खता को छीसने चाहो तो परीक्षापुत्र का धायम करा"। अस्तुत 'परीक्षापुत्र' पितामूनक अपना उपदेश प्रमाण उपाय है। इसकी रचना एक विशेष नीतिक आधार एवं धारण को दृष्टि में रख कर हुई है। यहा 'यायय' और 'ययाय' का हुमका एक नवीन एवं स्वस्थ का विमला है। 'ययाय' में चरित्र की बुद्धता है। मुन्ना मसुना एवं मसुन्ना को विभिन्न करने के लिए इस समाज के यह प्रसंग पर फैलते हुए मम और भिन्नभिन्नी हुई मस्तिष्का का नाक पर स्थापन रख कर फोटो खींचने की मेसक ने कोसिय नहीं की। मुन्ना और यायय के प्रसंग या यही है, नरेंद्र की मृत्त करती हुई सामने से निकल जाती है परन्तु इन दुस्मयता के झुका पर जाकर लेकठ पाठक का भटकाना उचित नहीं समझता। इस संयम का कारण अव्यक्तियोग है उनका मम मरममोइन ही नहीं उनके मयासता का भी एक निश्चिन्त 'स्वतन्त्रता' के साथे किमी 'स्वेच्छाचार' की अनुमति नहीं देता। मुन्ना हो या महिमा बालन हा या कुछ किसी के हाथ में 'परीक्षापुत्र' की प्रति है सीमा प्रग को लक्ष्य न होया। नहीं मेसक का धारण यथाय है। चरित्र की अनेक बुद्धताएँ हैं परन्तु उनकी बुरी 'मयासयानी' है जो मेसक की दृष्टि में सबसे बड़ा बधाव है। यायय के मयासयानी समासयानी के विभिन्न परिभासों का विमल करते हैं श्रीनिवासदास ने उनके कारण और स्वयं को व्यक्त किया है। एक बाटर ने बनाया कि विपुषिका का बसा कारण है कोन-कीन से बिगड़ है और बसा कारण है इनकी ने विपुषिका प्रति बिहारा मम ममम धारि को बसाकार बिसा दिया। श्रीनिवासदास का स्वस्थ यथाय किसी भी साहित्य के लिए और का कारण मम मयता है।

यामामे 'होय बुनाम' और 'एक कहानी कुछ यापवीनी कुछ बन बीरों' से मुन्ना करने कर 'परीक्षापुत्र' अधिक मयापुत्र एवं दृष्टिकोण से अधिक व्यापक है। शंखचन्द टागोर ने नायक यगिनाम के व्यास से यमियों के साहस्यार और कुटिला का वर्णन करक उनकी मयास को उमाय-बाकिनी दिनाया है। नायक बीरन के विमल की दृष्टि में भागल धायय ममोईव मयल एव उभावी है फिर भी उनमें मेसक की ममोईवता मयता उनकी मृत्त दृष्टि उनकी प्रतिबिम्बन नहीं होती। भारतम्पु की कहानी छबुरी है उनमें उम बनी किमोर का बिम है जो गुणावरियों के कारण अपनी मय-मयति को बसा कर बसाव हा जाता है। श्रीनिवासदास ने म लो साहस्यार के दोष दिनाये हैं और म कुटिला के उनही दृष्टि मयमम यागैमके के मयल है। वे विम और यमि की बहान मयासयानी और मयासयानी का सबसे उभावी बीरि मयम

हैं और उनका विश्वास है कि कुसंगति में पड़ा हुआ व्यक्ति उस समय तक सम्मान पर नहीं आ सकता जब तक कि ईश्वर ऐसी प्राप्तिवां मेज कर उसकी सहायता न करे। 'परीक्षाभूष' का समस्त बाह्यारम्भ मुक्तों के लिए व्यवहार-नीति की शिक्षा में प्रामाण्य उपबोधी है। इसीलिए उसमें प्रौढ़ता एवं गम्भीरता है। जीवन का बहुतना घस टैकचर व्यक्त ने सिखा या भीनिवासवास उससे भाये बड़े।

परीक्षा-भूष की परम्परा

'परीक्षा भूष' का परवर्ती रचनाओं पर प्रभाव पड़ा बालकृष्ण भट्ट का दूसरा उपम्यास 'दो सजान और एक मुबार' तो मानो इसी के धनुकरण पर लिखा गया। सुलता करने पर दोनों उपम्यासों में कुछ ऐसी समानताएँ हैं जो या तो परवर्ती में पूर्ववर्ती की प्रेरणा सूचित करती हैं या आश्चर्यजनक संयोग। एक में बदनाम्बन दिल्ली है, दूसरे में बंबय। एक में नायक के पिता मध्यस्वी विभिन्न क्रिये गये हैं 'दूसरे में नायक के पितामह (पिता की मध्यम मृत्यु हो चुकी थी)। दोनों उपम्यासों के नायक बंसे कम के व्यापारी हैं। दोनों उपम्यासों में मेकअप का समासीय प्रतिनिधि एक-एक बुद्धिमान पात्र है जो नायक का द्वितीय होने के कारण उनको हर समय नीति सिखा कर स्वस्थ पर माने का प्रयत्न करता है। जाल भीनिवासवास के प्रतिनिधि लाला बजकिशोर हैं और पठित बालकृष्ण भट्ट के प्रतिनिधि पठित चमसेखर। धुलसोरे कुतुम्बियों की कुसंगति के कारण नायक इन बुद्धिमानों की उपेक्षा करते हैं, उनका प्रयत्न सम्पत्ति का अपभ्रंश करते हुए अपने को सबसे बड़ा खर्च सिद्ध करता है। सबाबट की गई-गई नीति बरिबी जाती है। मेक-मिसे के मध्यम और चित्ताम कमाकार और कलाकृतिवा एकत्र करने में और अपनी प्रशंसा सुनने में नायकों का सारा समय लग जाता है, मदनमोहन को छाया सुनने की पूर्णतः नहीं तो आश्रित्य को भी पर दस्तद्वत करने का समय नहीं मिलता। ऐस बापान के लिए दोनों उपम्यासों में मनाहर सजान लगे हुए हैं। अपभ्रंश के प्रतिरिक्त मेकअपों में नायकों को कोई बुरी लत नहीं पड़ने की सहस्रित बीजती है समीत चिड़ता है, नाच होता है परन्तु कोई भी नायक राबिबाहर नहीं बिगड़ता। कारण धारण यह है कि दोनों रचनाओं में एकमात्र गरीब पात्र सबल और गम्भीर है। जमर मदनमोहन की पत्नी और इतर आश्रित्य की गलत। धनार्थों का हाँका भी दोनों उपम्यासों में एक-सा है, मुसी चुम्बीलाल के समान नबवास हकीम अहमद हुसैन के समान हकीम सीरोड बेग। भट्टजी ने नन्हु, रणू और बुद्ध तीनों को इकट्ठा चुम्बीलाल की प्रतिकृति बनाया है। मुझे पार्श्वों का विनय भीनिवासवास को सख्त न या इसलिए उनके उपम्यास में बसता और हुमायुम न मिलेये दोनों ही उपम्यासों में प्राप्तिवां का प्राधान्य किता है, अद्यपि ये प्राप्तिवां कम में मिल हैं परन्तु जाति में समान होने के कारण पर से सम्बन्ध रखती हैं और नायकों को कानून में बक कर हवालात में मेजवी हुई उनको बोध देती हैं। भीनिवासवास और बालकृष्ण भट्ट के व्यक्तित्व एवं नैतिक मितों में जो फरक या उनकी धारा उनके इन उपम्यासों में होते हुए भी यह स्वीकार

कहता पड़ेगा कि 'परीक्षा गुरु' और 'श्री ध्यान और एक मुजान' कम से कम सहोदर भ्रातर हैं ।

नूतन ब्रह्मचारी

'नूतन ब्रह्मचारी' भाषिक पत्र 'हिन्दी प्रदीप' के अंकों में सन् १८८६ ई० में प्रकाशित हुआ था । तत्पश्चात् इसका पुस्तकाकार प्रकाशन हुआ । यह उपन्यास पाठ परिच्छेद और २१ पृष्ठ की एक छोटी-सी पुस्तक है । इसकी रचना इस उद्देश्य से हुई थी कि इसको पढ़ने वाले 'बालक बच्ची से बच्ची' शिक्षा प्राप्त कर दैस को उन्नति के लिए तब बड़े-बड़े । परन्तु शिक्षा-विभाग के अधिकारियों ने इसको पाठ्य क्रम में कभी स्थान नहीं दिया । भट्ट जी ने स्वयं इस प्रसंग को चर्चा की है, हमारी इस पुस्तक के बहने से पाठकों को अचरब मानूम हो जाएगा कि बालकों के पढ़ने के लिए यह किन्तनी जिम्माग्रह है और शिक्षा-विभाग में बायी होने से हमारे कोमल बुद्धिमान बालकों को किन्तनी उपकारी हो सकती है ... परन्तु मुख्य के अधिमान में बुर धात्र तक किसी प्रकार की जादुकारी न बन पड़ी—तब बरों शिक्षा-विभाग के पराधिकारी—इन प्रकार की बालकोपयोगी पुस्तकों को शिक्षा-विभाग में बाहर बैठे' ।

'परीक्षा गुरु' (सन् १८८२) और 'नूतन ब्रह्मचारी' (सन् १८८६) के प्रकाशन काल में बेबल बार बने का अन्तर है तथापि स्थिति परिवर्तित एव इन्हीं में से एक को साहित्यिक उपन्यास में वर्गीकृत अन्तर था गया है । भट्टजी प्रयाग वास्तव पाठ्यात्म बाल्य में सस्कृत के प्रोफेसर से उनके सम्मुख उद्यमान किमोर्षों की उन्नति का सबसे बड़ा प्रश्न था । इसलिए उन्होंने ऐसा उपन्यास लिखा है जो छात्र-छात्राओं को सम्मानों की ओर प्रेरित करे । इनके विरोध जीविबालबाल व्यवहार-अथवा व्यापारी स्थितिपत्र कमिशनर तथा आन्देरी मजिस्ट्रेट से उनकी इच्छा प्रीति मुक्तों पर बनी हुई थी । अन्तु, वाठक-मिर की कल्पना से प्रबल कल्पना भी बहल गई है । नूतन ब्रह्मचारी में कीर्तनता अथवा अत्यन्त एवं मुखाह्वना का सर्वत्र स्थान है । सस्कृत भाषा को अपने विषय के समस्त जनक हिनाये एक शिक्षाग्रह लिखन कथा मुता रहा है ।

यह बड़ा वा चुका है कि 'परीक्षा गुरु' की सगरी बर्णा कहने में सत्यक बंधन की अनेका मुक्तियों के अधिक निरट है । कारण था हो सकत है । एक दिवसी की बसकता से दूरी । दुग्ध व्यापारी होने के कारण बनावियों की अनेका मुक्तियों से सगरी की अधिक धनियता । बालहृष्य भट्ट की परिचयन नितात्म भिन्न थी । वे प्रयाग के निवासी थे और प्रयाग में ही साहित्य-लेखा करते थे । वाठा प्रमाण और बुद्धिमान हिन्दी प्रेस में बर्णा-विषय के बन्ध रहे हैं । प्रयाग शिक्षा का भी केन्द्र था । पत्र प्रकाशीय साहित्यिक अन्तर्-बन्धीय साहित्य में सदा विद्यता मानता रहा है । भट्ट जी अन्तरी बंधन मानने से वा नहीं यह नहीं कहा जा सकता परन्तु यह निश्चय है कि प्रयाग के कारण

१ अर्ध-मंटीलि संस्करण सन् १९१३ में प्रकाशित साहित्य-अनन्त निरर्धक प्रकाश ।

२ अन्तर्-मंटीलि संस्करण में अन्तर्-मंटीलि ।

जहाँने अपने नवियों को 'भार्ती' न कह कर 'उपन्यास' नाम दिया। 'नूतन ब्रह्मचारी' को प्रथम पृष्ठ पर लेखक ने स्पष्टतः 'उपन्यास' लिखा है।

'नूतन ब्रह्मचारी' की कथावस्तु गुम्फन-शून्य एवं सरल है। एक कथा-भाग से कथानक का निर्माण करके लेखक सुकमार मणि बालकों के प्रति जागरूक निबन्धनापेक्षता है। महाराष्ट्रीय ब्राह्मण विठ्ठलराय सामान्य स्थिति के नायक ब्रह्मचारी हैं। उनके पुत्र का नाम विनायकराय था। एक दिन विनायकराय के यशोपवीत की तैयारी में विठ्ठलराय सपत्नीक ठाकुर साहब की नदी पर गये हुए थे। पीछे तीन डाकू आ कर उनके घर उठे। घर पर ब्रह्मचारी विनायक के प्रतिरिक्त और कोई न था। उसने इन तीनों को प्रतिनिध समझ कर भोले भाव से उनका स्वागत किया और घर में बैठी भी सामग्री भी उससे उनका सब प्रणाम किया। डाकूओं का सरदार किसी घण्टे घर का बा परि स्थिति ने उसको इस काम में बाध दिया था। वह विनायक क निरक्षण व्यवहार सरल प्रातिपक्ष एवं ब्राह्मण ब्रह्मचारी के पवित्र घर से इतना प्रभावित हुआ कि उसका मन फिर गया। उस दिन से सरदार की उसके साथियों से कटपट रहने लगी। पन्त्रह वर्ष बाद वे डाकू विनायक के डपानु ठाकुर साहब की नदी को लुटने भाये परन्तु सरदार उनसे सहमत नहीं था। इन पर उनमें हथियार चल गये सरदार को बहुत बोट आई। मरते मरते उसने विनायक को डाके की सूचना दी और अपने प्रति किये गये उन पन्त्रह वर्ष पूर्व के सन्मुख्यकार के लिए इतिहासिक कृतमता प्रकट की। ठाकुर साहब सावधान हो गये वे इसलिए डाकूओं के साथ मुठभेड़ में उनकी विशेष इतिहास न हुई दोनों डाकू मारे गये।

कथानक में केवल एक कहानी है और केवल दो भाँकियाँ—एक विनायक के यशोपवीत की और दूसरी पन्त्रह वर्ष बाद सरदार की मृत्यु की। बालोपवीत होने के कारण कथानक सरल सहज एवं स्वच्छ है। बाल्य में कथा से अधिक तो इस उपन्यास में वर्णन है। लेखक ने उत्तर-प्रदेश के स्थान पर इतिहास के नायक प्रांत को मटनास्वय बना कर हिन्दी के राष्ट्रभाषा वग की सूचना दे दी है। कथा सर्वत कालान्तरिक है। नायक के प्रतिरिक्त कोई भी भौतिक स्थान कथा का घंग नहीं है। विचारियों के वर्णन से ही कथा के ऐतिहासिक काल पर कुछ प्रकाश पड़ सकता है। ऐतिहासिक बाधु मध्यम से स्वतंत्र होने के कारण ही इस उपन्यास को सामाजिक उपन्यासों के वर्ग में स्थान मिलता है।

बहने को तो उपन्यास में छ पात्र हैं—तीन ब्राह्मण और तीन डाकू परन्तु विनायक और सरदार के प्रतिरिक्त दोष चार पात्रों का कोई विशेष विवरण नहीं किया गया। विठ्ठलराय और उनकी पत्नी राजाबाई आदर्श ब्राह्मण व्यक्तित्व हैं 'ये दोनों पति पत्नी एक मन से तन होते हुए' मम होते थे ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी मम चित्त मनुचित्त ठेसु' पाणिग्रहण क समय की इस कथा को चरित्रात्मा कर रहे हैं। इसी प्रकार दोनों डाकू सामान्य साहसिक हैं 'बया और प्यार घबरा मित्र भाव तो उनसे कोसों दूर थे और

यही मन में बासती थी कि वे दोनों साक्षात् कृतान्त के सहोदर बार्दे हैं मजबूत पिप्पीनूत कूरता धीर मिट्टरार्दे के संघातार हैं। विनायक धीर सरदार दोनों का निमेष अपेक्षा-इत अधिक है। सेवक की दृष्टि में विनायक मुख्य पात्र मजबूत नामक है। उपन्यास का नामकरण उसी के आधार पर है। उसका भीषा माता जीवन भी विशेष प्रकृत का विषय है एवं धारि से प्रकृत तक बहु उपन्यास में व्याप्त है। सरदार का व्यक्तित्व दुर्बल है। उसके संस्कार प्रकृति के परिस्थितियों के उससे मुख्य कराये सुमंगति पाकर फिर उसके सुसंस्कार प्रकृत है। धार की दृष्टि से यदि सरदार को नामक मान कर उपन्यास लिखा जाता तो उसमें अधिक आकर्षण रहता क्योंकि सरदार की मानसिक उन्नत-प्रवृत्त धीर उन्नत मजबूत बनना की सुवृत्त में सराहनीय बन जाते। विनायक के जीवन में कोई उदार-व्यक्ति नहीं परन्तु सरदार का जीवन राजपूत पर नहीं बन सका था। पिप्पीनूत बर्ष के इस नाम में उपन्यास की नामक-विषयक माध्यमार्थ परिवर्तित होते हुए धार विस्मय विचरित हो गई है।

विनायक उपन्यास का नामक है। उसका 'य' धारि घाट बर्ष धीर तीन या बार महीने का होता पर देखने से छद्म बर्ष का सामान्य होता था^१। उनमें धिंसु-मुनम भीषापन था, वीरगमिक कथाओं पर विस्मय कर के बहु भूषा में रासन का निवास धीर मंथन में रत्नों की प्राप्ति सम्मुख मानता था। 'उस के पतने भीतर को बसे हुए घोटों की देन इन बासक में एक प्रकार की दुष्टा धीर अपने धार्यवनाय में निरुद्धा प्रकृतता मानती थी जो वयक्रम के बर्षों के साथ ही प्रकृत बर्षों^२ गई। जब से वह 'बहुधारी' बना। बास्यवनाय के मुनूम के बर्षों एक ऐसे लहज गाम्भीर्य में विनायक के मन में स्थान पाया जो बर्षोद्ध पुष्पों में बहुधा देखा जाता है^३। पिता की प्रार्थना को प्रमत्त सत्य मान कर विनायक धारि-धारार के लिए दुष्ट था। बासुओं की धारिध ममत्त कर बहु निमेष होकर उनका स्वागत करने लगा "मैं इन तीनों की मेहनतवारी ऐसे प्रकृति हम से करूँ कि पिता के धारि पर मेरी बात उन्नत रहे धीर बहु धारि ममत्त है जब इन मेहनतों के मुह से मेरी प्रसन्नता पिता की सुनें^४। उसके निरुद्ध विस्मयपूर्ण सम्मुखार से 'बासु जिन्होंने बड़े-बड़े बहादुरों से हारिमार रखवा निवे थे—उनके सरदार का मन फिर गया धीर इन तीनों की हृम्यत सुनें की न पारी^५। विनायक के धारिध भी मुख्य विषयता बहु है कि वह सामान्य बासक है, धारिध परिस्थिति निताम्य सामान्य एवं धारि-जन-मुनम है। इसलिए कोई भी धार विनायक के जीवन से प्रकृति लेकर अपने जीवन को उसके धारि में धार सकता है। विनायक के प्रार्थना पुन भीषापन दुष्टता धार्यवनाय सत्य एवं निर्यवता है। उसकी

१. नीषापरिषद, ५ ११

२. धारि, ५ १०

३. धारि १० १६

४. धारि, ५ ४४

५. धारि परिषद ५ १२

कोई विशेष कामना नहीं, भौतिक जीवन में धीरों से धाये बढ़ जाने की उसकी कोई योजना नहीं। ईश्वर में विश्वास और माता-पिता की आज्ञा का पालन करता हुआ वह कर्मबीज उत्साही एवं सत्यनिष्ठ सच्चरित्र पुत्र है। मरणासन्न सरदार के प्रति उसने कितना निर्मल वचन कहा था—यदि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को क्षमा कर सकता है तो मैं तुमको दिल से क्षमा कर रहा हूँ और ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि वह भी तुम्हारे अपराधों की क्षमा करे^१।

बाकुर्मी का सरदार इस उपन्यास का दुर्बल पात्र है वह केवल दो बार पाठकों के सम्मुख आता है—प्रथम परिच्छेद में तथा अन्त में। मेल्क ने उसको इतना कम महत्व दिया है कि उसका नाम तक नहीं बतलाया। बाकु बनने से पूर्व वह क्या था—श्रीलोक में श्रील और दया की कोई-कोई छत्र छमक सी। मानूँ^२ होते हुए भी वह मुटेरा नयी बन गया था—वह मेल्क ने नहीं मिला। उपन्यास से केवल इतना पता चलता है कि उस सरदार कैमल से क्या स्नेह और सद्-व्यवहार का मिश्रित लोप नहीं हुआ था। विनायक की चितवन और बोखपाल में एक छपीसी मिठाई मरी हुई है जिसने उसके मन की धूल में भर दिया है। यह बराबर उसी ने पीछे पीछे मानो काल पूँछ हवाये चला जाता था^३। विनायक के घर जाकर उसका मन विस्फुल्लित हो गया। जब छात्रियों ने पूछा—‘क्यों सरदार क्या तुम है, यहाँ से काँटे ही आपसे क्या’ तब सरदार की छिर पीचा किसे कुछ सोच रहा था चौंक कर बोला—‘हाँ घाघो बाहर चलो’। जीवन में चायद पहली बार ‘सरदार के प्राँल में धाँसु भर धाये और मधुवे स्वर से बोला—
—‘मैंने तपोवन पूजा पिता की से कह देना कि दो दिन बाद फिर तुम्हारा दर्शन करेंगे’। सरदार के जब अंतिम दर्शन होते हैं तब वह भावत मरणासन्न पड़ा है उसकी अन्तिम इच्छा है कि विनायक के दर्शन हो जायें या उसका यह सन्देश विनायक को मिल जाए कि उसके एक समय के सद्-व्यवहार ने सरदार में क्या परिवर्तन कर दिया है वह अपने अपराधों के लिए समाप्राणी है और अमर साहज को धाँस रात के डाँके की अहिम सूचना देकर बचाना चाहता है। कहते हैं कि सच्चे हृदय से की गई प्रार्थना मयबान् के कार्यों में अत्यन्त पहुँचती है। इस नियम से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सरदार ने सच्चे हृदय से प्रार्थना की थी। विनायक उसको मिल गया और पन्द्रह वर्ष पुरानी बटना का स्मरण कराकर सरदार ने विनायक से क्षमा माँगी फिर उसका ‘धन-धन प्रियतम और ठग्ये पड़ गये’। इस प्रकार विनायक के दर्शन प्राप्त कर उस सरदार ने प्राप्ति प्राप्त लिये। इस कथा में सरदार का जीवन-चित्रण विशेष अभीष्ट

१. अठ्ठावें परिच्छेद पृ० ६३

२. अठ्ठावें परिच्छेद पृ० ६५

३. अठ्ठावें परिच्छेद, पृ० ७०

४. अठ्ठावें परिच्छेद पृ० ६३

५. वही, पृ० ६३

यही मन में मासती थी कि वे दोनों साक्षात् कृतान्त के सहोदर भाई हैं यद्यपि निम्नीभूत मूरता और निष्ठुराई के अंशोपशान्त हैं। विनायक और सरदार दोनों का विषय अत्यन्त ही अधिक है। लेखक की दृष्टि में विनायक मुख्य पात्र यद्यपि नायक है। उपन्यास का नामकरण उसी के आधार पर है। उसका भोला भाला जीवन भी विषय अत्यन्त ही है एवं धारि से घनत तक वह उपन्यास में व्याप्त है। सरदार का व्यक्तित्व दुर्बल है। उसके सरदार अंशों में परिस्थितियों ने उससे कुकर्म कराये। सुनगति पाकर फिर उसके मुसंस्कार बप गये। धात्र की दृष्टि से यदि सरदार को नायक मान कर उपन्यास लिखा जाता तो उसमें अधिक आकषण रहता क्योंकि सरदार की मानसिक उन्नत-पुनर्जन और उसका एक आत्मक कला भी सुखमता में सराहनीय बन जाते। विनायक के जीवन में कोई उदार चरित्र नहीं परन्तु सरदार का जीवन राजपथ पर नहीं चल सका था। विषहृष्ट बर्ष के इस काम में उपन्यास की वाक्य-विषयक मान्यताएँ परिचित होठे हुए मान विस्तृत विचरीत हो गई हैं।

विनायक उपन्यास का नायक है। उसका 'बप धमी घाठ बर्ष और तीन मा पार बहीने का हुमा पर देखने से छड़ी बप का मालूम होता था'। उसमें सिद्ध-मुक्त भोलाचन का वीरगमिक कथाओं पर विश्वास कर के वह युद्ध में राजस का निवास और संघर्ष में रत्नों की प्राप्ति सम्पन्न जानता था। 'उस के वन भीतर को बसे हुए छोटी की देत हम बालक में एक प्रकार की दुइता और अपने अन्धकार में निरता घनबला मासती थी जो बपबप के बहने के साथ ही पथरप बहनी' यही। जब से वह 'बह्मचारी' बना। वास्तविकता के अनुक्रम के बहने एक ऐसे सहज मास्त्रीय में विनायक के मन में स्थान पाया जो बसोबस सुखों में बहता देता जाता है'। पिता की आज्ञा को अन्तर में मन्त्र मान कर विनायक अनिधि-सरदार के लिए बूझ था। डाकूओं की प्रतिनिधिमूर्त कर वह निमय हाकर उनका स्वागत करने समय में इन तीनों की मेहुमानदारी ऐन अन्धे अंग से कर कि पिता के धाने पर मेरी बात उन्नत रहे और वह सभी मन्त्र है अब इन मेहुमान के मुह से मेरी प्रज्ञता पिता की सुनें'। उसके निराश विस्मयपूर्ण सम्मुखार से 'डाकू जिन्होंने बड़े-बड़े बहादुरी में हथियार रखा निवे से—उसके सरदार का मन फिर जमा और उन तीनों की हिम्मत मुटने की न बड़ी'। विनायक के अन्तर की मुख्य विवेचना यह है कि वह सामान्य बालक है, उसकी परिस्थिति नितांत सामान्य एवं सर्व-जन-सुखम है। इसीलिए कोई भी धात्र विनायक के जीवन में प्रेरणा लेकर अपने जीवन की उसके लीने में डाल सकता है। विनायक के प्रयास सुख भोगात्मक सुकृता अन्धकार, लक्ष्य एवं निर्धनता है। उसकी

१. चौथा परिच्छेद ६ ३३

२. वही, १० १०

३. वही, १ ३६

४. वही १ ४२

५. दसरा परिच्छेद १० २०

मही का, धन्यवा लेखक यह भी बतलाते कि पन्द्रह वर्ष तक सरदार के मन में क्या-क्या हस्त चलता रहा और विनायक के जीवन के उपदेश लेकर वह सम्पात्ती क्यों न बन गया। विनायक और सरदार के जीवन का वैयक्तिक चित्रण लेखक ने धारण की सैखनी से किया है। न तो संसार में विनायक जैसे बड़ाभारी हैं और न सरदार जैसे बाबू। धारण जाने हुए भी दोनों अपने-अपने गुणों में सामान्य हैं। उनके व्यक्तित्व का सूक्ष्म संक्षेप उन युग में लब्ध न था।

नूतन बड़ाभारी' उपन्यास क्या प्रभाव है। इसलिए वर्णन तो इस में बहुत है परन्तु बहोतकवन स्पेसिफिक कम। पहिले परिच्छेद में 'बीमाल के महीमें में एक जंगल में भाग' का वर्णन है और दूसरे परिच्छेद में 'बग्गी के मोनिम में प्राण-काल का। मैलक न जानन और बडोवचीन-मयावबर्नन (छठवां परिच्छेद) का बड़ा भावनात्मक चित्रण दिलाया है। इनके स्वच्छ और उज्ज्वल मान गान रीति और व्यवहार के कारण इच्छता संवृद्धि और प्रयत्नी-नी हो केवल हरे कृष्ण इत्यादि नारायण के नामों काव्य में या बगी और सब और से निराप ह्य मजिक्ता के इनकी धनिहोत्रात्मा के धूम का धामरा परदा' आदि वर्णन लेखक पर 'काश्मिरी' का प्रभाव दिखाते हैं। मट्ट की की भाषा न तो संस्कृतनिष्ठ ही है और न हिन्दुस्तानी ही। बैमबाही का प्रभाव पूर्व-कालिक जिया 'आम बर्र बैवी' 'निमीना को परब' 'ई दिवाब बिदा किया' 'बोब की छाट पाव आदि में और 'राजी न हुआ चाहने के 'धारा ही चाहना का' 'ऊपर चड़ा चाहना का' आदि विषयों में स्पष्ट है। श्रीनिवासराय और बामहृष्य मट्ट की बतवायो की तुलना पर पहिली पर टेम्पन और दूसरी पर पूर्वी प्रभाव स्थानीय विषे पना के कारण है।

मट्ट की ने धामे उपायान को परिच्छेदों में विभक्त किया है परन्तु कोई-कोई परिच्छेद (जैसे पांचवा) डेढ़ पृष्ठ का है और कोई (जैसे आठवां) आठ पृष्ठ का। किसी परिच्छेद पर दीर्घोद्गम हिन्दी में है (जैसे पहला) किसी के मध्य में (जैसे दूसरा पांचवा) लटका मातका और आठवां) और किसी में है ही नहीं (जैसे तीसरा और चौथा) बीच में केवल एक बौद्ध मुक्ति है। बतन बहुत सम्य है। क्या-किसी पर साम्यनिक प्रभाव का उज्ज्वल उपदेश के हेतु लेखक ने दिया है। परभावों में निमिरमी लोचारी या आकृष्टी कमजोर न होए हुए भी दिखायी पड़े। क रामचक्राणी इतिहास में मट्ट की ने मान डगाया है। इस उपन्यास में का' भी बतला का बतन धनिहोत्रात्मा की है। यद्यपि 'नूतन बड़ाभारी' की बतवास्तु सामयिक यथार्थ जीवन की है फिर भी बाहोपानी हान के कारण हमसे जीवन की अवस्थाया और महाराज्य का इतिवृत्तन नहीं जाना जाता।

इस उपन्यास का भाषा पाठों का ध्यान साधुष्ट करता है। 'नूतन बड़ाभारी'

१ दीक्षा परिच्छेद पृ २५

२ १ ३ १९ का ३२ पर नका मज्जतो' और ३ ३० (बीमाल परिच्छेद) पर नूतन मज्ज-बारी' शब्दों का प्रयोग है।

में 'नूतन' शब्द को अनावश्यक महत्त्व देकर कभी-कभी पाठक यह सोचता है कि 'नूतन' 'मार्ग' का पर्याय है और यह उपन्यास आसकस ने मुश्कों पर व्यर्थ था है। परन्तु इस नाम में 'नूतन' विरोध की अपेक्षा 'बहुचारी' संज्ञा का अधिक महत्त्व है। यज्ञोपवीत के प्रवेश पर पुरानी परम्परा का पालन करत हुए उस आसक को उत्पन्न पर्यन्त मात्र भी 'बहुचारी' कहा जाता है क्योंकि प्राचीन काल में यज्ञोपवीत लेकर आसक बहुचर्य आश्रम में प्रविष्ट हो जाता था और पञ्चमी वर्ष की आयु तक उस व्रत का पालन करता था। शास्त्रोक्त नियमों का पालन करत हुए ब्राह्मण कुमार मात्र भी जब 'नूतन बहुचारी' बनता है तो संस्कारों के कारण उसके मन में प्राचीन वसी हो पवित्र उत्तराश्रम आनन्द का उदयी है। यदि इन बहुचारियों का ठीक विकास हो तो वेग में ऐसे अनेक युवक निकल सकते हैं जो समाज और राष्ट्र की सेवा करत हुए प्राचीन ऋषियों का आदर्श उपस्थित कर सकें। यज्ञोपवीत के प्रवेश पर बहुचर्य का नूतन व्रत लेने वाला कुमार ही 'नूतन बहुचारी' है। प्रत्येक कोमल-मति छात्र 'नूतन बहुचारी' है, उन्हीं विनायक के समान ही बड़ा संयम उत्तरता अध्ययन और मन्त्रार्थ पाई जाती है। परन्तु शिक्षा की दुर्भिक्षता के कारण हम अपने बहुचारियों को मिट्टी में मिटा देते हैं। भट्ट की स्वयं प्रोफेसर थे उन्होंने यह कल्पित यथार्थवारी आश्वासन नव छात्रों (नूतन बहुचारियों) के सामाजिक शिक्षा या 'भूतार्थ आसक' बन कर अपने माता-पिता को दान्य बना सकें—यही लेखक की महती कामना है। पाठक और उद्देश्य पर ध्यान देने से बात होना कि लेखक का प्रयत्न अत्यन्त सफल एवं सन्तुष्ट है।

१० वातवृष्ण भट्ट एक आदर्श ब्राह्मण थे—जन्म से ही धीर कर्म से भी। उनके जीवन में स्वाभिमान निर्भीकता निस्वार्थ सेवा छात्र-हित और सामान्य कल्याण के साधन-साधन सम्पूर्ण धर्म एवं नैतिकनिष्ठता झलकती है। विद्वान्पद का चित्रण करते हुए वे अपनी छाया न बना सके। तीसरे परिच्छेद में 'निचली विद्वत्पराय' का 'प्रति-स्मरण' न कह कर 'निष्प्रिय' कहा गया है। क्योंकि 'ब्रह्महीन संयमी' विद्वत् के पास बन न हो 'मन का अन्त सम्पूर्ण' और 'तपोवन' की तो कोई सीमा न थी वे अपने को चीन क्यों मानें? आश्चर्यजनक होने पर भी वे स्वाभिमान के कारण ठाकुर साहब की यज्ञी पर बिना बुलाये न आना चाहते थे। जब बुलाया गया तो 'हर्ष से इनका मन मुहुरत विरहित हो एकबारगी जिज्ञासा उत्पन्न' स्वाभिमान और आश्चर्यजनक दोनों को पूरा करने वाले इस अवसर का 'पूरा-पूरा अनुभव उन्हीं को होना चिन्हें कभी ऐसी संकीर्णता सेमनी नहीं है यह अनुभव की बात है मिलने की नहीं'। भट्ट की ऐसी ही सुस्मयोंसी रहे होंगे। एक घोर उन्हीं के अपने उपन्यास में मन्त्रार्थ और ज्ञानायक ('ज्ञानायक' नहीं) की सृष्टि की है जो भूटेरा है 'पर उसकी धारों में चील और बया की कोई-बोई समय मन्त्र—भी मान्य होती थी किन्तु उसका भीजरी मात्र यही प्रकट होता था कि जो—केवल स्वाध की सृष्टि है जो निज सुख तथा आमांश प्रमोद को अपने जीवन का सार

माने हुए हैं। सामयिक अधिकारियों की जायसूती में बिपटे हुए अपने पसंदमय मन को सुटाने में कभी भी संकोच नित्त में नहीं साते, जिनके नित्त में देश की दशा का कुछ-कुछ कभी व्यापता ही नहीं ऐसी के मन को मूठ उनमें बांट देना जो वास्तव में हीन-हीन और सब भाँति लुचरिब और सुयोम्य रह कर भी काम की जास हान से डुबी हो रहे हैं। हमारी ओर उनका ब्राह्मणत्व ऐसे नामक की धृष्टि करता है जिसको 'ब्रह्मचर्य' में करम रखते ही निगुनक से यह सील मिली की कि 'जो अपने साथ बुराई करे उसके साथ भी भला करता। परन्तु दुर्जन और कुछ मनुष्य जिनका स्वभाव ही दुष्टरे की बुराई और हानि करने का है उनका मन भी बुराई की ओर से केर देने का वही एक उपाम है कि महा उनके साथ कुछ भलाई का वर्णन करे और उनकी दुष्टई को अपनी भलाई से दबा कर उन्हें लम्बित कर उनका मन अपने बध में कर ले'। अन्त में सरकार पर विनामक की विजय भी ब्राह्मणत्व की लबाकचित प्रयतिधीन विचारधारा पर विजय है। 'सर्व साधारण की यह उत्तम सिखा' है कि 'भलाई और पच्छा काम तुम से कहाँ तक बच नके करो परन्तु उन भलाई का प्रतिफल पाने की पासा मत रखो'।

'नूतन ब्रह्मचारी' उपन्यास में समाज और युव का प्रतिफलन बहुत कम है जितना भी सामयिक प्रभाव जाना होता है वह लेखक के व्यक्तिगत या भारतेन्दु-गरम्भरा का समझना चाहिए। 'परीक्षापुत्र' के समान यह उपन्यास रम्यीर साहित्य की कोटि का है। 'परीक्षापुत्र' के समान इसमें भी स्त्री-गाथों का अभाव-सा समझना चाहिए। प्रेमचन्द कुछ युवक अधिकतर उपन्यास सामान्य जनता के लिए लिखे जाते हैं उनमें स्त्री-गाथ ही मुख्य हुमा करते हैं और सुमलमानों की निम्ना एवं प्रायः अंधका की प्रशंसा की जाती थी। 'परीक्षापुत्र' 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'ही अज्ञान और एक मुजान' उस प्रवाह से भिन्न है। तुमारी अक्षय्यी देश-वधा से जगतीन लोको पर व्यर्थ कम कर भट्ट जी ने भारतेन्दु-गरम्भरा का निर्वाह किया है। हमारे परिचये में वे लिखते हैं कि 'जहाँ एकठा है वहाँ यह सब मजब है कि कोई बाहरी आकर अपना प्रभुत्व जमा सके'। धर्मनवाज और समाज धर्म के भङ्ग की न उठा कर लेगा बहोरय ने ब्राह्मणत्व का प्राचीन प्राण नूतन ब्रह्मचारियों के लम्बा रखा है। मनु और अमन का ही संघर्ष न दिना कर मनु के ही को बच विनामक एवं सरकार का जीवन संकित करके भट्ट जी मनोविज्ञान की लकीनमय वास्तव्यो से भी पीछे नहीं रहे। उनका 'नूतन ब्रह्मचारी' मान भी मुकुन्दरजि सिध-छाया की लिए बहुमूल्य उपहार है।

१. परिणतिपत्र १ १८

२. छाया परिचय १ २६

३. हमारा परिचय १ ११ १२

४. १ २६

सी प्रमान और एक मुजान

मदृष्टी का दूसरा उपन्यास 'सी प्रमान और एक मुजान' है। प्रथम उपन्यास 'नूतन ब्रह्मचारी' से पाठक-मेध एवं उद्देश्य भेद से भिन्न होगा हुआ लेखक का यह उपन्यास 'परीक्षामूर्ख' के सहयोगियों में स्थापन पाने योग्य है। यह कहना कठिन है कि 'परीक्षामूर्ख' पर मुख्य होकर लेखक ने 'सी प्रमान और एक मुजान' की रचना की प्रकृति दोनों उपन्यासों का इतना अधिक साम्य मयोग-व्यय ही है। साधारण में 'सी प्रमान और एक मुजान' पूर्ण-रचित उपन्यास 'नूतन ब्रह्मचारी' से बड़ा है इसमें ऐसी 'प्रस्ताव' और एक भी सत्ताईम पृष्ठ है। 'नूतन ब्रह्मचारी' को प्रारम्भ करते ही लेखक ने 'उपन्यास' संज्ञा दे दी थी परन्तु इस रचना को मुक्त-पृष्ठ पर एक प्रथम कल्पना कहा गया है यद्यपि जीतर जाकर 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग भी है।^१

'नूतन ब्रह्मचारी' के पाठक मुकुमारमणि छाब छाबाएँ हैं परन्तु 'सी प्रमान और एक मुजान' के युवक नन। इसलिये पहले उपन्यास का कथानक सरल एवं लघु का उसकी कल्पित घटना के वर्णन में एक बालक के सम्मुखार से श्रुतियों का प्रसार ही मुखर गया था। परन्तु इस उपन्यास का नायक कुमरमणि में यह कर पतन की ओर जा रहा है अन्त में एक पुण्यता हितैषी उसकी सहायता करके उसका उद्धार करता है। पहिले उपन्यास में लेखक की सीधी बायोपयोगी भरस एवं उपदेशमयी है परन्तु इस उपन्यास में साहित्यिक छाना जीवन के वर्णन वर्णन की रम्यता एवं कलात्मक मौल्य पाठकों की प्रीति का उचित देती है। मदृष्टी के दोनों उपन्यास एक-दूसरे के पूरक हैं 'नूतन ब्रह्मचारी' मुकुमार बालकों के लिए लिखा गया था और 'सी प्रमान और एक मुजान' बिरादर युवकों के लिए।

अब प्रान्त में गोमती के तट पर अमरपुर नाम का एक कस्बा है। वहाँ लेठों के एक पुराने घर में सेठ हीरानन्द हुए 'वर्म' में निष्ठा ब्राह्मण में भक्ति अति रहते थी समा इत्यादि ऐसे लोकोत्तर गुण इसमें थे कि उनकी अपमा किसी दूसरे पुरुष में बँडने सेभी मिलना दुर्लभ है^२। सेठ हीरानन्द के एकमात्र पुत्र करनर २२ वर्ष की कोठी ही उमर में ही पुत्र एक कन्या छोड़ स्वभावानी हो गये। सेठजी को दुःख तो बहुत हुआ परन्तु ईश्वरेच्छा समझ कर उन्होंने सब कुछ सहा और बालकों को पढ़ाने तथा इतर उबर की बपुराई की बातें सिखाने के लिए पं० चन्द्रसेखर को नियत कर दिया। चन्द्रसेखर या 'चन्नु' ही इस उपन्यास का 'एक मुजान' है कुछ समय अनुराग सेठजी भी अपने पोत्रो अविनाश और निविनाश को छोड़कर स्वर्ग सिधार गये अविनाश बीसह वर्ष

१ 'परीक्षा' से १९२२ में प्रकाशक रंगा-पुस्तकालय-आर्वालय, २६-२ अनीतापार-पन्ना, लखनऊ।

२ लक्षा क्रिमी रहस्य का अन्तर्गत उपन्यास लेखकों का रोति के सिद्ध है इससे इस प्रत्यक्ष के भी समाप्त करने हैं। (बड़ा प्रस्ताव)

‘एक कहानी कछु घाय बीनी कछु वप बीती’ से ‘सौ धजान घौर एक मुजान’ की तुलना की जा सकती है। यद्यपि इस कहानी का प्रथम लेख ही प्रामाण्य है फिर भी उसमें धजरो में इस उपन्यास की समता है। कहानी का नायक ‘जबानी की उमरा में बुरा दुनिया के मुफ्तखाने मिफ्फागिया में घिरा हुआ है। अजिनाब के ‘मी मे कई उमरा का मसूर’ उमर रहा है जिसमें मुतामकी चुन्नी बजाने वाले मुफ्तखाना की बस पड़ी। भारतेन्दु ने इन मुफ्तखानों में एक मीर साहब का। बयान किया है। मस्टकी में मी सबसे पहिले ‘मीर शिखार मीर साहब का। फूपा बल्लो में है बहावधी घौर मसामकी। भारतेन्दु ने रही के प्रण का बयान किया है। इस उपन्यास में हुआ बेगम का मया भाई ‘हजीर साहब’ बना हुआ है। मय-जान बड़ा बुर उमरा। घर्नी बहिन का उपनाम बनाता घौर बस इकठ्ठा करता है। भारतेन्दु का प्रभाव धजान हारी नाम का बनबी है। ‘जाटा खोला भावने रय का धावना है। छोटी घाय कछाण बने नाम पमबी बाबे उरता है। प्रस्तुत उपन्यास का बयाना रवीर बपदा मिर ‘र’ बाबे है उमकी घाय चुन्नी-सी रय काभा है। है घौर नन्नु की घाय चुन्नी नाम फूले

पल्ल कड है घौर कुडडास का ‘रय वाला घाय चुन्नी सी बीन टिपता है। ‘हाली के भिए भारतेन्दु निराने है। ‘रेबरी के बाले मसजिद निरानी रसी का नाम है। ‘सौ धजान घौर एक मुजान उपन्यास के बार्निंग प्रस्ताव में पंचानन में धजान में बजान बैठे हुए इन धजानों के विषय में अंतिम बावप यही कहा था—‘ये नाम रेबरी के लिए मसजिद बहाने वाले है। फलतः भारतेन्दु का ‘डोपी’ इस उपन्यास में प्रत्येक धजानों के रूप में प्रकट हुआ है। परीक्षाकर न इन उपन्यास की तुलना ऊपर हो चुकी है। इन उपन्यासों का नाम संयोग-अर्थ भी हो सकता है। कम से कम यह निश्चय है कि इसी घटना की बहिन बसाविरों में भारत के रईसों का यहो ज्ञान था जिसका तत्कालीन साहित्यिकों ने उपन्यास के लिए बजानों के रूप में बहिन किया।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से मस्टकी को नकलता कम मिली है। इस उपन्यास में यह भी स्पष्ट नहीं है कि नायक-वह किसी मिते। छठे प्रस्ताव में इन किस्ते के कई एक नायक प्रतिनायकों ने चम्पू का प्रतिनायक बनता होने से चम्पू नायक घौर बहन्ना प्रतिनायक बननाये गये हैं। चम्पू-सा सुधास मलामावुन घौर बहन्ना के समान नटखट कुमान प्रभाव नहीं है। आठवें प्रस्ताव में चम्पू को स्पष्ट ‘सौ धजानों में एक मुजान’ कह कर नायकत्व का संकेत है। तेरहवें प्रस्ताव के अनुसार ‘इस उपन्यास का मुख्य नायक दोनों बाबू हैं। इनहीमें प्रस्ताव में चम्पू ने बोना बाबूओं से कहा ‘तो यह घाय से प्रण करो कि यह धजान न बने’। तब क्या दोनों बाबू भी सौ धजानों में से हैं? यदि बाबूओं को भी धज धजानों के नाम जोड़ा जाय तो नायकत्व किसे प्राप्त होगा? मुजान तो चम्पू है। परन्तु धजानों का मुक्तिवा कीन है? लेखक के अनुसार बहन्ना मुख्य धजान है। किन्तु उपन्यास के अन्त में चम्पू को सत बरं की मकल कीन मिलती है उनका बुरा परिणाम देखकर बाबूओं को नेत हो जाता है। बहन्ना का बहा ही नहीं चलता। नकल है लेखक कुछ स्पष्ट नहीं कर पाया। हजारा धनुषान यह है कि तो बजकिघोर के स्वान पर है घौर बड़ा बाबू बहनमोहन के स्वान पर। दोष

हुट सोन प्रदान है जिनका आश उनको स्वयं बकड़ भेता है। भवभीत नायक सम्मार्प पर भा जाते हैं। मुजान का सबसे बड़ा प्रतिद्वन्द्वी बसन्ता और मनु का संयुक्त रूप है। बसन्त के अनेक रूप हैं इसलिए वह कपटता-भ्रूणता दिखाई पड़ता है परन्तु सत्य एक ही घटस एवं बूझ होने के कारण अन्त में विजयी होता है।

इस उपन्यास के पात्र बड़े प्रतिनिधि एवं भूमि-शोषों की मूर्ति होने पर भी सहरे रंगों से धंक्षित नहीं किये गये उनकी कपरेला तो लेखक ने खींच दी है परन्तु रंग पाठक की कल्पना पर छोड़ दिया गया है। इसलिए दूर से उनका रूप भ्रूणता दिखाई पड़ता है। कई बार पाठक की मति बाहर फँस कर दूसरे पात्र पर भी कुछ बर्मे डाल देती है। चरित्र के विकास का तो प्रश्न ही नहीं आता। सभी पात्रों का अभाव मट्टजी के पहिले उपन्यास में भी था। मदनमोहन की सन्तान के समान इस उपन्यास में छोटे बच्चे की दो बप की पुत्रा उत्पत्ती है। मुसलमान-मात्र हकीम साहब और उनकी हमपीठ गर्सकी हुमा है। 'मुसलमानों में यह एक चसन है कि जो लोग कुछ पढ़े-लिखे होते हैं और उन्हें कहीं कुछ बीबिका का डील न भाग तो वे या तो हकीम बन जाते हैं, या मौलवी हो लड़कों को पढ़ा अपना दे' पात्रते हैं।^१ कोरबान भी मुसलमान है जिसमें उसकी जाति और व्यवसाय दोनों के दुर्गुण झोंक रहे हैं। लेखक ने मुसलमानों को नज़हपरस्त दिखाया है। अपना छगी बहिन को पैसेवर मछली बनाने वाला हकीम हर समय हाथ में तस्वीह लिए चला है, और कोरबान जब 'सबरे की गमाज से फ़ारि' होता है तब भी 'अमीर के नरी में झोंक में अंजता' हुमा है।

मट्टजी के दोनों उपन्यासों में कथोपकथन विरल हैं। उनके उपन्यास कथा-प्रधान हैं। इनमें बर्नन जितने अधिक हैं कथोपकथन उतने ही कम। भाषा सामान्यतः बँधवाड़ी अभाव से धंक्षित व्यावहारिक नहीं होती है। कुछ पात्रे पश्चिम के शैली में अंजता हुमा पूर्वी भाषा ही बोलता चला है। मुसलमानों के पास बैठ कर लेखक महीदम जर्न-अरसी के शब्दों का प्रयोग कर लेते हैं। सर्वेजी के 'प्रपोज' 'मैकंड' 'कैम्पिटे' जैसे शब्द आ गये हैं। सबसे अधिक संस्कृत का शब्द है। शब्द-अमूह, अपस्तुत-योजना, वर्णन ही नहीं बलोक के श्लोक उठाकर रख दिये गये हैं। शीतिवासवास नीति का उपदेश देते हुए विरक-साहित्य और विषय-इतिहास से नाम उठाते के परन्तु उनके छुटोटी में भूच भले ही रहे भूम में केवल धनुबाव होता था जिससे हिन्दी के पाठक को कोई कठिनाई न हो। मट्टजी यह मान कर चले हैं कि साहित्यिक हिन्दी का पाठक संस्कृत ज्ञान-भाष्य नहीं होगा। डिबेरी युग में तो संस्कृत-ज्ञान का हिन्दी-साहित्य में मिश्रण मा ही गया था मात्र लेखक पाठकों से संस्कृत ज्ञान की प्रकप्ता ही आशा रखते थे। मट्टजी के इस उपन्यास में संस्कृत पहिले उपन्यास से धनिक है क्योंकि यह किसी भूषकों के लिए लिखा गया था। मट्टजी संस्कृत के प्रोफेसर थे, पर सन्ध्या-साहित्य उनके लिए हस्त-मलकवत् था। काव्यभरी रघुवीर किरातार्जुनीय महाभारत धादि के ज्ञानानुसार यहाँ वर्णनों में हैं और नीति-विवेचन में यथावध्य उद्धरण रख दिये गये हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि धात्र की दृष्टि से यह संस्कृतपन विरीय मुपाश्व नहीं है। यदि 'भी

अज्ञान और एक सुज्ञान' में संस्कृत छाया का अध्ययन किया जाय तो एक स्वतन्त्र बृहदाकार निबन्ध लिखा जा सकता है। अतएव एक बात पर ध्यान है कि किसीरीताम पोस्वामी में मुख्यतः संस्कृत के वाक्यिक धर्मों की छाया है, परन्तु बालकृष्ण भट्ट में संस्कृत के साहित्यिक धर्मों की।

मीनिवासदास का 'परिचय' अपनी भाषा में नहीं आस बी पुस्तक थी। बालकृष्ण भट्ट के उपन्यास उस वर्ग में नहीं हैं। निरन्तर ही इनका कथानक कल्पित समकालीन एवं वर्तमान है फिर भी मेमक का कथित उपन्यास-कला पर हावी हो गया है। उस युग में संस्कृत के विद्वानों ने हिन्दी गद्य में जो उपन्यास लिखे उन पर संस्कृत कथा-वाक्यात्मिका का अत्यधिक प्रभाव रहा और कवि बाण की सी ? उन पर बहुत प्रभाव डालती रही। मराठी भाषा में तो 'नविस' का नाम है। 'कादम्बरी' गद्या गया। इन उपन्यासों में दो बातें स्पष्ट हैं—कथा और 'काव्य' इनका योग गद्य के माध्यम से व्यक्त होकर 'नविस' के साथ बन गया। 'सी अज्ञान और एक सुज्ञान' उपन्यास में मगर-वर्णन आनु-वर्णन काल-वर्णन स्थान-वर्णन और आचार-व्यवहार-वर्णन वही कृतात्मता से लिखा गया है। कवि की बहना कभी प्राचीन साहित्य में विचित्र करने लपटी है, कभी सामयिक जीवन में कभी उसके अनुकूल आदर्श आता है कभी वर्तमान अतिरिक्तता और मानकता उसकी ही सहेलियाँ हैं। भट्टजी की कविता-सक्ति ऐसे ही स्वभाव पर देखने योग्य है। आचार्य प्रस्ताव में 'हुमा बेगम' का वर्णन पन्द्रहवें प्रस्ताव में 'वर्णन-वर्णन' और आठवहवें प्रस्ताव में कोलवासी का वर्णन देखने योग्य है। 'प्रस्तावों' के अन्तर्गत ही नहीं हैं परन्तु संस्कृत या हिन्दी के सीधे-सिधे अवलोकन हैं। बीच-बीच में लेखक कभी-कभी पाठकों से बात कर जाता है। यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक प्रस्ताव कथा को धारें बढ़ा ही ले। वस्तुतः उपन्यास-कला की दृष्टि से यह उपन्यास निर्दोष नहीं कहा जा सकता। परन्तु उपन्यास के विकास-काल में साहित्यिकता का विमूर्ति होना कारण करने के कारण इस उपन्यास का कथित भी दोष-रूप में न बहान करना चाहिए।

इस उपन्यास में देव-काल का समुचित प्रतिबिम्ब इसके नाम और कथानक से ही स्पष्ट है। उस युग में अतिताम महामोहन और अज्ञानात बीसे बहुत-से रईस थे और वसन्ता नन्द आदि अज्ञान भी अनेक थे जो आपस में मिले हुए (कै) और यही पैसा इन लोगों का .. (ना) कि नई रमर बाते रईस लड़कों को फँसाया करे^१। इन लोगों का 'हुमेसा से यही हल चलता थाया है'^२। जीवन बन-सम्पत्ति प्रभुत्व और धार्मिक^३ इसमें से यदि एक भी हो तो अन्तर्गत कर सकता है जब चारों मिल जायेंगे तो क्या बनेगा—इसकी कल्पना भी कठिन है। १९वीं शताब्दी के उपन्यासकारों ने इसी अन्तर्गत का विषय किया है—टेकचन्द ठाकर ने आत्मातेर बरेर पुताम में आठवें हिस्से में 'एक कहानी कुछ आपसीती कुछ अपसीती' में,

१. १० १२४

२. ४०

३. ६० चौथा प्रस्ताव।

श्रीनिवासबाब ने 'परीक्षापुत्र' में बाबूजीपुत्र मर्द ने 'श्री धनान और एक मुजान' में और किछोरीबाब जोस्वामी ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों विरोध 'रंगमहल' में 'हलाहल' में। इस बाबत सत्य के प्रतिनिधित्व इस उपन्यास में सामयिक सकेत भी उपलब्ध होते हैं जिनमें से मुख्य-मुख्य निम्नलिखित हैं —

- (क) सरकारी कौम में बैसबारे के सिपाहियों का बर्बाद भयानक समझ आता है। (पृ० ४)
- (ख) भाषण की नाइतिफाकी के बीच बूख के तीव्रता की तरफ की तरफ बताने ने ही हिन्दुस्तान को मुहल से कबाह कर रक्खा है। (पृ० १७)
- (ग) शासन ही जो हिन्दु जाति का सिपा और हिन्दुस्तान के सब कुछ हैं इस लक्षण के हुए तो सौरी की कौन कहे। (पृ० १७)
- (घ) सेठ की दीसत पर गीत के समान ठाक लगाने बैठे हुए सुधामरी बुटकी बजाने वाले मुफ्तखोरों की बन पड़ी। (पृ० १८)
- (ङ) जो धनस्तपुर सेठ की सरीखे विचारमिद के समय काशी का नमूना बना हुआ था वही अब ग्राह भयतिष्ठ, करणक-कलावतों के मर जाने जाने से लक्षणक और दिल्ली की धनुहार करने लगा। (पृ० १९)
- (च) जो धनस्तपुर काशी और मधुरा का एक उदाहरण था वह इन बाबुओं के जमान में दिल्ली और लक्षणक का एक नमूना बन गया। (पृ० १९)
- (ज) साहब लोगो के पदावत का रसिक पञ्चाक्षरी अपने प्रभु के पार-पय को नानो बारबार झुझुझु प्रणाम करता-सा रज रहा है। (पृ० २७)
- (झ) पुरोहिती कर्म से जाने वाले शी-गवास इकट्ठे किए कार्य को विरले एक-दो जनों ऐसे निजलने जो धावारसी उजड़पन और किछोरेपन से बाली होंगे। (पृ० २८)
- (ञ) पानी बार बार छाव कर पीता था बूख के बाती समूची की समूची निबल जाता था। (पृ० ३१)
- (ट) धरासत तो बगमा की है। (पृ० १०९)
- (ड) बड़े-बड़े बैरिस्टर और बकीस जो हजारों एक दिन की बहल का मुम विक्रम से पुत्राय बैसारे को जमते हुए मूक अपना मतलब पाठते हैं। (पृ० ११९)
- (ण) काम की बातीकियाँ ही बैरिबानी और फरेब लोगो को सिखा रही है। धनजी राज्य में धरासत और कानूनों की पेचीदारी इमीनिए है कि जान रहे कार्य। (पृ० १२१)
- (त) श्री धनान और एक मुजान' उपन्यास के 'मुक-मुक पर लेखक ने संसद का जो पय उद्धृत दिया है उसका धर्म है कि हे बीच धू-सीस की सुन्दरी श्री-मंगति थोड़

१ 'रंगमहल' में हलाहल का उपनाम रविदा नेचम उपन्यास के एक-दूसरे पर यह कथन सिद्धांत-का से अंकित है।

धीरे सत्यन को प्राप्त कर । पहिले प्रस्ताव का शीर्षोद्धरण भी यही बतलाता है कि छोटे व्यक्ति को संयुक्ति नोवसे के शास के गवान हैं। यदि परम होना तो हाथ को बना देना धीरे यदि शीघ्र होना तो हाथ को कासा कर देना । जिन लोगों में घबरा बिकेक नहीं है वे कुर्बन पात्र हैं उनका गुण संगति के अनुसार बदलता है । वन्धु धीरे बसन्ता जिसका शास रहे उपन्यास के नायक उत्कान बंते ही बन जाते हैं । मन का स्वभाव बल के समान तरल एवं प्रयोगमन है । इसलिए 'सी भजानो' का कुर्बन व्यक्ति पर प्रभाव प्रभाव पड़ता रहता है । इस प्रयोगमन में भाइ माने बापों ईश्वी पापतिमां हैं जो एक धीरे तो कुर्बन मन को प्रयत्नित करने में संकुश का काम करती हैं धीरे दूसरी धीरे उसके मित्र की पहिचान सिखा देती हैं । धीनिबामदास ने इनीमिए अपने उपन्यास का नाम 'धनीबामदास' रखा था । अदृष्टी ने भी विपत्ति की प्रवृत्तारमा ही नहीं की उन्नीसवें प्रस्ताव का शीर्षोद्धरण भी बिपति सहायको वन्धु' रखा है । प्रसन्न इह उपन्यासका अन्त 'सत्यमेव जयति नानुत्तम' में हुआ है । जिनकी परम्परा बाह के उपन्यासों में प्रेमचन्द तक चलती नहीं । ऐसीसवें प्रस्ताव में उपसंहार करते हुए लेखक ने इस उपन्यास के तीन उद्देश्य बतलाये हैं —

- (क) 'देखिये सी भजान में एक सुमान कैसा गुनगारी हुआ कि सब भजानों को फिर राह पर घेत को लाया ही ।
- (ख) 'दुसरे, यह कि जो सुकृति हैं उनके सुकृत का फल प्रबन्धमेव धीमाह पर पाता है ।
- (ग) 'घात लोगों में यदि कोई प्रबोध धीरे भजान हो तो हमारे इस उपन्यास को पढ़ प्राधा करते हैं सुमान बने । इस किस्से के भजानों को सुमान करने की वन्धु का घात लोगों को हमारा यह उपन्यास होया ।

सुन्दर सरोजिनी

सन् १८९१ ई० में रामनगर (बम्बाल) राज्य के वं ईश्वीप्रसाद धर्मा जवाधाय ने 'सुन्दर सरोजिनी' नाम का एक रोचक उपन्यास लिखा जो सन् १९०७ ई० में काशी से दूसरी बार मुद्रित हुआ । इन उपन्यास की साहित्यिकी एवं समाचार-मर्मों में बड़ी प्रशंसा की । लेखक की अपनी दृष्टि में 'सुन्दर सरोजिनी' प्राकृतिक मनोहरता प्रेम-मैत्री धीरे लक्ष-प्रमम का अत्यन्त रोचक संयोजनमय उपन्यास है । इसमें 'सती बर्न' की जय 'घातवर्न-कन बटनाओं' अन्तराल में विवित की गई है । 'मारत जीवन' के अनुसार इसमें कुप्रमचन्द की मित्रता सरोजिनी का पाठिपत-वर्न उसके माता-पिता का वारसस्य प्रेम तथा कई एक पाठनवैयुक्त बटनाओं का बिध । प्रस्तुत किया गया है । हिन्दी बंगवासी के अनुसार 'सरोजिनी' अपनी बाक-दास की हिन्दी में पहिली ही मुस्तक है । इसके प्रत्येक-पृष्ठ से लेखक की विद्या बुद्धि धीरे जानकारी का परिचय मिलता है^१ । शुभ चिन्तक ने इस उपन्यास को 'मत्स्यम हिन्दी

१. मारत-जीवन, १ जून १८९४

२. हिन्दी बंगवासी, १६ जून १८९४

यह पद्य में^१ लिखी हुई रचना माना है। 'हिम्नोत्थान' के मत में यह उपन्यास 'प्रेम प्रीति-मित्रता, पावित्र्य-धर्म ईश्वर-महिमा और धार्मिक-व्यवहार-विधियों के बगन से पुरित ऐसी सुन्दर पौष्टि पर लिखा गया है कि जिसके पढ़ने से जिस को पब्लिक धर्म-मित्रता है^२। 'उपन्यास समाचार' में लिखा है कि पं० देवीप्रसाद ने यह 'उपन्यास रच धर्म मार्ग के संसार में वृद्धि की है'^३।

इस उपन्यास की मुख्य कथा नायक 'सुन्दर' और नायिका 'मनोविनी' के स्वप्न वर्णन-वर्ण्य सपना प्रेम की कहानी है। इसके साथ मैत्री-सम्बन्ध से उपनायक 'कुशल' और उपनायिका 'यशोदा' की कथा बुझी हुई है। नायक नायिका के नाम पर बंगाली लोक कथा 'विद्या-सुन्दर' के समान ही इस रचना का नाम 'सुन्दर-मनोविनी' रक्त किया गया है। जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया जा चुका है यह उपन्यास संयोगात् है। स्वप्न में एक-दूसरे को देख कर नायक और नायिका के मन में जिस सुझानुदास का प्रारम्भ हुआ वह धीरे-धीरे बाबाओं-विपत्तियों को भेज कर भी धन्य में मृच्छावसायी बना। कथा का कलेवर मध्ययुगीन लोककथाओं के समानान्तर है। मेलक 'विहसवीप पद्मिनी शानी' की कथा से प्रभावित न हुआ हो यह सिद्ध करना कठिन है। लेखक विविधा शायी है। इसलिये इस कथा के माध्यम से उसने यह प्रभावित करने का भी प्रयत्न किया है कि 'बंदास के इतिहास' के ललक ने विजयवातु की बंगाली बतमाया है पर यह भ्रम है, वे विहायी के' ये शर्त महाबंध' नामक विहस के इतिहास में लिखित है। सन् ईसवी के १८९२ वर्ष पूर्व विजय लंकाविजयी हुए^४।

भारतवर्ष के विहार प्रदेश में सुन्दर का जन्म एक वैश्य परिवार में हुआ था। एक दिन सुन्दर ने स्वप्न में देखा कि समीप ही 'एक बालवलिता कड़ी है जिसके घरीर का रंग काँकेषियन स्त्री का था है^५। स्वप्न देख कर वह भय गया परन्तु उस प्रियतमा के प्रेम में वह व्याकुल रहने लगा। धर्म विनिष्ठ व्यवस्था में उसने एक प्रपंच के पास पसी मुहरी का एक किच देखा, बहुत पुष्टी पर पंडित ने बताया कि 'इतना कहते देवदा रि धर्म एक लेखी कोस्ट में मिमोन से देखा हाय'^६। वास्तु, यह निश्चय करके कि स्वप्न की सुन्दरी सच में रहती है नायक अपने अधिष्ठ विच वृत्त के बाह्य कनकते प्राया और बहुत समझने पर भी संका के लिए बहस पर चढ़ दिया। माप में एक टय-नोमी ने नारा बन छीन कर उसे समुद्र में डुबो दिया परन्तु नायक बह कर लका क किनारे लप गया जहाँ सुन्दर के बगल बीच में समस्त उपहार किया और उसे स्वस्थ कर दिया। उधर मनोविनी सेठ पद्मनाभ की एकमात्र सन्तान थी। उनके रूप की नारे देख

१ शुपकितक, २ सितम्बर, १९८१

२ हिम्नोत्थान १९ सितम्बर, १९८१

३ समाचार समाचार, २१ सितम्बर, १९८१

४ १९८१-८२

५ १००

६ १००

घोर सत्संग को प्राप्त कर । पहिले प्रस्ताव का धीपोंदरन भी यही बतलाता है कि लोटे व्यक्ति की संगति कोयले के सार्स के समान है यदि गरम होगा तो हाथ को जला देगा और यदि शीतल होगा तो हाथ को कासा कर देगा । जिस लोग में अपना बिकेक नहीं है वे दुर्बल पात्र हैं उनका युग संवत्ति के अनुसार बदलता है । बन्धु घोर बतलाता जिसका साथ रहे 'उपन्यास के नायक तत्काल बँधे ही बन जाते हैं । मन का स्वभाव बल के समान तरल एवं प्रयोगजन है इसलिए 'वी घजानो' का दुर्बल व्यक्ति पर प्राम प्रभाव पड़ता रहता है । इस प्रयोगजन में माइ साने वालो ईसी प्रापत्तिनी है, जो एक घोर तो दुर्बल मन को प्रयत्नमय करने में बंधुष का काम करती ॥ घोर दूसरी घोर सच्चे मित्र की पहिचान मिला देनी है । धीनिकागदास ने इमीमिग करने उपन्यास का नाम 'घरीसापुर्' रखा था । अट्टजी ॥ वी विपत्ति की प्रवर्गात्मा ही नहीं को उन्नीसवें प्रस्ताव का धीपोंदरन भी 'विपदि सहायको बन्धु' रखा है । प्रत्यत इस उपन्यासका अन्त 'सत्यमेव जयति मानुषम्' में हुआ है जिसकी परम्परा बाद के उपन्यासों में प्रेमचन्द तक चलती रही । ठीकसवें प्रस्ताव में उपसंहार करते हुए लेखक ने इस उपन्यास के तीन उद्देश्य बतलाये हैं —

- (क) 'बेजिये छो घजान में एक मुजान बीसा पुनकारी हुआ कि सब घजानों को फिर राह पर घोंत को माया ही ।
- (ख) दूसरे यह कि ओ सुदृति है उनके सुदृष्ट वा फल प्रत्ययमेव घीलाह पर पाता है ।
- (ग) 'घाय लोनों में यदि कोई प्रयोग घोर प्रजान हों तो हमारे इस उपन्यास को वह प्राणा करत है मुजान बनें इस किस्ते के प्रजानों को मुजान करने को बन्धु वा घाय लोनों की हमारा वह उपन्यास होवा ।

सुन्दर सरोजिनी

सन् १८९३ ई० में रामनगर (बम्बान) राज्य के ९० देवीप्रहार घर्मा उपन्यास में 'सुन्दर सरोजिनी' नाम का एक रोचक उपन्यास लिखा जो सन् १९०० ई० में काशी से दूसरी बार मुद्रित हुआ । इस उपन्यास की साहित्यिकी एवं समाचार-मयी ने बड़ी प्रशंसा की । लेखक की अपनी बुद्धि में 'सुन्दर सरोजिनी' प्राकृतिक मनोहरता प्रेम-नीची घोर लंका प्रमथ का प्रत्यक्ष रोचक संवीनान्तक उपन्यास है इसमें 'सती बर्न' की जब 'प्राथम्य-रूप बटनाओं' अन्तराल में निहित की गई है । 'भारत बीवन' के अनुसार " इसमें सुसलचन की मित्रता सरोजिनी का पातिव्रत-बर्न उसके माता-पिता का वात्सल्य प्रेम तथा कई एक प्राथम्ययुक्त बटनाओं का चित्र -- " प्रस्तुत किया गया है । हिन्दी बंगवानी के अनुसार 'सरोजिनी' अपनी नाम-वात की हिन्दी में पहिली ही पुस्तक है इसके प्रत्येक पृष्ठ से लेखक की विद्या बुद्धि और जानकारी का परिचय मिलता है" । 'सुम विमलक' ने इस उपन्यास को 'अत्युत्तम हिन्दी

१. भारत-बीवन २ अक्टू १८९३

२. हिन्दी बंगवानी, १४ अक्टू १८९३

बच पच में" सिद्धी हुई रचना माना है। 'हिन्दोस्तान' के जल में यह उपन्यास 'प्रेम प्रीति-मित्रता, पातिव्रत-धर्म ईश्वर-महिमा और आदर्श-व्यवहारियों के बचन से पूर्ण ऐसी सुन्दर रीति पर लिखा गया है कि जिसके पढ़ने में चित्त को पबिक भाग्य मिलता है"। 'राजस्थान समाचार' ने लिखा है कि प० देवीप्रसाद ने यह 'उपन्यास रच आर्य भाषा के मंदार में कृति की है'।^१

इस उपन्यास की मुख्य कथा नायक 'सुन्दर' और नायिका 'सरोजिनी' के स्वप्न दर्शन-वन्ध सफल प्रेम की कहानी है। इनके माय मैत्री-सम्बन्ध से उपनामक 'कृष्ण' और उपनायिका 'प्रवला' की कथा जुड़ी हुई है। नायक-नायिका के नाम पर, बंभासी लोक-कथा 'बिदा-सुन्दर' के सघन ही इस रचना का नाम 'सुन्दर सरोजिनी' रच दिया गया है। जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया जा चुका है यह उपन्यास संतोषाप्त है स्वप्न में एक-दूसरे को देख कर नायक और नायिका के मन में जिस सुखानुप्राय का प्रारम्भ हुआ वह अनेक वाचाओं-विपत्तियों को भेज कर भी धन्य वे मुखावसायी बना। कथा का क्लेशकर नव्ययुगीन लोककथाओं के उपानाम्तर है। लेखक 'सिंहमधोप परमिनी राजी' की कथा से प्रभावित न हुआ हो यह सिद्ध करना कठिन है। लेखक भविष्यवादी है इसलिए इस कथा के माध्यम से उसने यह प्रमाणित करने का भी प्रयत्न किया है कि 'बंभासे के इतिहास' के लेखक ने विजयबाहु को बपानी बतलाया है पर यह भ्रम है, वे बिहारी थे' ये बातें महावीर नामक सिंह के इतिहास में लिखित हैं। सन् ईसवी से १४३ वर्ष पूर्व विजय लकाविसयी हुए^२।

भारतवर्ष के बिहार प्रदेश में सुन्दर का जन्म एक वैश्य परिवार में हुआ था। एक दिन सुन्दर ने स्वप्न में देखा कि समीप ही 'एक बामबनिता खड़ी है जिसके धीरे का रंग काकेतिमय लगी कम सा है'। स्वप्न देख कर वह जग गया परन्तु उन प्रियता के प्रेम में वह व्याकुल रहने लगा। वर्ष विविध अवस्था में अपने एक घण्ट के पास उसी मुवती का एक चित्र देखा बहुत पुछने पर घण्ट ने बताया कि 'दृष्टा बहने देकटा कि घमण एक लड़ी जोस्' ने तिलीन से देखा हाम'^३। अस्तु, यह निरवध करके कि स्वप्न की सुन्दरी लंका में खड़ी है नायक अपने धर्मिक विषय बुझन के पास कमकसे धामा, और बहुत समयाने पर भी लंका के लिए जहाज पर चढ़ दिया। माय में एक कम-जोनी ने सारा जग छोड़ कर उसे समुद्र में डुबो दिया परन्तु नायक बह कर लंका के बिनारे लग गया बहो सुपेन के बंधन बंध ने अपना उपवास दिया और उस स्वस्थ कर दिया। उपर सरोजिनी बैठ गयलगाब की एकमात्र सन्तान थी उनके कन की सारे देव

१ राजनिष्ठ २ दिवन्द, १९८१

२ हिन्दोस्तान, १९ दिसम्बर १९६१

३ राजस्थान समाचार, २१ दिसम्बर, १९६३

४ १८-१९-६३

५ १ ५

६ १० ११

में बर्बा थी। एक बार उसने सुन्दर नामक व्यक्ति को स्वप्न में देखा और उसे बरस कर लिया। उसने निश्चय किया कि 'जब अपने के महात्मा सचमुच मिल जायेंगे और तब पर भी हमारे विवाहोपबन्धन बंधन कुल में जाने तब तो विवाह होगा' उसे विश्वास था कि 'ऊँचा के पति अनिच्छित रूप में ही मिल कर बर्बाव पति हुए विशेषतः इस सजापुत्री में तो और भी स्वप्न सत्य होता है'। अन्त में सत्य प्रेम ईश्वर भक्ति और ब्रह्म-महिमा के प्रभाव से नायक-नायिका मिल गये और सुख से जीवन बिताने लगे। इस मूलकथा के साथ 'सरोजिनी की लखी 'धबसा' और सुन्दर के मित्र 'कुपल' के विवाह का भी प्रसंग है। नायक के धारमन का समाचार पा कर धबसा और सरोजिनी पालकी पर चढ़कर उससे मिलने गईं। मार्ग में डाका पड़ गया। इसमें इन महिलाओं ने बड़ी बीरता से काम लिया। सुन्दर का सब्बु छान-पौनी मारा गया। कुपलचन्द का धबसा के साथ विवाह हो गया।

इस कथानक में कथा की प्रवृत्ति मुख्य है सामाजिक विमर्श थी। लोटे बटभाएँ किसी धर्मग्रन्थ संकेत पर नाचती हैं। स्वप्न पर विश्वास करके उसे प्रत्यक्ष में परलोक करना विचित्र ही है। यद्यपि तिमिस्म जानूँगी या ऐवारी द्वारा क्लृप्त जलान करने की सैबक ने धारमनकता नहीं समझी फिर भी बटनाघों की योजना कम धारमर्ष मनी नहीं। वस्तुतः सत्ययुगीन कथा पर कुछ साधुनिकता चढ़ा कर सैबक उनमें सुधार करता है। तस्वीर के कारण अंग्रेज पात्र की योजना बहाल पर चढ़ते समय बम-संस्कृत पति भाग लेने पर भी बाशि पर और और बिहारी व्यापारिया का संका बा कर विवाह सम्बन्ध स्थापित करना—यै कथानक को साधुनिक रूप देने वाले सूत्र हैं। सब मिला कर कथानक सरल एवं प्राथमिक है साधुनिक उपन्यास के लिए उसमें सभी उपकरण नहीं मिलते।

कथा में नायक और नायिका ही मुख्य हैं। नायक सिताम्त प्रेमकथा बीबी होने के कारण ध्यान की दृष्टि से निर्धोष नहीं है। उसकी एक ही विशेषता है—प्रेम विसर्पों प्राप्ति के लिए वह सब कुछ करता है। परन्तु प्रेम ही जीवन में सब कुछ नहीं वह जीवन का एक महत्त्वपूर्ण धर्म है उसका पर्याय नहीं। प्रेम को जीवन की पूर्णता मानना जीवन को लुप्त-मृग कर देना है। वह भी विस्मय नहीं केवल एक व्यक्ति के साथ प्रेम। स्वयं समाज का कोई भी कुछ एक व्यक्ति को प्राप्त करने के लिए ही पुष्पी और आकाश को एक नहीं कर बैठता उसके सामने समाज-कलह के घने मार्ग बर्बाव चुने हुए हैं। नायिका नायक से अधिक पुनर्जन्मी है। एक व्यक्ति को अपना सर्वस्व मानते हुए अपने निश्चय पर धीरे-धीरे सौता-सावित्री भावि वैधियों का धारमर्ष पुनः है। जिस समय का यह उपन्यास लिखा था रहा है उस समय लोटे के पुनः की महिमा पाई जाती थी। सरोजिनी में यह पुनः विपुल मात्रा में विद्यमान है। वह साधुओं का धारमर्ष करने धारमर्षमान भी रखा भी करती है। वस्तु, नायिका अपने पुनः में नायक से

उज्ज्वल बन गई है। दोष पात्रों के बिना प्रति सामान्य हैं। बल्लुन चरित्र-विशेष इस उपन्यास का उद्देश्य नहीं।

ईस रचना में दो धातुमिश्रणएँ दृष्टिगत होती हैं—वर्धन तथा कुछ समस्याओं पर विचार। लेखक ने भूमिज और इतिहास का समुचित ज्ञान प्राप्त करके ही इन उपन्यास की रचना की थी। यह कहा जा चुका है कि इतिहास के ज्ञान का विचारण भी इस उपन्यास की रचना का एक बुराईक उद्देश्य था। बिहार बगल और लका के वर्धन बड़े भूचलात्मक एवं भावनापूर्ण हैं। मुख्य सामाजिक समस्या विवाह की है। लेखक ने नायक-नायिका के धारण प्रेम का वर्धन करते हुए उसका धातुमिश्रण कोर्रिप से भेद किया है 'रातक जय में न गई किसे धातुमिश्रण के नये नायक-नायिका हैं और यही कोर्रिप का धातुमिश्रण इन्होंने पाया है। क्योंकि कोर्रिप प्रेम नहीं काम का प्रभाव है जिस प्रकार तेज धरात के नये में कोई हत्या करे तो लका प्रेमक भूचलात' मय ही समझ जाना है उसी प्रकार पुषावस्था में महात्मा बल्लुन के धातुमिश्रण से जो प्रम उपमता है वह नचावत' मैत्रीकृत नहीं है किन्तु कामकृत है'। तर्क बड़ा हास्यास्पद है प्रत्यक्ष दृशन में काम का प्रभाव होता है जिसे कोर्रिप कह सकते हैं और स्वप्न-वर्धन में प्रम होता है जो काम के प्रभाव से रहित है। लेखक ने उस विचार को स्वीकार नहीं किया जिसके अनुसार समुद्र पार करके विदेश जाने से बर्धन भ्रष्ट हो जाता है, प्रत्युत विदेश में विवाह सम्बन्ध स्थापित करने का भी उसने मुख्य विषय है। नायक की विदेश-यात्रा में धातुमिश्रण पर उसके निज को धातुमिश्रण होती है परन्तु धातुमिश्रण कर वह स्वयं विदेश जाता है और वहाँ सुन्दरी धातुमिश्रण से उसका विवाह भी होता है। एक बात धातुमिश्रण है कि लेखक जाति के बाहर विवाह का अनुमोदन नहीं करता। नायिका स्वप्न के प्रिय से विवाह की प्रतिज्ञा करती है परन्तु इस धातुमिश्रण पर कि 'हमारे विवाहोपमकृत वैश्य कुल में होये'।^१ इस प्रकार की विचारधारा लेखक को सुधारवादी समातन बर्धनसम्भी ठहरती है। वह धातुमिश्रण से जाति धातुमिश्रण विवाहादि के लिए उसे धातुमिश्रण समझता है, परन्तु विदेश के बन्धन नहीं मानता। कोर्रिप का तो उस समय के सभी धर्म और साहित्यिकों ने विरोध किया था।

उस युग की सामान्य प्रवृत्ति के अनुसार लेखक ने राजनीति पर विचार नहीं किया परन्तु देश की धातुमिश्रण रक्षा की अपेक्षा भी नहीं की। उसे धातुमिश्रण की व्यापार नीति और भारतीयों की बर्धनता का ध्यान है। नीति की धातुमिश्रण उस समय का महत्वपूर्ण धातुमिश्रण प्रसन्न था। भारतीय मजदूर धातुमिश्रण होकर विदेश में देश धातुमिश्रण के लिए जाते थे। लेखक ने दोनों प्रश्नों की बर्धन की है। 'परिमन जाहे जो करें पर संसार भर के धातुमिश्रण भोगी धातुमिश्रण है, भारतवर्ष के नीति नाम देश की धातुमिश्रण की भी नहीं रक्षा है। यह धातुमिश्रण समझती उत्पन्न करने वाला है इसमें धातुमिश्रण को ही नहीं समझत धर्मोपनि बर्धन को धातुमिश्रण की गई है। 'तिहल' ही बना 'धारिण' 'दिनिहाड' 'जयेक' 'पायना' बर्धन

नहीं देखिये नुमातुर रहित भारती पहुँचे हैं इमें यह दया देख कर मोर घोर होया है। इन्हीं बापों में मायी उपन्यासों का उद्देश्य छिपा हुआ है।

सैमी की दृष्टि से 'मुन्दर सरोजिनी' महत्त्वपूर्ण नहीं है, बहुमूल्य पद्यमयी रचना है। ब्रजभाषा की स्वरचित कविताएँ इसमें धातव्यकथा से अधिक हैं। कवीशकवन कम है। कही-नही बर्णन स्वाभाविक नहीं रहे। 'मम कौी समूह में परस्पर प्रेमी पूर्वजन्तु के बर्णन से किन-किन भाषा की तरेगमामार्ग (महुरे) उठ रही हैं' जैसे काव्यमय बर्णन उपन्यास के लिए उपयुक्त नहीं है। कही बोझ कही सबया कवित्त बलगतितनरा रोना धादि केवल कवित्त-प्रदर्शन के लिए है। उपन्यास में कम एक पृष्ठ है जिनको सात परिच्छेदों में विभक्त कर दिया गया है, प्रत्येक परिच्छेद का शीर्षक भी है। कर्म-कृत तथा मित्रता प्रेम को इतिहास-सूत्रों की श्रृंखला में दिखाना ही लेखक का अभीष्ट है, जिसमें यह सफल है। भाषा की दृष्टि से भी यह उपन्यास स्वच्छ है तथा बर्णन की दृष्टि से भी सपहनीय। पं. देवीप्रसाद ने इस उपन्यास के द्वारा समकालीन जनजन में ऊँचे उठने का प्रयत्न किया है और उलझे सफल भी हुए हैं। कथा की दृष्टि से अधिक सपहनीय न होने पर भी यह रचना समग्र प्रभाव में प्रसंगनीय है।^१

मम आन्दोलन के उपन्यास

यह ऊपर कहा जा चुका है कि उत्पन्न में भिन्न होये हुए भी बहुसमाज और धर्मसमाज का व्यावहारिक प्रभाव समाज पर एक-सा ही पड़ रहा था। फलतः इनके विरोध में प्रतिक्रियावाधियों ने 'सनातन धर्म' का आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। हिन्दी क्षेत्र में धर्मसमाज को एक घोर निर्धर्मियों से और दूसरी ओर स्वधर्मियों से लोहा लेना

१ नव-आन्दोलन के कल्पनाओं से पूर्ण वा असंकीर्ण पुस्तकें और हैं—'मदन परिच' तथा 'निस्तहान हिन्दू'। श्री नवरत्ननाथ के अनुसार वर्ष १८८२ के वा राजकुमारदास के 'एक कल्पित निस्तहान हिन्दू' मौलिक विद्या का इन्धान्त उपन्यास वर्ष १८८२ में लिखा गया था परन्तु वर्ष १८८२ में प्रकाशित हुआ। 'मोक्ष-निर्वाण' तथा 'मूल विषय' हैं जिसके विविधान के लिए एक बहुत ही कमजोर कथा-रूप तैयार किया गया है। इसका अन्त बन्धों के विनिर्वाण का लयपा है (श्री विजयशंकर मल्ल)। दो मूल गोप्य कथ कहने के लिए यह उपन्यास करते हैं, बनकर साथ एक सुलभमय लयगत भी होते हैं। कल्प बहुरूपमी सुलभमान वरप्रदान करते एक लोगों को बार दासता चक्री हैं और अन्त में दोनों ही ओर के कुछ लोग मारे जाते हैं (भारतेंद्र-पुष्प, पृ. १३)। रत्नकल्प की 'मदन परिच' (सन् १८८३) में एक कल्पित रूप में एक टाँपरी को देखकर उस पर आक्रमण हो जाता है और फिर उसे मार कर लेने के प्रयत्न में जो विषय व्यक्तित्व होते हैं वे कथा का अंश तैयार कर देते हैं। बीच-बीच में कल्पामयिक रूप से सीटि-नामक चित्रक्य दिखे गये हैं। अन्त में जो बीछा करता है देता फल पाता है और मनुष्य-वाक्यिक का विषय सम्पन्न हो जाता है। इसमें कल्पों की विनाशिता और धर्मपरिणों की लीलाय विस्तार से वर्णित हैं। जैसे उपन्यास समारंभक है, पर आधुनिक कल्पवाद के कल्पोन्मुख लयगत का परिचय इससे नहीं मिलता (व्यसोपना उपन्यास विरोधक, उपन्यास : प्रेमचन्द के जीवनमय एक, १-१३)। इन पुस्तकों को आधुनिक कल्पवाद की विचार लयगत में लाना मिलावा कठिन है।

पड़ा। किछोरीसाल यास्वामी की रचनाओं से जिन उपन्यासों का सुत्रपात होया है उनमें रुई धीर मुबार का ही सबसे अधिक मिलता है। धार्यसमाज की एक निश्चित नीति की उससे सहमति न होने बावजूद भी उसके मित्त-मित्त मित्रागत स्वीकार करते हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र धीर राधाचरण यास्वामी सनातन धर्म के अनुयायी थे परन्तु उन्होने स्वामी ब्रह्मानन्द द्वारा प्रस्तावित सभी मुबारों को स्वीकार किया है। भारतेन्दु ने स्वामी ब्रह्मानन्द के प्रति भ्रष्टा भी प्रदर्शित की है और उनके सत्कार में रचनात्मक सहभाग भी दिया है। पं० प्रतापनारायण मिश्र ने कानपुर के बाह्यांगी की उनकी दृढबलितता के लिए कुछ कहा है। पं० मुबारक द्विवेदी 'अन्ध से बर्ष नहीं मांगते। पं० किछोरीसाल यास्वामी ने मुद्रि का समर्थन किया है। श्री रामरामजीवास बैश्य द्विवेद यात्रा में पाप नहीं समझते। श्री मदन द्विवेदी धनमेस विवाह को मिटा दिया चाहते हैं। श्री राधाचरण यास्वामी ने लिखा है कि धार्यसमाज के वैशेषिक करने में किसी को समझ हो तो वह पछु है। भारतेन्दु बाबू की 'हरिश्चन्द्र चरित्रिका' पर सम्पादकों की तामाबसी में स्वामी ब्रह्मानन्द का नाम भी था। अपने प्रसिद्ध निबन्ध 'स्वर्ग में महासमा का अधिवेशन' में भारतेन्दु ने परमेश्वर द्वारा जो सिलेक्ट कमेटी बनवाई है उसकी रिपोर्ट में वे सभी सामाजिक योग भा गये हैं जो मुबारकों का स्थान प्राकृष्ट कर रहे हैं। संक्षेप में वे निम्नलिखित हैं —

- (क) स्त्रियों 'अन्ध भर कुछ नहीं भोगने पाती' नाखों धर्म नाश होते और तासों की बालहत्या हो जाती है।
- (ख) 'अन्धपत्नी की विधि के अनुग्रह से जब तक स्त्री-पुरुष बिधे एक तीरबाट एक तीरबाट रहे बीच में इस वैमनस्य और असम्योप के कारण स्त्री व्यभिचारिणी पुरुष विधायी हो जायें परस्पर मित्त कसह हो सान्ति स्वप्न में भी न मिले संस्र न चले।
- (ग) 'विधवा धर्म विराधे' 'पर विधवा का विधिपूर्वक विवाह न हो।
- (घ) सबक पात्र न मिलने से कन्या की बर पूर्व अन्धा करण मनुष्य मिले तथा बर की कामी नग्या मिले।
- (ङ) 'कोई भी दुष्कर्म किया तो क्षिपक वर्षों नहीं किया इनी अपराध पर हजारों मनुष्य धार्यपक्षि में डर साल मूटते हैं।
- (च) 'मुसलमानी पीर, पैगम्बर, शीनिमा अहीर और साहिबा मानीमिया जिन्होंने बड़ी-बड़ी मूर्ति तोड़कर और तीर्थ पाकर धार्यधर्म बिध्वंस किया उनको जानने और पुनर्न लग गये।

इन मुबारों में से भी कुछ तो कंटर सनातनियों ने स्वीकार किये परन्तु धर्म काय छोड़ दिये। मुसलमान और ईसाइयों की योग्यता का लक्षण अन्ध किया है परन्तु

पुत्रवर्धनियों की योग की कट्टरपंथी शक्ता से ही बैठते थे। किछोरीनाथ गोस्वामी ने अपने 'सनातन' समाज से इतर को 'नव्य समाज' कह कर 'नवता' उपन्यास में ससरी मुद्रित कराई है। धारण हिन्दू उपन्यास में एक स्त्री-नाम की दुर्गता देखकर पं. लज्जाराय शर्मा को इसी बात का संतोष है कि पति-हत्या 'बेनों की ब्राति भी एक न थी'। किछोरीनाथ गोस्वामी और लज्जाराय शर्मा इस प्रवाह के सबसे सघन लेखक हैं। किछोरीनाथ गोस्वामी के सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासों में नम का यही रूप दिखा हुआ है। धर्माभिस सनातनधर्मी उपन्यासों के नेता के रूप में उनका सम्मेलन भी नहीं हुआ। उनके समयकासीन दूसरे लेखक बहुत सामान्य लगते हैं। अस्तु किछोरीनाथ गोस्वामी और उनके सनातनधर्म का विवेचन अवस्थित है। दीप उपन्यासकारों के विचार पुनरा के लिए बकास्वाज धारण।

किछोरीनाथ गोस्वामी

मह सनातन-धर्म गोस्वामी जी ने तीन रूपों में देखा था सच्चा है। धर्म में धास्वा संन का विरोध और सुगारों की स्वीकृति। धर्म में धास्वा है धर्मिधाय इस प्रकाश विचार से है कि समाज में धर्म ही सार है धर्म की रक्षा से और विनाश से धर्म का विनाश हो जाता है तथा धर्म ही ऐहिक एवं पारलौकिक सुखों का एकमात्र साधन है। धर्म में धास्वा के लिए पुत्रपुत्री स्मृतियों और नीति-धन्वा के उद्धार लेखक ने विवे हैं। साथ ही धर्म और पाप का संघर्ष दिखाकर धर्म की पाप पर विजय उनके ऐतिहासिक और सामाजिक दोनों प्रकार के उपन्यासों में दृष्टिगत होती है। बार-बार धर्म के प्रतिपक्ष विज्ञान-वाक्य निर्माणस्थित हैं —

धर्म एव ह्यो ह्यमि धर्मो रक्षति रक्षितः ।^१

कस कर्मानुक्तं हि, प्राप्नोत्येव नर, सदा ।^२

धर्मात् धर्मस्य कामधन्य मोक्षरूपैत्यसंशयम् ।

एतस्मान् मनुजस्यास्य धर्मं नर सुखी मय ॥^३

व्याकरोति कर्माणि तत्रैव फलमश्नुते ।^४

हिंस स्वपापेन विहिंसितः सतः ।^५

धर्म में धास्वा के लिए लेखक ने प्राचीन साहित्य की रक्षा और विवेकी साहित्य के त्याग पर जोर दिया है। क्योंकि जो लोग 'सनातन धर्म के सूक्ष्म उत्तर धानने की इच्छा करने सनातन धर्मों की महिमा पर विचार करेंगे प्राचीन महर्षियों की सिद्धता और गणपना की खोज करने और जीवन का सच्चा धानन्य सिद्धा

१. मात करने पर धर्म नारा करता है और रक्षा करने पर धर्म का रक्षा ।

२. निरक्षर ही नर सदा धर्म के अनुकूल फल प्राप्त करता है ।

३. धर्म से धर्म काम और धर्म ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। एतस्मिन् हे राजन् धर्म का ध्यान रक्ष करो और सुखी रखा ।

४. मनुज जिस धर्म करता है वही ही फल लेता है ।

५. दुष्ट विचित्र धर्मों का ध्यान रक्ष ही मात जाता है ।

जाईये तो उन्हें संसार की सभी बातों में हिन्दुओं को सबसे श्रेष्ठ और हिन्दू धर्म को सब से प्राचीन और प्रभाव मानना पड़ेगा। 'वे सनातन धर्म के उद्धार करने में उत्तर होकर अपने देशवालों की मुक्ति को पूरा करें' "इसलिए 'पाठक ! तुम अपनी विदेशीय पुस्तकों को माफ़ में डालो हम लोगों के घर में निज की पुस्तकें इतनी हैं कि समस्त भ्रातृ के व्यतीत करने पर भी उनका संग्रह होना पुरुष है"। वस्तुतः धर्म का उत्तर यदि जाना है तो केवल हिन्दुओं ने ही जाना है' 'कौन कहता है कि हिन्दू-धर्म प्राच-सम्पन्न की शिक्षा नहीं देता। एक-प्राणित का उद्भवस बृष्टात्स मही की अपेक्षा और कहा है ?"। अनेक ने सनातन धर्म का इतना पक्षपात किया है कि उसकी दृष्टि में धर्म साध्य बन गया है और साहित्य साधन 'प्राच-सम्पन्न हिन्दी भाषा उन्नति व प्रवर्धन की ओर प्रवर्धित है। बुद्धिमान् व्यक्ति स्वयं इस बात को विचार सकते हैं। हिन्दी की जो कुछ उन्नति हुई व होगी वह सभी जब सनातन रीत्यानुसार सनातन धर्ममय देशवासियों की उन्नति होगी।"।^१

बिद्यमान हिन्दू धर्म में उस समय बहुत सी ऐसी बातें समाविष्ट हो गई थी जिनको निषेधपूर्वक बहिष्कृत नहीं भी कहा जा सकता कदाचित् वे प्राच-सम्पन्नानुसार हिन्दू-समाज-में बाहर से लेकर पचा सी थी और सनातन-धर्म के साथ-साथ उन का विद्वत् रूप पाप-पुण्य बन चुका था। धर्म-समाज ने उनका अन्वेषण किया सनातन धर्म उनका समर्थक था। मोस्वामी जी ने अपने उपग्रामों में सनातन का विरोध करते उनका समर्थन किया है। वे निम्नलिखित हैं —

(१) अतिरिक्त ज्योतिष (२) व्याख (३) स्त्री शिक्षा (४) नाम विवाह (५) पौराणिक धर्म।

अतिरिक्त ज्योतिष की कथाएँ एक से अधिक उपग्रामों में हैं। 'अपना 'उपग्राम' की 'कामिनी' 'राजसी कथा' है 'जहाँ-जहाँ उसकी छाया जिन-जिन लड़कों के साथ पक्की की गई वे लड़के भर-भर गये"। 'लोगों ने सबसे लिया कि अतिरिक्त ज्योतिष और ऐसी चिकित्सा निरी बोके की टट्टी या ठपी का आस-पास है पर ऐसी बात नहीं है"। 'लोग ज्योतिषियों को बंधक और बुरा समझते हैं — इसमें जो कुछ अपराध है वह सारा उन्हीं कुबड़ उजड़ों का ही है जो केवल 'धीर-बोध' और 'ज्योतिष-सार' के पत्रों से ज्योतिषी बने डोलते और मोझे-झांजे लोगों को ठगते छिपते हैं"। वास्तव

१ 'विदेशी या लौकिक-धर्म' पृ० १०

२ वही पृ० १२

३ वही, पृ० १२

४ वही, पृ० १२

५ बीबा भाग पृ० ५

६ बीबा भाग पृ० ६

७. अंगूठी का बगीचा, पृ० ५६

में 'पणित' और 'पणित' के ही दो उपयोग के प्रधान अर्थ हैं और मात्र संस्कार में यह एक विज्ञान की मिलनी सम्पत्ति हुई है। उन अर्थों का निदान केवल यही पणित और पणित ही है— १

पाठ के अन्त में उत्तर सत्य में बड़े धर्मों से विद्या है। 'आत्रकस के कोई पणितकट सेनपट कहें—बहु धर्मों हिन्दुओं के पाठ पाठ करने का स्थान कर्मना-कृत होगा। पर उन धर्मों मूल्यों की धृष्ट भावों की मान सत्य है ? जो स्वयं धर्म घोषित से उत्पन्न होकर भी धर्म-धीरोत्पन्न धर्मों का धर्म भरणे हैं और जिनमें कुछ भी धर्मत्व का अधिमान नहीं रहा उन कुछ कृतारों का कहा कीन सुनेगा ?' मेमक के मत में सत्यियों को धर्मिक न तो पढ़ना ही चाहिए और न धर्म धर्म की उन्न के बाद फिर स्वयं में 'ही जाना चाहिए'—इस 'उप पर स्त्री-धर्मों के और पणपाटी धर्मकट पट होने परन्तु जो धर्मक पाठक स्त्री-धर्मों की धर्मोत्पत्ति का प्रत्यक्ष कृतन देन रहे हैं वे इस धर्म पर कृत न पढ़ावें'। कम पढ़ाने का एक कारण यह भी है कि समाज धर्म के अनुसार रजस्वला नईकी एक किम धर्म भी नवारी रजसे साधक नहीं होती।

परन्तु व्यावहारिक जीवन में लेखक ने पौरुषिक मत की सभी बातों का मन धन किया है। तीर्थवासा धर्मधर्मधर्म धर्मिकीर्तन धर्मिक के धर्मक छोटे-मोटे धर्म हैं। स्त्री को उतने धर्म कृति से नहीं देखा। 'यद्यपि संसार में सती-माधवी नारी भी उत्पन्न होती हैं पर उनकी संख्या इतनी नहीं होती है कि जो धर्मों के धर्मों पर धर्म भी आ सकती हैं'। जाना यह चाहिए कि यह बहुविद्या के दोष विद्या कर पढ़ पणित का उपदेश देता परन्तु 'धर्मधर्म वा धर्मधर्म' उपदेश का किसी धर्म ही धर्मधर्म धर्म में उतने उपदेश किया है। 'यद्यपि हमारे हिन्दु-समाज के लिए भी कभी ऐसा दिन आयेगा कि जब सत्यिक सुधीसा और धर्मधर्म का सा धर्मिक करना सीखेगी और धर्म धर्मधर्मिक की धर्मिक धर्मिक का सा धर्मिक करेगी।'

इतने पुराधर्मिकी होती हुए भी धर्मधर्मिकी भी वे धर्मिक सुधारों को स्वीकार किया है। धर्मिक के धर्मिक है धर्मिक धर्मिक एवं धर्मिकों की धर्मिक का समुचित धर्मिक। 'जब तक इस देश के धर्मिक साहित्य का उद्धार न होगा और धर्मों की धर्मिक—धर्मिक धर्मिक—धर्मिकधर्मिक धर्मिक न होगी जब तक इस देश के समाज

१. माधवी-माधवी १० १ ॥

२. धर्मिकी वा धर्मिकी, १० १४

३. माधवी-माधवी १ १५

४. धर्मिकी वा धर्मिकी १ १६

५. माधवी-माधवी १ १७

६. १० १८

का सुसंस्कार कदापि न होना और समाज के सुन्दर संस्कार बिना बेश का—रतातल बेश का—सुनबहार होना कदापि समभव नहीं है^१। 'भाषणी भाषक' उपन्यास में उसने 'ओलिय बेदांग'^२ का एक कविज कोसने की सिफारिश की है। दूसरा सुचारु मुसलमानों को धुइ करना और घोव्य मुसलमान बालिकाओं से विवाह कर लेना है। धुइ की बर्चा ऐतिहासिक उपन्यासों के प्रसंग में है। सुइ-विवाह का उदाहरण इनका उपन्यास 'कनकजुसुम' वा 'मस्तानी' है।

लेखक होनी और बीपावनी उस्ताह से ममाना चाहता है। जो होनी स्व मानस परम पवित्र है उसे घाबकल के नये सज्ज अपवित्र कहते और अपनी मनमानी 'पवित्र होनी' की तद्वस्त करके 'रिफार्म' होने का गर्व दिखमाते हैं^३। शिवासी के ऊमर 'जुमा' बेसने की बुरी और सत्त्वामासी 'रस्म' इस देश में फैल रही है उसे रोकना चाहिए, परन्तु मेरे विचार से जब तक स्वायत्तीता गवर्नमेण्ट इस जुए के रोकने के लिए कोई कठोर नियम न बनावेगी तब तक इस देश के बैबकूष अपनी बैबकूपी से कभी बाज न धावेगे^४।

यद्यपि उपन्यासकार को रिफार्मरों से बिद है फिर भी वह स्त्री-सुचारु को सबसे अधिक महत्त्व देता है। स्त्री को शिक्षा देने से कोई लाभ नहीं हुआिया प्रत्यक्ष है परन्तु उसका स्वभाव और चरित्र अच्छा बनाना उचित है। अपने उत्तरकालीन उपन्यास में लेखक ने लिखा है अपने देश के भाइयों से इन बात के लिए खबियम अनुरोध करता हूँ कि वे सब से पहले कन्याओं के सुचारु करने का प्रयत्न करें क्योंकि यदि सुकन्या समय पाकर सुधुहिणी होयी तो बड़ी एक दिन सुमावा भी होयी और उसका पुत्र सुपुत्र प्रयत्न ही होमा^५। इन सामाजिक उपन्यासों में लेखक सनातन-धर्म को कट्टरतापूर्वक मानता हुआ भी सुचारुवादी है और उसे आदि-धर्म के उत्थान का श्मान रहा है। पाठकों को बहुमान-मात्र उसका उद्देश्य नहीं है।

सामाजिक उपन्यासों की कला-नियमक एक विशेषता यह है कि उनमें से अधिकतर उपन्यासों की 'कहानी बिल्कुल सच्ची है और इसमें वर्णित पात्रों के नाम भी 'सही-सही' हैं। केवल जिसे और जोश के नाम कल्पित हैं^६। अंग्रेजी उपन्यासकार डेवो के समान सच्चाई की धारण से उपन्यास अधिक आकर्षक एवं रोचक बन जाता करते हैं। दूसरी विशेषता यह है कि इनके कथानक अजिज्ञात हिन्दू परिवार से घाते हैं। ब्राह्मण जाती और बौद्ध सम्प्रदाय परिवारों की सामान्य समस्याएँ इनका विषय नहीं हैं। ये उपन्यास सुधारस्था के जीवन का चित्रण करते हैं इसलिए इनमें स्त्री

१ नदी

२ इ. २०

३ अंग्रेजी का लपीवा, इ. १४०

४ भाषणी भाषक इ. १४६

५ गाली-भाषक इ. २१

६ अंग्रेजी का लपीवा, अंग्रेज

को छोड़ि सबै कविताएँ पागे' का प्रचार करने वाले गोस्वामी जी मधुपुरी को बटका कर पबप्रेष्ठ कर श्री कौम सकते थे। सबसे बदनाम जिमको स्वयं मेघक ने भी 'बर्तमान समान की वृणित व्यवस्था का वर्णन विष' कहा है। उपन्यास 'वपसा' में नामिका वपसा की मरतिवता ध्यान रखने योग्य है—यै धर धपने का उग योग्य बना ठीकी कि विपसे मै मरते हम तक इस निगोड़ी विपति का नाममा बुद्धि के साथ कर चुकें और धपने निर्मल तरीर में किसी तरह का मन्ना न समने दूँ।^१

किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यास

त्रिवेणी या सौभाग्यधेनी

त्रिवेणी या सौभाग्यधेनी किशोरीलाल गोस्वामी के प्रारम्भिक उपन्यासों में से है। यह सन् १८२० ई० के 'विहार-बन्धु' नामक पत्र में एक वर्ष में साप्ताहिक छारा गया और सन् १८०७ ई० में काशी से पुस्तकालय प्रकाशित हुआ। नाबिका का नाम 'त्रिवेणी' है और उपन्यास में प्रथम दृश्य भी त्रिवेणी का ही है। इस उपन्यास में १ परिच्छेद और ३१ पृष्ठ हैं। कहानी मनोहरबास नामक एक बार्मिक व्यक्ति की है जो अपनी पत्नी से विमुक्त होकर कुछ समय बाद फिर मिल जाता है। प्रथम परिच्छेद का नाम 'हृदयोज्ज्वाल' द्वितीय का 'मानसिक मोह' और तृतीय का 'प्रेम-परिचय' है। नाबिक में विमुक्त नामक के नाम दिखाये गये हैं। मध्य में उसकी पुत्नी कहानी है और अन्त में मिलन है।

महामुखा मनोहरबास अपने बर्माया और प्रेमी व्यक्ति थे। उनका विवाह पत्न्या के भावा प्रेमदास की कुशवती पुत्री त्रिवेणी के साथ हुआ था। एक बार मनोहर बास पत्नी-सहित बाबा को निकले। काशी बाये-बाये व्याघ्रघर (बस्तर) के समीप उनकी लौका दूध गई, त्रिवेणी कही वह गई मनोहर कही और जा पड़े। उधर प्रेमदास को मुठलमानों ने राजबोह के नाम में कंठामा परन्तु दुष्टों का पर्यन्त कुल गया और वे छूट बने। उनको त्रिवेणी मिल गई, परन्तु मनोहर नहीं मिला वह त्रिवेणी की खोज में ही मुरता रहा। तीन वर्ष बाद त्रिवेणी के भिनारे धकस्मात् सब का मिलन हो गया।

इस उपन्यास में प्रारम्भिक व्यवस्था के कई बिन्दु पाये जाते हैं। इसमें न सुग-ठित कथानक है और न किसी भी चरित्र का विशिष्ट कथोपकथन का आचर्यजनक प्रभाव है। नायक का अकेले बैठकर 'मन ही मन ब्रह्मदाना' और स्नान-स्नान पर कथाकार का स्वयं उपस्थित होकर उपदेश देने लगना उपन्यास-कथा के विकास के परिचय है। मन्वे-मन्वे वर्णन एक धोर कवि-हृदय का परिचय देते हैं। दूसरी धोर साहित्यिक चर्चा का भी। त्रिवेणी पर पहुँच कर 'त्रिवेणी' का स्मरण और दूर से बटका नीत सुन कर विद्योगालि का लुपगला काव्य के लिए अधिक उपयोगी है। तीन परिच्छेद नाटक

१. २०. 'माम्म समन' २०. २८

२. 'वपसा या मन्म समान विष' चौथा मन्म परिच्छेद, पृ. १२

के ३ दुःख बनकर भावुक भाषा से शर्दकों को अधिक प्रभावित कर सकते हैं। मिसन के बार पराँ पिरने से पूब पाठकों को धीरे-धीरे होते हुए मानी सेवक ने भारत-वास्य ही लिख दिया है। 'बहू बीनब्यालु एते ही सब बिछुरे हुए को मिलाने धीरे सुनिन वे मही प्रार्थना है।

सेवक की भाषा संस्कृतनिष्ठ और कुत्रचित् पंडिताऊपन से युक्त है। न उर्दू के शब्द हैं और न अंग्रेजी के। सामान्य बार्ताचार्य में भी भाषा निस्पष्ट हो गई है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्यों में 'घोष्ठागत' 'धनुसन्धान' शब्दों को देखा जा सकता है — 'तुम्हारे लिए हम लोगों के विशेष कर बिदेही के प्राण घोष्ठागत थे। सीधयात्रा करते-करते हमने चितला मुन्हाए धनुसन्धान किया—' (पृ. १७)

प्रभावदायक वा सेवक ने जो वर्णन किया है उसको पढ़कर वाचक की भावना पर प्रभाव लक्षित होता है। संस्कृत के विशाल के लिए यह आश्चर्यजनक नहीं कि अपनी छैली का उत्तम बनाने के लिए वह धातुनिक उपन्यास में भी 'काश्मिरी' का अनुकरण करे। कवि किमोरीसाल की वचन छैली के दो उदाहरण देखिए —

(क) कोई कुमटा के कुटिल कटाक्ष से क्षण विमल कोई घरला के सहज स्वभाव से बल कोई मुन्हा के मनोहर भाव से विकल और कोई मय्या नायिका के मनोनीत विभाव से विघ्नान्न होकर कन्धप की ज्वाला से ध्वंस धरने मन को जलाकर जमय-तीरु को मस्मनात् कर रहे हैं। (पृ. ८)

(ख) कोई समय पाकर धीरे-धीरे उल्लस दसर-उबर कुलकामिनियों में नैन-मन प्राण लगाये जमल जाने कोई-कोई कुटिल कुलदासों के सुमंथ में अपने विपुल कुल को कमलित कर रहे होये—और दसर बैजिंगी की तरिपी नार-बबू-जन अपने अपने निकार के संग बहार मही होंगी। (पृ. १२)

इस उपन्यास में सबसे ज्यादा आकृष्ट करने वाला गुण धर्मोत्प्रेषण है। इसकी रचना भी इसी उद्देश्य से हुई है कि पाठक के मन पर 'तस्मान् धर्मममाचरेत्' की स्थायी छाप बैठ जाय। सभी पात्र ईश्वर की आज्ञा को धिरोबाध कर अपना कर्तव्य पालन करते हैं जिससे कुछ दुःख या पड़ने पर बल में दोष-मुक्त उनको प्राप्त हुआ है। इस धर्म की तत्त्वज्ञान में 'धार्मिकधर्म' 'तमातन धर्म' हिन्दू धर्म 'प्रलय धर्म' नामों से पुकारा है। दूसरी रचनाओं के लेखन से पता चलता है कि लेखक या यह 'धार्मिक धर्म' बस्तुन 'तमातन धर्म' ही है। प्रसंगत बलधर्म-प्रकाश हरिकीर्तन और धातु का भी समर्थन है। इस उपन्यास में भारतीय साहित्य के आध्ययन और बिदेसी साहित्य के त्याग का उपदेश है। 'धार्मिक धर्म सेवक' लोगों पर लेखक की विषय प्रभावशाली भाषा पड़ती है उनको 'धार्मिक धर्म सेवक' और भी धर्म-धीम्योत्पन्न बनाने का हम भरते हैं देवकर लेखक उनसे दण्ड है लेखक का विवेक है कि तमातन धर्म का

कभी बिनाश नहीं हो सकता कुम्हारों के प्रवेश कर सने पर भी धर्म की 'मीनिक' प्रकृति अभी तक सबका विषय थीर उन्नत है^१। बर्म के ही कारण उपन्यास का घण्ट मंगलवाक्य भी 'धोम् नालम्' में हुआ है। लेकिन इस उपन्यास में श्रु गार की योजना नहीं कर सका जिससे उसकी भय है कि 'यह उपन्यास सर्वसाधारण की रचिकर न होगा और धारक्य नहीं कि विविध जन भी इनसे विद्वद् मार्ग^२। बर्म और श्रु गार का यह पारस्परिक सम्बन्ध उम मुग की सामान्य रचि पर प्रच्छन्न प्रकाश डालता है। उपन्यास के घण्ट में लेखक ने विराम्य दिखाया था कि वह सच्ची घटना का वर्णन है काल्पनिक नहीं। 'अभी विवेकी के सम्मान बतमान है इसलिए इनका नाम न लिखा गया है कि पाठकमण क्षमा करें'।

मीनाबती या आदर्श सती

गोस्वामी किछोरीलाल के सामाजिक उपन्यासों में 'मीनाबती या आदर्श सती' का भी विशेष स्थान है। यह उपन्यास सन् १९०१ ई०^३ में पहिली बार छपा था। सन् १९०७ में इसका दूसरा संस्करण निकला। इसमें १४ परिच्छेद और २२४ पृष्ठ हैं। गोस्वामी जी के सामाजिक उपन्यास सामान्यतः दो वर्गों में रटे जा सकते हैं। एक निवर्तक वर्ग जिसमें प्रबानता मध्य समाज के दूषित चित्र को ही गई है, दूसरा प्रवर्तक वर्ग जिसमें पात्रों का कर्तव्य को पारकर मुक्त-समृद्धि योग्य जीवन का विषय है। बहपि दोनों वर्गों की रचनाओं में बर्म की पात्र पर बिजय होती है और बर्म के धनुसार सब लोग फल मोगते हैं। फिर भी निवर्तक वर्ग के उपन्यास दूषित व्यक्तियों को उपनिषद करके उनसे पाठक का मन फेरते हैं जबकि प्रवर्तक वर्ग के उपन्यास धारक्य जीवन का चित्रण करके पाठक का मन उन्नत प्रवृत्त करते हैं। जिन उपन्यासों के नामों में 'आदर्श' शब्द जुड़ा हुआ है वे इसी पिछले प्रवर्तक वर्ग के हैं। 'मीनाबती' उपन्यास इसी वर्ग का एक विशेष प्रतिनिधि है।

उपन्यास के मूल में मीनाबती और कलाबती नाम की दो स्त्रियां हैं जो प्रारम्भ में तो सत्यनारायण की कथा का स्मरण दिखाती हैं परन्तु घण्ट में एक दूसरे के विपरीत सिद्ध होती हैं। मीनाबती भारतीय महिला है जिसका चरित्र स्वच्छ और जीवन परिश्रम है उसे समाज की ऊँच-नीच का ध्यान है प्रत्येक व्यक्ति के साथ धर्मित व्यवहार उसे धारा है और वह धरती और दूसरे की मर्यादा का पूरा निर्वाह करती है। सनित किछोर के साथ उसका प्रेम उसी प्रकार का है जैसे सत्यवान् के साथ सावित्री का उससे नाममात्र नहीं धार्मिक प्रेरणा है इसलिए उसमें भीयं एक विश्वास भी है। सतीत्व के कारण ही बर्म प्रत्येक व्यक्तियों के रूप में धारक्य मीनाबती की सहायता करता है और घण्ट में सनितकिछोर एवं मीनाबती मुक्त-समृद्धि का सुख स्व जीवन बिताते हैं। इसके विपरीत मीनाबती की दूर के सम्बन्ध की बहिन कलाबती मृदु कास तक रते

सीतावती के समान ही बनी रही परन्तु नव्य जीवन की मूलवृत्त्या ने उसके मनको मटक दिया फलतः वह सम्पद बासकृष्ण के हाथ पड़ गई, उसने प्रेमी के साथ माय कर विविध मीरिज की। जब पति-पत्नी इसाहाबाद बसे गये तो इन्होंने 'पूर्व रीति से निमावती समाज की नकल करनी प्रारम्भ की' बासकृष्ण 'इधर-उधर की हुंकिरा' बाटा ही करता था' कलावती ने भी 'धुधिया के रंग-रंग की तरह अपनी नजर फैरी। कलावती एक मौकर के साथ भाग गई फिर दूसरे बाबरी के साथ और फिर तीसरे के साथ। अन्त में कुल-कसकिनी कलावती बहसकल मित्रमगिन बन गई उसके सारे सरीर में कोढ़ फूट निकला था हाथ-पैर की कई उभलिया पल गई थी नाक भी एक रोग से गल गई और चेहरा बहुत ही मयावना बन गया था'। यमुना में डूब कर उसके प्रपमे पापी जीवन का अन्त किया।

नामिका सीतावती और बसनामिका कलावती के जीवन की तुलना करते हुए लेखक ने पाठकों से सम्भीर अपील की है 'भभी भी कुछ नहीं भिन्न है और भभी भी अपने समाज की रक्षा हो सकती है यदि भयभी-बाद बरा बान भाव और अपने समाज को उसी पुरानी रीति से संस्कृत करें जो वैदिक और बतमान-काल के उपमुक्त हो'। इस अपील में 'वैदिक' और 'बतमान-काल के उपमुक्त' को विधेयपदों पर ध्यान देना आवश्यक है। जो कुछ वैदिक है वह ज्यों-का-त्यों ग्रहण करने योग्य मात्र नहीं हो सकता उसमें वैदिक काल-यात्र के अनुसार परिवर्तन ला करना ही होगा परन्तु परिवर्तन इतना न हो कि मूल को ह्राससात् कर बैठे। यावत् सर्वांश प्राचीन वैदिक ही होना परन्तु उसमें यत्किञ्चित् हेर-केर हो सकता है। सीतावती और कलावती के जीवन से इस परिवर्तन का भी उदाहरण मिल जाता है। सीतावती का मलितकिण्वोर से प्रेम उस जाति का है जिस 'अवगमता' उपन्यास में कोर्टेसिप कहा गया है कोर्टेसिप भी दो प्रकार की होती है—'निमावती' और वैसी। वैसी कोर्टेसिप सावित्री-सखवान्, ऊया-अनिकुल नल-दमयन्ती का पूर्व-राम इसमें अवगमता नहीं स्थिरता है, वासना नहीं धारमसमर्पण है। इससे विपरीत कलावती ने बासकृष्ण को जो कोर्टेसिप की वह पवित्री बंग की वानवामक है उसमें बंध नहीं वासना का उदात्त है इसीलिए तो अपनी इच्छा का पति प्राप्त करके भी कलावती दूसरे-तीसरे व्यक्तियों के साथ मायती रही। मलितकिण्वोर के गुणों से आकृष्ट होकर भी सीतावती ने प्रेम-निवेदन नहीं किया और प्रेम-निवेदन करके उम समय तक विवाह न किया जब तक कि उसके विधिपूर्वक सम्पन्न होने की संभावना न थी। परन्तु कलावती आकृष्ट हुई कि भुलमिलकर बात करने लगी प्रेम की बात हुई कि साथ भाग जनी माता बचन कर विवाह हुआ कि दूसरे उधर निगाह फेरने लगी। उपन्यासकार ने महिलाधुस की प्रमुख विशेषता सतीत्व मानी है जो मार

राज्य संस्कृति के अनुकूल ही है। इस सतीत्य के स्थान पर 'धर्म स्वामीगता और अयोग्य सिद्धा का प्रचार' यह समाज के लिए वास्तव समस्या है।

उपन्यास में चरित्रों का विकास तो नहीं है परन्तु सीतावती-मनित्विखोर और कलावती-वामदृश्य दो चरित्रों के तुलनात्मक चित्र उपस्थित कर 'अभ्यन्तमार्ग' और अनात्म समाज का महत्व धारण करने का सफल प्रयत्न किया गया है। इस विषय के लिए विद्वता अलम्य दुष्या कथानक लेखक ने बनाया है उतने की आवश्यकता नहीं थी। प्रारम्भिक ३ परिच्छेदों तक तो नायिका का नाम भी नहीं है। यीप में केवल एक नाम है। इसी बीच में कालिन्दी को एक लड़की हुई जो हम समय केवल प्यार है महीने की है जिसका नाम सीतावती है और यही हमारे उपन्यास की प्रधान नायिका है। पञ्चम परिच्छेद से ४०वें परिच्छेद तक मूल कथा है। ४१वें से ५४वें परिच्छेद तक का नाम सीतावती के परदाशार्थों का इतिहास है जो अनावश्यक है। १ = वर्ष के सुजनकुमार की सारी कहानी कथानक को घिबिल बना देती है। लेखक का उद्देश्य कथा को 'पूर्ण' बनाया है इसलिये घामरा निवासी परसराम के बग की ५ पीढ़ी की कहानी लिखकर सारी घटनाओं का विवरण देकर अन्त में सीतावती को राजी और पुनर्वती बनाकर ही कलावती के जीवन का अन्त दिखाना गया है। सुजनकुमार का चमेरी से अत्यन्त प्रेम एक अलग कथानक का आधार हो सकता था इसी प्रकार राजा विजयदृश्य और अन्नकला का सफल प्रेम भी इस कथानक को बोधिल बना देता है। कथा की दृष्टि से तो ये प्रासंगिक विवरण अनावश्यक एवं व्यर्थ हैं परन्तु लेखक की दृष्टि समाज में सर्वत्र कर्म-फल दिखाने की रही है इसलिये मुख्य कथानक से बिना सोचो का भी सम्बन्ध हो सकता था उन सबके कर्मों का फल भी स्वतन्त्र रूप से सफल नै बिना दिया है।

कथानक में ध्यान देने की एक विशेषता यह है कि इनमें वृत्ति बिना एक भी नहीं है। किष्करीमान के उपन्यासों में ही प्रकार के वृत्ति बिना पाये जाते हैं वे जो विभिन्न धार में अमानक एवं अष्टककारिणी बहनाओं का प्रदर्शन करें, और वे जो समाज के वामनत्वक जीवन की अक्षि करें। सामाजिक उपन्यास में भी सती नारी को आकुर्षों से उठवा मना कर, आजीवन कारावात में भाति भाति की वातनार्थ देने के बचन हैं। अर्थात् 'अपना उपन्यास में' नहीं भी सीतावती को अपना के समान भी बच्य दिखाने का सफल है परन्तु उपन्यासकार न वातावरण की शान्तिधिय बनाया है। शायद इसलिये कि इस घटना के समय अंग्रेजी राज्य बूढ़ हो चुका था और अर्थव्यवस्था की अभावना बढ़े-बढ़ गयी थी नहीं रह गई थी। हम अर्थव्यवस्थापूज रोमांचकारी वातावरण के स्थान पर अनात्म और भुक्कृमे का चित्र है, जिसको किसी सीमा तक प्रेमचन्द ने भी अपनाया है। दूसरे वृत्ति बिना समाज के वास्तविक जीवन के भी इस उपन्यास में नहीं पाये जा सकते वगैरह की धर्मियों में से निकला प्रत्यक्ष है परन्तु अन्नकला का अन्तार करने के लिए या निहामचन्द की दुर्घटा कराने के लिए ही उनके पतन को अक्षि करने के लिए नहीं। राजा विजयदृश्य की परित्यक्ता परती पेट की आला और कई से परेधान होकर अन्त में पहुँच जाती है परन्तु उसकी दिव्य मूर्ति को देखकर सुपारी प्रमोदकुमार उसे बहिन

मानकर उसको अपनी समस्त पूर्वी—धी रपये—दे देता है—एक ही घटना से दो व्यक्तियों का उद्वार बड़ा आश्चर्यजनक है। परन्तु इस घटना में 'सेवासदन' का संकेत छिपा हुआ है। सामाजिक मजदूरियाँ प्रायः धादमी को पतन के घर्त में डकेल देती हैं—बेरा के स्वभाव में बाधना और निर्लज्जता हो ऐसी बात नहीं परन्तु उसकी धातों के सामने धाकर धाकदार भी तो उसे नृष्य जीवन के लिए बाध्य कर सकता है।

'भीलावती' उपन्यास में लेखक ने तीन स्थानों पर उपन्यास कला के विषय में भी लिखा है। पृ० २ पर भीलावती और कलावती के व्यक्तित्व का स्पष्ट बतलाते हुए उपन्यासकार ने लिखा है कि कलावती 'शुगाररस क नुहनुहाते नाटक उपन्यास और काव्य पढ़ती' परन्तु भीलावती

का काम करती या धर्म सम्बन्धी वा ज्ञान की पुस्तकें पढ़ा करती थी। इस संकेत से बिंदित होता है कि लेखक की दृष्टि में भी उपन्यास पढ़ना 'मन भर की' सक्रियता के लिए उचित नहीं है क्योंकि वे विशेषतः शुगार रस के आश्वासनात्मक चित्र होते थे। पृ० ४२ पर उपन्यासकार ने उपन्यास क पाठकों के तीन बय बनाये हैं—(१) जो सोच उपन्यास के पंचपात्र को जानते हैं (२) जो कानून से आक्रिय हैं (३) कवन निस्ते क ही लोकीन हैं 'उपन्यास क पंचपात्र' और 'कानून' के विषय में 'लौकिक' घटना का निर्माण होता है। गोस्वामी जी के मत में उपन्यास का कथानक दो प्रकार की घटनाओं में बनना है। लौकिक और लौकिक। लौकिक घटना दैन्ययोग कर्मफल की कालचक्र की गति पर निर्भर है। लौकिक घटनाएँ समाज का व्यावहारिक जीवन हैं जो बम और बिजि (कानून) पर निर्भर हैं। पृ० २३० पर लेखक ने बतलाया है कि 'उपन्यास में बहुतायत से नायक नायिकाओं का नाम लिखना बतलाया है कि ऐतिहासिक घटनाओं का निर्वाह निष्पक्षीयता से स्वयं भी अपने परिवार के ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यासों में किया है।

राजकुमारी

'राजकुमारी' किछोपीलाल गोस्वामी का 'सामाजिक उपन्यास' है। यह सन् १९०२ ई० में की मुखर्जन प्रेस से पुस्तकालय प्रकाशित हुआ था। यह उपन्यास बहुत पसन्द किया गया सन् १९११ में श्रीमती कमलामाई त्रिबे ने इसका मराठी में अनुबाध किया सन् १९१६ में इसका दूसरा संस्करण (हिन्दी) प्रकाशित हो गया। इस संस्करण में भाषिका का सुन्दर चित्र भी आर्ट पेंसिल पर बना हुआ है। उपन्यास की कहानी मनोरंजक भाषा परिष्कृत एवं चमक मनोहर है। परिष्कृत क दीर्घक हिन्दी में है परन्तु प्रत्येक के साथ संस्कृत की एक शक्ति भी छड़ी हुई है। मुखपृष्ठ पर 'भीतिरत्नराज्य' का जो छन्द संक्षिप्त है उसमें पना लगता है कि उपन्यास का 'हृदय यह दिखाना है कि मगवान् की हृषा से ही सङ्ग्रहण की सम्पत्ति' भार्गवी की प्राप्ति होती है।

मुनेर के पत्नीदार राजा हीराचन्द्र बड़े चमत्कार और प्रभावशाली थे। हीरान

१. काष्ठी मार्ग प्रयत्न जगति नष्ट रहे लक्ष्मण विद्वत् ।

रामलोकन पर उनका बड़ा विश्वास था। रानी के कोई लगान नहीं था। कुछ दिनों बाद उनके मरी बैठी हुई बिस्मको गिरिजा ने अपनी वहिन मातली के पुत्र मानिक से चुपचाप बदल लिया—मानिक का बाप पहिले मर चुका था और माँ बम्भते ही मर गई थी। जब रानी को दूसरी लगान होने वाली थी एक महारजा ने गिरिजा का बताया कि सब की बर रानी को था। लगान हाथी उनका मुम बन बच तक राजा को न देखा जाय। देवयोग से रानी क पुत्री बम्भी उगी धर्म्य बीरान की पत्नी बम्भा ने मरे हुए पुत्र को बम्भ दिया। गिरिजा ने चुपचाप बड़ी पुत्री मरे पुत्र से बदल डाली। इस प्रकार मानिक राजा का पुत्र बन बचा और मुकुमारी बीरान की पुत्री। बीरान का मत राजा से फिर पया उनका सहायक हुयी थी था। राजा जब सिकार को जमे तो उनको प्राज्ञान्न करावान में रखकर बीरान ने प्रजा में घोषणा कर दी कि राजा को सिंहा उठ ले पया। मानिक बालक का इसलिए रिवाजत बीरान के हाथ में था गई। इसी कथा पूर्वपीठिका के रूप में है।

कचानक का प्रारम्भ मानिक और मुकुमारी के प्रेम-व्यापार से होता है और परिचायक साट साहब की सहायता से राजा के छुटकारे, राज्य प्राप्ति और मानिक-मुकुमारी के विवाह से। इसीनी मारा जाता है और रामलोकन धात्म-इत्या कर लेता है। बीच में एक बहूचारी और कलकत्ते के सेठ बगीचन्द की सहायता में मारी कथा की जाती है। रामलोकन का प्रावर्धित और भ्रान्तिपूर्ण पत्र बड़ी मातृकता के प्रसंग है। 'दाई-सीत-सी बयं के मोनी बाबा' का प्रकट होकर फिर सम्पर्क होना बितना प्रारचय-जनक है उतना ही राजा हीराचन्द का हिमालय की ओर चला जाना। मानिक और मुकुमारी ने बालेपन की लानी लगन की माठ को बड़ ही हीरान है सोता और जनबीरवर ने उन सभी के बिन बड़े धान्य से व्यतीत कराये।^१

इस उपन्यास को 'सामाजिक कहाने' का नहीं धरिप्राय है कि साट साहब यु वेर और कलकत्ता का नाम होते हुए भी स्पष्टतः किसी ऐतिहासिक व्यक्ति का चरित्र है इस कचानक का कोई सम्बन्ध नहीं। कथा-वस्तु समाज की किसी समस्या या किसी धर्म का चित्रण नहीं करती प्रत्युत धर्म्य उपन्यासों के समान इन दो सिद्धान्तों का प्रतिपादन करती है कि धर्म के कारण धनी-गुरे बिन पाते रहते हैं और कम का फल मनुष्य को धन्य मिलता है। पृष्ठभूमि की कथा में दो बार मरे बच्चा से दूसरे बच्चों का बदलना भी चतुराई की प्रवेष्टा संशय पर धनिक धारित है। धर्म में रहस्यपूर्ण मन्त्र और पीपल के पेड़ की जुरं से उसका रास्ता जितना धर्म्य है उतना ही धर्मी-कि भी और 'बहा की घारी वस्तुएं ही किसी धर्म्य धर्मि द्वारा वहाँ ही धर्म के धर्म' समा कर पाठक के सामने आने का सा उपाधा करती है। इस उपन्यास के मूल में जिना कर काम करने का विशेष महत्व है। गिरिजा दो बार राजकन के

बच्चों को बदल देती है और जीवन भर इन बात को कोई नहीं जानता। रामनोबन यहाँ तक राजा को काउवास में रखता है और किसी को कानों-झान सबर नहीं मिलती।

उपन्यास का नाम मायिका की वास्तविकता पर राजकुमारी रखा हुआ है फिर भी पाठक को यह ध्यान नहीं आता कि मायिका सुकुमारी ही राजकुमारी होगी। अन्त में जब रहस्य का उद्घाटन होता है तो कथा में एक नवीन रस उत्पन्न हो जाता है। अन्त के तार परिलक्षित रहस्यों के ही लक्षण हैं। मुख्य कथा मायिक और सुकुमारी के 'प्राप्त' का अपूर्ण खेल है। पहिले परिच्छेद में ही मायिक कहता है मैं निर्धन का बेटा हूँ और तुम धनी या बनी की बेटा हो। और सुकुमारी उत्तर देती है 'तुम्हारी बातों से मैंने जाना कि तुम गरीब के सड़के नहीं हो तुम्हारे पिता बहुत बड़े धायमी थे' तो कछ रहस्य की गन्ध आने लगती है। आने जब कर पाठक सोचता है कि मायिक राजा का पुत्र होगा परन्तु अन्त में सुकुमारी राजा की पुत्री सिद्ध होती है। 'नवपलता या मादभंजाला' उपन्यास के समान यहाँ भी लेखक ने विवाह-पूर्व प्रेम का चित्रण किया है और इस सीमा तक कि एक 'तेरह बीसह वर्ष की मायिका और एक पन्द्रह-सोसह वर्ष का किछोर एक बूखे का हाथ पकड़ हुए' गया तीर पर हजर-उमर टहलते हैं। यह कोर्नशिप का प्रभाव है जिसकी चर्चा ऊपर' ही चुकी है परन्तु 'नवपल' उपन्यास में जो लेखक इसी संवादी मझकी के एक खण भी 'बचाये' रखने के पक्ष में नहीं है वह यहाँ अपनी स्वतन्त्रता दे दे—इसे सम्बन्धीन संस्कृति का ही प्रभाव कहा जाएगा।

मायिका की कक्षी पर उपन्यास का जान होने पर भी चटनाओं का मायक दुष्ट रामनोबन है। केवल उसी के चरित्र का विकास या परिवर्तन इस रचना में दिखाया गया है। वह राजा का कृपा-पात्र और हुँसमी या परन्तु नीच हुँसमी की कृतबद्धि के उसके मन में गैर जाता गया और उसने नमकहूरमी करके राजा के साथ बुरा व्यवहार किया। उसकी पत्नी की तुलना मलक के राजन की भार्या मन्डोदरी से की है। हुँसमी की मृत्यु के बाद क्षामर रामनोबन बदलता परन्तु जो पाप उसने किये उनकी क्षिप्ति के लिए वह और भी कठोर होता गया। अन्त में उसके पाप उसको का बैठे और चारों ओर घन्कार देकर रामनोबन ने प्रायश्चित्त किया और भ्मात्मिष्ठ आत्म-हत्या कर भी। उसका पतन बड़ा मनोवैज्ञानिक है। लुप्तपति और स्वर्णमिस्त्र किछ को नहीं गिर देते। अन्त में हर तो उसको होना जिसकी आत्मा में बल हो अन्तका अधिकतर कोष राजन से पाप नहीं करते और कुछ लोग सपास मम से भी पाप से दूर रहना चाहते हैं। जब राजा अपनी क्रिया-शक्ति सचिव को सौंप दिया तो सचिव को किसी के मन्त्रित्व की आवश्यकता होगी और उसका मन्त्र प्रच्छा नहीं भी हो सकता।

‘राजकुमारी’ उपन्यास की कुछ विशेषताएँ हैं जिनके कारण यह लोकप्रिय बना। इनमें से मुख्य यह है कि इसकी भाषा बहुत ही परिष्कृत एवं परिनिष्ठित है। उर्दू का उस पर प्रभाव नहीं है। बल्कि पाशों के सामाजिक स्तर के अनुसार भाषा का स्तर कुछ बढ़ा-सा आता है। दूसरी विशेषता यह है कि भाषा से प्राप्त तक नहीं भी दुर्घटन का वर्णन कमकर नहीं किया गया। फलतः पाठक के ऊपर इस रचना से कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ सकता। तीसरी यह कि यह वस्तुतः सुसज्जित है। रामचरण की घातमहत्या और अमृता का सती होना—इतना ही दुःख का चिह्न है, परन्तु यह भी व्यक्त हो जाता है क्योंकि भाषिका उनकी पुनी नहीं है। इसलिये उनकी मृत्यु पर दुःखी होने वाला उपन्यास-पत्र में कोई पात्र नहीं मिलता। पूर्वपीठिका की कष्टमयी स्थिति में एक निरवध एवं महान् सुचारु करके यह उपन्यास पाठक के मन में सुख की वृद्धि करता है। चौथी इस उपन्यास में तिमिर या ऐवारी के अंधकार दुःख नहीं के बराबर है। रहस्यमय भवन का दृश्य पीछा देने वाला नहीं है। पाँचवीं इस उपन्यास का बनावट सुलभ हुआ है। कबल एक कथा काई धार्मिक कथा नहीं कोई विशेष प्रभाव प्रेषित नहीं। अस्तु, जो किशोरीमान ‘नलनरु की कथा’ जैसा रोमाञ्चकारी और ‘चपला’ जैसा वर्णित दृश्यों से भरा हुआ उपन्यास मिल सकता है उनके हावा से ‘राजकुमारी’ जैसे साफ-सुन्दरे उपन्यास की रचना उनकी अपूर्व साहित्यिक प्रतिभा की चोटक है।

चपला का नव्य समाज चित्र

गोस्वामी किशोरीमान के सामाजिक उपन्यासों में सबसे मुख्य स्थान ‘चपला का नव्य-समाज चित्र’ को दिया जाता है। यह उपन्यास सन् १९३३ में बार भानो में प्रकाशित हुआ था। लेखक ने स्वयं भी इस उपन्यास को ‘वर्तमान समाज की वृत्ति व्यवस्था का वर्णन चित्र’ माना है। आलोचकों का मत है कि चपला का वर्णन धातु-पत्र मुद्रक-दृश्यों के लिए वर्णनमय नहीं। उसमें उच्च वासनाएँ व्यक्त करने वाले दृश्यों की अपेक्षा निम्नकोटि की वासना प्रकाशित करने वाले दृश्य अधिक हैं और ‘बटकीने’ भी। लेखक और आलोचक का मतभेद होने पर यह रचना प्राच्यत्व है कि इस प्रकार का चित्र अहित क्यों किया गया है। लेखक की दृष्टि में ‘नव्य समाज चित्र’ और ‘वर्तमान समाज की वर्णित व्यवस्था का वर्णन चित्र’ एक ही बात है। अर्थात् वे ‘नव्य समाज’ और ‘वर्तमान समाज’ को एक समझते हैं। इसकी व्यवस्था ‘वृत्ति होने में’ ‘व्यक्त’ है। यह ऊपर कहा गया है कि समाज के दो भाग हैं—सनातन-समाज (या धर्मसमाज) और नव्य समाज ‘नव्य समाज’ या ‘आधुनिक समाज’ (मार्क्स सोसाइटी) वस्तुतः ‘सनातन समाज’ (धीर्बोद्धि सोसाइटी) का विपरीत है। लेखक को उन ‘अधुनिक जेनेरल’ ‘अधुनिक मूर्ति’ ‘कुल कुटार’ ‘रिफार्मर’ से चिड़

है 'जो स्वयं धार्मिकोचित से उत्पन्न होकर भी अंधे-अंधी-अंधे-अंधे बनने का दम भरते हैं', जिसमें कुछ भी धार्मिक का अभिप्राय' दीप नहीं। नाम और धर्मता की दृष्टि से ऐसा जाए तो हिन्दी का यह 'नध्य समाज विभ' संघता का 'नव बाहु-विभाग' (सम् १८२३) ही ता है। देशकाल के भेद से लोगों में अपना संस्कृति से अग्रगणित नहीं केवल के बाहुओं के मिश्रोदर-पुष्टि-मय जीवन का धुनिष्ठ वर्णन पाया जाता है। नई केवल और पुरानी संस्कृति में अनेक भेद होने हुए भी भारतीय दृष्टि में मुख्य अन्तः यह है कि नई केवल स्वच्छन्द विचार से विश्वास करती है जब कि पुरानी संस्कृति की बुढ़ी संघर्ष की प्रेरणाएँ तक के हाथ से २२ ३० वर्ष बाद नध्य समाज के अभाववादी विचार स्वी-पूरण व स्वच्छन्द जीवन को प्रधानता देकर ही उठते हैं। उदाहरण के लिए 'बोधान' में 'मामती और मिस्टर कर्मा' को देखा जा सकता है। अस्तु किमोटीनाम का विश्लेषण यह है कि प्राचीन-आदिवासी व अग्रगणित और नवीन केवल के धार्मिक में एक कर नव व्यक्तित्व कर्म-कर्म से न डर कर धर्म के अभाव पर पाप की शरणा जाता है तो जीवन भर कर्म कर रहा और उनके कर्म को भीषण रहता है। कर्म का धुनिष्ठ विचार कर अन्त में उनके धार्मिक कर्म का भी अभावक वर्णन कर अन्त में पाठक के मन को धार से हटा कर धर्म में प्रवृत्त करने का प्रयत्न किया है। अन्त यह निष्कर्ष मजबूत होता कि वे किसानों विचार नवधर्मों को अमाने व विचार हैं उनके उद्धार के लिए नहीं। जो नव का उद्धार करने हुए विचार न इन रचना का उद्देश्य कर्म-कर्म ही माना है —

(क) यह उपायमात्र धार्मिक से अन्त तक कैसा विचार गया और हममें अग्रगणित धार्मिक-विचारों का उनके कर्मव्यानुसार कैसा परिणाम दिखसामा गया इन विषय का निर्णय का धार हम उपायमात्र प्रती विचारों का कारण हा छोड़ देते हैं। (बीबा माय पृ० ८६)

(ख) कौन कहता है कि मठार में पापियों को उनके पापों का अनुसार नव दीर्घर दण्ड नहीं देना ? (बही पृ० १०६)

अस्तु, हममें सन्देह नहीं कि इन उपायमात्र में 'धुनिष्ठ व्यवस्था का विचार—'अवस्था विचार'—है। लक्ष्य तो इन विचारों की मजसे अन्त कोषणा कर रहा है। परन्तु देखना यह है कि उन धुनिष्ठ व्यवस्था में अग्रगणित माय केने कर्मों का परिणाम क्या होगा। अन्त परिणाम है अन्त ता पाठक का मन प्रवृत्त होता यदि परिणाम बुरा है तो मन उनमें प्रवृत्त करेगा। अन्त अन्तली पत्नी और कर्मविचार के जीवन का अन्त स्वयं उपायमात्र के उद्देश्य का परिणाम देगा।

'अवस्था' उपायमात्र की क्या अवस्था के तत्पश्चात् परिवार की कहानी है। संस्कृति और नव से दूर रह कर नव-समाज का स्वच्छन्दतापूर्वक मीय करके बाँके मीयन मुक्त किन-किन बुराईयों में अन्त कर अन्त कुछ का नाम बुराईयों और अपने जीवन को नव-

किया करते दिव्य प्रकार जीवित नरक भागते हैं—मही मेखक ने एक यथावधानी कथा के माध्यम से दिखाया है। गोरखपुर के राजा राजिकाकिशोर के दो पुत्र थे कमल किशोर और ब्रजकिशोर बड़ा पुत्र कमलकिशोर ब्रह्माज्ञा और छटा ब्रजकिशोर नेक था। जबर बाबू इन्द्रसाह के तीन भाई और तीन बहिनें थी बहिनों के नाम कामिनी चपला और कारम्बिनी थे। उपन्यास के अन्त में कारम्बिनी का ब्रजकिशोर के साथ विवाह हो जाता है। ब्रजकिशोर राजा परिवारों को विमान माना है वह धार्मिक है अपने पदों के विपरीत उसका विवाहतीनों में सबसे छोटी बहिन कारम्बिनी के साथ होता है। कमलकिशोर की दृष्टता भी दोनों परिवारों को साथ लाती है वह 'नून जाल फरेब डकैती गहबनी भावि कई भवानक प्रमाणक' कर्म कर्म के मात-सात 'मल घर की स्त्रियों को जराब' करता रहता है उसने जराब को अपने बहुत में प्यार के लिए तिमिस्मी नकान में बंध रखा। कमलकिशोर की नहायता मुख्यतः पत्नी और सिन्धु नोकर करते हैं पत्नी बड़ी धरात औरत है वह पसत रास्ते पर चलती है और उससे हटना नहीं चाहती उसने निश्चय किया कि उसके जीवन का उद्देश्य पाप और भुराई होना। (मैट ईविल बी माई फुड) 'तमाम दुनिया को मैं यह बात दिखाना हूँ कि मुझ जैनी बदकार औरत भी धान धाने पर कड़ा तक क्या-बया कर पुखरती है'। एक दिन भाभी रात के समय द्विचार लिए और अपने-अपने बैहरे पर नकाब डाल हुए सहर दरवाजा छोड़कर बस-बाइरु डाक घर में चुन पड़े और चपला के मुँह में कपड़ा दूँस कर उसे उठ कर बेकठे-बेकठे यावज हो पड़े। चपला मनस्वाम के साथ विवाह करना निश्चय कर चुकी थी। इसलिए दृष्ट कमलकिशोर ने मनस्वाम को भी एकदम संभावना और उसे भी तिमिस्मी नकान में बंध कर रखा। चपला को अनेक प्रकार के मानव हिये मए एक बलात्कारी कमाई उसके सामने भाई गई जिसके विषय में बतलाया गया कि मनस्वाम मर गया है और वह कमाई उसी की है। अन्त में एक और छो कमल के पाप का बड़ा नर जाता है 'सलनऊ के मजिस्ट्रेट पुलिस सुपरिस्टेन्टे बस गोरे सर्वन और कोठवाल तथा सी काम्प्लेन' भाकर उसे निरपहार कर भते हैं दूसरी ओर चपला एक हान में कटार और दूसरे में बैहोली की गोतियों का कटार लिए जलवासी कोठरी की राह से नीचे बालान में पहुँच कर मनस्वाम से मिल जाती है। कमलकिशोर और पत्नी मात्महत्या करते हैं सिन्धु कोभी हा जाता है।

उपन्यास की प्राथमिक कथा राजा राजिकाकिशोर के परिवार की कहानी है। उनके दो पुत्र कमलकिशोर और ब्रजकिशोर क्रमशः 'नयसमाज' और 'सनातन समाज' के प्रतिनिधि हैं। मेखक की दृष्टि में उन दोनों के दुनों की विपरीतता सर्वत्र रही है। कमलकिशोर का धर्म जीवन समाज का अपने सा यथाचित वर्णस्थित करता है। दूसरी ओर ब्रजकिशोर के भावसे विचार निष्पत्ति होकर पाठक की धार्मिक प्रभाव करते हैं। कमलकिशोर बड़ा था उसको सम्पत्ति की सारी सुविधाएँ प्राप्त थी उसके चारों ओर

सुधामनी धीरे स्थायी नीच सोम बिरे रहते थे उसने मदनमोहन की पत्नी 'बमती को बराब किया जो धन में 'डाकू गोरमनी द्वारा बायी रखी के हाथ बैची' गई मामापुर में अपने कमिनी धीरे सीधामिनी पर धत्याचार किये धन में अपना पर धत्याचार करने की पूरी कोसिस करके उनके पापी जीवन का धन हुआ । पुरुष पात्रों में कमल बिछोर का जीवन सबसे अधिक व्याप्त होने योग्य है । उनका अपना कोई धर्म व्यक्तित्व नहीं वह एक बय-विषय का प्रतिनिधि है । उनका चरित्र का विकास या ह्रास उपन्यास में नहीं दिखाया गया वह बना-बनाया ही पाठक के सामने आता है और कुछ ही उलटो का आटे हैं । गोस्वामी जी के ऐतिहासिक उपन्यासों में भी इस प्रकार के नायक हैं सत्तावत खाँ और सिराजुद्दीन से कमलबिछोर की तुलना हो सकती है । अन्तर कथन यह है कि ऐतिहासिक पात्र निज का व्यक्तित्व भी रखते हैं बस कमल दुसुबो की ही भूति है ।

कमलबिछोर का जीवन मुख्य होने पर भी उपन्यास का नाम नायिका बनना के नाम पर है क्योंकि कमल के पापों का बड़ा बदला पर धत्याच करने के प्रयत्न में ही भरता है और अपना का चरित्र उतना दुर्ग है कि सोम या मय उनकी घटल निदय से डिगा नहीं सकते । 'अपना उपन्यास में बनता हो सकती है परन्तु बनता नायिका में नहीं । बस्तुन-काहू हरप्रसाद की तीनों ही बहिनें स्व में मुग्ध और हृम में स्थिर भक्ति हैं । बनता के माप को कुछ दुर्मटना हुई उस पर तो बेचारी का बय ही गया परन्तु उन कठिन परिस्थिति में अपना न त्रिनी दुःखता माहम बुद्धिमत्ता और धास्वा का परिचय दिया उतना कम ही महिम्नाई दिखा सकती है । इन गुणों में अपना बदगमाना सीता की ही धरदार है उसका कायबाध प्रभेदन, यात्रना त्रिपनम की मृत्यु की मृद्री मूचना आदि सब सीता के जीवन से भी गई है । अन्तर कथन यह है कि अपना का प्रम पूर्वाभारण है पतिहान बर्म नहीं और अपना स्वयं विमिस्त्र का रहस्य पालकर माहम बिलानी है मीना के ज्ञान निष्क्रिय नहीं रहती । इस प्रकार बनता में आधुनिकता है जिसका लेनक में स्थापित किया है । अपना की का प्रतिष्ठा है 'मैं प्रब निबोड़ी बिपति का सामना बुद्धता के साथ कर सब और अपने निमन शरीर में किसी लक्ष का भी बन्ना न मगने दूँ' और किसी बिपद्-हित धवीर ने अपनी निती बाहि सात स्थापित कर रख करने के लिए मुझे मेरे धन से उड़ा संवाया है पर सब मेरा नाम अपना है कि जो मैं उसे उनके पार्श्वपण का पूरा मजा चलाऊँ' । उपन्यास में बनता के गुण उन स्थितियों की तुलना में और भी स्पष्ट हो आते हैं जिसको कमलबिछोर ने बराब किया था । गोस्वामी जी के अन्य सभी पात्रों में अपना की तुलना बचन तात्त स की जा सकती है । परन्तु अपना तारा में भी विकसित है, कठिनाइयों में अपना चरित्र विकसित होता है और वह बड़े प्रतिनिधिमार्ग नहीं है उनका व्यक्तित्व स्पष्ट और स्पष्ट है ।

गोस्वामी जी ने अपने सामाजिक उपन्यासों में बरिचों का विकास नहीं दिखाया था। वही-नाइये ही सामने आते हैं, आगे होन वाली बटनाओं का उनके बरिच पर केवल मुद्रा हुआ प्रभाव पड़ता है। उचित-गुणन माने जाता नहीं। किसी व्यक्ति की चप्पल या बुलाई का उपन्यास में कारण नहीं दिखाया गया। मानो स्वभाव ब्रह्मवाद होता है। सत् में असत् का प्रभाव और असत् में सत् की भूमक दिखाकर व्यक्तियों का मनो-वैज्ञानिक निर्माण उस युग तक न होता था। कपड़े की बुलाई-नी उठा भी जाती है। उनको स्ववशागत नहीं कह सकते। धातु उन्मास की कला कथानक को बड़ी सामर्थ्यनी से संभारती है। परन्तु जब समय इसका कर्तव्य पात्रों का कुतूहल शांत करना भर था। 'प्रेमचन्द उपन्यास में वे सारी बातें प्रत्यक्ष देखो जा सकती हैं।

पुनर्जन्म का सीतिपादाह

सन् १८०३ ई. में काशी से गोस्वामी किमोरीनाम का सामाजिक उपन्यास 'पुनर्जन्म का सीतिपादाह' आया था। यह २ परिच्छेद और ४२ पृष्ठों का छोटासा उपन्यास है। कथानक में तीन ही पात्र हैं—नायक और दो नायिकाएँ, एक विवाहिता सुन्दरी रक्षिता। इसकी संरचना नामक का दो विभागों के प्रति प्रेम है। विवाहिता स्त्री के प्रति उसका प्रेम प्रभाव है। विवाहिता के प्रति स्नेह। कथानक के तीन भाग हैं—प्रथम में कर्तव्यमूचक स्नेह दूसरे में चरेनू मर्त्य तीसरे में विवाह द्वारा समस्या का समाधान। सञ्जनसिंह धर्मोपमा के प्रतिष्ठित अमीरार थे। उनकी पत्नी सुधीला धर्मिमागिनी सुन्दरी और कटिल स्वभाव वाली थी। सञ्जनसिंह का स्नेह सुन्दरी से था वह धान्त मनुष्यादिनी और स्नेहमयी थी। उसके पिता प्रहरी सेना में कर्मचारी थे जो 'अन्ये से बाकी होने के कारण शीघ्र हुए और क्षेत्र में उन्हाते धारमहत्वा की'। सुधीला का अपने पति के ऊपर प्रविश्वास अत्यन्त हुआ जिसके कारण घर में जगह रहन लगा। सुन्दरी सञ्जनसिंह को प्रेम करती थी परन्तु चरेनू मुख में काटा बनना उसे स्वकार्य न था। उसे विश्वास था कि 'यदि मेरा मरणा प्रेम तुम पर होता तो मैं किसी न किसी जगह में तुम्हारी दासी प्रबन्ध होऊँगी'। एक दिन सुधीला ने उन दोनों की बातें सुनी फलतः उसके 'चित्त का कुछ भाव बदल गया और वह सुन्दरी तथा सञ्जनसिंह में उचित सम्बन्धकार का होना समझती थी वह भ्रम उसका आता रहा'। उस दिन उसका 'पुनर्जन्म हुआ और हठ करने उसने सुन्दरी का विवाह सञ्जनसिंह के साथ करा दिया 'इस विवाह में सुधीला ने सुन्दरी को सभी मांति सम्प्रदान किया था जिस प्रकार वागवहता ने रत्नावली की'।

इस छोटे-से सामाजिक उपन्यास का महत्त्व दो कारणों से है। प्रथम तो सुधीला के स्वभाव में परिवर्तन वही मनोवैज्ञानिक डीप से चित्रित किया गया है। सीतिपादाह सदा स्त्री के प्रति होता है और उसका मुख लम्बे है। सुधीला के मन में लम्बे हुए भाव अत्यन्त ही सुन्दरी के प्रति बाह्य भी उत्पन्न हो गया। परन्तु जब उसके लम्बे का निवारण हो गया तो फिर बाह्य भी वह सुन्दरी को अपने माग का काटा नहीं समझती। सुधीला सुधीला ही रहनी सुन्दरी कभी सुधीला नहीं बन सकती। मूल में सुधार करते

हुए उसने हठ करके मुन्बरी का विवाह अपने पति से करा दिया 'धर्मशास्त्र में स्त्री के लिए केवल एक ही विवाह की व्यवस्था है पर पुरुष प्रसक्त्य विवाह कर सकते हैं'। स्त्री के मन के स्वतन्त्रता का उपन्यासकार ने बड़ी सफलता से विषय दिया है।

मुम्बरी विरोधता हिन्दू बरों की मुख्य समस्या का व्यावहारिक सुझाव है। जब एक विवाहित व्यक्ति किसी प्रविवाहित स्त्री से स्नेह मानने लगे तो पुरानी संस्कृति के अनुसार उसका परिणाम विवाह में ही होना चाहिए। नया समाज का पुरुष तो विवाहिता पत्नी के अतिरिक्त अनेक प्रविवाहिताओं और परस्परियों से प्रेम कर सकता है, परन्तु सनातन समाज विवाह के बिना एक स्त्री और एक पुरुष में प्रेम नहीं चाहता। फिर भी समाज में इस प्रकार के सम्बन्ध विकसित हो जाते हैं। हिन्दू-समाज इसका परिणाम विवाह ही मानता है। ऐसी ही विषय स्थितियों में पुरुष के लिए एक से अधिक विवाहों की व्यवस्था है। उपन्यासकार का भी यही सुझाव है। उसने प्राचीन इतिहास से धर्मियों के उदाहरण लेकर हम सुझाव का वास्तविक समर्थन किया है। 'सीतिले मुदीला और मुन्बरी का सा बर्ताव करे और पुरुष सज्जनसिंह की मति बलिम नामक का सा आचरण करे—यही उपन्यास का प्रस्ताव है।

उपन्यास का नाम बड़ा उपयुक्त है। लेखक के मत में 'सीतियादाह' की प्रवृत्ति 'पुनर्जन्म' सहायनीय है। विकल्प है 'सीतियादाह' और 'पुनर्जन्म' में और 'पुनर्जन्म' स्थितियों के लिए भी अच्छा है और नया के लिए भी। 'पुनर्जन्म' सुदीला और मुन्बरी दोनों का हुआ है इसलिए सज्जनसिंह का भी हा मया। सुदीला के सन्देह का जब निवारण हुआ तो वह विमुक्त बल गई उसका कायाकल्प हो गया वह सुदीला बन गई, यह दूसरी सुदीला है। मुन्बरी का तो सज्जनसिंह से 'किमी बन्ध में मुन्बरी वाली प्रवृत्ति' बनने का प्रण था जब उसका विवाह हुआ तो मानो उसका मया बन्ध था। यह 'पुनर्जन्म' मन का बल कर प्रमुख बन जाना है जो मात्र के मनोवैज्ञानिक युग में भी आवश्यक लगता है।

इस उपन्यास की भाषा साहित्यिक है। बीच-बीच में बसन्त-साहित्य के भी उद्धरण हैं धर्मशास्त्र या मातृशास्त्र भाषा से हो गये। कथानक प्रत्यक्ष नजिस्त और पात्र-संख्या कम है। लेखक की कर्म में विरोध प्रवृत्ति के बयान में विरोध रक्षित दिखाई जाती है, अनुप्रास की बाध में सारी घटनाएँ होने से अनुप्रास का दो बार कर्मन प्रयास है। बीच में गीत और कथाकथन भी सुन्दर हैं। उपसंहार करते हुए लेखक ने देस के प्राचीन साहित्य का उद्धार करके 'समाज के सुमंस्कार' की धनीस

१. राष्ट्रपति की दिल्लीउत्तर प्रत्यक्ष में भी भारतीय बायीं का यही व्यक्त अतिरिक्त है —
'वे सर्वेसह इयारे भी हैं'
यही बल में लाती है। (विचारी)

की है और वृहस्प जीवन का प्रारम्भ बिना लीज कर ईर्ष्या की उन्माद को प्रेम के कोठ में धात कर दिखाया है। उपन्यास के प्रारम्भ में एक भुम्बर भुम्बर एक पोखर बर्य की मुबती का हाथ करने हाथ में लिए हुए उद्यान में टहलता हुआ दिखाया गया है जिन पर मध्य संस्कृति का सम्बन्ध हो सकता है परन्तु वस्तुतः वह संस्कृत-साहित्य में वर्णित धर्म पुर बीजायी से ही प्रभावित है। लक्ष्मी के लिए गायत्री बिबाह विधाय है जो न्यास के पात्र लक्ष्मी है उनकी धर्म पुर बीजायी नम्य संस्कृत से प्रेरित नहीं माननी चाहिए। इन उपन्यास में तिलिस्म का वास्तवी जैसी रोमान्साकारिकी घटनाओं को कोई स्थान नहीं मिला। पारिवारिक उपन्यास की दृष्टि से 'पुनर्जन्म या जीवितयात्रा' तकल रचना है।

माधवी-माधव या महममोहिनी

माधवी-माधव उपन्यास दो भागों में मनु १६१९ ई. में बना था। इसकी लेखक ने 'सामाजिक उपन्यास' स्वयं लिखा है। मुख पृष्ठ पर महाधायत का एक श्लोक उद्धृत करके लेखक ने कम से कम नाम धीर मोल लीला की प्राप्ति अनभव बता कर रचना का मुख्य प्रतिपाद वर्माचरण माना है। उपन्यास के दो नाम हैं जो कथानक के दो दम्पतियों के नाम भी हैं—माधवी और 'माधव' नामक धीर नायिका है 'मदन' धीर 'मोहिनी' कमल उपनायक धीर उपनायिका हैं। 'लक्ष्मी बटना' को नामक-मुल से 'जीवन चरित्र' के रूप में कहलता कर कथानक का निर्माण किया गया है। बटना क दो स्वयं मुख्य हैं—काशी और दिल्ली। कमल सम्पन्न वीर-कुल धीर कम दरमय बाह्यों का है।

उपन्यास की प्राधिकारिक कथा माधव धीर माधवी के पूर्वानुदाह से लेकर बिबाह तक की है। 'अंकुर' 'पम्प' 'साक्षा' धीर 'पराय' धीपकों से 'पूर्वानुदाह' का पारिपाद बिबाह में हो जाता है। 'यदि समाज में ऐसी ही बीबी निमा कर ब्याह पायी होने लगे तो फिर रोना ही किन बात का रहे'। दिल्ली के भाभा रामप्रसाद बड़े सम्पन्न और कमलिता दादमी के उनका परिवार सम्मिलित कटुम्भ बाभा का। इस परिवार की बही बहुत कमना बही कम कर्मकिनी निकली बितके धूमित जीवन को देख कर माधव लीला की जूमा करने लगा धीर बिबाह का बिचार समने छोड़ दिया। उधर बीबाह हरिहरप्रसाद बड़ा बुराचारी का उसके घाव बुझा कतिमा बाभा बिबाह सरस्वती और पापात्मा बुरारी तिबारी मिले हुए थे। बुरारी ने बाफलों से मिल कर मदनमाहन का एकल से ही कम कपड़े मसूल करने के लिए गायक करा दिया। बड़ी बहू के दुश्चरित्र धीर मदन के पामन होने से रामप्रसाद बड़े दुःखी थे। उनकी दृष्टि थी कि माधव का बिबाह ही जाए ता वे उसे घर का मार सोंपकर दीर्घ माधा करें धीर फिर स्वयं सिबारे। पापा को कमल देर मयती है परन्तु उनकी दीन हिमती

मरम्भ है। बीबाम हरिहर और मुरारी का रहस्य खुल गया। मरम्भ बलिष्ठ था गया। इसी बीच माधवप्रसाद का माधवी से परिचय हुआ और उनका प्रेम बढ़ते-बढ़ते विवाह में परिणत हो गया। मरम्भ का विवाह सुधीमा मोहिनी के साथ हो गया। पापिनी वसुधा पाप-कहानी का प्रस्ताव बड़े जोर से कर के निक्षिप्त-सी हुई और मर गई।

माधव और माधवी का मिलन व तो कोर्टेडिय है और न गायब विवाह। माधवी के पिता समाजम विचारधारा के अनुयायी थे उन्होंने निश्चित वास कर लगे के बाद माधवी का नाम कन्या-पाठशाला में कटवा दिया क्योंकि वे ११ वर्ष की आयु के बाद सड़कियों को स्कूल में पढ़ना पसन्द न करते थे। माधवी ने और भी पुस्तक देखी वे परन्तु अपने परिवार के मनेष्ट माधवप्रसाद को जाना दिखाते समय वह रोमांचित हो गई और उनके हाथ से पंखो गिर गया।^१ माधव ने जब तक स्त्रियों का कल कित ही बदन ही सुना था, माधव माधवी की देखकर उनका मन बहस गया, उसने अपने में भी क्या नहीं किया था कि सुन्दरी स्त्री के देखने मात्र ही से पुरुष के कठोर हृदय का बाठ की बाठ में इतना परिवर्तन हो जाता है^२। माधवी के पिता ने जब विवाह का प्रस्ताव रखा तो जाना रामप्रसाद और माधव माधवप्रसाद दोनों ही लुप्त थे। इस प्रकार प्रेम-व्यापार के होते हुए भी यह विवाह माता-पिता की इच्छा से ही हुआ है। लेखक ने यह विचार नहीं किया कि यदि माता-पिता सहमत न होते जबकि स्वयं कथम न उठाते तो माधव-माधिका क्या करते। यह तो यह मान बैठा है कि जो प्रेम सच्चा है उसकी सुविधा स्वयं बिना जुटा देता है। 'धर्म से काम' की भी प्राप्ति होती है। माधव और माधिका धर्म के द्वारा में देखते हैं। उनकी एकमात्र विशेषता 'धर्म' है न कोई अन्तर्हृत् है न कोई बाह्य विरोध जब प्रेम की सत्य कान्हे बैध की पवडरी पर वे एक-दूसरे को बिना जाने भी जा रहे वे एक दूसरे से परिचित हाकर भी बढ़ते जाने हैं और विवाहित होकर भी उन मति से प्रगमर होंगे।

इस कथानक में वसुधा और हरिहर की कहानी इसलिए बोझी गई है कि वसुधा के करिब छ माधव स्त्री के शोष को जहिले देख और पुत्र को बार-बार—शोष देखने के बाद मन इतना पक्का हो जाता है कि सहसा यह दृष्ट नहीं पड़ता बड़ा झुठला है नहीं वस्तुन कुछ पाकर ही झुठला है। दुष्टा प्रतिष्ठा और विवाह मरत्सदी धान-धान को सुपन बनानी है उनका इतना ही महत्त्व है। हरिहर और मुरारी रामप्रसाद का असक साकर भी अपने साथ दुष्टता का व्यवहार करने काम लस है। मरम्भ दुष्टों के जन्म में कर्मता है वह मुरारी का मित्र है। हरिहर और मुरारी की दुष्टता धर्म-धर्म स्वभाववासी है। मरम्भ का विवाह उपाय को पूरे करने के लिए ही रिलाय गया है उसकी धारस्यकता नहीं थी। इस प्रकार मरम्भ माधव-प्रसाद होने हुए भी यह

१ इसका मत १ १४०

२ पृष्ठ १००

उपन्यास विस्तार पाकर कथा प्रवाह हो गया है।

इस उपन्यास में साम्य सामाजिक उपन्यासों के समान पाप की पछाजप धीर बर्न की बर ही दिखाई गई है। 'पाप कभी भी छिपाए से नहीं छिगा धीर वह कभी न कभी संतार में प्रगट हो ही जाता है। पाप का प्रगट कर देना भी पाप से मुक्त होने का एक प्रावर्धन है' ^१। मिलाफ ने तीन प्रश्न धीर छटाये हैं—स्त्री-सिखा समाज का सबसे बड़ा दोष धीर नास्तनसम। यह ऊपर कहा जा चुका है कि मोहम्मदी की स्त्रियों को स्कूलों में बड़ी व्यवस्था तक पढ़ाने के पक्ष में नहीं है। मायबी का मिडिल पाप छाटी ही स्कूल से उठा लेना इसका उदाहरण है। १२ वर्ष बाप कथा रजस्वला हो जाती है उसका बापि भाव स्कूल होने लगता है, कि उन पुरुषों के सम्पर्क से घलप रहना चाहिए, वह घर में माता-पिता की रैक रेक में रहे। 'घरने माता-पिता के प्राचरणों से जो कुछ सीखपी' उसी 'सौल भाव प्राचरण धीर बुध किवा व्यवयुध की प्राचसे यह बनेगी। इसलिए 'सबसे पहिले कन्याओं के सुधार करने का घयल' करना उचित है उनको पाठशाला में सिखा बिनाकर अनुष्ट बनाने से कोई लाभ नहीं। समाज के घंघ स्त्री-पुरुष है इसलिए उनके पारस्परिक स्वस्व प्राचरण से समाज मुनस्कृत बनता है धीर घस्वस्व प्राचरण से समाज में दोष घाने है। भव समाज का सबसे बड़ा दोष स्त्री पुरुष का घसंघत जीवन है—स्त्री का कलटा धीर पुरुष का स्वविचार्य बनना। कलटा स्त्री समाज का सबसे बड़ा कलंक है वह कम की बुझोकर सबसु समाज का उबाड़ देती है, 'बैध धीर समाज की रसातल भिजने के हेतु ऐसी-ऐसी कलटा स्त्रियां ही हैं न कि इन्हें छरीछे पुराजाये पुरष क्योंकि यदि स्त्री सली हो तो उसे कोई तारकी पुरुष नहीं बियाइ सकता' ^२। अपना सीमाजनी प्राधि के चरिओ में उपन्यास-लेखक ने यह दिखाया भी है कि यदि स्त्री बुध है तो कोई दुष्ट पुरुष उस पर कजक का एक घन्ना भी नहीं लगा सकता। धीर स्त्री के लिए उत्तरवासी है उसके माता-पिता। 'माता पिता या घमिमावर्धों की ही स्त्रियों के बियजने का मुल कारण समझकर उन्ही का इस दोष का दोषी धीर इस व्यवस्था का अपराधी समझना चाहिए' ^३ यदि वे बालकपन से घपनी पुत्रियों के सामने घण्टे उदाहरण रलें तो उनका जीवन सुमार्ग पर चलकर विकसित हो। मांस प्रजनन का अण्डन करने के लिए स्मार्त बर्न के अनुसार पूरै व्याख्या टीका-टिप्पणी के सहित की है जो उपन्यास-कला की दृष्टि से एक दोष है। इस उपन्यास में अंतिम कपोतिप स्वप्न-रूप नापटीतिपि के पक्ष में धीर बीपानवी पर कुपा घेलने, मांस प्राधि सेवन करने के बिरोध में लेखक ने अपना प्रातर्धिक मत प्रकट किया है। प्रीडोतर काल की रचना होने के कारण लेखक की विचारधारा बानने के लिए ये प्रसंग बड़े महत्व के हैं धीर इसी हेतु इन उपन्यास का भी एक विशेष मूल्य है।

१ इसका मूल इ १४४

२ इसका भाग १० १ १

३ पृष्ठी १० २१६

४ पृष्ठी, १० २१६

मंगूठी का मगीना

'मंगूठी का मगीना' उपन्यास मन् १९१८ ई० में प्रकाशित हुआ था। मुम्बयूट पर इनको 'सत्य पटना-मूक-गाहस्थ' उपन्यास कहा गया है परन्तु प्रथम पुष्ठ पर 'सामाजिक उपन्यास' 'गाहस्थ उपन्यास' सामाजिक-पारिवारिक उपन्यास का एक उदाहरण हो माना जा सकता है। भूमिका में लिखित होता है कि 'इस उपन्यास की कहानी बिमलक मन्गी है और इसमें बणिम पाषा के नाम भी मन्गी-मन्गी हैं केवल जिस और पाषा के नाम कल्पित हैं इस कहानी का समय समन् १८९४ ईश्वर है'। मन् १९०१ में 'उपन्यास' मासिक पुस्तक के एक विशेष शाहक पत्रारे और करने बरगने को एक मन्गी बन्गी मुना बन्गी पोस्वामी जी में समक साधार पर एक उपन्यास निम्न का उन्हीने घोषह किया। कुछ दिनों में इसक २ खर्मे छर यव परन्तु बीच में कुछ रुकावट का गई फलत १६ १७ खप बा' ही यह उपन्यास-मुस्तकाकार छर सका। इस उपन्यास का नाम केवल एक ही है, लेखक के अन्य उपन्यासों के समान सविस्तर नहीं। इसका बयानक बहुत सुगठित है बटनाओं में कोई प्राथमिक प्रवृत्ति नहीं निपत्री बटना और बरिब दोनों का समान बिचन है, एक ही बरिब ब्रिचित नहीं है बरमे-बार का संक्षेप न दिखारकर लखक ने संक्षेप के सामान्य बयानकार का बिचन किया है।

मगतपुर ग्राम के जमींदार कन्दपमोहन का पुत्र मन्मनोहन कथा का नायक है और उसी ग्राम के स्व० प० कृष्णमोहन की बन्गी लक्ष्मी नायिका। पंडित जी की मृत्यु के बार लक्ष्मी और उनकी माता कानिन्दी बड़ी परीब हा गई उनकी मृमि पर राममरण पांडे ने कुछ कब्र दिखारकर, अधिकार कर लिया। इबर मदन कियोर ही था कि उसकी पत्नी की मृत्यु हो गई। एक दिन बर्या में मदन न बरम्मी के घर छरन की और उनके घर की बया में बह बरिचित हुआ। लक्ष्मी के सुनों से घोहृष्ट होकर उसने प्रतिभा की कि वह लक्ष्मी से ही बिबाह करेगा। राममरण पांडे लक्ष्मीपाक है वह बाहृडा था कि कानिन्दी पर बाए लो वह लक्ष्मी को करने घर में डाल ले। उमन कन्दपमोहन के कान बर कर उनकी इस बिबाह के बिरोध में कर दिया। मदन को बिरह में मन्निराड हो गया उसकी माता घोषमाया और बहिन मायती बरण बलती थीं परन्तु करती भी क्या? उबर मकल मिर जान छे राममरण और उनकी पत्नी को बहरे चीर पहुँची के मर मरे भरत ममम राममरण ने करने पाप रहीवार किया।

रामप्रकाश मिम मदन की बिर्गता पत्नी सख्स्वरी के रिडा है। के कृष्ण पोषिन् के अनन्य मिम भी के। जब प्राणकामियों ने सम साकर कानिन्दी और लक्ष्मी मंगा न बह पड़ी ठा मयोगबध रामप्रकाश के बाधमियों ने उनका बचाया। रामप्रकाश ने स्वल्प देर कि कृष्णपोषिन् रिखून अम में उनके बधध है के लारी सत्यति छोड़ कर मम्पानी हो गये है इमनिए रामप्रकाश इन अम में उनका कपी है। स्वल्प में मरस्वरी ने कहा कि पिछने अम में लक्ष्मी और बह लौत्रिने थी और मन्मनोहन उनक पनि है। रामप्रकाश के बाई मफ्तान नहीं थी म्योत्रिणियों के बहने से उन्हेंने लक्ष्मी को पोड न बिबा और उनका बिबाह मदन में कर लिया। मदन रीवार न का

परन्तु माता पिता की आज्ञा उसे माननी पड़ी। विवाह के बाद मेरे लुन गया कि राम प्रकाश की बत्तक पुत्री लक्ष्मी वास्तव में मदनमोहन की प्रेयसी लक्ष्मी^१ हो गई। पूर्वजन्म और स्वप्न एवं उद्योगिक व्यवसाय में सम्पूर्णमाह्वन भी इस विवाह में प्रमथ से।

उपन्यास का नायक मदनमोहन मण्धरिच घाजावारी वृद्धजन स्वस्म एवं सुन्दर है। प्रथम वर्णन में अन्तिम मिनन तक उपजा चरित्र उद्गम्य है। समाजजन लक्ष्मी के घर पहुँच कर मठाव ठाड़ी घाम लक्ष्मी की धावों में जँम गई थी परन्तु दोनों घोर इतना सरोच है कि पाठक नायक-नायिका के जीवन की मराहना करता है। मदन ने कानिन्दी की सहायता उधारता रहा ही थी। उसका प्रेम मानविक सम्बन्ध है बामना काय नहीं। बिगड़ में मन्निपान का मूखपान मदन के चरित्र का एक किम्वद्वत अङ्क है। इसके बाद उसके सामने एक विषय परिस्थिति था कई एक घोर एकनिष्ठ प्रेम की प्रमथ की हा चुका है। दूसरी घोर पिता की आज्ञा। यह सद्यः उसका चरित्र की घोर भी चमकाता है। 'मने अपनी इच्छा से यह विवाह नहीं किया है केवल पिता की आज्ञा का पालन किया है'। मरा हृदय किसी दूसरी के पास है। इसलिए जब इन क्षिप्ति में सिद्धम उस सुन्दरी के मैं किसी ना के मुह कभी भी नहीं देखूँगा^२। उपासककार ने इस मध्यम का एक अनीतिक सहाय की सहायता में सुमध्यमा है क्योंकि यदि विवाह-हिता लक्ष्मी काई घोर होनी तो प्रथमी लक्ष्मी के लिए पत्नी लक्ष्मी की दुकराना मदन के चरित्र का रोप माना जाता। अस्तु, विद्यमान कथानक में नायक का चरित्र उद्गम्य है। प्रथम उपन्यास में अन्तिम इस उपन्यास में नायक के चरित्र का कथा के सान-साव कुछ विधान भी होता है।

लक्ष्मी उपन्यास की नायिका है। उसमें कम-धीन और रूप-सौन्दर्य दोनों का सुन्दर योग है। वैवाकरण एवं शारीरिक परन्तु धनापेक्षी पिता की यह पुत्री धादि से अन्त तक मार्गीय बालिका है। इसका प्रेम पूर्ण-अर्थ का संस्कार-मात्र है। बादल उसको छेड़ने के लिए छोटे मारता और पवन उसकी साँसें सरकाता था^३ परन्तु किसी अनुप्य में उससे कभी साव नहीं मिलाई। पूरा जन्म के पति मदनमोहन को पाकर उसका हृदय मचला परन्तु बीच में उनके मन की बाध सिधा। जब दोनों ने विवाह का निश्चय किया तो माता लक्ष्मी बाधता पत्नी बन गई। मदन को सम्मिलित हुआ तो लक्ष्मी

१. किम्वद्वत के 'अन्तिम' उपन्यास में विनयत नायक अनेक और नायिका एक दूसरे से परस्पर और अनुप्य के रूप में मिलने हैं परन्तु संयोगवश वे बत्ति-कनी ही मिलने हैं। इसके लिए रोच इस उपन्यास में अपनी प्रकृति की भी उत्तर ली (प्रेयसी से मिलने) समझकर नायक वर की ओर चला नहीं जाता—अन्ती मिश्रिता की भी परस्पर मानता है क्योंकि कल्पि कहने पिता की आज्ञा से विवाह कर निज परन्तु उसमें ही प्रेयसी को ही अपनी लक्ष्मी पत्नी मान रहा है।

२. पृ. १०४

३. पृ. १०६

४. पृ. २

उमकी सेवा को ग्रन्थुन हुई। परन्तु ह्वाश होकर उमने मया को घातममममन किया महु घातमह्वाश का प्रमन उमके मन के संवर्ष का कम है—महम स प्रम धीर ममाश स सकोष दोनों की गुणो न मुनम सकी कयोकि मरमी भारतीय महिला है। सयोप न सन्मी के भाग्य को पलट दिया धीर उसके प्रम एवं दीप्त होना की रला हो सकी। मरमी के बलि का भी इस उपन्यास में बिकास हुआ है।

मुकर कहा धीर इन दो पावों के अतिरिक्त किसी को उपन्यास में कोई विशेष स्थान नहीं मिला। अथ-नायक रामचरण पाडे संवर्ष को तुल देकर—मरन को समि पाप-अन धीर सन्मी का समाश क हान में पटक कर—मर जाता है। मरमी के गग में कुरुने से बिबाह तक की कथा में सामाजिक बन्ना कम है। अथोकि स्थान यो तिय धीर पूषनम के हाथ मयोग ही नरप को मुनमता है। बिबाह के बाद का कथानक कथा को पूष करने क विप ही बडाया गया है। मानवी-मुषावकम्य हवामन-जवाहिर के मुष का बर्षन अनावक है। हवामा का जवाहिर के साथ बिबाह से पूर्व ही मिल जुन कर क्रीडा करना पाठक को लगता है। मरन-मरमी बिबाह से पूष जिनने सयत मन में मिलने है वह उनकी विरोधता सनी मारी जाएगी जब कोई दूसरे प्रमी (हवामा जवाहिर) उस सता में सयत न रह सकें—बहु दृष्टि नायक-नायिका को उगल के साथ-साथ उपनायक उपनायिका को भीके भी तो मिलाती है। मकर गुरुप के मुष को सामाजिक मुष की कमी मानना है धीर गृहम का मुष पनि रनी की पार स्परिक दृष्टि है—मानसिक भी धीर शारीरिक भी। इसीलिए उसकी सब नायिकाएँ मुनवती होत क माव अमिम्य मुनरी भी हैं। अरिषवती को कुकपा धीर मुनरी को कुकपा बनाकर तो उनकी मुनता नहीं हो सकनी विरोधता तो यह कि मुनरी इत हूए भी नायिका पुनत होसकनी हो। अत नायक-नायिका का सयोप-मुष पेशि काम की परंपरा के अतिरिक्त मकर के दृष्टिकोण क सिंग भी आबकम बन गया है।

यह उपन्यास परिच्छेदों में विभक्त है। प्रत्येक परिच्छेद सम्मृत क उतरव से सुरमिन है। माया मस्कृत-मिप धीर साहित्यिक है। बसापचन की अपेक्षा बर्षन अधिक मात्रा में है। प्रारम्भ करते हुए ही नायिका का तना मुकर बर्षन है कि पाठक कथा को मूल जाना है। १०८१ पर बममाया की एक कविता भी रन की है। गृंगार का इन उपमास में मुकर एवं साहित्यिक मायावेग है। मयोग गृंगार में एक सई तीर भी आ गया है। मरन मौमाई या मरहम-मनोऊ के परिहास कुछ साहित्यिक नहीं रहे। १६वें परिच्छेद को 'होपी बीरव देकर सेकक उमका मममन करन लप पया है 'मह होमी कुछ गई नहीं बलि जब म मृष्टि है तब से होमी भी है धीर यह होमी बेशमुकन पर्व है। इसका बर्षन मुह-मूर्खों में है। —हमारे यहाँ उत्पत्तों की बहुतायत है धीर उनमें एक भी उत्पत्त मुहरम की तरह धोक का मुषक या उरारक नहीं है। 'येर है कि भावकल के मय्यामिमानी अब मास भर म कबल एक दिन भी रंग न इनका एने पिबकाटी न मरबाएये धीर न मरबाएये धीर मुषाव न मरबाएये' 'ओ होपी रममावत परम बलि है। उमे भावकल के मय मय्य अविज रहने है धीर अपनी

मनमाजी 'पवित्रहोमी' की बहमत्त कच्चे 'गिफ्तमंग' होने का गर्व दिखलाते हैं। यह भीष्म धर्मधर्माजियों पर है।

विवाह के बाद जब सबकी अपने प्रियजन से मिली तो उसने उसको बहू नानीया दिया जिस पर महनमोहन का नाम सुधा हुआ था और जो एक दिन हड़बड़ाहट में सखी के घर महन की घबूटी से गिर गया था। इसी नानीने की सखी न धरने जीवन की धर्मस्य सम्पत्ति समझा और मानो धर्मिजन के रूप में प्रथम मिलन पर महन को दिया। इसी बहना के आधार पर उपन्यास का नाम 'घबूटी का नानीया' रखा गया है, जो अनुपयुक्त नहीं समझता।

लज्जाराम शर्मा के उपन्यास

बिगड़े का सुधार

मेहता प लज्जाराम शर्मा ने 'भूत रतिक नाम (सन् १८८१) 'स्वतन्त्र रमा और पण्डित लक्ष्मी' (सन् १८८६) और 'पार्वती रम्यति' (सन् १९४६) उपन्यासों के बाद 'बिगड़े का सुधार' प्रकाश 'सती भुक्तदेवी' उपन्यास लिखा। यह सब १९६४ (सन् १९०७) में बम्बई से प्रकाशित हुआ था। 'पार्वती रम्यति' उपन्यास में तो पति पत्नी एक-दूसरे को प्रीति प्रेम करते हैं परन्तु इस इति में पति उच्छ्वस होने के कारण पत्नी पर अनेक अत्याचार करता है। फिर भी सती सुप्रदेवी अपना बर्न नहीं छोड़ती और सेवा हाथ अपने कुमाँरी पति को सुधार भेती है। यही इस उपन्यास की पूर्व-रचना से विशेषता है। उपन्यास के मुख्य पात्र पर कथानक की कड़ी एक वाक्य में संक्षिप्त है। एक पुत्रपाटी पति सती पत्नी के सतीत्व से सहायायी बन गया। भुक्तिका में मेहता जी ने कात्यायनसिंह काव्य का एक नया उपयोग माना है। 'ऐसी रक्षा में जो जितान के समय मनुष्य को मनीषिनोद के साथ-साथ धिक्का देना भी आवश्यक है। इसी प्रयोजन को छिड़ करने के लिए काव्यों की रचना हुई है और इसीलिए वे कात्यायनसिंह काव्य कहलाते हैं। उस समय रोचकता उपन्यास की कसौटी थी जिसके लिए लेखक ऐसी ही तिलस्मि भावि की योजना किया करते थे। प्रस्तुत लेखक ने उन लेखकों को चुनौती देते हुए सामाजिक उपकार अपनी रचना का लक्ष्य ठहराया है। वे 'भुक्तिका' में लिखते हैं। जिन सुलेखकों को अपने ज्ञानार्थों की रोचकता का अधिक गर्व है वे यदि ऐसी ही तिलस्मि और आत्मी रचना के साथ-साथ इस ओर धन पड़ें तो हिन्दू समाज का अधिक उपकार कर सकते हैं।

'बिगड़े का सुधार' १६ पृष्ठ का छोटा-सा उपन्यास है। इसमें इस प्रकार है। प्रत्येक का धीर्यक उमक भीतर वर्णित वस्तु का सार है। प्रथम प्रकरण बाबू की नास्तिकता है और अन्तिम 'ईश्वर आस्था' जिससे यह स्पष्ट है कि इस रचना में एक बाबू की नास्तिक से धारणावान् बनने तक की कहानी है। मनमाजी बाबू एम ९०

पास से धीरे से गई मर्यादा के परम भय। उनकी पत्नी मुन्नादेवी घमिलानि की परन्तु
उसमें धायमहिमा क सब पुन है। बनमाजी को 'परम था—माया धमरेजी भोजन
धमरेजी भाव धमरेजी धीरे भेज धमरेजी। मुन्नादेवी उनको निरकल पमग न थी
'उनका जलता हुआ कनका मूरी धाँधों की गोरी मेम बिना ठंडा नहा हो मकना' था।
एक बार 'होलेन की एक मीकरीनी से बाबू साहब की धाँध नय गई' निरकल हुआ
कि मशाम जाकर उसम बिबाह करे ऐसा ही हुआ धीरे बनमाजी सब 'पोरेस्ट पाइनर'
बन गय। मन्नादेवी सब महती रही परन्तु उनक निष्ठा यह महम न कर सके। वे जाय में
उस मम के घर पहुँचे धीरे उन्होंने माँही मे बनमाजी पर प्रहार किया। मन्नादेवी बीच
में घा गई। जब मेम को यह बात हुआ कि बनमाजी ने पहुँची पत्नी को छाड़ दिया है
तो वह बनमाजी मे बोला 'तूने दूय ने इस पर जुम्व किया है तूने ही मुझ पर भी
किमी दिन कगेने साधो मेरे इकरार क दम हजार गय बन में बनी जाऊँगी'। इन
बटनाथों म बनमाजी की धाँधें खुली 'तू म्त्रिया की गनी है। मेने मन मे परदेसीवन
का जा भूत पुन गया बा वह निरकल गया—मुझे कुछ क हृदय में ऐसा उत्तम बिचार
केवल प्यारी क पुण्य म ही उरज्य हुआ है'।

कथानक में कोई कला नहीं केवल सामान्य बटना का चमत्कार है। यह बटना
उप पुन में घटि सामान्य चकसय थी धीरे समाज के सामन सबन बड़ी समस्या बनी
हुई थी। नायक बनने बय का प्रतिनिधि है। नायिकाएँ हो हैं धीरे दोनों धपने-धपने
बन का प्रतिनिधित्व करती हैं। मुन्नादेवी मनातन हिन्दू समाज की सामान्य परन्तु
दखन महिमा है वह पनि की धटवारे तक अनुस्मिति में उनके चित्त को जोग लगाने
कर स्वयं जम ग्रहण करती है। बच्य उनके तिन तरस्या है या उसक पूर्व बनों का
भोग है। मेम का लखक में नाम नहीं मिला वह होटल में काम करती है परन्तु है तो
कमर में कमर मिला कर नाचने वाली' गापी बचकरी की। उसम बन इकट्ठा किया
धीरे बनमाजी को बला बताया। भारतीय नागी धीरे धमारेतीय नागे की तुमना
करके लखक इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि प्रतिप्रापा पत्नी बड़े बीमार्ग का छन
है यह केवल भारतीय संस्मृति में प्राप्य है, धमरेजी नहीं। नागे धरानो मेवा के बम पर
ही धपने प्रतिपन्न पति को भी अनुकूल बना मकती है। शुद्ध स्व जीवन को वह एकमात्र
बोमन करी है।

धर्मा जी ने बड़ी महत्त्वपुन समस्या उठाई है। धात्र तक हिन्दू शुद्ध स्व का सब
से बड़ा घमिगाय यही है कि पति धायुनिष्ठ मिष्टा से परिपुन हो धीरे पत्नी उसे
भोनी भानी एवं मरस मिने। पनि को बाहरी बमन-दमक धमिक प्रभावित करेगी
धीरे वह धपनी पत्नी का बाहर तो दूर रहा उनका मूख्य भी बम धमिन करेगा।
कमज पनि-पत्नी का पारस्परिक धमलोप शुद्ध स्व की नीव को लाजना कर देगा। पनि
इन बात को नहीं मोचता कि जो रही भाव धमिमा बाम-ब्यवहार में दम धादयियों के

मन को मोह लेती है उसका उपयोग उतना ही है पत्नी में जिस सुखों की आवश्यकता है वे उस पुष्ट बालक धीरे-धीरे मंही मिलते। मरक कर सुखाव यह है कि स्त्री घर में सुखों से पति को मिलाव बना कर उसे सत्य पर लावे। इन परिस्थितियों में इनसे बच कर धीरे-धीरे सुखाव तो ही नहीं रहता। उस सुख में सबलता का कारण सीता सावित्री समझनी धीरे-धीरे मायावी के चारों प्रत्यक्ष चारों महिमा के सामने है।

मेलाक का दृष्टिकोण सनातनी है इसलिए समय नहीं आधुनिक का स्वागत नहीं किया। वह निश्चय है कि जिस दुष्ट में पति से पत्नी धीरे-धीरे पति सम्पुष्ट रहे वे बड़ा सुखदा सत्यान की बर्ण होयी। परन्तु केवल योगदान धीरे-धीरे सनातनी ही तो पत्नी के लिए काफी नहीं है उसे मिलित भी होना चाहिए धीरे-धीरे सुखों में किसी भी नारी से कम न रहना चाहिए। मेलाक ने कही भी स्त्री-धिया का महत्त्व प्रतिपादित नहीं किया। पति में सुख होने पर घर में आनंद तो सुखधाम से होता है परन्तु क्या पाठसामा की कही नहीं नहीं है। वस्तुतः इसी एकान्ती दृष्टिकोण के कारण वह पुरानी समस्या आज तक नहीं बनी हुई है। उस समय के सनातनी मेलाक स्त्री धिया के पक्षपाती नहीं थे उनका ध्येय था कि धिया से स्त्री स्वतंत्र हो जाती है धीरे-धीरे स्वतंत्र होकर विवश होती है।

धिया की दृष्टि से वह उपन्यास समीपवर्ती है। इसकी भाषा सरल सहज एवं आसानी एक ही है। पद्य की योजना या बाहरी उद्देश्य इस रचना में नहीं। वर्णन धीरे-धीरे कथोपकथन सम्पुष्ट है। मेलाक स्वयं उपस्थित होकर पाठकों से बातें करना आवश्यक नहीं समझता। वर्णन-विषय की दृष्टि से कथानक छोटा होता हुआ भी रोचक तथा सफल है।

आदर्श हिन्दू

मेलाक मन्मोहन शर्मा ने सन् १९१४ में 'आदर्श हिन्दू' नाम का उपन्यास तीन भागों में लिखा। पहले भाग में २१ प्रकरण धीरे-धीरे २४२ पृष्ठ हैं दूसरे में चित्रा तीस प्रकरण धीरे-धीरे की विलासीय पृष्ठ एवं तीसरे भाग में सप्तम प्रकरण धीरे-धीरे की विलासीय पृष्ठ। इस नवीन उपन्यास में मेलाक ने 'तीर्थयात्रा' के शब्द से एक आधुनिक रूप में सनातनी धर्म का दिग्दर्शन हिन्दू धर्म का नवीन आदर्श की प्रतिष्ठा राज मन्त्रि का स्वरूप परमेश्वर की मन्त्रि का आदर्श धीरे-धीरे अपने विचारों की बातचीत प्रकाशित करने का प्रयत्न किया है। मेलाक महोदय की 'जयदीधुरी की भाषा का आलोचक आनन्द आनन्द हुमा का' उसी भाषा के अनुभव से इस रचना का बीजारोपण हुआ है। 'भूमिका' में मेलाक ने मुखपूर्वक तीर्थयात्रा का शब्द प्रयुक्त सरकार को दिया है न लिखते हैं 'हम भारतवासियों को जितने धर्ममैत्र की उत्तर छाया में निवास करके हवाई बर्णों के समस्त साहित्य-सुख के सुखे अनुभव करने का हीमाय प्राप्त हुआ है।

१ प्रकरण—नायकी मन्मोहिनी सदा करी।

२ भूमिका।

'आदस हिन्दू' उत्पत्ति की कथावस्तु सामान्य है। १० प्रियानाय इसके नायक और प्रियवरा उनकी आदर्श वधवत्सा है। कान्तानाय नायक का अनुभू है। त्रिमकी पत्नी मुन्ना आदर्श पत्नी नहीं है। आदस दम्पति का जीवन तीव्र-माया प्राप्त सत्कर्मों में बीतता है। यद्यपि उस पर कष्ट भी आते हैं जिनकी वह दम्पति ईश्वर की आज्ञा समझ कर सहन करता है। इसके विपरीत मुन्ना धनी कुटुम्बा का कारण बर के लिए मुन्ना सिद्ध हुई। एक सहनी के सहकार में आकर वह बैठ-बैठानी में कबहु करती है, छोटी-छोटी बातों पर पति से लड़ती है। उसका मन मान में सुख मया व्यभिचार की ओर बहु प्रवृत्त होने लगी। धन में मुन्ना में भी मुन्ना हो जाता है। इस प्रकार आदस दम्पति के पुत्र से उनका परिवार आदस बन जाता है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह उत्पत्ति महत्त्वपूर्ण नहीं है। आदर्श-वधवत्सा तो मानो सद्गुरुओं की प्रतिमा हैं, किसी परिवर्तन का क्या व्यवसाय नहीं है। मुन्ना का जीवन धनसम्वन्ध आदस करता है। माया का दुःख ही दुःख में पड़कर एक लौनी बेगी भाव बन गई थी। मुन्ना की कुम्भमति में वह पशु ही बनूरी करेनी और फिर नीम बनूरी बनी। उसकी दुष्टा सहनी ने उसको कुम्भम पशुका वह पति से सम्मुख है और परिवार से भी। धन में वह आत्महत्या करना चाहती है परन्तु ठीक धनधर पर उसे रोक दिया जाता है। इस प्रकार कुम्भम और कुम्भमति के कारण कल-वध भी किसी पति हो सकती है—यह मुन्ना के जीवन में दृष्टिमान होता है। मुन्ना में पुत्र के विनाश-मुन्ना का कोई चित्र नहीं। लौनी पुत्र से समाज पर उतना कमला नहीं पड़ता जितना लौ से कागज की लुब्ध का जेवर है और पुत्रवत् जीवन सामाजिक जीवन की दुरी है इसलिये 'भू' आदर्शियों ने दुरी दीखे हजार बने हुए हैं^{१२}।

नायक चरित्र त्रिनाथ की आदर्श हिन्दू चित्रण करके 'सनातन धर्म की उत्पत्ति और सामाजिक दुर्दशा का मुन्ना करने के विषय में इनके जो कथन हैं वे इस उत्पत्ति में समय-समय पर स्थान-स्थान में वाच-व्यप पर व्यक्त किसे पड़े हैं^{१३} इन दृष्टि से यह उत्पत्ति आलोचना-युग का मनन प्रतिनिधि उत्पत्ति है। लेखक ने बालम सम्प्रदाय की प्रशंसा की है। जिनकी बारीकी सम्मम-मध्यमाय से देखी उनकी दृष्टि में नहीं। वास्तव में यह सौकीन है। इसमें जिनने भीतर चुपने आदस जना ही महत्त्व-पन है^{१४}। उन दिनों आदर्शमात्र और सनातन धर्म का तारिख विरोध इस बात का कि वेद को अतीत-काल के पुत्र की 'आपनमात्र केवल मन्त्र-मात्र को धर्मीय मानता था—परन्तु सनातन धर्म मात्र माय के माय-माय कायाय भाव का भी। लेखक ने भी पदमा मठ इसी पत्र में समीक्षण किया है। यह और कायाय दोनों भाव धर्मीय

है ईश्वर निमित्त है^१। हिन्दू समाज में त्रितयी कुम्भवाण प्रचलित है उसका समर्पण उक्त साहित्य से होता है जो वेद का संघ न होकर धार्मिक भाषा का है। सुधारवादिनों का अनुमान है कि उक्त साहित्य की रचना सामाजिक व्यवस्था के व्यवहार पर हुई थी इसलिए उसे प्रमाण नहीं माना जा सकता। स्वामी स्वामन्द इसी विचार के प्रचारक थे। मेहता जी ने स्वामी स्वामन्द का नाम लेकर उनके मत का लक्षण^२ दिया है। वे धर्म समग्रनिष्ठा के समान संस्कृत में मिले गये प्रत्येक वाक्य को धर्म-सूत्र मानते हैं।

साधु प्रथा पर सर्वप्रथम ध्यान आता है। महाशय स्वामिभिर्गौरवार्थं 'काशी वाचा' उपन्यास^३ में भाष्य के वाचा विवरण के नीचे मुख्य भाष्य में धार्मिक या सेने से ही हो गई थी, परन्तु हम उपन्यास का नावट प्रामाण्य धातुविषयक धारणा में अपने प्रतिहिन्दी को परिचित करके एक महत्त्व मुद्रा पुरस्कार में उत्पन्न करता है यह उसके जीवन का सबसे बड़ा धर्म्यकर्म है। धातु मुक्ति-प्रमाणा न वेदादि ग्रन्थ के मत से सिद्ध हो सका। नाटिक के अनुसार एक द्वार बना पठित प्रामाण्य को दिना दिया जाने^४। हम धारणा का विस्तृत बचन धीरे-धीरे के अस्तित्व वा यह उन्नत मुद्रा होने से हम समझ सकते हैं कि मेवक की दृष्टि में धातु वा कितना धार्मिक महत्त्व है। धर्म का दूसरा धर्म जन्म से जानि को स्वीकार करना है। धर्मसमाज यह मानता है कि जाति धीरे धर्म 'धर्म धर्म-स्वभाव' पर निर्भर है जन्म से न कोई ब्राह्मण है और न सूद्र इसलिए धर्म एवं व्यवहार के अनुसार ही जाति बनती है। समाज में इसका विरोध करके जाति का निर्धन जन्म पर छोड़ता है जो ब्राह्मण के घर उत्पन्न हुआ है वह ब्राह्मण है उसे ही उनका स्वभाव सभी या वैश्य के समान हो। पं० लज्जामास ने जन्मत जाति मानने के लिए कहा हास्वास्वार्थ तर्क दिया है कि कोई व्यक्ति ब्राह्मण के घर उत्पन्न हो क्यों हुआ इसीलिए न कि भगवान् उनको ब्राह्मण बनाना चाहते हैं 'जब आप पुनर्जन्म मानते हैं पुनर्जन्म के धर्म-धर्म फल से उन्नत और नीच जाति में जन्म ग्रहण करना मानते हैं तब आप कैसे इसे नहीं मान सकते^५। इसी प्रकार का एक हीतरा प्रश्न व्यवहारवादी है। धर्मसमाज गणकल्प आदि को महापुरुष मानता है। भगवान् का व्यवहार नहीं धीरे कल्प के सम्बन्ध में रासायनिक सीमाओं को धर्म का परिहास समझता है। समाजगी सम्प्रदायों ने सीमाओं के धार्मिक धर्म किये हैं वे कल्प को सीमा कलाओं का व्यवहार मानते हैं क्योंकि उनसे जीवन-सुख की पूर्णता है। मेहता जी ने परम्पराओं के साथ कल्प की सीमा का तात्त्विक सम्बन्ध किया है 'व्यभिचार एक पर-स्त्री का दूसरे पर-पुरुष के सम्पर्क से बँधा होता है किन्तु महा धीकृष्ण व्यभिचारे उनके परमगति थे'^६।

तीर्थयात्रा इस उपन्यास की प्रेरणा भी रही है धीरे इसका धर्म विषय भी।

१ दूसरा भाग पृ २१५

२ पृ १५५-६

३ बरी, पृ २४६

४ बरी, पृ २१२

५ दूसरा भाग पृ २२५

६ प्रथम भाग पृ २४६

लेखक तीर्थयात्रा को आवश्यक समझता है। परन्तु उसमें होने वाले व्यापारों से वह अपरिचित नहीं। उपद्रवों की मायिका प्रियव्रता की तीर्थयात्रा में आ पुत्रों का है वह घातकवर्षी है। मुझे कमजोर से प्रियव्रता की गठरी बांध कर फिर पर जाते हुए यह सब कहते हैं। और पवित्र भी के ऊपर से देखते देखते मायब हो गये।^१ किसी की जेब कटती है किसी का सामान चोरी हो जाता है, स्त्रियों की नाक और कान की बानिया बांध कर खून टपकाने हुए गृहे लोग साक निकल जाते हैं। किन्तु—‘हम सब तीर्थों का शोध नहीं है मंदिर के ही हैं शेष के ही हैं और धाम के ही हैं किन्तु उस समय के स मनुष्य नहीं हैं।’^२ इन्हीं कारणों से व्यापक वृद्ध की भी तीर्थयात्रा नहीं रही। हिन्दू धर्म में जो शोध आ गये हैं वे धर्मविचारियों के कारण हैं। ‘इन्हीं मूल्यों की बलीवत् हिन्दू धर्म सत् प्रष्ट हुआ आ रहा है।’^३ परन्तु लेखक ने मुबार की कोई योजना नहीं बनाई वह बलि कास को दोष देकर जानो निरपेक्ष दुष्ट बन गया है।

धार्मिक समस्याओं का तीव्रता से व्यावहारिक प्रश्नों से सम्बन्ध रहना है। लेखक ने बहुत संक्षेप में सम्मिश्रित कटुता का समर्थन किया है परन्तु इसका प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं समझी। उस काम में यह समस्या ठठ ही रही है। हमने कोई निश्चित रूप ग्रहण न किया था। धार्मिक दृष्टि सम्मिश्रित कटुता के पक्षपाती है परन्तु कक्षा मुक्तता जेठ-जेठानी में धमक रहना चाहती है। संप्रदाय का प्रसीध मुक्तता की इच्छा नहीं म की आ मकनी। एक बार उसने स्पष्ट पक्ष में सम्मिश्रित कटुता का सचपन भी किया है। आवश्यकता के लिये बाह्य समुक्त कटुता की बात को नागमन करे परन्तु जब तक बूढ़ बाबा के दम से दम रहा माग पर उनकी यात्रा के प्रतीक मुक्त रहें।^४

हमारा प्रश्न वैज्ञानिक है। जिसके धर्मपत्र लेखक के धर्मवर्णीय विवाह बाध विवाह और विवाह विवाह पर विचार किया है। धर्मवर्णीय विवाह को बचा एक सामान्य पात्र (स्त्री) के सम्बन्ध में की गई है आ धर्मपत्र में के कर बली धार्मिक और विमर्श धर्म में बुद्धि हुई। लेखक ने उनकी बुराई पर विचार करन हुए सन्ताप की सांस की है। दोनों की भावि भी एक न थी^५। धर्ममन्त्र बाध-विवाह का विरोधी था उनका मत है कि जब तक घर और कन्या विवाह का उत्तरदायित्व न समझे तब तक उनका विवाह कर देना उनके लिए अधिकतर है। मजाननी साथ ‘अपवर्णन संवेदनी’ की नववर्षा के ‘रोहिणी’ की सूच करन के। इस उपद्रवों के लेखक ने यह तक किया है कि धर्म में तो किपाओं का विवाह ही है परन्तु हमारे देश में धर्मों का ही विवाह देवतासामुक्त है। ‘उनके पक्षों बलीवत् का धर्ममन्त्र जिस नववर्षा होता है उस समय हमारे देश की किपा धर्म-धारक बलीवत् की माया हो जाती है। हमारे देश के विवाह में धर्म

१. दूसरा भाग पृ० १६

२. पृ० १००

३. प्रस्ताव पृ० १०

४. प्रस्ताव पृ० १००

५. पृ० १००

६. पृ० १००

वासन की आज्ञा से हिन्दू नास्तिक का विवाह रजस्वला होने से पूर्व ही जाना चाहिए' । लेनक का मत है कि विवाह हो जाने से बाब स्त्री को बह मान ला कि विवाह क्या होता है प्रेम का अनुभव करने योग्य होने से पूर्व उनके प्रेम का निश्चित पात्र प्रस्तुत रहना चाहिए 'उनका प्रेम धीरे-धीरे हमारा परिणम है उनके सह्य प्रभव पहले धीरे-धीरे बहुत प्रेम पीछे होता है । बिबका विवाह का लच्छन रागपुत्र है । लेनक बिबका-विवाह को शर्मिष्ठा के समकक्ष समझते हैं और उनको तलाक के लगाने की दोषपूर्ण सिद्ध करते हैं 'बह विवाह नहीं है । समस्त न ना शर्मिष्ठा है जो हिन्दू-समाज में बिबका विवाह समस्त तलाक का प्रचार करना चाहते हैं' । यह सामाजिक चर्चा है फिर भी लेनक का तर्क निराकार उनके रोप का प्रत्येक मास है । बिबका विवाह को तलाक के साथ रखना ही समत है दोनों समस्त समस्त परिस्थितियों के प्रत्येक हैं एक में अकालकर्मित पति के बिना किसी घराने के जीवन का प्रत्येक है दूसरे में पति-पत्नी की अनवकाश का हान है जो लोग बिबका-विवाह के पक्षपाती हैं वे तलाक के भी समर्थक हैं यह सामाजिक नहीं । और बिबका-विवाह शर्मिष्ठा क्यों है ? अब पत्नी की मृत्यु के बाद प्रीति पति दूसरा विवाह कर सकता है तो किसी भी बिबका को यह अधिकार क्या न प्राप्त हो । वास्तव में समाजतन्त्र में समस्त शर्मन स्त्री के लिए स्वीकार किये हैं पुरुष पर कोई बन्धन नहीं बह ठाँ बर्मे का शास्त्र है—यह शर्मन धामन द्वारा गायी की शर्मपत्र पर रखेना स्वयं चाहें बिबका पतिव्रत रहे । मेहता जी का यह उपन्यास नास्तिक समस्याओं की दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण है जिसकी समस्याएं इसमें हैं उतनी धर्म उपन्यासों में नहीं ।

उपन्यास कला की दृष्टि से आदर्श हिन्दू उपन्यास का विशेष महत्त्व नहीं है, परन्तु समाजातीन नास्तिक जीवन का जैसा अन्तःसम्यक् विस्तृत वर्णन इस उपन्यास में है जैसा हिन्दी के किसी उपन्यास में नहीं । यदि इसको 'उपन्यास' न कह कर सामाजिक विवरण कहा जाय तो अनुचित न होगा । सभी मुख्य लीख इसके अन्तर्गत में था बसे हैं और लयबद्ध सभी नास्तिक प्रश्नों का तलाक में अपने दृष्टिकोण से उत्तर दिया है । नास्तिक जिज्ञासा या किस्मिन्-मिन् के बिना यह उपन्यास मनोरञ्जन नहीं कर सकता । जिसकी गहराई से व्याख्यान चाहि पर बिचार किया गया है उतनी सामान्य पाठक को अभीष्ट नहीं । नास्तिक दृष्टि भी रहेना जी की नीतिवत् है । समाज समस्या उठाई ही नहीं गई, पठित स्त्री-पुरुषों की शुद्धि का प्रश्न भी नहीं है । नीतियों के दोषों का निवारण किस प्रकार हो यह लेखक ने नहीं बताया । अन्ती जिज्ञा की कोई कानूनी प्रस्तुत नहीं की गई । मुसलमानों और ईसाइयों के मोर्चे का लेखक ने कोई हल नहीं दिखाया । इस प्रकार लेखक की दृष्टि में आदर्शसमाज की सुधारपरविता से समाजतन्त्र शर्म को बचाना ही नास्तिक पुनर्वास है । लेखकने काफी एक बात और है कि मन् १९१४ में कोई भी लेनक बिबकी घातन की उतनी प्रशंसा नहीं करे । ऐसा प्रतीत होता है कि अजिबाल वाला बाग काण्ड (मन् १९१८) से पूर्व परतन्त्रता की बैबिका समाज-सुधारका को कथकती नहीं थी ।

पुस्तक की भाषा मम्मीर, सरम परम्पु तत्सम शब्दों से युक्त है। कही-कही पात्रानुक्रम भाषा का प्रयोग है। कन्दर बीरे का हास्यमयता की विविष्ट भाषा क बिना उठना सफल न हो पाता। तीनों की उम्र जिस भाषा में बोलते हैं उसमें शास्त्राच नहीं। बेबर ने स्वामी इवानोव का नाम देकर ऐतिहासिक रंग भरने का प्रयत्न किया है। बीच-बीच में सतृप्त और हिम्मी के व्यक्तिभावपूर्ण वचन सुखद्विपर्य है। इस उपन्यास में कथोपकथन बहुत कम है, विवरण भाषा में धरातलिक। कथा कहने-कहते सबक पाठकों से भी बात करने लगता है परम्पु धार्मिकता नहीं ब्या पाती। रचना का उद्देश्य समाजगत वर्गों को एक-दूसरे और इतर की दुःख दिखाना है।

प्रस्तुत उपन्यास के दौरान भाषा में सबक ने रैनाल्ड तथा रैनाल्ड से प्रभावित साहित्य का समाज विरोधकारी भाव-भाव के लिए वातक मानकर स्वच्छ एवं स्वस्थ उपन्यास पढ़ने और लिखने की अपील की है। 'पापस दम्पति' 'हिन्दू पृथ्वी' 'दिये का सुधार' 'विपत्ति की कमीटी' 'स्वतन्त्र रमा' और परलोक मन्त्री आदि अनेक नाम आगमों मिलें। रैनाल्ड के भावकों को फँक दीजिए, वे आपके चरित्र को विपादने बाल हैं। 'हिन्दी के किनारे मुनेबक महादय विटोस्टिक कहानियाँ लिखने और प्रशुवाद करने के साथ यदि पंडित बीनबन्धु जैसे लम्बे व डेरका के का किमो उपन्यास में चरित्र प्रस्तुत करें तो अधिक उपयोगी हो सकता है। सबक की वही प्रार्थना है।

गंगाप्रसाद गुप्त के उपन्यास

लक्ष्मीदेवी

बाबू गंगाप्रसाद गुप्त ने 'पृथ्वी मित्रों' पुरवों सुवर्तिता और मुद्रका के पढ़ने सोच 'एक बहुत रोचक और शिक्षाप्रद उपन्यास' लक्ष्मीदेवी' लिखा। यह इन परिच्छेद और जीवन पद्धति की एक छोटी-सी पुस्तक है। 'लक्ष्मीदेवी' उपन्यास हमारे सामान्य ज्ञान में दूसरी बार आने लगा था। इस मुख्य पर अनुसन्ध प्रकट नहीं है परम्पु 'गंगाप्रसाद' वैदिक पुस्तकालय दिल्ली की १८ व २२ की मुद्रा लगी हुई है जिसमें यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह उपन्यास 'दूसरी बार' सन् १९२० ई० तक छप गया होगा।

कापी के बाबू गंगाप्रसाद गुप्त के नाम उनही समाज सेवकों पुष्टियों स्थापना और लक्ष्मी देवी के नाम से-सी रूपों की केवल सरकार की ओर से निदत्त हो गई। सोना का इनामाका के मर्से स्कूल में डाकरी पढ़ने के लिए भेज दिया गया। पढ़ने समय इसका पर विमायली स्वभावता का प्रभाव पड़ गया और वह बिचकनी लगी गई। उक्त मोनीलाल नामक व्यक्ति से विवाह कर लिया। परम्पु लक्ष्मीदेवी में मन भर जाने के कारण प्रसन्न हो गई। तब वह विरहव्रतनाम नामक काशीरी मुद्रक की पत्नी

१ दीप्ता मान ५ २०

२ लक्ष्मी ५ २२५

३ भूगर्भ प्रथम उपन्यास लक्ष्मीदेवी-समाचार अंतराष्ट्रीय भारतकी 'लक्ष्मी-लक्ष्मी' और 'दिली-लक्ष्मी'।

४ इच्छातः बाबू विरहव्रतनाम नामक काशीरी मुद्रक की पत्नी।

बनकर रहने लगी। कुछ दिनों बाद उसने एक बगानी बाहु में प्रेम कर लिया। त्रिमने विश्वम्भर से उसको लूब पीटा। फिर ब्यामा अपने सम्पत्तास के एक कसक के साथ ही कम नहीं लभ कोश में पाकर विश्वम्भर से वाप में उसकी नाक काट ली। ब्यामा को नीकरी बरबनरी के कारण छूट गई और वह बर-बर की मोहताज बन गई। उधर लक्ष्मीदेवी 'योग्य' भरल श्रीर नार्यकुसुम डाक्टर मित्र हुईं उसका विवाह जम्भुपुत्रमी मिनाकर अपनी जाति के बा भागवतप्रसाद के साथ हुआ। लक्ष्मीदेवी ने सुनो पृथ्वी बीरम बिनाते हुए चिकित्सा द्वारा कैम धीरे समाज की बड़ी सवा की और पड़ी मिली मुचतिया के सम्मुख उच्छ धावस रया।

इस उपन्यास का कथानक एक पञ्चायतक कहानी है जिसका उद्देश्य स्त्री स्वातन्त्र्य के होय दिखाना है। एक माना पिता की एक ही बर में पसी हुई रोना बहिनें वो समग मात्री पर बशी बनी—यह लम्बक ने नहीं बतवाया। 'ग' लु होना को वो संकृतिवो का प्रतिनिधि बनाकर उनके जीवन का तुलनात्मक सम्पन्न प्रस्तुत कर दिया है। किशोरीताल के लीलावती का धारण मनी" उपन्यास में भी बड़ी करेला है। परन्तु कलावती और लीलावती मनी बहिनें नहीं हैं। इसलिए उनके संस्कारों को उसके चरित्र के लिए उत्तरदायी माना जा सकता है। समाजवाद ब्यामा को नाक कटने और बरबनरी के कारण नीकरी छूटने पर उपन्यास से हटा देते हैं परन्तु निखोरीमान की कलावती का धर्म-धर्म गल जाला है और उसके शरीर से भी उसके चरित्र के समान ही दुमन्त्र निकलती है। इस लेखको ने पापिनी को बाग का बण्ड दिखवाया है ईश्वर की धीर से कोद और समाज की धीर से नाक कटना मानो ऐस धीरे पावक का बिहिन बण्ड है।

ब्यामा धीरे लक्ष्मी दो बगी का प्रतिनिधित्व करती हैं। लक्ष्मी का दृष्टि उनके केवल एक पुत्र पर है—स्वतन्त्रता जिस समय सामाजिक महिलाओं को परे से बाहर निकाल कर उनको सामाजिक सम्मान का अधिकारो सिद्ध कर रहा था उस समय पुराण रीतियों ने 'न नारी स्वातन्त्र्यमर्हति' का संस्कार प्रारम्भ कर दिया। वे सोचते थे कि नारी पर विश्वास किया ही नहीं जा सकता। यूरोप की नारी स्वतन्त्र है परन्तु भारत में स्वतन्त्रता से धन्यमान सीद्ध होगा। नारी धीरे बाधना को एक दूसरे का पर्याय मानने का धारणा बहुत ही संकीर्ण है। जिस समाज में नारी का जितना सम्मान होता उतना ही वह उच्छ माना जाएगा। पाबोन भारत में नारी की बड़ी महिमा की धनाधारी राजन सीता के मतीर से भस्म हो गया पाञ्चाली के प्रति दुर्बलहार करन बात कोरवी का सर्वनास हुआ लामिनी के लेख से धार्मिक मम उसके पति के प्राण न हुर सका। मध्ययुग में नारी पुरुष की दासी थी वह परे में रहकर भय से अनुयायित होती थी। लखोदर के साथ नारी का भी सम्मान बड़ा जिसको लक्ष्मी के लक्ष्मी सज्जन न कर सके। वस्तुतः नारी को पुरुष के समान ही पाकर कैम की मानना कुछ भारतीय है। बीरम स्त्री और पुरुष दोनों का समान हितत्व है वे एक-दूसरे के पूरक हैं उनमें लह

योमी की भावना होनी चाहिए, स्वामी धीर सेवक की नहीं। परे का धारण न केवल नारी की रीत ही है प्रत्युत उसके व्यक्तित्व का अपमान भी है। प्रत्युत ललक ने बड़ी कठोर मर्यादा निश्चित की है 'परे का यथाय मत्तलम तो यही है कि जहाँ तक सम्भव हो न तो मूलतः जिम्माई जाय धीर न भाषाई मुनाई जाय धीर इनी प्रकार मयामम्भव न परपुत्र्य का मुख देखा जाय न धार मुना जाय'।

परे के अनिश्चित लेखक ने सनातनी दृष्टि के श्रियो के विषय में कुछ हुमरो बार्गे पर भी प्रकाश डाला है। 'सहजियों की बीडरु वप की उम्र तक नवारी रचना' ही ललक को धार्तकित कर देता है 'जमाना बडा बराबर है सोय नया रहूँगे ?' विवाह प्रादि के लिए बरकम्पा की याम्यना मुकुरन जानि धीर सम्मकुम्बपी पर निमन है डा० सन्मीरेरी के विवाह के लिए सबसे पहले कङ्कपी ही विमाई जाती है। करिष के मम्भव में लेखक सवप्रथम महत्त्व 'कम-जाति' को देने हैं नरनम्बर 'देख धीर बर्म का महमो देशी के दाहों में अपन कुल जानि देख धीर बर्म के बिरड कोई काम' न करना चाहिए। यदि संयोगवश कोई व्यक्ति अष्ट हो जाय तो उसके प्रति घर-नामा का बडा कर्तव्य है—इसका उत्तर लेखक के दाहों में ही देखिए 'यदि धनुष्य का कोई दग किमी कारण से सह जाय तो जिस तरह उस दग को काट कर दूर कर देना प्रावश्यक होता है क्योंकि यदि ऐसा न किया जाय तो उसका संवर्ध व धीर दगों के भी सह जाने का बर हाठा है इनी प्रकार परिकार मर को बर्मनित करन बार्गे किमी महा दुश्करिष के दूर कर देने में भी जिसका किमी तरह मुबार या प्रावर्षित न हा सकता हो कोई हर्ष नहीं है'। यह कुछ मध्ययुगीन दृष्टि है जिसका विषयियों न बहुत अधिक दुस्वयोग दिया है।

संसाधनार गुप्त धीर किशोरीलाल गोस्वामी की समान समस्वायों की दृष्टि से गुनना करने पर गोस्वामी जी समय की पति को समझने बाल धीर उदार दिखाई पड़ते हैं। उन्होंने परे पर इस प्रकार का धीर नहीं दिया, प्रत्युत नायक नायिका को स्वतन्त्र होकर घरना जीवन-साथी ढोवने की अनुमति दी है। अथर्व ही स्त्री के लिए सतीत्व धर्मस्य युग है साथ ही सत्पुत्र के लिए सत्पत्नि भी उज्जना ही प्रावश्यक है। गोस्वामी जी न परोक्ष-रूप से मुझि का समर्पन दिया है गुप्त जी पति को त्याग कर प्राये बड़ बर्से हैं। गोस्वामी जी के मुख्य धीर नारी जीवन का सामना करने हैं धीर दूर होकर बिबयी बनते हैं गुप्त जी ने धनम रत्न कर उनको मचीनना से दूरना दिखाना जीत कर पारबान्धित नहीं होने दिया।

गगाधनाथ गुप्त उपन्यासकार नहीं थे। सनातन बर्म के प्रचार की दृष्टि से उन्होंने उपन्यास का अल्पिक सहृदय के लिखा। धारने उपन्यास में बाहु दृष्ट्यकृत की प्रशंसा करते हुए उनकी 'मुनिवर्षमिरी के मम्बर धीवन परे के धारनेरी मीरिस्ट' राय बगार की बरबो' योग्यताओं के बाव लेखक कहन हैं कि इतना ही नहीं धार नहीं

की इस में मृत्युवा चाहि-चाहि घनेकानेक कारणों से अपने देश की स्त्रियों परामर्श पुनर्प्राप्त हैं और इतना सब बहुत करते हुए भी साम्प्रतिकाल में जो नारी तुम समान अपना जीवन हिन्दूधर्म एवं समाज की रक्षा करने हुए व्यतीत कर रही हैं वे धन्य-धन्य हैं।'

पुष्पा बालिका के किशोरी बनने तक हमारे सामने रहती है एक बार कोई हुई भारी तलाश कर देने वाले कमल से वह इतनी प्रसन्न हुई कि मातामही की अनुमति से उसने 'मगवान की बड़ाई' पुष्पामाता स्वयं न पहनकर कमल की ही पहना दी। वह सरला है परन्तु 'मा कल दूर' निष्कम गयी ऐसी आन बालिका भी पपी है से इतना कह कर भीष्ट बन दी—प्यारे पपीहा कम फिर तुम इसी स्थान पर मिलना^१। यहाँ उसके जीवन में सकलता का रूप आच रहा है। जब युगाच-यात्रा में कमल ने उसकी रक्षा की तो पुष्पा कितने धन्यार्थित वाक्य कहती है—'मेरी धात्र बिबाठा ने रक्षा धात्र के ही पवित्र धात्र में सोए कर की—वीर धात्र—अपन इस धर्मिक जीवन को धात्र के करों की सेवा में ही अर्पण कर समार य इतहस्य होने का साहस कर और धात्र की धन धात्रताम कहके धात्रि हूँ^२। लेकन न गान्धर्व बिबाह ही बिना बिना है परन्तु धात्र किशोरीताम बोस्वामी के समान न इस पद्धति का धात्रिक 'कोर्रिधिप' से मिल समझते थे। इस में प्रथम के अनन्तर तप है तप के समान न वह न तो पूर्व है और न बिधाय है। महा ध्यान रक्षता चाहिए कि गान्धर्व बिबाह सभी कमरिबों के लिए ही धात्रोचित माना गया है।

लेकन ने 'स्वात' मुक्ताम तुमही रघुनाथ माया के माय की लेकर इस पुस्तक की रचना की है। इसमें नर्मदा-तटवर्ती प्रवेश का बड़ा भावपूर्ण वर्णन है। लेकन का प्रवेश कथा मा चरित्रचित्रण तो है ही नहीं वातावरण का वर्णन भी नहीं है। वह तो बस सिता धनबा ईश्वर मक्ति का उल्लेख देना चाहत है और उस प्रथम में धार्मिक स्वार्थों का उन्होंने मक्ति भावपूर्ण वर्णन किया है। 'पुष्पाकुमारी उपन्यास' रूप में अधिक लक्ष्य न भी हो इसकी भा निरीक्षणाएँ हैं। एक तो इसके बचन बड़े भावमय एवं धार्मिक हैं। दूसरे इसका चरित्र-स्वभाव व्यक्तप्रवेश का नर्मदा-तट है जो सामान्यतः धर्म सामाजिक उपन्यासों में नहीं मिलता।

सुखत शर्मा के उपन्यास

स्वर्ग में महासमा

समाज-मुबार के लिए बिबाध बिबाध' (सन् १८८४) 'पाञ्चरथ धुति' (सन् १८८८) तथा 'धाममठ मार्तण्ड' (सन् १८९२) नाटक लिखकर 'सम्पादकाचार्य पं सुखत शर्मा' ने धार्मिक मतो पर चुकी लेते हुए एक छोटी-नी व्यंग्य कथा लिखी जो सम्पादकीय ब्रिटिश प्रस मुराबाबाब' में छपी थी। लेकन ने इसको उपन्यास का कहानी

नाम तो नहीं दिया और स्वयं की कल्पित बटनाओं से पूर्ण होने के कारण इस इति में प्राकृतिक उपन्यास के रूप नहीं जाने का सकते। फिर भी सामाजिक जीवन और उसकी सामाजिक समस्याओं के स्वयं की महासभा में यथार्थ बिज रहने के कारण हम इस रचना को उपन्यास-कोटि में स्थापन कर सकते हैं। 'महासभा' सब 'पब्लिक मीटिंग' का अनुवाद है। लोकप्रियता से संबंधित धारणा प्रणाली पर भी इस उपन्यास में प्रकाश डाला गया है।

उत्तर में बहुत गहराई देकर जब देवता लोग बनने वाले और उनका कोई नाम न जाना तो एक दिन उन्होंने एक पब्लिक मीटिंग की। कुमार जबकि उसके समापति बुने गये। सब देव अपनी-पानी सिकायत सभा के सम्मुख रखने लगे। उनका कहना था कि भूतल के लोग उनका नाम के-केकर उनके प्रकार का वितरणवाद देना रहे हैं। एक के बाद दूसरा अंतराष्ट्र आता जाता गया। अंत में 'योहन्मन् साहब ने यूरोपीय लोगों को अपनी एक शिक्षाकर बनकाया कि' आप लोग कैसे बने चुना है जो चुना की द्वायत में चलन डालना चाहते हैं।

इस पुस्तक का अर्थ है कि 'अपने में ईश्वर की शक्ति बड़ी और मनुष्यों की शक्ति अल्प धर्म में बड़े'। अथ धर्म के विषय में जो फाक्स-रिपोर्ट^१ की जाती है उन पर समा में विचार किया गया है। सबसे प्रथम कर्मफल है। भारतीय वर्ग कर्मफल में विकास करता है, परन्तु वैदिककाल में देव-विशेष की दया से सुखी और कोप से कुपित मानते हैं, अतः उनके मनुष्यात्मी अन्तर् कर्म बाधक नहीं मानते बल्कि विविध सम्प्रदाय की रक्षा के लिए बुरे से बुरा काम करने को तैयार रहते हैं। समा में इस वैदिककाल का अन्त करके कमफल पर जोर दिया गया है 'सुकर्म और कुकर्म करने वालों को स्वयं में एक ही स्थान मिलता है तो हम लोग क्या सुकर्म करते'। यह धर्मिक इस्लाम और ईसाइयत पर है, वे न पुनश्च मानते हैं और न कर्मफल उनका एकमात्र सहारा तो ईश्वर का हूट अथवा ईश्वर का पुत्र है जो अपनी दया से अपने मनुष्यावियों को अलग स्वर्गभोग एवं कुत्तरों को और नरक में स्थान दिलाता है।

दूसरा धार्मिक पुराणग्रन्थों पर है। 'हम देव-भूत-मनस्ककारी पुराण पुस्तकों को इतिहासों की निष्ठ से अलग काट दीजिए'। इनके विषय प्रचार से ईश्वर भी अलग होता है। आप लोग पुराणों को आदिम कीजिए नहीं तो वे ईश्वरपन से इस्तीफा देता है। एक ओर 'सनातन धर्म की रीति' और दूसरी ओर सुधारवादिता यही तो उस युग का संघर्ष था। सनातन धर्म पौराणिक मनों को ही सनातन एवं धर्म धर्म मानते थे वे पुराणों को देव से भी अधिक महत्व देना चाहते थे। परन्तु पुराणों के वर्तन कुदृष्टान्त नहीं थे। इसलिए कुदृष्टिवादी धार्मिकताओं को पुराणों की 'संशुद्धि'।

स्वीकृत न थी। 'नारद पञ्चरात्रादि पुस्तक रही जाने में फँक दिये जायें' यह भाषा का निश्चित मत मेन्क ने प्रकट किया है। अस्तु, वैष्णवरियों के बाव नौरात्रिक क प्रति भी मेन्क का रोच इस पुस्तक में अनेक स्थानों पर व्यक्त हुआ है।

प्रसंगबध मेन्क ने अष्टौबी राग्य पर भी कटाक्ष किया है जो उस युग के लिए सामान्य बात नहीं थी। रिपब्लिकन नवनेर्मेड^१ अथवा प्रजातन्त्र के साथ-साथ मेन्क ने 'ताम्पबाह भी स्वीकार किया है जिससे उसका धर्मिप्राय जन्म म ही ऊँच-नीच जाति अथवा बस को न मानकर मानव-मान के प्रति समभाव न है। बुध क अनुकूल यह प्रजातन्त्र का समर्थन करना है। धीरे प्रत्येक नागरिक का एक बाट का अधिकार होना चाहता है। अष्टौबी शासन की तुलना उमने असुरराज बलि क शासन से की है। राजा बलि का साम्राज्य विस्तृत था उनकी प्रशंसा दान के लिए की जाती है। यहाँ मेन्क ने अष्टौब सभा के राजा बलि बताकर विवेचिका का धमुरो के समकक्ष तो रक्त ही लिया यह भी उल्लेख कर दिया है कि उनका यत्किञ्चन् उपकार (देतनाही प्रादि) आपकी तो अप्रत्यक्ष बलि न लेते हैं भारतीय समझ है कि संघर्षों न जीवन की नवीन सुविधायें देकर इस का बड़ा उपकार किया है वे यह मूल बातें है कि इनकी बेसी पर भारत का अधिवास हो गया—उसका व्यापार, उसकी कला उसका साहित्य उनकी संस्कृति सब कुछ ही तो स्वाहा होना गया है। अतः देवा ने स्वराज्य को सर्वोत्तमति से स्वीकार किया है वही उत्तमति हम आप लोगों की कर सकते हैं वही उत्तमति विवेचीय राजा बलि नहीं कर सकते^२।

सामाजिक बिष के नाते 'जन्म में महाभारत एक उपयोगी पुस्तक है। इसकी भाषा समाचारपत्रोपयोगी एक हीनी व्यवस्थायी है। यद्यपि इसकी कहानी अथवा चरित्राव के क्षेत्र में रचना निबिबाह न होया फिर भी सामाजिक जीवन के समस्त बिषों की रूपरेखा इसमें असी मूर्ति स्पष्ट हो जाती है। पं० खडकत शर्मा सद्यस्त आपसमाजी पत्रकार थे। उनकी लेखनी से समाज की वार्षिक पुर्वथा का चित्र आकर्षक एवं प्रभावशाली बन गया है।

इस पुस्तक को पढ़ते हुए सहसा 'अमलोक की भाषा' तथा 'स्वम में विचार समा का अधिवेशन' निबन्धों की याद आ जाती है। सन् १८८८ ई के 'सार सुभा निधि में प राजाचरण गोस्वामी ने 'यात्रा' का निबन्ध प्रारम्भ किया था उसमें राजनीतिक और सामाजिक विषयों पर व्यप्य है गोस्वामी की सुधारकारी उगातन चर्चा में। स्वयं में महाभारत का अधिवेशन भारतेन्दु का निबन्ध है जिसमें 'अमूलि स्वामी इषानन्द और कैपलबन्धन के प्रति अपनी बारम्बा को स्पष्ट रखो में व्यक्त किया है। भारतेन्दु का निबन्ध भी हिन्दू समाज में फैली हुई कुरीतियों और अन्ध विश्वासों का बखन करता है। खडकत शर्मा ने प्रथम तो उस हीनी को पुस्तक-रूप दिया है दूसरे वार्षिक विवेचन करते हुए धर्मिक मतों का खण्डन किया है।

इषामकिशोर वर्मा के उपन्यास

काशी यात्रा

केवल वर्म प्रचार की दृष्टि से लिखे गये उपन्यासों में महाद्यप इषामकिशोर वर्मा का 'काशी यात्रा' भी है। यह सन् १९१६ में साहीर से प्रकाशित हुआ था। मूल पुष्ठ पर ही इसको एक सामिक उपन्यास' लिखा गया है। प्रारम्भिक बचन में वर्मा जी ने लिखा है कि ईसाई वर्म की उन्नति के पक्षों और कई कारण हैं वही एक कारण यह भी है कि वर्म के प्रचार के लिए वह अपने टैरिफ्ट उपन्यास और कथा संली पर ऐसे मनोरंजक और रोचक उपवाते हैं कि जिनको पढ़कर जनता का मन ईसाई वर्म की घोर घातकता हो जाता है—इन समय जब कि लोगों के मन में वर्म-धर्मों से प्रसक्ति हो रही है वह बिना बहुत ही उत्तम है और इसी का अनुकरण करते हुए यह टैरिफ्ट जिसमें सत्य सनातन वैदिक धर्म के सिद्धांतों की महिमा दर्शाई गई है जनता की नैट किया जाता है। इस 'बचन से यह स्पष्ट है कि इस उपन्यास का उद्देश्य समाज में से उन लोगों का बहिष्कार है जिनका कारण ईसाई हिन्दुओं को वर्म-परिवर्तन कर अपने में मिला लेते हैं।

'काशीयात्रा' पाँच परिच्छेद और ११ पुष्ठ का उपन्यास है। पौराणिक कथा विवर्धकर और धार्मिकमाजी मतीने रामनारायण की कथा के आधार से हिन्दू-समाज के उन धर्मविस्वासी का वर्णन है जिनका कारण हिन्दू ईसाई बनते चले जा रहे हैं। रामपुर धाम में विवर्धकर नाम का एक ब्राह्मण था जिसके मतीने का नाम रामनाथन था। संकर अपने मतीने को उत्तम उत्तम कथा मुताया करता था और देश की कुटीरियों पर मंदों उनके साथ बाधालाप किया करता था। 'वर्म' और 'कुटीरि' का संकर का अपना पोपलीमा वाला धर्म था। उनका मत में बुद्धि का विकास करने वाली मजी बातें 'कुटीरिया' हैं और बाबा-परम्परा से चलने वाली प्रबाएं ही 'वर्म' हैं। वह कहता है कि 'देख तो मानो अपने पहियों के बीच हमारे धर्म और निमनों की कुचलती हैं' या 'बहुत न ब्राह्मणों को हम बाले बनाया कि वह इस संसार में और बाधियों पर दासन करें'। अन्त में धर्म भोजन के कारण बाबा की मृत्यु हो गई तब मजीमा धनाप हो गया। धापसमाज में उसको धनाधानय दे रला और धीम्य विज्ञान् पंडित बनाया। रामपुर में काशी तक की यात्रा में कथा की मृत्यु और मतीने का धनाप बनकर रहने का ही चिन्ता है।

उपन्यास-कथा की दृष्टि से तो नहीं परन्तु सामाजिक समस्याओं की दृष्टि से 'काशी यात्रा' का भी विशेष महत्त्व है। लखनऊ छोटी-छोटी चर्चाया द्वारा जिन कुटीरियों का वर्णन किया है वे ही धाय जाति के पतन का कारण हैं। इन कुटीरियों को पाँच वर्गों में रखा जा सकता है। प्रथम है ब्राह्मण्य का पतन। जब कथ या जाति कर्म का स्थान पर धर्म में निक्षिपित किए जाने लगे तभी वे समाज का पतन

हुआ—इस पत्र में ब्राह्मणों का विशेष स्थान है। ब्राह्मण-कुल में जन्म लेकर ही जब कोई व्यक्ति ब्राह्मण बहना सकता है तो उसे योग्य बनने की क्या आवश्यकता है। अस्तु, मूर्ख फेरू दुर्गन्धनी तथा घट्टकारी ब्राह्मणकुलोंवाला ने समाज की दूधो दिला। वे मूर्ख यजमान के घर आ-आकर उनको स्वर्ण का प्रमाण-पत्र देने लगे। बाद की पचा केवल पेट भरने के लिए हो है। ब्राह्मण भूला भरोसा बोरी करेगा परन्तु मजदूरी नहीं कर सकता। इन उपन्यास में इसी दुष्टों का चित्र है। कुरीतियों का दूसरा बड़ा प्रमाण में सम्मिश्र रखता है। चिमके कारण स्वर्ण बेच-साख पड़ने में अचमक हिन्दू कपोल-कल्पित किस्सों में विश्वास करने लगा है। उसके देवी-देवता अत्यन्त घोर विचित्र हैं। गणेश हाथी है तो इनुमान बन्दर। कोई बलि चाहता है तो कोई बमरान-सेवन। तीसरा बय अन्धविश्वासों का है जिससे अत्यन्त अल्प एक सुमासुम विचार है। अनुर्य वर्म सामाजिक कुप्रथाओं का है जिसमें से इस पुस्तक में केवल मजदूरी के प्रति दुर्गन्धकार का वर्णन है। अन्तिम वर्ग मनीष ब्रह्मानिक सुविचारों को वर्म के बक्के से बहा देता है। लेखक ने केवल रस-भाषा की चर्चा की है। ध्यान देने की एक बात है कि स्त्री-सम्बन्धी किसी कुरीति पर वहाँ प्रकाश नहीं डाला गया न विवाह-समस्या है न नाम विवाह न परिचयका लज्जा है न अन्तर्जातीय सम्बन्ध। लेखक समाज के मोटे-मोटे दुष्टों को देख मटा है उसके सूत्रम तन्तुओं को नहीं। उन्होंने मुमसयानी घोर ईसाइयों से अपने धर्म को रक्षित करने की युक्ति बतलाई है, परन्तु पुष्टि की कहीं नहीं की। सारासत यह उपन्यास दुष्टपक्षी की पात खोलने के लिए लिखा गया है।

इन कुरीतियों का उपचार 'राजकुमारी देवी धार्मिकता का विवाह कपि वेद के सिद्ध प्रामाण्य से कर' देना है। लेखक के घर में 'सर्पों' से अत्यन्त घोर विद्वेष्टा संघार के सर्पों में से एक यह त्रिचिपति भी है—इस सर्प से उठा हुआ मनुष्य अपने वर्म को तिलांजलि देने के साथ ही अपने इस लोक घोर परतर्क बोरी ही का नाश कर बैठता है।^१ 'एक घति बमरान् विद्या-बुराबर, बाजबहुराही बँध इस जाति में था जोकि वेद रूपी दीपति से इस कष्टम विष को हटावा'।^२ अस्तु वैदिक ज्ञान का प्रचार ही समाज की कुरीतियों को दूर कर सकता है यही लेखक का निष्कर्ष है।

सामाजिकता के वर्म की भाषा सरल तथा सहज है। उनकी संज्ञान सीमा में संक्षिप्त है। कपोलबोली कल्पना उनके पास थी। परन्तु उनकी रचना में भाषण का गुन वर्णन की अपेक्षा अधिक है। जिस जनता के लिए यह उपन्यास लिखा गया है उसकी दृष्टि से सफल है।

रामजीबास वधू के उपन्यास

बोले की टट्टी

सन् १९०९ में 'कल में कोण' उपन्यास द्वारा यह दिखाकर कि 'लाज चाब म साहूकारों के मक्के कहीं तक बिगड़ जाते हैं' और जो नैसा करता है उसे नैसा ही फल मिलता है। 'भावियर' निवासी बाबू रामजीबास ने दूसरा सामाजिक उपन्यास 'बोले की टट्टी' सन् १९०७ में लिखा। 'दिबेदन' में लेखक ने बताया है कि 'पंजाबी में बहुत से ऐसे उपन्यास मौजूब हैं जिनमें बिछोयाजग के मक्के किम प्रकार बिछोचियों को रक्षना चाहिए—वह बताया गया है। परन्तु हिन्दी भाषा में इनका अभाव है। निमी भी समाज के लिए बिछोची-जीवन बड़ा महत्वपूर्ण है। इस अवस्था में जो चाहते पढ़ जाते हैं वे जगमग नहीं सुटती जो भोग इस जीवन का अनुभूति से बनाते हैं वे भविष्य में सुखी रहते हैं। इसी लिए लेखक ने 'एक छोटी सी पुस्तक अपने बिछोची भाइयों को भी मनोरंजन रूप में पेंट की है। जिससे वे उत्साहित होकर भाषक का अनुकरण करते हुए जीवन को ईमानदारी और परिश्रम से सुन्दर बनाने में प्रयत्नशील बनें।

'बोले की टट्टी' १४५ पृष्ठ का छोटा-सा उपन्यास है। यह १५ परिच्छेदों में विभक्त है, प्रत्येक परिच्छेद का मध्य का पद्य में गीतक भी लिख दिया गया है। समस्त ब्रह्मचर्यय युवक बिछोचियों के समक्ष बाध्य कारणों प्रस्तुत करता है। कथा का मुख्य क्षेत्र कालेज जीवन है। कैलाश मदन और नयेन दोनों सहपाठी हैं। कैलाश परीब बर का परन्तु परिश्रमी और स्वचरित था। नगन्त्र बड़े बर का परन्तु सहकारी एवं नीच था। कैलाश भावक है और नयेन कमलायक दोनों एक दूसरे के बिपरीत हैं। कैलाश सदा कक्षा में प्रथम जाता है फिर भी दिनचर्या निश्चल एवं पम्नीर है। नयेन सदा कैलाश से अलग है परन्तु कभी भी उसकी बराबरी न कर सका। मदन दोनों का सुरक्षित था पहिले वह नयेन से दक्षिण प्रभावित था परन्तु नयन्त्र की बोले की टट्टी समझने के बाद उसकी पलिच्छता कैलाश से हो गई।

कालेज जीवन समाप्त होने पर जो बटगाए और महत्वपूर्ण हैं। कैलाश को आवास जाने का अजीब मिना और अपने मुनो के कारण उत्पत्ति करते करते वह हिन्दी कमन्दर बन गया। नयेन कम-अन कर भी भी अपने भासिक की मोकरी पर पड़ा रहा। जो स्पर्धा और द्वेष कायम जीवन में था वह अन्त तक चलता रहा और नयन्त्र ने भविष्य में भी उसी प्रकार के कम-अन से काम लिया। दूसरी बटगा विवाह की है। मदनमोहन की बहिन सरस्वती उपन्यास की नायिका है। प्रारम्भ में वह नयेन से प्रभावित थी परन्तु नयेन का व्यवहार अच्छा न देखकर वह उससे दूरा करने लगी अन्त में कैलाश के साथ उसका विवाह हो गया। यह नयन्त्र के जीवन का सबसे बड़ा आघात और कैलाश के सम्बन्धों का दूसरा पुनर्स्थापन था।

कैलाशका उपन्यास का भाषक है। काल-बक पर बटगाइयों के आघात ने कुत्राओं को बचाते हुए, आर्ष को त्रिध व्यक्तित्व में टाक दिया है वही कैलाशका

है। उसका पिता नहीं माता नहीं कोई बन्धुम्ब नहीं। 'गंभीरता' अत्यन्त घोर सबाई उसके जीवन की कमी है। मदन के परिवार से उसका परिचय हुआ और हमको स्नेह मिला। माय मिल चुप कर प्रेम बढाने लगे धीरे-धीरे मित्रता बन्धुभाव में बदल गई। धायन सेरा उगम्याह बनाया मच्छा साब दिया और मेरे हृदय को जीवन भर के लिए हृदय बना दिया। 'कैलाश' का जीवन पूर्वमताओं से रहित बुद्धि एवं धारण है। मेराक ने उन कमियों का निपटारा नहीं किया जो ऐसे समयमय जीवन में स्वयं ही उत्पन्न हो जाती हैं। दुर्गमों के लिए तो नरेंद्रनाथ का सुजन है। वह नती माता-पिता का पहला ही पुत्र है। बाहरी बनावट से वह अपने को कैलाश में बदलर दिखाना है परन्तु समय के सामने प्रमाण टिकता नहीं। माय मेरे रूप काटा है 'धीर नम्र' की सब आभा-रिखा निपटन हो जाती है। उनकी बोले की टूटी शब्दम टूट जाती और उनके पाप का बड़ा बकर भर जाता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उठवा व्यक्ति स्वभाविक है। पारिवारिक उच्चता से उनको पहचान तो निश्चय परन्तु तदनुकूल परिणाम नहीं। इसीलिए उनके जीवन में असन धीर कटन है जो जीवन भर बढती ही रहती है। बोको पाप साक्ष्य है, अपन-अपने युक्तों में। धर्मद्वन्द्व विज्ञान के भी जीवन में नहीं मिलता।

दो पुरुष-नामों के प्रतिष्ठित किसी तीसरे का चरित्र महत्वपूर्ण नहीं है। मदन धीर सरस्वती का कबालक में विशेष स्थान होते हुए भी उनका विषय मेराक को प्रतीष्ट नहीं है। नामक धीर कालनाथक के स्नेह-सम्बन्ध में मदन विन्दु है तथा प्रथम सम्बन्ध में मदन की बहिन सरस्वती। प्रेम-धर्म में प्रसार और प्रतिस्पर्धा-विषयो ईर्ष्या मदन को सन्त करके हुए सरस्वती में पर्यवसित हो जाते हैं। मदन धीर सरस्वती एक ही व्यक्तिगत क दो पहलु हैं। दो पुरुषों की प्रतिष्ठिता के लिए, मदन स्नेह-विन्दु है धीर सरस्वती प्रथम-विन्दु। मदन बहु बीज है जिसका कम सरस्वती है। जो ईर्ष्या मदन के साथ कैलाश के स्नेह से बगी बड़ सरस्वती के साथ कैलाश का विवाह होने पर परिवर्तन हो गई। मेराक ने इन सम्बन्धों का विकास नहीं दिखाया एक-दो भ्रष्ट-माय चित्रित कर दी हैं। सरस्वती के मन का हृष्ट मनोविज्ञान का प्रतीष्ट होता परन्तु मेराक ने उसकी अपेक्षा कर दी है।

इस उगम्याम में सामाजिक प्रभाव है। तत्कालीन मनोवृत्ति के वर्णन विविध की योजना में होते हैं। वर्णन बड़ कुतूहल-बद्ध है। अंग्रेजी हिन्दी और संस्कृत के पद्य बीच-बीच में मनोरंजन एवं नीति के लिए आ गये हैं। वर्ण धीर पाप का समय एवं कम की कम तथा पाप की निकलता रूप के अनुकूल ही चित्रित है। धर्मद्वन्द्व रहित धारण चरित्र इस उगम्याम के प्राण हैं। मेराक ने अपने प्रथम उपन्यास के समान इसमें भी आकाशरस बड़ा स्वच्छ रखा है। उस रूप में धर्म का चित्र प्रायः नग्नता में धारणक बन जाता था। रामजोबास ने धर्म का चित्र नहीं बताया उनका धकेल कर दिया था। इसलिए वह रचना सुनकों का सुचार ही करेगी उन पर कोई कुप्रभाव नहीं

शान्त सकती।

मल्लक ने इस उपन्यास का उद्देश्य निवेदन में स्पष्ट कर दिया है। उपन्यास के प्रारम्भ में कुछ सामाजिक समस्याओं पर भी प्रकाश है। भूत-भुईल के भय की तज्जब मेसमेरिज्म के प्रभाव द्वारा समझता है। जिस प्रकार मेसमेरिज्म के प्रभाव में व्यक्ति के मन में कई-मई वस्तुएं बन जाती हैं उसी प्रकार भूत-भुईल आदि मन की मद्धत है वही तब हो वही जाकर देश सेवा आह्वाने जिसमें मन में भय का निवास हो सके (पृ० २)। दूसरा प्रस्ताव 'ध्याइ छापी में बुरे मीलों का वाता और बाजार में सीछन मारते हुए' निजममे के विरोध में है आर्थिक प्रश्न को लेकर गमजीशाय ने वापस की प्रशंसा की है 'जापान ही एक ऐसा देश है जहां सुन्दरता कपडों की और धारम तीनों जुटे हैं'। लेखक ने शिक्षा का उद्देश्य अपने देश के कला-कीर्तन व्यापार व्यवसाय धर्म वधाय का बढ़ाना। अपने धौरेर, कटुत्व की चिन्ता के साथ अपनी गमपूम्नि की चिन्ता रखना।^{१२} माना है। संशेकी मल्लको के उद्धारन लेकर उपन्यासकार ने यह बिबाम प्रकट किया है कि वैवाहिक जीवन का मुक्त पारस्परिक मस्तुलन में है पति और पत्नी एक-दूसरे को मुक्त देकर ही स्वयं सुखी हो सकते हैं और उनका अविनयत मुक्त समाज और राष्ट्र को सुखी बना सकता है। पत्नी को चाहिए कि वह पति के साथ अनुकूल रह और पति पत्नी का साथ ध्यान रखते हुए सब प्रकार की व्यवस्था करे। (पृ० १३४)।

इस उपन्यास की जाया सरस साहित्यिक एक प्रवाहमयी है। मल्लक ने कला की दृष्टि से इसे 'ममोरजन' से पूर्ण बनाने के साथ-साथ मज्जीर रखन में सफलता प्राप्त की है। बीच-बीच में मल्लक पाठकों से बातें भी करना जाता है जो मामास्यत धाकपक कही जा सकती हैं।

'क्या कर्क मातुम न बा कि ऐसा मकान मिलेवा नहीं ता कोटी 'कमठ साकर उसकी तस्वीर उतार लेता—और पाठकसम धार उन कोनी क बाहरी जिस्ते का अपने हृदय में ही पीनू बीच बीजिए। (पृ० ७)

ऐसे स्पष्ट सनक है जो केवल वर्जन के लिए धाये हैं और वर्जन समाज का नहीं बहति का है। लेखक यह मान कर बना है कि उसके पाठक संशेकी जानते होंगे इसलिए संशेकी कवियों के उद्धारन समने यथ-तथ दे दिये हैं। मुग का नाटकीयता इस उपन्यास को भी प्रभावित कर रही है।

'फूल में कांटा' नामक उपन्यास की धपेक्षा 'भोये की टट्टी' अधिक विवसित रखता है। इसका कथानक अधिक सामास्य है और जायक आदि का जीवन समाज में अधिक प्रतिबिम्बित मिलता है। इस उपन्यास में दो भाइयों का नुननात्मक जीवन का इसमें दो महत्ताधिका का। उनमें एक सांघासिक बहुमी की इसम सामासिक। इस उपन्यास का कथानक अधिक परिभासित रख का धोनक है बन्धन को अधिक विस्तृत लेन यही मिल जाता है। यही मनीम मुग का प्रभाव अधिक है और लेखक उनका

छिड़कार नहीं करता । इनका नामक उच्च शिक्षा प्राप्त कर बिदेस जाता है और लौट कर वैद्योपनिषद् का सफल प्रयत्न करता है । साथ ही उसने नरसिन्धी के साथ नवीन रंग का विवाह किया यद्यपि प्रस्ताव माता-पिता का है परन्तु माई-बाहिन पहले से ही इन विवाह के लिये योजना बना रहे थे । इस प्रकार यह अनुमान लगाया स्वाभाविक है कि रामजी-ब्रह्म 'नई रोहनी' के विरोधी नहीं थे । सरस्वती की वेद्व बनाकर ईमान और मयेन्द्र का स्थायी प्रतिद्वन्द्विता सम्वत् मयोवैज्ञानिक प्रयास है ।

अयोध्यासिंह उदाध्याय के उपन्यास

अपस्विता कुस

‘ठेठ हिन्दी का ठाठ’ या ‘बेबबाना (सन् १८११) उपन्यास है। सचार्ता के कारण सम्पन्न घनमेन बिबाह के कुररिनाम विविध करने के बाद प अशुभ्यासिह उपन्यास में दूसरा मौलिक उपन्यास ‘अबकिला पून’ (सन् १८०७) लिखा। सन् १८१३ में यह उपन्यास ‘दूसरी बार’ छपा था। इसमें दो ही अक्षर पृष्ठ और सत्तर पंक्ति है। उपन्यास की के दोहों उपन्यास सामाजिक है परन्तु इनका मुख्य उद्देश्य भाषा की लम्बाई है। ‘वार्ड विप्रेन की संवेदी’ धूमिका में इसी तरह का समर्पण होता है। प्रथम उपन्यास के समान इसमें भी प्रायः दो अक्षरों के उत्तम धर्मों का प्रयोग है। अक्षर-अक्षर में तीन अक्षरों के दो-बार अक्षरों का। ‘अबकिला पून’ में उद्भव शब्द ‘अनघ नेह बवार जिहोरा मुबार, सजीला छवीमी बाबुरे, मुनराई, सरबस अनोका निवारली नेरे बनेरे नेरे इत्यादि’ का प्रयोग है। भाषा का एक सामान्य उदाहरण देखा जा सकता है —

बिन बीना की कमाई पूरी हो जाती है बिनका पुनः चुक जाता है वह सब फिर छत्र में घाबर बरती में जनमते है ऐसे ही जीव वह सब रात के दृष्टे हुए तारे हैं। (५-४७)

इस अन्तरम में 'पुनः' 'हरि' और 'जनमय' व्याप्त होने शोध्य हैं। इनके उत्तम रूप शोचन की भाषा में प्रकट हो रहे हैं। यद्यपि 'पुनः' 'हरि' 'जनमय' 'पुनः' 'परीक्षा' रूप में इन तथा इनके अन्तर्गत अर्थों का उत्तम प्रयोग है तथापि इन बार-बारकात्त में भी इनको उत्तम रूप में अवलम्बित किया। फिर भी अन्तर्गत अर्थों में उत्तम की प्रतिष्ठा के कारण इनका उत्तम रूप स्वीकार किया। यद्यपि साहित्यिक भाषा के लिए अपाठ्याय भी का यह आदर्श मान्य नहीं हो सकता। भाषा को शान-सुन्दर कठिन न बनाना चाहिए परन्तु अत्यन्त 'बाह्य' अर्थ का छाँट-छाँट कर बाहर निकाल देने से भी यह बिगड़ हो जाती है।

१ 'ही हीन लज्जितसुखी भूषण हीन क हव हीनी ह राख पोती है वही पण्ड क हि सय वाम्य श्री
की हल विनी मित्राव्य हीनि ह भूष श्रीरय वही स ।

अधक्षिका फूल' उपन्यास नामिका प्रमाण है। सुन्दरी देवहूती के रूप पर रोम कर लम्पट कामिनी मोहन ने बासमती मासिन की सहायता से वह प्रपञ्च रचाया कि यदि एक मास तक नियमपूर्वक देवहूती प्रतिदिन एक अधक्षिका फूल देवी पर चढ़ाने तो उसका प्यारा भाई रोममुक्त हो सकता है। फूल अधक्षिका 'सूरज झूठे-झूठे' ही मिल सकता है। लम्पट खतनायक की यह बात भी जो ध्यान में मफल न हुई। देवी को प्रसन्न करने की बात के आधार पर उपन्यास का नाम भी 'अधक्षिका फूल' पड़ गया। कथा में उल्लेखता बगाने के लिए धीरे उपन्यास की सबसे महत्वपूर्ण घटना पर ध्यान देने के कारण यह नाम उपयुक्त प्रतीत होता है।

इस उपन्यास का कथामक चरित्र एक सीधा है। पार्वती का पति बुढ़ बा उस के एक पुत्र धीरे एक पुत्री भी। पुत्री देवहूती सुवती थी परन्तु उसका पति देवसक्य नहीं बना गया था। देवहूती पर दुष्ट कामिनी मोहन कुमुदि रक्ता था उसकी सहायक बासमती मासिन थी। एक बार देवहूती का प्रिय भाई बहुत रक्त हुआ। पार्वती ने पति के मत्ता करने पर भी शोका को बुलाकर खोर-खटका दिया। बासमती ने शोका से बातें कर ली थी। इसलिए शोका ने बताया कि यदि देवहूती प्रतिदिन एक अधक्षिका फूल मन्दिर में चढ़ाने तो एक मास में उसका भाई स्वस्थ हो सकता है। देवहूती सम्प्रा सबम का कर फूल चढ़ाने लगी। बासमती ने देवहूती को बानो में फंसाया तुम्हारा सपने में ही निकला जाता है तुम्हारा यह रूप यह जीवन। धीरे कोई प्यार करने वाला नहीं। बैठा चाहिए बैठा धाकर नहीं। देवहूती महामास में नहीं बनी है जो उसको भी है कहां तक वह इन कष्टों से बच सकती। एक दिन एक फूल को लूंच कर देवहूती पकेश हो गई, कहारों ने धाकर उसको पालकी में बांधा धीरे एक कोठी में पहुँचा दिया। परन्तु घण्ट में 'बरम का बैठा पार' हुआ। बासमती लड़प-लड़प कर मर गई। कामिनीमोहन के भी अन्तिम दिन था गये। मरते हुए उसने प्रायश्चित्त किया 'मैं पहले देवहूती को प्यार की डीठ से देखता था पर आज मैं उसको एक देवी समझता हूँ' देवहूती मक्की में धीरे भाई के साथ धाकर बर में रहे धीरे फूलझुंवर धीरे वह मितकर सारी सन्त सम्मान करे, मेरे भी की प्यारी बाह बही है^२। देवसक्य भी पर बाधित था गये धीरे उगहने गृहस्थ बम का पालन करण हुए ब्रमा-हित के प्रनेक काम किये।

मुख्य पात्र तीन हैं—देवहूती देवसक्य धीरे कामिनीमोहन। जैसे नाम हैं जैसे ही बुज भी। दोनों पुरुष-पात्र अपने-अपने गुणों की साक्षात् मूर्ति हैं। देवसक्य वस्तुतः देव-रूप है वह संसार में अधिक अनुरक्त न होने के कारण पर छोड़कर बना गया था परन्तु प्रेरणा प्राप्त करके वह बनावसर बाधित था जाता है। देवसक्य बहुत दिन रम बरती पर रहे उनके गुणों से का देख के लोगों का बहुत कुछ भला हुआ देवहूती

तिरस्कार नहीं करता। इनका नायक उच्च मिला प्राप्त कर विदेश जाता है और लौट कर देशोन्नति का सफल प्रयत्न करता है। नाथ ही उससे भरस्वती के साथ नवीन संन का विवाह किया मर्यापि प्रस्ताव माता-पिता का है परन्तु भाई-बहिन पहले से ही इन विवाह के लिये योजना बना रहे थे। इस प्रकार यह अनुमान लगाया स्वाभाविक है कि रामजी-नैरव 'नई रोझनी' के विरोधी नहीं थे। सरस्वती को केन्द्र बनाकर कैलाश और गणेश का स्वामी प्रतिष्ठितता गुम्बर मनोवैज्ञानिक प्रयास है।

अयोध्यासिंह उपाध्याय के उपन्यास

अवधिसा फूल

'ठेठ हिन्दी का टाठ या 'देवनागरी' (सन् १८६६) उपन्यास में मजलुता के कारण सम्पूर्ण जनमेत विवाह के कुरियाम विवित करने के बाद प अगम्यासिंह उपाध्याय ने दूधरा मौलिक उपन्यास 'अवधिसा फूल' (सन् १९०७) मिला। सन् १९१५ में यह उपन्यास 'बुधरी बार' उपा का। इसमें दो ही धारण बृष्ट और सताइत र्ववधियां हैं। उपाध्याय जी के दो दोनो उपन्यास सामाजिक हैं परन्तु इनका मुख्य उद्देश्य भावा की समता है। 'आर्य धर्मन की धर्यनी' भूमिका में इसी सत्त का समर्पण होता है। प्रथम उपन्यास के समान इसमें भी प्राय दो धारणों के तरलन धम्मा का प्रयोग है अथवा-रूप में तीन धारणों के बा-बार धम्मा का। 'अवधिसा फूल' में उद्भव धम्मा 'ऊमव नेह बवार, निहोरा गुमर, खमीना खमीनी बापुरे, मुजरई, उरवस धमीना निवारती नेरे बनेरे बेरे इत्यादि' का प्रयोग है। धामा का एक सामान्य उदाहरण देखा जा सकता है —

जिन बीनो की कमाई पूरी हो जाती है जिनका पुल बृक जाता है वह सब फिर सरम में धारण भरती में जनमत है ऐसे ही बीन यह सब रात के दूरते हुए जाते हैं। (पृ ४७)

इस उद्धारण में 'पुल' 'सरम' और 'जनमने' ध्याय देने योग्य हैं। इनके तरलन रूप बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त होते हैं। 'अवधिसा फूल' उपन्यास में पञ्चमोद वर्ष 'पुने' 'परीक्षा पुड' में इन तथा इनके समकक्ष धम्मा का तरलन प्रयोग है ग्वारु वष बार रामाकांत में भी इनको उन्मय रूप में अपनाया गया। फिर भी अयोध्यासिंह ने ठेठमन की प्रतिज्ञा के कारण इनका उद्भव रूप स्वीकार किया। धाम साहित्यिक भाषा के लिए उपाध्याय जी का यह धारण मान्य नहीं हो सकता। भाषा को बाल-बुझकर कठिन न बनाया चाहिए परन्तु प्रत्येक 'बाहरी' धम्मा का छांट-छांट कर बाहर निकाल देने से भी वह विवृत हो जाती है।

१. 'बी ईन ललैतलुली ग्वड रीत का वर देवी इ रास फीमैरली बरड पर बि रीव धाम खो-ली रन रिन्नी निराख रीमि इ भूक औरन नई स।

२. भूमिका पृ० १५

‘अश्वत्थामा कुल’ उपन्यास मायिका प्रमाण है। सुन्दरी देवहूती ने रूप पर रीझ कर सम्यक कामिनी मोहन से वासमती मामिन की सहायता से यह प्रपञ्च रचाया कि यदि एक बान एक निवमपूर्वक देवहूती प्रतिदिन एक अश्वत्थामा कुल देवी पर बड़ावे तो उसका प्यार माई रोगमूक्त हो सकता है। फल अश्वत्थामा भुरज बूबड़े-बूबड़े ही निम सङ्गा है। सम्यक जनभावक भी यह बात भी जो धर्म में भ्रष्ट न हुई। देवी को प्रसन्न करने की धर्म के आधार पर उपन्यास का नाम भी ‘अश्वत्थामा कुल’ पड़ गया। कथा में अश्वत्थामा बचाने के लिए धीरे उपन्यास की सबसे महत्वपूर्ण बटमा पर धामिन होने के कारण यह नाम उपयुक्त प्रतीत होता है।

इस उपन्यास का कथानक सरल एवं सीधा है। पावनी का पति बूढ़ का उस के एक पुत्र धीरे एक पुत्री भी। पुत्री देवहूती सुवती थी परन्तु उसका पति देवसम्प नहीं बना गया था। देवहूती पर दुष्ट कामिनी मोहन कुपुष्टि रक्ता था उसकी सहायक वासमती मामिन थी। एक बार देवहूती का प्रिय भाई बहुत रोग हुआ। पार्वती ने पति क मत्ता करने पर भी धोम्य को बुलाकर खोर-बटका लिखाया। वासमती ने धोमा से बातें कर भी थी। इसलिए धोम्य ने बताया कि यदि देवहूती प्रतिदिन एक अश्वत्थामा फूल मन्दिर में बड़ावे तो एक मास में उसका भाई स्वस्थ हो सकता है। देवहूती सम्मया समय आ कर फल बड़ाने लगी। वासमती ने देवहूती का बालों में फँसाया ‘तुम्हारा सनेवों ही निकला जाता है तुम्हारा यह रूप यह जीवन! धीरे कोई प्यार करने वाला नहीं! बीमा चाहिए बीसा भावर नहीं’। ‘देवहूती लहू मास से नहीं बनी है। भी उसको भी है ‘कहाँ तक वह इन फलों से बच सकती’। एक दिन एक फूल को सूँघ कर देवहूती मरेत हो गई कहारी ने धामिन उसको पालकी में बासा धीरे एक कोठरी में पहुँचा दिया। परन्तु धर्म में ‘बरम का बैड़ा पार’ हुआ। वासमती छद्म-छद्म कर मर गई। कामिनीमोहन के भी अन्तिम दिन था मरने। मरती हुए उसने प्रापद्विषय कृपा में पहले देवहूती को प्यार की छीठ से वेकता का पर धाम में उसको एक देवी समझता हूँ’ देवहूती मरनी माँ धीरे भाई के साथ धाकर मर में यह धीरे फूलहूँवर धीरे वह बिनकर सारी सनत सम्मान करे, मेरे भी की प्यारी चाह यही है’। देवसम्प भी मर बाधिस मा मरे धीरे उठते मृत्स्व बर्म का पालन करन हुए सभाव-हित के अनेक कार्य किये।

पुत्र का नाम तीन है—देवहूती देवसम्प धीरे कामिनीमोहन। जैसे नाम है वैसे ही पुत्र भी। दोनों पुरुष-पात्र अपने-अपने भ्रूषों की साक्षात् मूर्ति हैं। देवसम्प वस्तुतः देव-सम्प है वह संसार में अश्वत्थामा अमुरक्त न होने के कारण मर छोड़कर बना गया था परन्तु प्रेरणा प्राप्त करके वह यथावसर बाधिस आ जाता है। देवसम्प बहुत दिन हम मरती पर रहे उनके हाथों देव का देव के मोर्गों का बहुत कुछ ममा हुआ देवहूती

भी उनकी छाया भी जिसने भले काम देवसरूप में किये उस मधमें उसका हाथ बाँधा ? वस्तुतः घर से बसे जाने के कारण देवसरूप कथा में एक-ही बार ही छिन्नर पाठक के सामने आते हैं। बनना बहुत ही नाविका के उत्तर-वर्ति में ही है। परन्तु यमनाथक माहि से घन लक्ष कपायक की धुरी बना रहा है। मेरक ने उसकी विविध परिच का प्रकाशन नहीं किया। परन्तु नाविका के जीवन का मर्म बड़ा अभिगात बनाकर उसके व्यक्तित्व की सच्ची छाया प्रस्तुत कर रहा है। कामिनीमोहन का 'मध्यमप्राज्ञ' का प्रति-निधि कहना चाहिए। वह मरणा है घोर बहु-बैठिया को कंधा कर उनका धर्म भ्रष्ट करने में ही अपने जीवन का मर्म मानता है। मानिक नामवती घोर बाध हर्मान उसके विरुद्ध बल है। कई बार कामिनीमोहन मरणा रहा होया परन्तु देवहूती के मात उसका प्रपञ्च मरणा परमिष्ठ हुआ। प्रायश्चित्त करते हुए उनका कायाकल्प हुआ घोर मरणा की मरणा में कई के मरणा मरणा के रूप जाने पर उनका चरित्र निर्मल बल के समान स्वच्छ दिखाई पड़ने लगा। पुष्ट पात्र में मुबार की मरणा बघनि देवयोग से चित्रित की गई है फिर भी चरित्रचित्रण का यह एक स्वस्थ प्रवास है।

देवहूती उपन्यास की नाविका है। घर उसमें सीता की एक बसा मार्गें तो देवसरूप में उस की घोर कामिनीमोहन में रावण की एक-एक बसा माननी पड़ती। देवहूती में मध्यमप्राज्ञ नाविका की भी कुछ छाया है। पति के प्रवास-काल में लम्पट पुरुष उसको अपने चमू में कमाना चाहता है। इन दो के प्रतिरिक्त नाविका में प्राथमिकता भी है वह दुर्बल है। पहले उसके मनमें कामना का कुछ चिन्ह नहीं होता पीछे बीरे-पीरे उसकी एक मरणा-सी दिखाई देती है। एक घोर कामिनीमोहन घोर नाविकी उसको कुमार पर ले आता चाहते हैं। दूसरी घोर पार्वती घोर प्रच्छन्न देवसरूप उसे साव-बान करते हैं। माई के प्रेम में उससे प्रसन्निते कून का बल कराया परन्तु दुष्टों ने उस की दुर्बलता से लाभ उठाया जाया। घन म देवहूती घनि बारा-बल में सफल हो गई। उसके पुष्प से उसका विमुक्त पति चरित्र सामना घोर वह सपरिवार सामान्य रहने लगी। लक्षक ने दुर्बलता को धिक्क कर देवहूती को माननी दिखा दिया है। परन्तु बल में सफल सिद्ध होकर वह देवी बन गई है। पुष्ट कामिनीमोहन ही सर्वप्रथम उसका एक देवी समझता है घोर 'जयक जाने मरणा मरणा' है। यदि स्त्री पतिव्रता है तो उस पर सकट सफल नहीं हो सकता पतिव्रता के ठेक से पुष्ट का भी कायाकल्प सम्भव है।

प्रस्तुत रचना एक सोहेस्य सामाजिक उपन्यास है। नाविक-प्रधान होने के कारण इसमें नारी-जीवन की समस्या का ही धर्म है। लक्षक का विस्तेषण है कि नारी माननी है इसीलिए हमसे दुर्बलताओं का निवास सामाजिक है, दुर्बलता पर विजय केवल पतिव्रत की बल से ही सम्भव है। विजयिनी बनकर नारी 'देवी' बन जाती है तब समस्त सिद्धियाँ (पति प्राप्ति आदि) उसका अनुकरण करती हैं। ऐसी देवी देव घोर समाज का भुरि-भुरि कल्याण कर सकती है—राष्ट्र को ऐसी ही देवियों की

मावस्यकथा है 'प्रियप्रवास' की राधा भी ऐसी ही बनी है। यौवन और पति का प्रियप्रवास फिर करेसु बधाति मन को बचन करने के लिए पर्याप्त है। उस बहती हुई व्यास में धोम के बमकौले विन्दु मन को क्षम भर के विये सुभा सकते हैं। जिसने अब तक धर्म-याजन किया है उसकी अन्तरात्मा किसी न किसी माध्यम से पतन को केन्द्रावली होती है और प्रायः गिरने से बचा होती है। यही व्रत है जिसके पुरस्कार स्वरूप पति भी लोट घागा है। धार्क्यण मुप्त हो जाने है धम-धाम की प्रचुरता हो जाती है। 'पति धनुहुन सदा रह सीता ही मेकक का घादर्य है यदि उसने लज भर को भी पति की यात्रा का उत्सवण किया तो उसपर कष्ट या संकट है, पार्वती के मन में पछतावा है जो अपने पति की बात नहीं मानती उनका मजा कमा नहीं होता पति ने कहा था कि ज़र जोम का पौव पदा बही घर जोपन हुआ।'

इस उपग्राम का दूसरा उद्देश्य धार्मिक सम्बन्धियों का सुपरिचाम बिलाना है। योत्साही किशोरीलाल के समान उपाध्याय अयोध्यामिह यह तो नहीं मानते कि समाज में जो कुछ विद्यमान है वह ठीक है परन्तु उनका विस्वास है कि हमारी सात्त्विक परम्पराएँ स्वयं एक हितकारिणी हैं उनके विपरीत लौकिक परम्पराओं में काफी अनर्थम मसाला भर गया है। जब तक सरकार न होगा समाज सुधर नहीं सकता। पतिव्रत शास्त्रीय परम्परा है इसके बिना नारी का हित सम्भव नहीं। परन्तु मन्दिर और तीर्थ श्रोम और सयाने परम्परा से विकृत हो चुके हैं। श्रोम तो जहाँ बामना घर को बर्बाद कर देगा। मन्दिरों में पत्थर की देवी न मानव (बेबूती) के रूप को समझ पाती है और न मानव (कामिनीनोहुन) के मन को। समाज-कल्याण के लिए हमें पत्थर की देवी (फुलदेवी) के स्थान पर हाड-मांस की देवी (बेबूती) की स्थापना करनी होगी पति को ईश्वर मानन वाली मागबी ही इस अवस्था के लिए पूजनीया 'देवी' है।

'धरम का बैड़ा पा' ठक सब नहीं माना जा सकता जब तक कि संजत को पृथ का पुरस्कार मिलने के साथ-साथ नुजन को पाप का धण्ड न मिल। इसीलिए सत्तनायक और बूती का धन कथन है। मृत्यु के संजन से कामिनीनोहुन की धाँपें झुन गई क्योंकि उसके संस्कार धण्डों के उमका मुबार लेपक की उस परम्परा में मौलिक योजना है संभव है इस योजना को प्रस्था देखूती को अनुमित सम्यति की स्वाभिनी बनाना ही हो। बासमती बूती-साहित्य-परम्परा से धाई है मरिने बूती कम में बड़ी योग्य मागी गई हैं इसका नाम ही इसकी वाति का सूचक है— (बासमती)। उसके चरित्र से जो 'बास' घापी है यह 'नुबास नहीं' दुर्गम है। उसकी गुमना 'बपसा' उग्रपाग की 'पती' से की जा सकती है। लेखन में हमने धन को दुर्गम्यमय नहीं बिलाना थायह इसलिए कि इसके दुर्गम्य कभी संभव नहीं हुए, सत्तनायक की धनयोजना कभी नहीं उग्रपाग में यथाय मन्-मन् जो नहीं है।

मनसा बाबा और कमेला तीनों ही प्रकार से जैसा कमे हम करते हैं बसा हो ता उना मनुष्य हमे उसका फल भोगना पड़ता है ।

उपन्यास रत्ना और वैयक्तिक दृष्टिकान की दृष्टि से हम उपन्यास में कतिपय विशेषताएँ हैं । मेजर की दृष्टि में साहित्य-निर्माण का लक्ष्य भाषा एवं समाज का सुधार है । उसका उपन्यास लिख एव उन्नत समाज के लिए है उसको धार्य की धोर ने जाने जाता उसका मनोरंजन करके उसे पथ भ्रष्ट करने जाता नहीं । इसलिए शास्त्रव मारी सीता (या राधा) की छाया से ही गाबिका देवदूती का निर्माण उसने किया है । यह कथा के माध्यम से समाज विशेषतः हिन्दू मारी को सम्मार्म की धोर ने जाना चाहता है । कला में भी यह उपन्यास अपने काल से धामे बहा हुआ है । इसमें धाया की एक निश्चित नीति है । धर्म लेनकी के समान सरलत धारि के उद्धारन या शत्रु भाषा की कविताएँ इस रचना में नहीं हैं । कभीकवन कम है वर्णन अधिक । साहित्य और गीतो की योजना धवनी विधयता है । कथाकार की प्रेसा मेजर का कवि-रच बड़ी अधिक कमकता है । कथन बड़े रम्य एवं भावुकता-पूर्ण है । अन्तिम अध्याय केवल धापीबाँव के लिए है कथा के हेतु नहीं । वर्णनो का बाहुम्य इस उपन्यास को सरलता प्रधान कर सका है ।

रामप्रसाद सरस्वती के उपन्यास

किरणशशि

बटनारमक उपन्यास प्रेमलता मिशने के साथ बनारस के पुरोहित रामप्रसाद सरस्वती ने सन् १९०२ में 'किरण शशि' नाम का एक 'धीपदैधिक उपन्यास' लिखा । पर पृष्ठ और इस परिच्छेद की यह कहानी आत्मकथात्मक सीमी में बड़ी गई है । नामक जयमोहन के जन्म से लेकर सम्पास बह्य तक की इस कथा में रिमो के मिल-मिल रूप विवित किये गये हैं और यह धरित किया गया है कि पुष्प के जीवन की कुछी रहस्यमयी स्त्री के साथ में है ।

धापीबासी नारायणशिहू पत्नी की मृत्यु के बाद कुछ विरक्त रहने लगे । पुत्र जयमोहन के बहुत कहने पर भी काफ़ी बिना तक उन्होंने विवाह नहीं किया । परन्तु पटना निवासी महेश्वरनाथ की सम्मति मानकर उन्होंने पुत्रप्राप महाशेता से विवाह कर लिया । जयमोहन अपने बाबतहृषर मम्ममकुमार के साथ बम्बई गया हुआ था । बड़ी कुमारी 'किरण सुन्दरी' पर यह मोहित हो गया किरण सुन्दरी ही उपन्यास की मुख्य नायिका 'किरण शशि' है । किरण शशि भी नामक पर मुग्ध थी । कुछ समय बाद पुष्प-वैप में अपने नायक की सहायता की धीः अस्थी रूप प्रकट कर उसने विवाह कर लिया । बम्बई में नायक पर कुमारी स्त्री उर्ध्वी मोहित हो गई, परन्तु नायक के उपदेश से उसकी ज्ञान हुआ और यह सम्मालिनी बन गई, सम्पासी होने पर नायक उससे

मिलता है। नायक के जीवन में तीसरी स्त्री मुकेशी घाई को उसके अभिन्न मित्र मन्मथकुमार की अनुवा थी। मुकेशी के माता-पिता उसका विवाह नामक से कर देना चाहते थे परन्तु मुकेशी विवाह किसी और प्रेमी से करना चाहती थी और नामक के साथ भी घरना सम्बन्ध बना रखने की इच्छा थी। मुकेशी को उसके उस प्रेमी ने छोड़ दिया तब वह नायक की पत्नी बनने को घाई परन्तु नामक ने उसे स्वीकार न कर के किरणसिंह से विवाह किया। इस पर एक दिन मुकेशी ने नामक पर घुरी से प्रहार किया जिसकी भीष में सहकर किरणसिंह ने प्राण त्याग दिये। इन घटनाओं से नामक का मन बिरक्त हो गया और वह सन्ध्यासी होकर बदरीनाथवन बना गया।

यह उपन्यास एक युवक के आत्मावीन अनुभवों का वर्णन है। चार स्त्रियाँ उस के अन्दरे जीवन को यहाँ तक जाने में कारण बनीं। सबसे प्रथम नायक की सौतेली माता महास्वेदा है जिसने घरने पति को भी तंग कर रखा है। नायक पर वह बोरी का प्रपराव लगाती है। अन्त में घाटी सम्पत्ति का अधिकार प्राप्त करके वह उन्मत्त से हट जाती है। वह उस स्त्री की प्रतिनिधि है जो घरने का जीवन में किसी भी प्रकार को अपने अनुभव में कटाकर उसके पहले पुत्र को सम्पत्ति से वंचित करने का काम बिछाना करती है। नायक के जीवन में तीन स्त्रियाँ और घाई, वे तीनों नायिकाएँ हैं। किरणसिंह वैष्णव का प्रार्थन है वह जिस व्यक्ति पर मुक्त हो गई उसको क्यों तक सोचकर उसकी पत्नी बनती है और उसके लिए हंसते-हंसते अपने प्राण त्याग देती है। मारी का वह प्रार्थन अपनी सम्बन्धिता में अनुभव है। उर्वशी मारी का प्रसादपूजक विभू है। यदि किरणसिंह प्रवृत्ति है तो उर्वशी निवृत्ति। नायक के लिए एक पत्नी है दूसरी मिथ्या। जिस कामोत्तेजना से वह नायक के पास आई उसी वेग से उसने संसार त्याग दिया। अश्विनाथन में रहे वदे उसके राज्य स्मरणीय है 'जगमोहन ! धाम्य में सिखा नहीं मिलता। असौ संसार की तरफ से बिछ हटा लिया प्रच्छा ही है। सब कुछ तो संसार के फन्दे में रहने वाले मनुष्य को कभी मुक्त नहीं मिलता है'। मुकेशी मारी का विह्वल कर है, उसकी कुछ कुछ तुलना कविवर मैथिलीशरण गुप्त की सूर्यगता (पंचवटीकाव्य) से हो सकती है। उसके सिद्धांत किन्तु नवानाह है 'जब स्त्रियाँ कुछ किया चाहती हैं तो उसे रोक ही नहीं सकता है। प्यारे, घांसी ही मैं क्या मरा है जो तुम बका रहे हो ? घांसी (दूसरे के साथ) होने पर भी मैं तो तुमसे इसी तरह मिला करूँगी।

बोरी का प्रेम भीठा और मन को लुमाने वाला होता है। मैं भी पढ़ो-लिखी हूँ और सब कुछ जानती हूँ 'दोसरी के पाँच पति थे वह तो कभी भ्रष्टा नहीं कहलाई। मेरे तो बनेन्द्रचन्द्र और जगमोहन केवल दो ही हैं' १२। अन्त में पारिविध्य और प्रवचनमिता मुकेशी नायक के प्राण लेने पर उठाऊ हो गई। सूर्यगता के समान वह स्वप्नरूप है भीतर से कमुवित होत हुए भी अपनी माया के कारण जन-सीन्धव में घटीब घाफ़लेनमयी है। इन तीन नायिकाओं का 'स्त्री चरित्र' १३ उपन्यास का मुख्य कर्षण विषय है। नायक के घन्टों में ही नायिकाओं की तुलना देखने योग्य है 'जब मैं मुकेशी का

नहीं पड़वाती तो कभी मुमकिन नहीं था कि आज जम्पा प्रचंडनीय जम्पा बन जाती" ।
 झूठी धीर सुनहरी के शब्दों में 'यदि मेरे माई रुपये के सामर्थ्य पड़कर तेरे बूढ़ पिता
 के साथ मेरा ब्याह न करने तो कदापि मेरी ऐसी बच्चा नहीं होती । मेरे कूटलों
 को मार करके भोग बूढ़ विवाह करने स बर्बोरे धीर तंगी सहनशीलता उधारता धीर
 क्षमापरायणता को देख सब धनगी पुत्रियों का शिक्षिता बनावेंगे' । जिस घर में स्त्री
 मुझिखिता धीर उत्तम स्वभाव वाली होती है उस घर में भी पुत्र के कारण घाने पर
 भी प्रायः विशेष दोष व्याप्त नहीं होता ।"

बूढ़-विवाह धीर अधिका के अधिरिक्त लेखक ने प्रसन्नवद कथाविक्रम पर्व
 धीर भोपा-राने प्रादि कुरीतियों पर भी प्रकाश डाला है । स्वयं-विक्रम की स्वयं
 सुनहरी ने निम्ना की है । पर्व के भीतर रहने वाली सुनहरी की दुराचार पर लेखक ने
 विचार दिया है । एताम के लिए भोपा या स्वाने की बात मान कर बन्धित होना
 मनोहरलाल के जीवन का अधिघात है । लेखक का विश्वास है कि समाज की उन्नति
 शिक्षा में होगी धीर स्त्री-शिक्षा भारत को स्वर्णयाम बना सकती है । स्त्री को
 मिलने-मिलने सीने पिरोने कसीदा निकालने धीर उत्तम-भोजन बनाने की शिक्षा देने
 के अधिरिक्त प्रायः घण्टे के समग्र सदैव शास्त्रान भी दिया जाता चाहिए ।

इस उपन्यास में चार पात्र हैं—दो स्त्रियाँ धीर दो पुरुष । नायिका जम्पा धीर
 उरबी सीधेनी माता सुनहरी दो बर्बोरे की स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है एक बर्बोरे
 शिक्षिता उत्तरदायित्वपूर्ण महिलाओं का है दूसरा अधिक्षित कर्कशा स्त्रियों का । दो
 पुरुष पात्र बड़ दुर्बल एवं नगण्य हैं । इन पुरुषों के विषय में किनी ने कहा 'पुरुष इतने
 हल्के नहीं हो सकते' । बूढ़ मनोहरलाल उरबी माया के हाथ में ऐसा नाचता है कि
 घन्त में घपना प्रायः भी सो डेखता है उसकी निरक्षरता निन्दनीय है वह जान ही न
 सका कि पत्नी धीरपुत्री में से कौन लक्ष्मी है धीर जम्पा का पति
 यद्यपि बहुत दिनों से उनकी प्रेम करता चला उसने अपनी
 पत्नी की बच्चा सुभारने का धन नहीं किया मैं पड़ने वाला
 इतना निष्क्रिय क्यों है, वह लेखक ने यह पूर्व
 विषय में कुछ सोचना या कुछ कर सकता एक
 हो सका अब तक कि जम्पा को पिता न न
 गई । शिक्षिता जम्पा जिसकी कुशल है नि
 का विचार करते हुए लेखक ने पुरुष क नि

जम्पा उपन्यास का लेखक

जन-समाज की बच्चा सुभारने का

ककिताएं धीरपुत्रीक से घा गई हैं ।

धीर बर्बोरे बहुत अधिध है । लेखक को

उसके बिनाश में सुखमता है। बटगाणों का निमोजन विस्मयनीय है। उपदेश का कोई भी प्रचलन हाथ से न जाने देकर भी सेवक की यह प्रथम कृति कपानक की दृष्टि से रोचक एवं प्रभावशालिनी है।

अन्य सुधारवादी उपन्यास

राधा

धर्मसमाजी दृष्टि से रचित उपन्यासों में 'राधा' उपन्यास का विशेष महत्व है। इसमें २४८ पृष्ठ और ९ परिच्छेद हैं। पौराणिक स्थान यवना एवं पौराणिक पात्र नन्दकिशोर, बामुदेव राधा कृष्ण आदि को महीन सुधारवादी रूप इन कल्पित कथा के माध्यम से दिया गया है। नायिका राधा के व्यास से धर्मसमाजी महिला की कठिनाइयाँ और उनके धारण सुभद्रा इस उपन्यास में वर्णित हैं। वास्तव सत्त्व की दृष्टि धारण चित्रण पर रही है। सुधारक धर्मसमाजी एवं पौराणिक सनातनी जीवन का यथावत सचित्र रूप रचना का बर्णन विषय है। अनेक प्रसंगों की व्यवहारवा एवं दृष्टान्तों के द्वारा लेखक ने अधिक से अधिक सुधारों को अपने प्रचार का विषय बनाया है।

पंडित नन्दकिशोर के पुत्र का नाम बामुदेव और पुत्री का नाम राधा था। पंडित जी का विस्वास था कि 'बहु लोग बड़े मूर्ख हैं जो अपनी सम्पत्ति को शिखा से हीन रखते हैं'। वे जानते थे कि 'सम्पत्ति न होने पर स्त्रियाँ नहीं जीवता होकरी हैं। कहीं भीकर, पैर के छाप मिल रही हैं। कोई समानों या टोला करने वालों के कपड़ों में सँभ रही हैं'। 'यदि भद्रियों की आत्मानुसार पच्चीस सास की धातु में विवाह करे और बहूबारी रहकर बिचा पड़े तो यह उपद्रव ससार से बाहर दूर हो जाए'। अतः उन्होंने राधा को 'समाधमप्रकाश स्वामीजी कृष्ण ब्रह्म सब पढ़ा दिये'। समय पर विवाह की समस्या आई। विवाह में पाँच शर्तें थी—

- (१) विवाह वैदिक रीति से होना
- (२) स्त्रियों के गन्दे गाने न होंगे
- (३) गन्दे गानों की जगह घर में मंगलगायन
- (४) रंजी माँहों का अपममय बन्ध और
- (५) आदिवासवादी तथा जागजाड़ी पर बन नहीं लक्ष किया जायगा।

इस विवाह में श्रुतिगी मन्त्रगृह मन्त्रा—सभी पुजन नहीं हुए बकरे का कान तक भीर के बेसी पर नहीं बैठे' प्रत्युत एक हजार रुपये वैदिक संस्कारों को दान दिये और विवाहार्थ तथा कंगालों को भी दान दिया'। यह सब शिखा के प्रताप से ही हुआ।

'राधा धामजाया में दाई आदि रख लगी थी' यह बड़ा अप्रिय ध्यास्यान बेटी तथा रोचक दृष्टान्त भी सुभाती थी। फिर भी राधा 'घर का प्रबंध बनाने' में बड़ी कृष्ण थी। उतने दुगा से अपनी साम को अपने बघ में कर लिया। बीरे-बीरे घर के

को काले पानी की सजा मिली। सब सोय पाप के पुनर्जन्म पर एक दूसरे को समझ गये। गिरिजा ने कहा 'मे तो जन्म किसी को दोष नहीं देती प्रारब्ध ही सब की जड़ है जो मसीह में मिटा है उसको कोई मिटा नहीं सकता'।

इस उपन्यास का कथानक बहुत सुसज्ज हुआ है। और यदि यह मोहित है तो जसा के विकास का शोक है। हिन्दुधर्म में बहुत विवाह की प्रथा कराचित् सन्तान के ही लिए बनी होती। धार्मिकार्थ से लेकर धर्म तक के साहित्य में यह समस्या ही भरी बनी हुई है। केवल हिन्दू-समाज में ही पितृभक्त का इगता महत्व है कि सन्तान प्रत्येक व्यक्ति का कर्म बन गया है। सन्तान के लिए बर्धमान व्यक्ति भी दूसरा विवाह कर सता है। रामप्रसाद की भी यही दशा हुई। बन्ध्या बड़ी पत्नी से छोटी पुत्री पत्नी सदा पति की दृष्टि में अधिक स्नेह की आज्ञा रही है। और छोटा में सद्भाव रह ही कैसे सकता है जबकि पति-पत्नी एक दूसरे के पुरख हैं 'मान बाटा जाता है जबकि भत्ता नहीं बाटा जाता'। असु, जिस घर में दो पत्नियाँ होतीं उनमें घाति नहीं रह सकती और उस घटानि का चिह्न बैचारा पति ही होता है। ऐसी घटानि में सहयोग देने वाली पड़ोसियों की भी समाज में कमी नहीं देखा गिरिराज उनका प्रतिनिधि है। घायल दुष्टाने के बहाने वह हाथ सेकने लगी। दुर्बल बमेरी आत्मिक देखा की शिष्या बन गई और बड़ी के दरारे पर पति को अपने बच में रखने के उसके अनेक उपाय किये। एक भोग बाहु-दोने ऐसी स्त्रियों का चिह्न करते हैं। दुष्टी और उनकी बढ़ती हुई भावों से पति को घर से जवनीठ रहना पड़ता है। बमेरी के जीवन में दोनों हैं। अन्त में वह गिरिजा को बिप देने लगी। परन्तु अन्त जगदा हुआ और वह बिप छुटने ही लिया। गृहस्थ जीवन की यह घटना घायल भी पथी की रवों देखी जा सकती है। इस कथानक में कोई आसक्ति कथा नहीं है कोई भी घनावबध प्रसंग बोझा नहीं गया। समता है कि कथानक ही लेखक का मुख्य उद्देश्य है समाज की आलोचना गौर।

'जबन बीबी' उपन्यास में नायक के अतिरिक्त चार पात्र मुख्य हैं और चारों सन्ध्या-समाज की हिन्दू महिलाएँ हैं। किरणछवि^१ उपन्यास में भी एक नायक और चार नायिकाएँ इसी वर्ग की हैं परन्तु बड़ा नारी का केवल प्रेमी के ही चित्रित मिलता है। यहाँ गिरिजा और बमेरी तथा माता और गिरिराज एक दूसरे के निपरीत हैं। गिरिजा में पत्नी का आदर्श और बमेरी में दुर्बल नारी का यथार्थ रूप भ्रूँक रहा है यदि गिरिजा भ्रष्टा है तो बमेरी दृष्टा है। माता और गिरिराज भी एक दूसरे के निपरीत हैं परन्तु माता दुर्बल मोली है और गिरिराज आत्मिक लेखक ने देखा गिरिराज को 'देखा बुधा' भी कहा है। रामप्रसाद की माता भोली है वह बन्ध्या पुत्र बन्धु से सम्बन्ध नहीं की 'परन्तु रामप्रसाद की मा ने अपने हाथ से जो भीज बाया है पोछे ही समय में उनकी इसका फल भोग करना' पड़ा। जब पुत्र हाथ से निजलने मवा तो माता ने घर से बाहर उनकी बाँटों की उसे स्वयं नहीं समझया। यह एक मनोवैज्ञानिक दृष्टि है। जो अपना है उसे हमारी मलती बतलानी चाहिए न कि बाहर

कैनाकर हुमको बदनाम करना चाहिए। धस्तु 'रामप्रसाद ने मन में ठाना कि जब मां हमारी घर घर बदनामी करती है तब घर जाइ मिट्टी में मिस जाए मैं उससे बात भी नहीं करूंगा'। 'बेटे ने समझ लिया कि मां का मुँह पर अब पहले का कुछ भी स्नेह नहीं रहा। मां ने भी समझा कि बेटे की पहिली मातृभक्ति अब कुछ भी मां पर नहीं है।' धस्तु, दुर्बल माता का स्वान्त आसक्त पड़ोसिन को मिल गया। देखा दुधा बड़ी सराब गायी है वह 'साँप-कप से काट कर बैलकप से बचा करन' वाली है। वह जिस घर में बानी है उसका सर्वनाश करती है। सहानुभूति विज्ञान बानों में 'देखा की स्वन माथा ही सबसे अधिक' रहती है। लेखक ने स्वयं भी कहा है 'अब देखा मितियाइन। अब तुम 'अब तुम्हारी माथा'।'

दुर्बल रामप्रसाद उपन्यास का नायक है। जननी बल धीर आया बर्ग की दो दो स्त्रियों के हाथ में खेसला हुआ वह धस्तु में अपनी पतिप्राना पत्नी द्वारा ही सत्य पर लाया जाता है। निषेधता यह है कि हम उपन्यास में रामप्रसाद के चरित्र का विकास संक्षिप्त किया गया है। प्रारम्भ में वह मानसिक सन्तुष्टि तथा पत्नीप्रीति का परलु भव्य तक आते-आते वह सराबरी बेधवामामी विक्षिप्त तथा वैधा उद्गानबामा बन गया। माता के कहने से उसने दूसरा विवाह किया दूसरी पत्नी के कारण उसने पहली पत्नी और माता को छोड़ा। नई पत्नी के मातृपणों के लिए उसने बर्तन किया। घर से तंग आकर वह सराबरी बना और मन बहिनमते के लिए वह सुन्दर जान के घर जाने लगा। एक दवा आकर वह पागल-सा बन गया। लेखक के शब्दों में 'हम भी निश्चय सज्जत हैं कि इतने बड़े लिखे-पढ़े पण्डित रामप्रसाद गरीबप्रसाद हो गये'। 'जिसका एक बार पाँव छिपलता है वह क्या फिर खरब सकता है'। रामप्रसाद पर दवा करके सबका निरका के प्रसार से ही लेखक ने उपन्यास को सुन्यास बना दिया है 'परमेश्वर ने जैसे उनका दिन ठेरा वैसे सब का केरे'।

इस उपन्यास में बचोपकरण अधिक नहीं हैं परन्तु भाषा प्राञ्जल है। 'उबल कीड़ी' नाम में मीठीरखा नहीं है परन्तु उपन्यास की कथावस्तु चरित्र चित्रण मीठी तथा उद्भव सम्मीर है। प्रायः भाषा साहित्यिक है परन्तु गिरिजा नायिका की भाषा घरेलू है 'तब सगरी की नाक की मान पर चडा कर बोसना'। भूमिमा का स्वभाव या देखा अपन बर्ग की भाषा बोसती है और जब साहब का निर्धन-बानस घोंघड़ी में है। लेखक के कुछ वाक्य बड़े मार्मिक हैं —

(१) भारत में महिलाओं का यह अर्धशर प्रेम हिन्दू-मुसल के नियामनाम का प्रमता लोप कर रहा है। (पृ० २२)

(२) लेकिन रामप्रसाद घर के भारों निचड़ कर छौंठ हो गये वह खबरशर क्या होने ? (पृ० २१)

१	१ २०	२	१० २२	३	१ ४२	४	१० ११०
२	१० १११	३	१ २१	४	१ ४२		
५	१० १४१	६	१ ११				

(३) बिजली सी हूँगी पर एक भयानक मेघ पिलाई दिया। फिर टपाटप बूँदें गले लगी। (पृ. २०)

(४) हजार हो तो मा का प्राण है बैठे के धर्मन की बात सुनकर कहा स्थिर रह सफरी है। (पृ. ११८)

सामान्यतः इस उपन्यास में दूसरे बिबाह के कपरिणाम दिखाये गये हैं। साथ ही दुर्बल व्यक्तिपों के चरित्र का इतिहास भी है। चकारच दुष्टा ऐसा घोर धावर्ष परनी विरिजा के अतिरिक्त सेव तीना पात्र दुर्बल एवं बर्षार्य है। उद्देश यह भी दिखाना है कि 'इस संसार में सब कुछ बाधा का सकता है लेकिन धावर्षी का स्वभाव नहीं समझा जा सकता। बल् में बिठने धावर्षी है उठने ही ठाह के उनसे स्वभाव भी है'। मेरक में मानो पाठको को चेतावनी दी है कि 'बबरबार रहो। यह संसार बड़ा विकट स्थान है। एक बार भुलने से भी रसा नहीं है। सब ठावमान होकर चलना चाहिए'। चरहर पात्र की कामना में ही रामप्रसाद से बचन करमा इसी समस्या का पूर्ण विकास 'यवन उपन्यास में हुआ है। चर की अक्षान्ति से सम्प्राप्त मुश्क भी किस प्रकार दुर्गमनी बन जाते हैं यह रामप्रसाद के जीवन से सीखा जा सकता है। चमेरी घोर रसा का बुरा प्रत्य दिखाकर मेरक में कर्मफल में विश्वास प्रकट किया है। कबा-दीनी भी यन्व सामान्य सामाजिक उपन्यासों की अपेक्षा प्रीक है। यहाँ कोई भी अविश्वसनीय अथवा अवाञ्छनीय वृत्त नहीं मिलता। धार्यसमाज घोर समासन वर्ग के संघर्ष में न यह कर मेरक में हिन्दू बृहत्त्व की एक सामान्य परम्पु महत्त्वपूर्ण समस्या को उठा कर उसे धावर्ष की प्रसिका से अंकित किया है। कसा की दृष्टि से यह उपन्यास प्रीक तथा सफल है।

बृहन्मन्त्र महाय के उपन्यास

राधाकान्त

द्वितीय साहित्य की नाभिकता से प्रभावित होकर बाबू बृहन्मन्त्र महाय में प्रेमचन्द-पूर्व-काल के अंतिम दिनों में कज सुन्दर एवं पाबुक उपन्यास हिन्दी को दिये। इनमें से 'लासचीन' 'सीम्बर्बोपासक तथा 'राधाकान्त' विशेष रूप से प्रयत्ननीय हैं। 'लासचीन' ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें लासचीन नायक बाह धारने स्वायी का सब माध कर बैठा है। 'सीम्बर्बोपासक' में बुद्धात्त प्रेम का आचारमक वर्णन है। 'सीम्बर्बोपासक' का नायक स्वच्छन्द प्रेम का उपासक है। अपने बिबाह के धमसर पर ही बहु धपनी लाली के रूप पर रीक गया घोर अघसे प्रेम करले लगा। धाली भी उससे प्रेम करले लगी परम्पु उसका बिबाह एक दूसरे व्यक्ति के साथ हो गया। फलतः दोनों बरों में पाबुकता-अन्व अक्षान्ति रहने लगी। दोनों बहिर्न हुल हुलकर मर यमी घोर नायक रीते के लिए बच रहा। इस उपन्यास की समस्या सामाजिक घोर मनोवैज्ञानिक

दृष्टि से बड़ी स्वाभाविक है। यदि माधवी (सानी) का विवाह हमारे के माप न हो जाता तो किमोरोमान गोस्वामी के 'पुनर्जन्म वा सीधियाबाहू' उपन्यास की छाना में दोनों बहिन एक ही घर में धाकर जीवम बिठा सकतीं। परन्तु माधवी किसी हमारे की पत्नी है इसलिए धर्मरक्षा में प्राण देने के दतिरिक्त उसके पास धीर कोई माप देने नहीं बचता। लेखक ने समाज की ज्वलन्त समस्या का कवित्वपूर्ण चित्रण किया है।

ब्रह्ममन्त्र सङ्घान का सम्बन्ध 'सामाजिक उपन्यास' तो 'राधाकान्त' है जिसका प्रकाशन 'मैन्सर्वोरायक' के प्रकाशक द्वारा था। इसकी 'भूमिका' पर दिनांक १०-३-१२ लिखा हुआ है परन्तु प्रकाशक के नाम के साथ 'सन् १९१८ ई०' मुद्रित छाया है। इसने यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस उपन्यास की रचना तो सौन्दर्योपसर्ग के साथ ही माप सन् १९१२ ई० में हो गई थी परन्तु लेखक ने इनका प्रकाशन उस समय कराया जब 'मैन्सर्वोरायक' का संस्करण ने प्रकाशित बाहर किया। यह उपन्यास दो खण्डों में विभक्त है। 'बैंग नाटककार विरीशचन्द्र घोष कृत 'बापाल' नाम्नी एक छोटी-सी कहानी के आधार पर इस उपन्यास के प्रथम खण्ड की रचना स्वतन्त्र रूप से की गई है किन्तु दूसरे खण्ड में वहीं से सहायता नहीं ली गई है।^१ प्रथम खण्ड 'राधाकान्त की आत्मकहानी' है और द्वितीय खण्ड में हरेन्द्र की आत्मकहानी है।

'राधाकान्त' उपन्यास की 'भूमिका' बड़े महत्व की है। उसमें लेखकान्वय हिन्दी उपन्यास की पतिविधि पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। एक वाक्य में लेखक ने आलोचना कर दी है कि 'आत्मक उपन्यासों का बाजार इतना परम है कि कभी-कभी लोगों को उपन्यास का नाम भुनकर नाक-झों छिड़ोड़नी पड़ती है। उपन्यास नाम से किन्ती ही एसी पुस्तकें छपती थीं जिसके देखने में भी समय नया है वह व्यर्थ ही जाता है। क्योंकि अधिकतर उपन्यास तो 'बटुआपूर्य' प्रसीललानम चरित्रनाटो रनी की कहानियाँ नाम ही हैं। उन तथाकथित उपन्यासों की तीन कमियाँ हैं—लेखकों में धर्मरक्षा का अभाव अथवा उपन्यासों का अनुकरण तथा पात्रों की प्रवृत्तना कर के अन्त पर दृष्टि डालना। लेखक के ही शब्दों में—

(क) प्रविष्ट में उपन्यास आदि ही के सहारे तोय समाज देश तथा जाति की रीति-नीति एवं आचार विचार से अवगत होते हैं। 'उपन्यास लेखकों को उपन्यास बहुत सोच-विचार कर लिखने पड़ते हैं।

(ख) यह बड़ी नहीं चाहिए कि प्रसिद्धी उपन्यासों के आधार पर, मिलके भी में आगे निकलें।

(ग) आत्मक उपन्यासों में विशेष ऐंछे ही हैं कि जिसमें पात्रों का चरित्र तथा भाव प्रतीति प्रति वर्णन करने का बल नहीं उठाया गया।

१. ई० किमोरोमान गोस्वामी के उपन्यास

२. प्रकाशक—ब्रह्ममन्त्र सङ्घ, मधुरा

३. आलोचना उपन्यास विरीशचन्द्र १०

४. 'राधाकान्त' की भूमिका

५. 'राधाकान्त' की भूमिका

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि उस काल के अधिकतर उपन्यास सामान्य पाठकों के लिए सामान्य भेदका द्वारा लिखे जाते थे। गनीरजन के साथ इनका स्थान सामाजिक उत्थान की घोर श्राव नहीं था।

उस बरनाली प्रवाह में 'सामाजिक उपन्यास एक स्वच्छ एवं गभीर सोच के समान है। माया एवं धीमी के अतिरिक्त सभी चीजें विपरीत और हैं—घातक अरिष छात्रों की सहायता तथा सामाजिक कुरीतियों की धारणा। मैसक ने 'भूमिका' में इन विरोधों की स्वयं भी विज्ञप्ति की है —

(क) जब बटना-युक्त धर्मवीरनामक अरिषनाथी गरीबी कहानियाँ पढ़ते पढ़ते पाप लोगों का भी ऊँच जाय वह पाप लोग इसे धरने हुए में नीचिबना और देखिबना कि पाप लोगों के मन की इनसे कुछ विषय मिलता है वा नहीं पाप लोग कुछ पालि इसमें अनुभव करते हैं वा नहीं।

(ख) बटना की घोर विरोध पाल न लेकर निरन्तर रूप से हमसे बचना ही गई है। इसका मध्य यह है कि स्कूल तथा कालेज के विद्यार्थियों की भी निरन्तर मिलने में इनसे किचित् सहायता मिल सके।

(ग) धार्मिक भावों और धर्मियों का इसमें स्पष्ट समावेश है। जिसमें परोक्ष रूप से सामाजिक कुरीतियों पर साधारण धारणा की गई है।

केवल 'भूमिका' में ही नहीं उपन्यास की कथावस्तु में भी मैसक ने ऐसे प्रश्न की योजना की है जिससे हिन्दी के छात्रासीन उपन्यास-साहित्य तथा धारणा प्रवाही पर प्रकाश पड़ता है। यह निश्चय है कि पाप कुरी वस्तु है और समाज से पाप का सम्बन्ध होता चाहिए। परन्तु प्रश्न यह है कि साहित्यकार इस सम्बन्ध में किस प्रकार सहयोग दे। समाज का कृति बचाव बिना अक्षिप्त करने वाले कहने हैं कि साहित्य के भीतर पाप का बिना देखकर पाठक उसको जब से उल्लासना सीखता है प्रत्युत यह कहना अधिक उचित होगा कि कुरी के सभी कलाकार अपनी कला का चरम मध्य कुरी का सर्वनाश ही बसनाते हैं। यह सिद्धांत आमक है। 'पाप की प्रत्युत धारणा धर्मित होती है। दूर जागन पर पाप पीछा नहीं करता किन्तु निकट जाने पर चिमट कर घेर लेता है'। यदि कोई यह कहे कि 'प्रकाशका के लिए धर्म-लोभ से जो वह मन में धाता है निश्चय धारता है'। मेरी बलि स्वतन्त्र नहीं है। मलय दाम पाकर, प्रकाशकों के आकाशनाम में प्रकाशकों को लिखा करता हूँ तो वे मैसक भी इस अपराध के भारी अवश्य है वा अपनी रचना के द्वारा अपने पाठकों और बर्षकों को इस कुमारी पर चलने में सहायता देते हैं'। क्योंकि हिन्दी में 'सहज रमणी-अरिष' के समान ऐसी अनेक पुस्तकें हैं जिनका पाठक पर बुरा आरिषिक प्रभाव पड़ता है। पाठक को इनकी कुरी भावें ही धारणा करती हैं। 'प्रभाव वस्तुपीर अपनी धमिनी के संप्रदय का दम

नरठा नजर पाया^१ । अस्तु ब्रजनन्दन सह्याय ऐसे मलका को माहित्यनायक एवं समाज-
संरक्षक समझते हैं। कहीं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जैसे उच्च धारणा का मरुत चलने वाले
कलाकार और कहीं बरसाती में डूबा कं समान नय-नये अप्सरार निकामन बात मन्त्रणा
उपपासक। मलका ने अत्यन्त श्रद्धा के साथ लिखा है। अर्थात् भारतेन्दु ने उत्तमोत्तम
नाटकों की रचना की। श्रीनिवासदास का भी परिश्रम निराला हुआ गया^२। भारतेन्दु
की सदायमता से सब लोग परिचित हैं। श्रीनिवासदास ने जो अपन मान्यता और उन
स्थाप से जो उच्च धारणा प्रस्तुत किया-वा उनकी (विशेषण 'परिभाषा' के उच्च
सामाजिक स्तर की) लेखक में यहूता स्वीकार की है और श्रीनिवासदास का भारतेन्दु
के बाद सर्वोच्च स्थान दिया है।

हमारे आलोच्य-काल की एक विशेषता यह थी कि लोग मौलिक में ज्ञान पर
भी मौलिकता का दावा करते थे। बड़े-बड़े लेखकों के विषय में भी यह विचारमान
समस्या है कि उनको किस धर्म में मौलिक माना जाय। ब्रजनन्दन सह्याय ने एक
स्थान पर इस विशेषता की बड़ी स्पष्ट आलोचना की है। साधारणतः आचार्यन ना
उपपास इसी ढंग से लिख ही जाते हैं। मैंने ना एक साधारण लेखक की छाया भी है।
मैंने तो ऐसे हैं जो अधिक धार्मिक प्रसिद्ध लेखक की पुस्तिका का अविकसित अनुशासन करके
भी स्वतन्त्र ही लेखक गिने जाते हैं। अपन ग्रन्थों में लोग यह स्वीकार करने का बल
नहीं उठाते हैं कि समुक्त धर्मशास्त्र की समुक्त पुस्तक के आधार पर उन लोग न लिखा
है वा समुक्त पुस्तक का अनुवाद किया है। जान गुन जाने पर वह बैठते हैं कि सयोग
से भाव टकरा गया है। ज्ञान तो हमने इस पुस्तक का नशा देखा था।^३ लेखक का यह
बलन अज्ञान्य सत्य नहीं मानना चाहिये। परन्तु हमना सत्य है कि उन युग में ज्ञान
की वृद्धि होने के कारण हम प्रकार का ज्ञान विन्नी पीया तक सुनने में बल जाना था।
क्याकि 'सभी एक हिन्दी भाषा में सर्वार्थ समालोचना की प्रथा नहीं थी। जो समा-
लोचना गुप्त प्राय केजते हुए बड़े विचार-मान है। समालोचना करते समय प्राय-
पुस्तकों की ओर ध्यान न देकर भाव व्यक्ति-विषय की ही आलोचना करने लगते
हैं^४। अन्तः माहित्य के बाजार में मन्त्रा पीया करता था रण या ओर दुकाना पर बल
ममल शाहों की भीड़ लगी रहता थी। उपास्य के विषय में तो सबमें पहले यह
कहा जा सकता है कि 'या कोई पुस्तक-विषय विन्नी विशेष उद्देश्य से लिखी गई हो
तो वह दूसरी बात है जिन्से साधारणतः हम सभी की पुस्तकें पाना का बिल-विनाश
ही लिखी जाती हैं^५ और यह निश्चय है कि 'जो नाम केवल धारणा ही के लिए किया
जाता है जिस कार्य का कोई उच्च सत्य नहीं होगा वह बदायि बीया उत्तम नहीं हो
सकता^६। बाबू ब्रजनन्दन सह्याय के ये आलोचनात्मक विचार आलोच्य युग के माहित्य
के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं।

अब 'राधाकान्त' उपन्यास की कथावस्तु पर आइये । जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है इस उपन्यास के दो 'खण्ड' हैं । प्रथम खण्ड १२ परिच्छेद और ८१ पृष्ठों में राधाकान्त की घालकहानी कहता है । द्वितीय खण्ड में १२ परिच्छेद तथा १० पृष्ठों हरेन्द्र की घालकहानी कही गई है । इस प्रकार सब मिलाकर वस्तुतः उपन्यास में सब २८० पृष्ठ हैं । प्रथम खण्ड पर एक बंगीय कहानी की छाया है । परन्तु द्वितीय खण्ड स्वतन्त्र एवं मौलिक है । राधाकान्त और हरेन्द्र दोनों सहपाठी थे । राधाकान्त बंग का और हरेन्द्र बनी । बनी भिक्ष के साथ रहकर राधाकान्त का पठन होता जाता था । घाल में उसने वैराग्य में लिबा । हरेन्द्र भाषा के प्राकरण को जानता था । इसलिए दूसरे लीजन की ओर वाह्य हुआ । वह कुछ जीवन बिताता हुआ अपने परिवार के साथ स्नेहमय व्यवहार करता है । राधाकान्त के माता पिता को अपने माता पिता के समान आदर और सम्मान प्रदान करता रहता है । इन दो नायकों के चरित्रकथा में दो पात्र और मुख्य हैं । दोनों दुर्बल—एक पुरुष मुखर और एक स्त्री भाषी । कथा की हवा करके मुखर प्रामाण्य प्राप्त करता है । इस प्रकार कथानक एक स्वतन्त्र है । इसका विचार आधार उपदेश तथा निर्मलता में होता है । द्वितीय खण्ड के मध्यमें परिच्छेद में बोधी-सी आसुसी आ गई है । महात्मा आनानन्द की कई बर्षों पर सहस्रों कुछ प्रस्तावामात्रिक-सी भी बने नहीं हैं ।

प्रथम खण्ड में राधाकान्त की घालकहानी इस प्रकार प्रारम्भ होती है । मैं एक ब्रह्म का लड़का हूँ और मेरा घर देहात में है । मैं साधारण कुल का बालक हूँ । फिर हरेन्द्र से अपनी तुलना करता हुआ कभी कल्प-मुबामा का बुष्टान्त याद करता है । श्री ईश्वर के प्रथम विचार कभी धर्मार्थ पर विचार करता है । कभी उसके मन में मोक्ष-लोक का विचार बसता है । कभी प्रारम्भ की घटलता उसके हृदय में बैठ जाती । अन्त में वह सवार से पलायन करता है । 'पृथिवी में अब कोई मेरा पता नहीं लेवेगा मुझे ईश्वर की कृपा में मग्न करना' । हरेन्द्र की कहानी प्रथम खण्ड से ही मिलने लगी है । हरेन्द्र की परिस्थिति को देखकर राधाकान्त को अपनी बधा और भी लगने लगी । 'क्यों किसी को देहात भग्न बन बुरे से मिल जाता है और वह बिना कुछ नाम-काम बिना कुछ से अपने दिन बिताता है और दिन-रात परिश्रम से अपनी हड्डियों को तोड़ कर भी मैं कुछ से भर पेट का नहीं सकता' । हरेन्द्र अपनी स्थिति को समझता 'अब मेरी सम्पत्ति को चाहते हैं मुझे कोई नहीं चाहता' । साथ में आकर बानो सकी धारों लुप्त गई । 'पहले मुझे अनुभव नहीं था किन्तु अब समझता हूँ कि जो पवित्रता लक्ष्मणा सरलता नीरोगता तथा प्रामाण्य बड़ा योग्य करता है वह स्वयं में भी हम लोगों के मध्य में प्राप्त नहीं हो सकता' । द्वितीय खण्ड में हरेन्द्र मुखर तथा लक्ष्मी की कहानी है । वहाँ हरेन्द्र की घालकहानी तथा लक्ष्मी की घालकहानी दोनों पवित्र के मोलभाव की प्रतीक हैं । नायक भारतीय संन्यास का । अन्त में

ईश्वर प्रार्थना परचाताप और सत्य से सब सोना धानि प्राप्त करते हैं ।

इस उपन्यास में एक ओर 'चित्रमळा' के बीच छिपे हैं दूसरी ओर 'पोशन' के । संसार को भोगकर जो उसे निस्सार जान त्याग देता है उसका बराबर धानि किसी को नहीं मिलती परन्तु जिसको संसार मिठा मही वह उसका आकर्षण से परामर्श रहता है । अतः प्रेमचन्द के राजसाहसों के समान सम्पत्तिशापियों का मन प्राप्त सम्पत्ति की वैधियों में छटपटाया करता है । इरेन्द्र ऐसा ही आदर्श पात्र है । राजाकांत 'चित्रमळा' उपन्यास के कुमायगिरि के समाग वा 'राज्यपी नाटक के धानिभिन्नु के समान अर्थ से ही संबंध होने के कारण सम्पत्ति के चक्रावर्त से स्तम्भित है । अतः में उसे त्याग से ही धानि मिलती है । उपन्यास के नाम तथा कथावस्तु में महान् को देखने हुए राजाकांत ही मुख्य पात्रक है । वस्तुतः चारों पात्र चार बर्णों का प्रतिनिधित्व करते हैं । सर्वोच्च है इरेन्द्र—आर्य दुर्बलता-रहित रूपरा है नायक राजाकांत सञ्चारिक दुर्बल सीमाएँ हैं सुलदेव दुर्बल और बीबी है सबायी—पाप की प्रतीति । लेखक ने आदर्श की ओर में नारी के उद्भवन चरित्र की आवेष्टनता कर दी है । पुत्रवा की सम्पत्ति के लिए नौ नारी को उत्तरवाही मानना न तो नवजागरण के अनुकूल है और न लेखक के मन्वीर उत्तरवायित्व का पालन ही माना जा सकता है । 'एक परम सुन्दरी सज्जी' का अपने पड़ोसी से यह कहना कि 'आप के निकट में धर्म-विज्ञा मने नहीं आई हैं' आप मुझे प्रेम की मिठा दीजिए' 'चित्त-विमोचार्थ' ही निजा गया है । उसमें सचाई एवं समीपता नहीं है । वस्तुतः नारी का मध्यमवीम चित्रम हन उपन्यास की एक बटि है ।

'राजाकांत' उपन्यास आत्मकथात्मक टीनी में लिखा गया है । इसमें कथोरकथन की अपेक्षा वर्णन का प्राधान्य है । बीच-बीच में आकर पाठकों से बात करने की अपेक्षा पात्रों के मुख से अपना मत प्रकट करने में प्रीतिता की सूचना मिलती है । बटनाएँ मचाव एवं विवशनीय हैं । पात्र वर्ण-प्रतिनिधि हैं । उनमें भावुकता एवं विकास है । बटनाएँ पात्रों का अनुवर्तन करती हैं । उपन्यास का विभाजन अष्ट एवं परिच्छेदों में है । मचावस्मकता नीति के बोहे (तुलसी अपवा रहीम बारि के) उद्धृत कर दिये गये हैं । साधारणतः भाषा साहित्यिक एवं प्राक्कथन है । एक उदाहरण देखिए —

'बुद्ध चित्त में कुछ प्रकाश हो आया था किन्तु अभी तक आकाश आशतो से ढका था । सामने की छत और छप्पर पानी से तर थे । नृष्टि बन्द गयी थी किन्तु रह रह कर बूँदें पोरियों से टपक पड़ती थी । एक बार जोर से हवा बली । सामने का निम्न बुझ हिज गया । (पृ० ११) ।

प्रस्तुत उपन्यास का अन्त राजाकांत की आर्य मित्र धारित करता है । 'आज मैं ठीक जान गया कि राजाकांत 'आदर्श मित्र' हैं' । साथ ही आस्तिकता-वय के सभी सन्तुष महो प्रतिष्ठ के अधिपति रहे हैं । ईश्वर के ग्याय में विद्वान् परिब्रज-मन्त्रज्ज्ञा सरलता की प्रार्थना आरम्भ देवता तथा धर्म में अज्ञा परचाताप तथा कृपणता का

प्रचार सेधक का मुख्य उद्देश्य है। पूरी पुस्तक पढ़ लेने पर मन की प्रसाधपूर्ण छान्ति की उपलब्धि होती है। कुछ उपदेशात्मक वाक्य इस उपन्यास के प्रास हैं —

- (क) भयमान से प्राप्तता करना धीरे-धीरे रूप के लिए बन्धनार हैना यही मूल मन्त्र है। इसी के द्वारा मनुष्य की सब मनोबामनार्थ भिन्न होती है। (पृ. ७२)
- (ख) बन्धनार देने से मन में छान्ति आती है। ऐश्वर्य का बाध कम होता है, जीवन उत्तम होता है धीरे-धीरे रूप के लिए भिन्न की आशा रहती है। (पृ. १४३)
- (ग) पाप के द्वारा कोई कभी दुःखी नहीं हो सकता। मारीक मूल मूल नहीं है। मूल का सम्बन्ध केवल मन के साथ धर्म के साथ धीरे धारणा के साथ है। (पृ. ११६)।

मदन द्विवेदी के उपन्यास

रामसागर

हमारे भारतीय-काल के अस्तित्व में भी मदन द्विवेदी मजबूती से 'रामसागर' तथा 'कल्याणी' दो सामाजिक उपन्यास लिखे। 'रामसागर' का प्रकाशन सन् १९१७ में हुआ परन्तु इसमें लेखक की अपनी 'मूक्तिका' १८ १९ १४ की है। इस उपन्यास में भारतीय जीवन का चित्रण किया गया है। मदन धीरे-धीरे वाक्य भी कही-कही या बसे हैं लेकिन मुख्य पात्र धीरे-धीरे चर्चा में आते हैं। मुख्य पात्र पर भी इसको 'रामसागर' का एक सामाजिक उपन्यास लिखा गया है। कल्याणी 'एक विचारमय सामाजिक उपन्यास है। इसमें 'मूक्तिका' का विचार ७-१२ है जिससे स्पष्ट है कि 'कल्याणी' हमारे भारतीय-काल में नहीं लिखा गया। फिर भी लेखक के दृष्टिकोण को समझने के लिए कुछ बिन्दु ध्यान रखे गये इस उपन्यास से बड़ी महत्ता मिलती है।

'रामसागर' से पूर्व लिखे गये उपन्यासों में से कुछ उपन्यासों के अन्त-स्मरण प्राप्त भी हैं। परन्तु उनमें भारतीय जीवन चित्रण का विषय नहीं बना। प्रस्तुत उपन्यास में प्रथम बार सामाजिक परिस्थितियों के अन्तर्गत में भारतीय जीवन पर ध्यान एवं चर्चा का पूर्ण दृष्टिकोण दिया गया है। यही विशेषता ध्यान रखकर प्रेमचन्द के उपन्यासों की प्राप्ति बनी। दूसरी बात यह है कि प्रेमचन्द के भारतीय उपन्यासों के समान इस उपन्यास में भी पूर्ण उत्तरप्रदेश के प्रांतों से प्रेरणा एवं सामग्री ग्रहण की गई है। इससे भाषा वैविध्य को महत्व नहीं दिया गया। परन्तु 'भूमि' और 'आकाश' पत्रिका और पोस्टमैन जगत और साहूकारों का वर्णनपूर्ण चित्र मदन द्विवेदी की लेखनी से जगज्जगत है। प्रेमचन्द की तुलना में सामाजिकता की दृष्टि से मदन द्विवेदी के जीवन का एक विशेष

१. प्रकाशक—बिहारीलाल मेहता प्रकाशक प्रथम बार सन् १९१७ ई।

२. प्रकाशक—सरस्वती प्रकाशकाला आर्यवेद वेदमन्त्रालय, प्रकाशक सन् १९२२ ई।

३. मूक्तिका।

मन्तर है कि इनमें वैराग्य के साथ-साथ राजमर्ति का भी मिश्रण है एवं कामीन दुर्गता का हम खोजते-खोजते ये 'उमार बम' के बोधा पर जा पहुँचते हैं। प्रेमचन्द ने कुत्रचित् उपाकथित धर्म का खोजलापन हुए भी सामाजिक दुर्दशा का मूल कारण धार्मिक-उपनीतिक दुर्भावस्था को ही ठहराया गया है।

सोरखपुर जिले के गिरवरपुर ग्राम में गगामिह का बराना बड़ा प्रतिष्ठित था। बाँध के सोम भी इनको दबुधा कहकर पुकारते थे। जेग से दबुधा घोर बाँध राम भाल तथा गिरवरपुर को घनाब करके बन बसे। मनेनू भगत धीर इरकमान पटवापी ने भाल रबकर रामभाल के बर की रत्ती-रत्ती बीज कुछ करत थी। रामभाल की बम-बहिन कमारिन बनरजिया के अतिरिक्त अब प्रायः घर में उसका कोई धनता न रहा। 'दुर्भाग्य का सताया रामभाल बनना कुछ दूर करने के लिए भान्त्वमय प्रयास में प्राया'। श्री समाधन बम तथा 'धार्मिकमात्र' सरयूपारीय समा तथा काम्यकुत्र समा आदि से उसको कोई सहायता न मिली परन्तु 'ईशू प्रभु का एक बाध' रामभाल को धन से साब से मया। यहाँ एनी साहूबाबी रामभाल के गुणो पर मुग्ध हो गई। यही उपन्यास की नायिका है। साहूबाबी रामभाल को ईसाइयो के बात से निरास कर उसकी सेवा में जीवन बिताता चाहती थी परन्तु रामभाल उसके प्रेम को ठुकरा कर जमा मया—'रामभाल ईसाई हो गया एक स्त्री के लिए ईसाई हो गया यह बात मुझसे कैसे सही जाणी'। भाग कर रामभाल भागमपुर पहुँचा यहाँ उसने सेठ सिबदास के नौकर के कारखाने में भीकरी कर ली। जब घाटा हुआ तो सेठ ने हिम्मत छोड़ दी परन्तु रामभाल धकेला ही कारखाना चलाना रहा और अपने साथ मुलाका सेठ के नाम बनाकर दिया। इस व्यवहार से सिबदास और रामभाल माई बन गये। धाने बनकर रामभाल के प्रयत्न से बनरजिया का विवाह सिबदास के साथ हो गया। उपन्यास के अन्त में साहूबाबी के उल्लेख प्रेम एवं त्याग से प्रभावित होकर रामभाल उसे सोझने के लिए निकल पड़ा। परन्तु आज तक समा कोई पता नहीं गया। 'कुछ लोग नैराश की सरह पर जिबेनी-स्तान करने मर्य है—उन्होंने टीक रामभाल की राक्षस क एक सम्पत्ती को धकेला पहाड़ के पास जंगल में देखा जा—कुछ लोग यह भी कहते हैं कि उन्होंने सम्पत्ती की क स्थान से एक भील की हुरी पर एक घोषिणी की कटी देखी है। बालाबी ध्यान में मग्न रहनी हैं और किसी में कुछ बीमानी आती नहीं है'।

दुर्भाग्य के मताये हुए नायक रामभाल की कुछ-मृत्वात्मक जीवन-यात्रा हो उपन्यास की कथावस्तु है। भुवन बटन-स्थल ग्राम गिरवरपुर है जहाँ में समाज की धारतिया के बिचार तीन धामने (रामभाल बनरजिया तथा पीरा) मध्य की ठोकरे आते हुए धाने बनने जाते हैं। नायक रामभाल की नाका में साहूबाबी की धवसादमयी शक्तिता भी कुछ गई है। लेखक ने उपन्यास में उसका परवर्तन कर दिया है। धर्म और प्रेम की रूप-छाँह का यह विश्व नायक और नायिका का उज्ज्वल चित्रण मिलमाना है। यदि रामभाल को साहूबाबी के मरुध प्रेम का मान हो जाता तो वह उनके नाय

प्रचार सेवाक का मुख्य उद्देश्य है। पूरी पुस्तक पढ़ लेने पर मन की प्रगाढ़पन ध्यानि की उपलब्धि होती है। कुछ उपदेशात्मक भाषण हम उपन्यास के प्राण हैं —

- (क) भगवान् से प्राचना करना और उनकी कृपा के विषय सम्पन्न होना यही मूल मन्त्र है। इसी के द्वारा मनुष्य की सब मनोकामनाएँ निश्चि होती हैं। (पृ० ७२)
- (ख) धर्मवाद देने से मन में ध्यानि धारण है। ऐश्वर्य का बोध कम होना है, चरित्र उन्नत होता है और धार्मिक कृपा विनये की प्राप्ति रहती है। (पृ० १८३)
- (ग) पाप के द्वारा कोई कभी सुख नहीं हा सकता। धार्मिक सुख सुख नहीं है। सुख का सम्बन्ध केवल मन के साथ धर्म के साथ और ध्याना के साथ है। (पृ० १९६)।

भग्न द्विवेदी के उपन्यास

रामनाथ

हमारे अशोक-काल के अस्तित्व में श्री भग्न द्विवेदी वज्रपुरी में 'रामनाथ' तथा 'कम्बोनी' को सामाजिक उपन्यास लिखे। 'रामनाथ' का प्रकाशन सन् १९१७ में हुआ परन्तु इसमें संश्लेष की अपनी सुमिका १८ ११ १४ की है। 'इन उपन्यास में ग्रामीण जीवन का विषय दीक्षा मया है। नगर और नागरिक लोग भी नहीं-नहीं घा घसे हैं लेकिन मुख्य पात्र और चरित्रों गांधी से सम्बन्धित हैं'। सुप्रसूत पर भी हमको 'ग्रामीण जीवन का एक सामाजिक उपन्यास' लिखा गया है। कम्बोनी 'एक शिक्षाप्रद सामाजिक उपन्यास है इसमें 'सुमिका' का दिनांक ७-१२ है जिससे स्पष्ट है कि कम्बोनी हमारे अशोक-काल में नहीं लिखा गया फिर भी संश्लेष के दृष्टिकोण की समझने के लिए कुछ दिन बाद ऐसे ऐसे इन उपन्यास से बड़ी सहायता मिलती है।

'रामनाथ' से पूर्व लिखे गये उपन्यासों में से कुछ उपन्यासों के चरित्र-स्थल राम भी हैं परन्तु उनमें ग्रामीण जीवन विषय का विषय नहीं बना। प्रस्तुत उपन्यास में प्रथम बार सामाजिक परिस्थितियों के अन्तरांग में ग्रामीण जीवन पर उधार एवं सहज ठाणुर्न दृष्टिपाठ दिया गया है। बड़ी निष्पत्ति धारण चलकर श्रीमद्भगवद् के उपन्यासों की प्राप्ति बनी। दूसरी बात यह है कि श्रीमद्भगवद् के ग्रामीण उपन्यासों के समान इस उपन्यास में भी पूर्ण उत्तरप्रवेश के ग्रामों से प्रेरणा एवं नामाधी ग्रहण की गई है। इसमें माया रीतिभूत को महत्व नहीं दिया गया परन्तु 'सुमिका' और अन्तर्गत पटवारी और पोस्टमैन अवतार और साहूकारों का व्यंग्यपूर्ण विषय भग्न द्विवेदी की लेखनी से लय उतरा है। श्रीमद्भगवद् की तुलना में सामाजिकता की दृष्टि से भग्न द्विवेदी के विषय का एक विशेष

१. अशोक-काल में प्रकाश, प्रथम बार सन् १९१७ ई।

२. अशोक-काल में प्रकाश, अशोक-काल में प्रकाश सन् १९१९ ई।

३. सुमिका।

कर है कि इनमें वैद्यमन्त्रि के साथ-साथ राजमन्त्रि का भी निवास है एवं ग्रामीण हुए वह मोरटे-मोरटे में 'उधार कम के दोषा पर आ पहुँचते हैं' श्रेयस्कर में कुम्हार तथाकथित वर्ग का लोकपालन हुए भी सामाजिक दुर्दशा का मूल कारण धार्मिक-यन्त्रीक दुष्टवस्था को ही ठहराया गया है।

मोरचपुर ग्राम के मिरचरपुर ग्राम में बंशमिह का बराना बड़ा प्रतिष्ठित था। और क सोच तो इनको बहुत बहुरा पुकारते थे। जेय में बहुत घोर दाई राम नाम तथा मिरचरपुर को समाज करके नाम बसे। मगेनू अथवा घोर इकमान पटवारी ने बाद एकर रामनाम के घर की रसी-रसी बीज बुक कर ली। रामनाम की धर्म-वर्द्धन कर्माणि बनरजिया के अतिरिक्त घर ग्राम घर में उसका कोई अपना न था। 'दुर्भाग्य का सताया रामनाम घरना दुःख दूर करने के लिए धानमय प्रयास में लगा'। श्री सनातन धर्म समा 'धार्मिकमात्र' 'सरपुतारीय सभा' तथा काम्यकुम्हार सभा धर्म से उसको कोई सहायता न मिली परन्तु 'ईशू प्रभु का एक बात रामनाम को घने साव न गया। वहाँ एनी दाहूबादी रामनाम के दुष्को पर मुग्न हो गई। यही उपन्यास की नायिका है। दाहूबादी रामनाम को ईसाईयों का नाम से निकाल कर उनकी सेवा में जीवन बिताना चाहती थी परन्तु रामनाम उसके प्रेम को ठुकरा कर बना गया—'रामनाम ईसाई हो गया एक स्त्री के लिए ईसाई हो गया यह बात मुझे कैसे नहीं भाएगी। जाग कर रामनाम मागमपुर पहुँचा वहाँ उसने सेठ शिवदास का बोयले के कारखाने में नोकरी कर ली। जब बाटा हुआ तो सेठ ने हिम्मत छोड़ दी परन्तु रामनाम धैर्यता ही कारणाना बनाता रहा और उसने सारा मुनाफा सेठ के नाम बनाकर दिया। हम व्यवहार से शिवदास और रामनाम भाई बन गये। धान बनकर रामनाम के प्रयत्न से बनरजिया का विवाह शिवदास के सान हो गया। उपन्यास के अन्त में दाहूबादी के उच्च प्रेम एवं त्याग से प्रभावित होकर रामनाम उसे सोजने के लिए निकल पड़ा। परन्तु आज तक उसका कोई पता नहीं लगा। 'कुछ लोग मैनात की तरह पर विवेकी-त्याग करते गये थे—जन्होंने ठीक रामनाम की घरत के एक मन्वामी का प्रकला पहाड़ के पास जंगल में देखा था—कुछ लोग यह भी कहते हैं कि जन्होंने सामाजी जी के त्याग से एक भील की हुरी पर एक योगिनी की कटी देखी है। माताजी ध्यान में मग्न रहती हैं और किसी से कुछ बोलती जानती नहीं हैं'।

दुर्भाग्य के मारते हुए नायक रामनाम की कुल-मुलात्मक जीवन-यात्रा हो उपन्यास की कथावस्तु है। मुख्य बटना-स्थान ग्राम मिरचरपुर है जहाँ स समाज को धार्मिकों के धिक्कार तीन धर्माये (रामनाम बनरजिया तथा बीरा) धार्य की ठोकरें पाते हुए भागे चलने जाते हैं। नायक रामनाम को गाथा में दाहूबादी की धर्ममात्रमयी श्रवणा भी कुछ पई है। मेयरक ने उपन्यास में उसका परब्रमाण कर दिया है। धर्म और प्रेम की रूप-रङ्ग का यह चित्र नायक और नायिका का उज्ज्वल चित्रण दिखाना है। यदि रामनाम को दाहूबादी के उच्च प्रेम का ज्ञान हो जाता तो वह उसका साथ

विवाह करके समाज कल्याण का प्रवृत्तिपरक जीवन बिता सकना या बताना कि कल्याणी उपन्यास में दयानारायण और कल्याणी ने किया। इस उपन्यास का अन्त समाप्त में दिखाकर लेखक की यह अनुभव हुआ होगा कि व्यक्तिगत ताना में समाज का धार्मिक कल्याण नहीं हो सकता परन्तु प्रेम द्वारा संयोजित किये हुए विवाह के कारण युग्म जीवन की सुखमय बनते हुए उच्चरी दीति से वैद्य-भवा^१ ही पड़े निचे पुत्रको का सन्त होना चाहिए। अतः 'कल्याणी' उपन्यास में दयानारायण 'भुक्त वैभव और सौभाग्य' का जीवन बिताते हुए 'नायक भाति के उद्धार का अपना जीवन-संकल्प पूर्ण'^२ करता है। यद्यपि हिन्दी की के दोषों उपन्यास आदर्शगुण है फिर भी दोनों का लक्ष्य भिन्न है। और नरदयमेव से कथा की परिधि भी भिन्न हो गई है। 'कल्याणी' का नायक स्वयं सामान्य सामील परिवार का अमाया पिता है वहने में उसकी स्त्री की परन्तु उनके अभिभावक मामा-जानी इस बात को पसन्द न करते थे। यह घर से धामा, संनोय में उनको एक मुक्ता साहब के घर लौकर करा दिया। कुछ सुखार की पाँचवीं बुझी पत्नी इमान की पढ़ाने लगी। स्वयं ने धीरे-धीरे शास्त्री पास कर ली और बहकता (कल्याणी) से उसका विवाह ही गया। 'रामलाल का उद्भव समाज की दयवस्था का विषय है, 'कल्याणी' का उद्भव स्वयं के जीवन का विषय प्रथम उपन्यास में लेखक समाज का सोचसाधन दिखाना है, द्वितीय में उसका उपचार प्रस्तुत करता है। 'बड़े पैमानों में हमारे बड़े-बड़े काम उठाने हैं—छोटे-छोटे काम' उन नवयुवकों को उठाना चाहिए जिन्होंने अभी अपने जीवन का प्रोग्राम नहीं बनाया है'^३।

मन्त विवेदी का उद्देश्य हिन्दू-समाज की 'दुर्रिा का विन भ्रंश' करके सामाजिक प्रवृत्तियों का विवेचन करना है। समाज में शास्त्र-विवाह वृद्ध-विवाह विधवा-पुर्न्यास कछिला घघिला घनीति तथा 'बाहू होइ बन्ध ईषा ज्ञान बरट विस्वासबाध घसत घोर नीचना' का ऐसा घोर विमिर छाया हुआ था कि समाज का कोई स्थिर स्वरूप ही नहीं^४ बित्तलाई पड़ता था और लोग चाहते थे 'बेय को स्वाधीन बनाना'। इस दुर्रिा का कारण 'धर्मिका और धर्मकार का घोर विमिर' था जिसने 'हमारे समस्त बन्धुगणों को प्रभुस्य कर रखा'^५ था। लेखक ने धर्म से भिन्ना है कि 'इससे बढ़कर घन कील का पाप नहीं कि बाह्य धर्मरिा पड़ने लगे पुराणान छोड़कर लोग घसुर होते बा रहे हैं, बहु-विवाह और वृद्ध-विवाह की प्राचीन प्रथाएं लोप हो गईं भोग रेल पर बड़ने लगे बड़े बा पानी पीने लगे'^६। लेखक ने किसी लक्ष्यवाक के ठारिभ चिन्तन पर ध्यान नहीं दिया आधुनिक दृष्टि से सभी भत वैयक्तिक कल्याण को ध्येय बनाते हैं परन्तु धर्मवृत्तान के लिए उसकी धार्मिकता का कार्यक्रम विधीन पसन्द धाया है। 'रामलाल उपन्यास में इस पक्षबाध को स्पष्ट तरीकृति नहीं है परन्तु 'कल्याणी' के नायक-नायिका को लक्ष्य गरीमन धार्मिकता का सबल बनाकर यह निर्दिष्ट कर दिया है कि

१ कल्याणी ६ २४४

२ वही ६० २१६

३ वही ६० २२२

४ कल्याणी में समाजक १ गौरीशंकर शुक्ल का मतलब।

५ वही

६ 'कल्याणी' की 'भूमिका'।

'पुराने मान मनीन युग में भी मनमानी अनर्थन बातें चमामा जाहते हैं और हमारे मन-
मुबक और मुबनी इन मनेमानियों की मनमनुष्यता प्राचीनता के कमिदान होते हैं'।^१ मस्तु
'जीवन भर बेह-दास्त और दूसरे सबसम्बा का पड़ना हिन्दी का प्रचार करना जानी
मठा पैमाना सेवागत का बढी होना'।^२ ही मापी मुबक-मुबठियों का सामान्य मार्ग होना
बाहिए ।

'रामभात' उपग्रस्त में प्रयागराज का बिचन करते समय लेखक ने हिन्दू धर्म
का खोजभापन दिखाकर उक्त दोष का निवेदन किया है जिसके कारण हिन्दू सोच
ईसाई हो पाते हैं । 'बी सनातन धर्म सया' मन्तिमान से 'बीराज-गण्य पुरुष नमामि'
बा-या कर झूम रही है तो 'धार्मिकमात्र के उपदेशन 'ईश्वर के सत्तम' बलान रहे हैं
'वदुपापीय-समा में यह बिबाध हो रहा है कि ठरकारी में नमक पहल स पड़ा रहना
बाहिए ना बाते बलन बान लेना बाहिए' 'उक्त ठरह काम्यकर्म समा में लठ बनने की
नोबत घा रही है'।^३ 'धार्मिकमात्र' और 'सनातन-धर्म-नक्षिणी समा' का बिचन करते
हुए लेखक ने एक ही बालन में पुराणपरबियों पर कठका प्रहार कर दिया है 'इस समा
के उद्देश्यों में से सबसे मुख्य धार्मिकमात्र को जड-मूल से उखाड़ देना है ।'^४ हिन्दू
समायो के मुख्य दोष बा हैं—पारस्परिक द्वेष और ब्यावहारिक जीवन की उपेक्षा करते
हुए विद्याओं पर ब्यर्थ लक-बिनक करना । बिभिन्न सम्प्रदायों के हिन्दू धारम में
मनका कर एक-दुसरे की धर्मि को कम करते हैं इस का नाम बिबिमियो को मिल
बाठा है—धार्मिकमात्र ने जो सुचारामक कइम उठाये उनमें सहयोग न देकर इतर
सम्प्रदायों के सोप धार्म समाज को ही मष्ट करने में लग गये । ब्यावहारिक जीवन की
उपेक्षा नायक रामभात न दश्ये बने प्रति देखी उनने माचा भी कि 'कुतत्र हिन्दू ने
तो पण्डित ईसाई होकर गहना घण्टा है' और यहि स्वामी बालभातम बा महारा न
मिलना तो सहजाडी के प्रेम को स्वीकार करके रामभात का ईसाई होना धमम्बक
नही बा । डिबेरी बी ने हिन्दू धर्म की इस निदालपरक धम्यावहारिक प्रकृति को
'उपार धर्म कहा है इसके निगरीन ईसाइयों का सम्प्रदाय 'नकर धर्म है उसल
लनगल ही मानागिक नाम होगा है, हिन्दू-धर्म के समान दुसरे जीवन की प्रतीगा नहीं
करना पडती । दोनों बनों की तुलना करने पर एक की धर्मनि और दुसरे की उन्नति
का बिन सखल धाओं के सामने घा बाठा है 'इतर रामभात का स्वादबन्धन और
उबर रेनी पर रामम्बका बरते हुए सहसा माबुयों की मुपनकोरी 'इतर हिन्दुओं के
उबार धर्म को बिम्बका उबर ईसाइयो के नकर धर्म का उदाहरन 'इतर हुनारी
जगनीनता और उबर उनकी सहानुमति ।'^५ यही 'रामरग-1' हिन्दू धर्म को धम्य-

१ कम्पनी १ १११-२

२ वही १ १६

३ रामभात, १ १३

४ रामभात १० १०

५ वही १० ११०

६ वही १ १६

बहारिक बनाकर किन्तुन के संसार में बन्द कर बैठे हैं।

मन्मथ द्विवेदी ने यदि सम्मता की सज्जा नहीं समझा परन्तु मुबारों का स्वागत किया है। यही कारण है कि ईसाइयों की पश्चिमी नज़्म उनको पसन्द नहीं आई, फिर भी उनके सङ्गुनों के प्रति ज़ेखा का भाव भी नहीं है। जो सैनिक साहूकारी ने तो नामिका की सृष्टि कर सज्जा है वह जितना उबार रहा होगा। साहूकारी नाम से मुसलमान परन्तु बर्ग से ईसाई है रामलाल के प्रति उसका प्रेम सावित्री के समर्पण से किसी भाँति कम नहीं है। मेरे लिए भगवान् धीरे बर्ग सब तुम हो—घाव की बाँधी होना मेरे लिए स्वर्ग-मुख से बड़ कर है।^१ ईसाई होते हुए भी वह भारतीय है उसके उप-पुत्र जीवन में राधा का कम भ्रष्ट रहा है। रामलाल धीरे सिवदास के बाँधन के व्याज से सेवक ने भारतीय महिला धीरे पाश्चात्य नारी की तुलना बड़ मनोरंजन कर्तों में करते हुए 'ऐमारियो से 'गंवारियों' को उत्तम बाँधित किया है—

रामलाल—एक छोट का लहंगा धीरे एक रंग की धोड़नी लट्टी बीजिएगा।

सिवदास—नहीं एक गाउन सिवदास बना।

रामलाल—पाव हुआ का घूँघट खमीन पर मटका देनी।

सिवदास—सर से साड़ी हुन देनी नाकिन-सी बैनी से तुमको कटा देनी।

रामलाल—बर वालों से भी परदा। वह भी कोई बात है।

सिवदास—बैध नर के उठखू गुडमार्निंग कहते बर में कुछ भाते हैं वह भी कोई बात है।

रामलाल—घाव मामूम नहीं क्यों गंवारियों पर डरते हैं।

सिवदास—घाव मामूम नहीं क्यों ऐमारियो पर डरते हैं। (पृ ११६)

सेवक को ईसाइया से बिड़ नहीं परन्तु पश्चिमी सम्मता से प्रसन्नोप है। वह हिन्दुओं के लिए, तात्त्विक मत्तमेव होते हुए भी एक सामान्य मुबारकारी बोझना बनाना चाहता है। 'कल्याणी उपन्यास में होली के अवसर पर उसने अपने विचार स्पष्टता व्यक्त किये हैं —

'हमारी वर्तमान सामाजिक दुरवस्था न सुधरेगी जब तक लोग ठहरीनी के फेर में पड़े रहेंगे जब तक निर्मलज होकर लोग कल्या-विषय करने जब तक बुद्ध धोग सुखी कल्याणों से निहाल करोंगे जब तक लोग मछली धीरे भेखागापी रहेंगे जब तक बासन्-बालिकाओं को बह्मचर्य पूर्वक शुक्ल-सिखा न होनी जब तक अपरिपक्व विचारों के परिपक्व मुक्त धीरे सुखी एकान्त सहबाध करते रहेंगे। उस समय तक जब तक स्त्री-पुरुष पूर्ण सहाकारी व बन सें धर्म के उत्तों को पूज रीति से धन्यमन किन्तुन धीरे भाचरण न कर सें तब तक पाश्चात्य सम्मता का अनुयायी होकर उनके डग स्वतन्त्रता का उपयोग करना हमारे लिए हाजिकारक है हमारे अधि-पूर्वकों के लिए प्रप्रतिष्ठाजनक है हमारे वैध की उत्पत्ति से उसके उदार में बाधक है।

(पृ १४६)

कुनीनदा का कथित धर्मिमान^१ 'हामज के रुपये'^२ 'पनि के मुह देखे बिना पसहड़ बिबहा'^३ झूठ-हत्या^४ 'बेबी देवता बाह्यम पुरोहित'^५ भूकप घनी इच्छा गुमार जब बाहें स्ना का त्याग^६ कर बे 'एक स्त्री के रहते दूमरा बिबाह' महा मीच पुत्री-विक्रम का व्यापार^७ आदि सामाजिक दोषों की 'कल्याणी' उपन्यास में घोर निन्दा है। यदि कोई इन कुप्रथाओं में सुधार करना चाहे तो पुराने लोग उसे फौरन फिस्तान या कम-म-कम धार्मिकमात्री कहने लगते हैं—फिस्तोरीसात गोस्वामी तक ने 'रिफार्मर लोगों को 'नव्य समाज का ही भंग बना दिया है। मुकदार साहब की जब पांचवीं मुमती पत्नी धर्मपूजा की बला दिन-दिन बराबर होने लगी तो वे परेशान रहने लगे 'इस उम्र में सब ब्याह होना मुश्किल ही है। पहिले हो जाना मेजिन कामठे सा के मारे सब पुपनी बाते ही उठी जाती हैं। अब सब निस्तानी बाना का प्रचार होना जा रहा है।'^८ इसी प्रकार जब बुद्ध ने 'ठाकुर जी का कथा—बीन-मुलियों की गहापठा' म लमा दिया तो 'सरतामी नाक भीह सिकोइन लगी धीर रानी के कहा मामूम होता है लखनऊ बाहर बुद्ध धार्मिकमात्री हो गया'^९। मनीम सुधार हमारे देश में दो मासों से लाये गये हैं—पाबचार्य प्रभाव से ब्राह्मणमात्र द्वारा तथा वैदिक प्रभाव से धार्मिकमात्र द्वारा—सब ऊपर बिबाया जा चुका है।^{१०}

सुधार के सम्बन्ध से लेखक का ध्यान मुख्यतः दो सख्यों पर केन्द्रित रहा है—बाह्यम और मारी। कतार की पुत्री धनरजिमा को अजीनामक रामसात की धर्म-बहिष्कार और ठेठ धिक्कार की बमपत्ती बनाकर उसने बापि प्रथा को छोड़ दिया है। सरतामी कहार और बुद्धसेन मर^{११} का बिबाह भी इस धोर एक कदम है। 'विद्याभ्यों की मानते हुए भी बिपारदी के डर से'^{१२} दम्पति बने रहने बाधों को लेखक ने डाट बटाई है—'धर बिपारदी के नियमों ही की मुहाई देनी थी तो धार्मिकमात्री होने से क्या फायदा हुआ ?'^{१३} धारमाराम मछूतों की बला सुधारने के लिए 'भारतीय पतिताडारक समिति'^{१४} खोलना चाहते हैं मछूतों को इकट्ठा बसा कर उनको पडा-मिसाकर उन्हें कोई कारी मरी बिकाना तथा 'जमागें के लिए कोई स्कूल'^{१५} खोलना उनका धर्म्य है। 'कल्याणी उपन्यास में जग से बाह्यम बनने वाले' बड़े-बड़े पाबधारी जिन्डधारी ठौरसात धन बान् काम्यदुग्ध^{१६} धर्म के विषय बने हैं। 'यहाँ के बाह्यमों में सब से बड़ी बाध है बिबा का प्रभाव सरस्वती बेबी पर इनकी मछूत। संघेबी पढ़ना ये लोग पाप बतलाते हैं संस्कृत उनको पढ़ना चाहिए जिनको भील मांयनी हो हिन्दी पढ़ने में कुछ कुपई नहीं

१ कल्याणी पृ० ९

२ वही

३ कल्याणी पृ० ६

४ वही, पृ० १५

५ वही पृ० १६

६ वही पृ० २०

७ वही पृ० २८

८ वही, पृ० ८८

९ वही पृ० २३४

१० वही पृ० २०३

११ पृ० ९०

१२ वही पृ० २२२

१३ वही पृ० २२८

१४ वही पृ० २२८

१५ रामनग पृ० १६९

१६ वही पृ० २४६

१७ रामनग पृ० २४

है लेकिन जिसको मोकरी नहीं करती है वह पढ़ कर बपा करेगा^१। धार्मिक शास्त्रों पर हम जैसे नहीं रहे फिर भी उनको बराबरी कोन कर सकता है। जब मुसलमान इरोपा के कहने पर ठाकुर के विरुद्ध कोई भी भूट्टी नबाही देने को तैयार न हुआ तो शास्त्रों में ही उसकी सहायता की 'मला सैय्यर की मदद बाइबल नहीं करेय'। शास्त्रों लोग कहते हैं कि भूट्ट का पचा लेना धामूनी धार्मिकों का काम नहीं है इससे लिए तेज चाहिए तेज ! —बाइबल मुझ में खुद भगवान को सात मां दिया ठीक छाती में बड़े धोर का बसाया ऐसा कहकर कि जिन्गी मर उनको याद रहेगा—कोई सूत्र बस्मीनटर हूँ को मार कर देख ले—^२। 'सूत्र दिन मर फाबन जाता है एक घाता पाता है, बाइबल संकेत भर के 'कस्यान' रहने में उससे कहीं अधिक बना ले जाता है।—तिस पर भी जो शास्त्रों का महत्व न मान उसका 'धारियासमाजी' छोड़कर धीर बना कहियेगा^३। एक धोर शास्त्रों का बम्बलात यहकार दूसरी धोर वर्तमान प्रयोगिता दोनों में फिज्जा विरोध धीर कैसा भेल है। डिबेरी की ने पीछ कर भिजा है कि 'धर ऐमा न होठा तो कास्य धीर बाखाब के बंधन धाव पंका-कुनी बन कर पेश के लिए न तरसते'^४। मानो उनकी बुद्धि की यह बुझा उचित ही है। यदि जन्म से जाति न मानी जाय गुण-कर्म-स्वभाव से वर्ण का निर्णय हो तो समाज के अनेक अतिशय-जन्म होप दूर हो सकते हैं।

नारी का सम्मान धार्मिकों का मूल स्वर था वह कहा था चुका है मन्मन डिबेरी ने इसीलिए अपने दोनों उपन्यासों में महिला का धार्मिक प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। हिन्दू-समाज में नारी से सम्बन्ध रखने वाले जितने होप हैं उनका विवेचन ऊपर हो चुका है। 'रामनाम' उपन्यास में उन्होंने लिखा है कि 'हिन्दुस्तान एक ऐसा देश है कि जहाँ सड़कियों का बहुत कम बाबर होता है'^५। धीर 'जहाँ गिराई टकनीक पत्नी है जहाँ कस्यान नहीं हो सकता'^६। जैसे विष्णू के बन्धे अपने पैरा करने वाले का नास कर देते हैं वैसे ही पुण्य जोप स्त्री जाति से जन्म ग्रहण करके बहने में उसी जाति का भयंकर संहार करत है^७। प्राचीन धार्मिक जितना स्त्री जाति को पुण्य मानते थे उतना नवीन सम्मता में भी नहीं माना जाता^८। धक्कनोहार के समान नारी के उच्चार के लिए भी एकमात्र उपाय शिक्षा है। 'रामनाम' उपन्यास में स्त्री शिक्षा की कई सफल योजनाएँ बनाई गई हैं। बीमती बीरादेवी की कम्पापाठशाला की 'दस-दस वर्ष की

१. कस्यानी पृ. ८३
२. वही पृ. १३
३. वही पृ. १४१
४. वही पृ. १४
५. वही पृ. ७७
६. वही, पृ. २३
७. वही पृ. १७३
८. वही, पृ. १७५

बच्चियों ने बड़ी-बड़ी सेधों की बहस में हरा दिया'। आत्माराम भी 'महिषा विषम विद्यालय' सोलना चाहते हैं। इन विद्यालयों से जो बहिन निकरेंगी वे पावस्यकटा पड़ने पर 'महाकावी बनकर अपने सतीत्व की रक्षा' कर सकती हैं। विद्या के धनान्तर 'गुप्त' कर्म और स्वयंसेवकों की सेवा कर' मुक्तक मुक्तियों का विवाह कर देना चाहिए, धर्मशास्त्र के बन्धन में केवल माता-पिता की आज्ञा का पालन करते हुए जो 'धनमेत विवाह' होने उसने 'गार्हस्थ जीवन की पाड़ी कैसे' सुखपूर्वक बन सकती है? कल्याणी उपन्यास का प्रारम्भ तो स्त्री जाति की कुख्याति से ही होता है। अन्धकथा छाह्मादी बनराम गौरा जीवी देवियों की मूर्ति सेलक के उच्च आदर्श में प्रेरित है।

इन उपन्यासों में उक्त बड़ी समस्याओं के साथ-साथ लेखक के थोड़ा देशोत्थान रामजीभा व्योतिप देशसमाज तथा पुण्यपथी पर भी प्रहार किया है। पाठ के विषय में उनका एक वाक्य पर्याप्त होगा कि 'डाइग्न ग्याना आने के लिए इस तरह टूट रहे हैं जैसे फूट और गिरा स्मरण की ओर झुकते हैं'। देशोत्थान में बहरों का कामना राम सीमा पर गरीब लड़कों को पकड़कर भाष नवाना कपड़ की मार्ग से मुक्तार साहब' का विवाह और देशसमाजी बनकर परमात्मा से पिछ छुड़ाकर मनुष्य जाति का बड़ा भारी कल्याण' करारे व्यंग्य है। 'रामभास' उपन्यास में पठकागे साहूकार तथा पुनिस और 'कल्याणी' में बकीस पोस्टमैन तथा पुनिस की धावनी लिखाकर प्रेमचन्द के चित्रों की भूमिका उभार कर दी गई है। अगलू को बोली बनाकर लेखक न कर्मचन में विरवास दिलाता है। 'नील बाले साहब' की कोठी जी शामीषो की कुख्याति का एक केन्द्र है 'चिड़ने ही परा की बहुत निकाल भी गई और बिचारे बरबाले रो-कमप कर रहे यवे फिटने ही नवयुवक मोहरी क मालक में पड़कर नेटान और डमरा भेज दिये गये'।

धानदेरी मजिस्ट्रेट बनकर रामभास ने निवेदन किया कि 'काम तो मैं धंपरेजी में भी कर सकता हूँ। लेकिन मेरा इरादा है कि सब काम हिन्दी में करूँ इस से धनी मानुमाया का उपकार होगा'। लेखक का सुधारवादी आदर्श है। इन उपन्यास में हिन्दी उपन्यास के सम्बन्ध में भी लेखक ने कुछ विचार प्रकट किये हैं। समय काटने के लिए 'रामभास ने उपन्यास पढ़ने शुरू किये। जब धानन्द मिलल लगा तो रात दिन वही पुन समा गई। 'काजल की कोठी' से मुक्त हवा 'मुन्दर सराजिनी' 'नरेन्द्रमाहिनी' और 'बाग्यान्ता' एक महीने में खतम हो गये'। ये उपन्यास समय काटने और मन बहलाव के लिए ये इनमें आश्चर्य की ओर मुक्तक नहीं था। इसलिए विद्यालय न कई बार रामभास को समझाया 'उपन्यास नहीं पढ़ना चाहिए, याया जीवनचरित्र और

१ बड़ा पु० १४

२ बड़ी पु० १६६

३ रामभास पु० १४

४ कल्याणी, पु० १६

५ बड़ी पु० १०८

६ रामभास पु० १६४

७ पु० १६६

८ पु० १६६

इतिहास पढ़ने चाहिए'। परन्तु रामलाल ने न माना। तब स्वामी जी ने रामलाल को जो समझाया 'उपन्यास पढ़कर कपो धर्मार्थ जीवन व्यथ कर रहे हो। 'मायबमिष्ठ' पत्रो धीरे धीरे समस्त समय बचे तो स्वामीजी कुछ 'आरेखविभाष्यभूमिका पत्रो। परन्तु रामलाल की मनक बहनी गई। 'डाक पर डाका' 'बिहार का बख' 'माइन पर माइन' 'नून धीरे नीलमपरी' लतम करके 'बमबिजैना' धीरे 'स्वर्जमता' के अनुवाद पढ़े पड़े। बमाली नविस धच्छे मासूम हुए। 'मायबी ककल' 'राधारानी' धीरे रबीन्द्र बाबू के सब नविस करीब-करीब खगम हो गये। 'कोरेरबानी उपन्यास के प्पाट पर रामलाल मुग हो गया धीरे पिबरास से कहने लगा—'धैरा ऐसा बज्ज प्पाट मने कम देखा है।' मित्रराम ने कहा—'धगर नून बीकरे का 'बीनिटी केयर' पत्रो तो मानूम हो आगता कि रबीन्द्र बाबू का यह उपन्यास कहा तक स्वतन्त्र है'। इस बर्षा में लेखक ने केवल उन मौलिक एवं धर्मवित उपन्यासो का लकेट दिया है जो सामान्यत नवमुक्तों में प्रिय थे। ब्रजतन्त्र महाय ने आरध की कृष्टि से धीनिवासवास का नाम दिया है, परन्तु मन्नन द्विवेदी केवल मनोरेखन प्राण उपन्यासो की ही सुची बना खै है। इसलिये यहां 'सुन्दर सरोजनी' तो है 'परीक्षा शुभ' नहीं। किछोरीनाम गोस्वामी तब के उपन्यास इस सुची में नहीं है। सामद अधिकतर सामाजिक होने के कारण वे मनोरञ्जक उपन्यासों के समान लोकप्रिय न रहे हो। कोरेरबानी 'बीनिटी केयर' का नमूना उत समय बन गया होगा जिसका परिणाम 'रंगभूमि' से उन उपन्यासों की तुलना तथा मौलिकता पर विचार था।

'रामलाल' उपन्यास आदर्श की लेखनी से लिखा गया है। इसके सभी आदर्श पात्र दुर्लभता से परिष्ठ हैं। नायक रामलाल स्वामी आरमाराम सेठ पिबरास नायिका छाहूबादी, बहिन बलराजि धीरे देवी धीरा का जीवन आदर्श एवं परोपकार का स्वतन्त्र उदाहरण है। इन परस्पर मुख्य चरित्रों में नायक रामलाल सबसे उत्तम एवं महान् है। धर्मार्थ तो वह है जो ससार न रहकर संसार का न हो। उसीको कर्मबोधी कहते हैं जो कमलपत्र की तरह कम में रहता हुआ भी बस से बलन—धर्मिष्ठ रहता है^१। 'रामलाल में ईशमक्ति धीरे राजमक्ति भी दोनों एक साथ उचित मात्रा में मिली हुई थी'। देवघोष से अधिकतर बनकर रामलाल अपने गुणों के कारण धीरेपे मविस्तट तक बन गया। प्रेम धीरे कम बोनों का निर्वाह करते हुए वह धमर बन गया। वह पारतत्पर के समान बहो कदम रखता नहीं मुनहरी जीवन बना देता था। इन आदर्श धर्मिष्ठों का सबसे बड़ा गुण परोपकार है जो रामलाल में सबसे अधिक है 'हूँसरी बिरादरी की लक्ष्मी की बहिन की तरह—बहिन से भी बड़कर—आमदा धीरे मानदा अपने पसीने की नमाई दूसरे को दे देता बहानुरी से कष्टों का सामना करना किसी के सामने हाथ न पसार कर अपनी बाहु के बल से मासो बचने देना करना सदा हीन बुद्धियों को लहानता देते रहता—इस धर्म धीरे में इतने गुण इकट्ठे बहुत कम देखे

बाने हैं।^१ 'कल्याणी' उपन्यास के नायक 'क्याम नारायण' का सबसे प्रधान गुण उनका परोपकार है।^२ परोपकार का गुण नयक ने धर्मसमाज में सबसे अधिक देखा है। इसीलिए वह व्यावहारिक दृष्टि से धर्मसमाज के सिद्धांता को स्वीकार करता है। स्वामी भालाराम 'धर्मसमाज' से बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे—'बहुत ठीक कहते हैं कि परोपकार के बराबर दूसरा धर्म नहीं—धर्मसमाज में परोपकार बहुत'^३ है। 'उद्योगी और धीर धर्मसमाजी नयन' धर्म तथा देश के हित का कार्य करने के लिए व्यक्तिगत स्वार्थ का बलिदान कर देते हैं जबकि राम और कृष्ण को ईश्वर नामने बाने समा समियों^४ को 'दण्ड का सामर्थ्य' चाहे बिधर मोड़ सकता है। रामनाथ भी ऐसा ही उद्योगी तथा धीर है। वह धर्मसमाज का सदस्य न हाठ हुए भी धर्मसमाजी उत्साह एवं सद्गुणों से पूर्ण है। 'कल्याणी' उपन्यास का नायक क्याम परिस्मृतिवा के साथ कदम बढ़ाता हुआ धार्मिक समाजसेवी बनता है जब कि 'रामनाथ' उपन्यास का नायक अपने पैरों परियम एवं ईमानदारी से समाज-सेवा में योग देता है। इसीलिए सबको चुनौती बनाकर 'रामनाथ' उपन्यास से हट जाता है कथा का नायक धन्य करते हुए उसकी कहानी संघर्ष एवं धार्मिक का हृदयस्पर्शी सजीव है—कल्पनामोक में छोड़कर बिह्वल बना देने वाला।

'रामनाथ' उपन्यास में आईस 'क्याम' तथा 'उपसहार' २९० पृष्ठों में पाये हैं। प्रत्येक 'क्याम' का कोई सीपक भी है। सीपोंद्वारा के अतिरिक्त बीच में भी कविता शीतों के अनेक उद्धरण हैं। लेखक को धन्य तथा इतिहास का बहुत धीर है। इसीलिए उपन्यास भावुकतापूर्ण एवं सजीव बन गया है। अन्तर्भावों में अविस्मरणीय कुछ भी नहीं है। नायक कवि के साथ-साथ नायकी का चित्रण प्रस्तुत उपन्यास की विशेषता है। 'पुस्तक और प्रकाशित' 'ईसाई परिवार', 'धर्मसमाज' 'कल्याणी' रामनाथ तथा 'द्वारी का मेला और बुद्धि' सीपक इस बात के प्रमाण हैं कि उपन्यास अन्त में कोई नवीन मोड़ माने वाला है। जो धन्य का जीवन और घातन को मुख्य स्थान देने लगेगा। लेखक की भाषा बलती हुई है उस पर पात्रोपयोगी प्रभाव है। 'कल्याणी' उपन्यास में कला की दृष्टि से कुछ प्रीयता है। 'क्याम' के स्थान पर 'परिष्कृत' भाषा में तत्सम शब्दों की अधिकता वर्णनों पर सख्त निश्चित कथावस्तु तथा एक मुख्य कथा प्रीयता के सङ्ग हैं। लेखक का दृष्टिकोण भी स्पष्ट हो गया है। दोनों उपन्यास दोनों की दृष्टि से कलात्मक है फिर भी लेखक से पाठक की बातचीत कम होती है। कथापकथन कम है कथन में रसि पूर्ववत् है। मध्यम दिवरी के दोनों उपन्यास मार्मिक हैं जिनमें सामाजिक जीवन का विश्लेषण व्यावहारिक बरानम पर किया गया है। सत्य की

१ ५० २२०

२ कल्याणी ५० १५४

३ रामनाथ ५० १६१

४ धर्म ५० ११०

५ धर्म ५ ११०

सैनी में घातमात्रिम्यक्ति की सफल धर्मिता है। उसके कुछ वाक्य निरन्तर ही विकास की सूचना देते हैं —

- (क) ब्राह्मण ग्योता जाने के लिए इस तरह टूट रहे हैं जैसे कुत्ते घोर भिड़ हमसान की घोर शीकते हैं। (पृ० १४)
- (ख) साधुन रणद्वे के समय इनका खरीर ऐसा मामूम होता है कि बानी किसी में कोमल वर भुष इनका बिबा हो। (पृ० १२)
- (ग) विभावली बीनी के बटाई एका बघीबि की दुही की तरह मकेद-मकेद बिबाई पछते हैं। (पृ० १११)
- (घ) सनातन वम सया बाने नठरास को बेबी बी से बाह्यमान करन को तयार कर रहे हैं। (पृ १४२)
- (ङ) बबल बुराक बाले बं-टीन ली साधु एक महीने में एक पांव का सया गाछ कर बाले। (पृ १४६)
- (च) कुल भुला बिबा गका लेकिन रामलास न भुलाया बा सका। (पृ २२४)
- (छ) बानी बी ने पतिवैर पर दो बार बरन महार करके अपना कर्तव्य पालन किया। (कम्पावी पृ २६)
- (ज) कलिबुध में पापी बही है जो कलि-वर्म का पालन न करे। (पृ० १४९)
- (झ) अनर बिरादरी के नियमों ही की दुहाई देनी बी तो धर्मसमाजी होने से बया फायदा हुआ। (पृ० २२८)

सरस्वती (अध्याय मन् १११७) पत्रिका में 'रामलास' उपन्यास की समीक्षा निम्नलिखित शब्दावली में की गई थी

‘बहु उपन्यास मौलिक है और बड़ा मनोरंजक है। इसमें हमारे सब-पतन और सामाजिक कुरीतियों का बड़ा ही हृदयवाही चित्र बीबा नमर है। देश-धर्म और जाति सेवा का उपदेश भी इससे खुद मिलता है। पुस्तक एक बार प्रारम्भ करने से बिना पूरा पढ़े कल नहीं पड़ती। हर्ष की बात है कि हिन्दी में भी ऐसे-ऐसे मौलिक उपन्यास लिख जाने लगे।’

ऐतिहासिक उपन्यास

अतीत के उपन्यास

'नविल' की परिभाषा में जिन गृहों पर बल दिया गया है उनमें 'जीवन का पक्षार्थ चित्रण' मुख्य है। 'दिल्लू पिक्चर्स एन्टार्ताइन्मोपीडिया' के अनुसार नविल परमिष्ठ आकार की उन मुम्बिष्ठ कथावस्तुमयी रचना को कहते हैं जिसमें जीवन का वास्तविक चित्र हो और जिसके पात्र एक घटनापथ समार्थ या यथाथ के अनुसर हो।^१ उपन्यासकार के सम्मुख जीवन तीनों कालों में प्रस्तुत रहना है इसलिए उसके उपन्यास कालमात्र कालीन भी हो सकते हैं और भूतकालीन एवं भविष्यकालीन भी। भविष्यकालीन उपन्यास मोक्षम कल्पना को उचर है जबकि लक्षक अपने पाठकों के सम्मुख अपना विशेष दृष्टिकोण प्रस्तुत करके उनका प्रचार करना नहीं चाहता तबतक वह भविष्य कालीन उपन्यास को रचना नहीं करना कारण कि भविष्यकालीन उपन्यास माहिर्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं है। हिन्दी में भी राहुम साहिरपाक ने बाईनकी सदी नामक भविष्यकालीन उपन्यास लिखा है जिसमें मार्क्स के दृष्टिकोण का अनुकरण करत हुए यह कहना प्रस्तुत की गई है कि मावी समाज का आधार साम्यवाद होगा। जिस प्रकार भविष्यकालीन इतिहास की रचना मान्यमान नमक नहीं है उनी प्रकार भविष्य कालीन उपन्यास भी यथाथ के घरायश का भूता हुआ नहीं बनना—इतिहासीन उपन्यास ईतिहासिक निष्कर्षों में अनुप्राणित होगा हुआ भी नहीं न करी वाली-नी-बजानी बन जाना है। धन्नु, प्रायः उपन्यासकार की दृष्टि या तो वर्तमान पर रहती है या अतीत पर। वर्तमान काव के उपन्यास 'सामाजिक' (अथवा 'राजनीतिक धार्मिक') बहू आ मरन है और मनकाव के 'ऐतिहासिक'। वर्तमान युग का इतिहास भी इतिहास की है फिर भी 'इतिहास न' अतीत का ही प्रायः बोध होता है। इसीलिए 'ऐतिहासिक' बर्ग में सामान्यतः अतीतकालीन उपन्यास ही स्वाभाविक होते हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध में समयकालीन जीवन के उपन्यास 'सामाजिक' माने गये हैं और अतीत-कालीन जीवन के उपन्यासों को 'ऐतिहासिक' मान लिया गया है।

इतिहास अतीत के वर्ग में रहता है परन्तु समयत अतीत इतिहास नहीं है।

घटीत के बहुत धन्यवर म धुत कर मानव के ज्ञान-विज्ञान में जिस गहराई तक जीवन को पहुँचाया है उसी गहराई तक का घनीय 'इतिहास' नाम ग्रन्थ करता है उसमें पूर्ण का घटीत 'प्रागैतिहासिक' है। प्रागैतिहासिक काल के उपन्यासों का मूल्य वही है जो भविष्यकालीन उपन्यास का क्योंकि जिस घटीत का पुनरावर्तन लेकर केवल करना के आधार पर करता है उसमें उनका व्यक्तिगत एक दृष्टिकोण ही मुख्य है ऐतिहासिक सत्य नहीं। अतः 'जिस नाम की कुछ भी प्रामाणिक (समकालीन) लिखित सामग्री (निकट भिन्न-भेद तात्पर्य तथा विवरण आदि) प्राप्त है उसे कमा-माहिर क लिए ऐतिहासिक मान सकते हैं'। परन्तु इन प्रामाणिक इतिहास का पुनरावर्तन भी नरम कार्य नहीं। इसमें केवल तथ्या को धारण न होकर पुनरावर्तन भी होता है। इतिहास विज्ञान एक साहित्य शोध के बीच की वस्तु है। इसमें ऐतिहासिक अनुसंधान में वस्तु परकता तथा तन्मयता केवल सिद्धान्त-मात्र के लिए है अतः हमें इतिहास में व्यक्तिगत दृष्टिकोण की अवश्यकता है। एक ही प्रामाणिक सामग्री को भिन्न-भिन्न इतिहास लेखक अलग-अलग महत्त्व देते हैं। समकालीन जीवन का विवरण भी कलाकार सत्य के प्रति ईमानदार होते हुए भी भिन्न-भिन्न रंगों से करते हैं। हमारे देश के मध्य कालीन इस्लामी इतिहास को मुसलमान इतिहासकारों यूरोपियन व्यक्ति और हिन्दी के साहित्यिक (बनारसीदास जैन आदि) ने अपने-अपने रंग से प्रकट किया है। इसीलिए हमें एक बात का ध्यान रखना है कि तत्त्व इतिहास-लेखन केवल आधार ही नहीं घटकर है। घटीत जिस बिन्दु पर उपकरणों को जुड़ता है वे इतिहास की केवल स्मरणा ही करते हैं—एक मुक्त तुलना केवल जिसमें एक मान और प्राप्त का सचरम इतिहासलेखक का उत्तरदायित्व है। इतिहासकार वैज्ञानिक तथ्यों के इतने जूने से जिस ध्यान का निर्माण करता है उसका विश्व (जान) उसके मन में रहता है और इसीलिए इतिहास लेखन पूर्ण निर्माण के बाद साहित्य शाखा बन जाता है। इस प्रमाण में इतने जूने का बहुत अधिक महत्त्व है फिर भी जब तक व्यवस्था के अनुसार स्थापित करके उनको धारण न कर दिया जायता तब तक प्रमाण को सुन्दरता एवं पूर्णता प्राप्त नहीं हो सकती। इतिहास तथ्य-संकलन मात्र नहीं है उसके नाम विविध और अनेक उपवाद मान हैं। उनको जोड़-बाँध कर हम यह ऐसा चाहते हैं कि मानव सदा एक-सा ही रहा है अन्तर्भवत् तथा बाह्यभवत् से भिन्नतर भवत् करता हुआ वह सोलगाइ जाने बढ़ता रहा है। मानव-अवस्था का इतिहास मानवता की विजय-यात्रा है। इस दृष्टि से विचार करने पर इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यास एक दूसरे से बहुत दूर नहीं दिखलाई पड़ते।

इतिहास और उपन्यास के सम्बन्ध पर ध्यानात्मक विचार हो चुका है।^१ वही इतना कह देना और धीरे-धीरे कि मूलतः इतिहास एक विद्या है इसलिए उसे समस्त

१ श्री रत्न साहसिक : ऐतिहासिक उपन्यास (प्रबोधन-विरोध)

२ इतिहासिक विद्वत्, जो फल प्राप्त और एक बार विचार कर के बाह्यभावत् इतिहासिक विद्वत्

३ इतिहासिक विद्वत्

उपन्यास सामग्री का उपयोग करना पड़ता है। भले ही लेखक धनदा पाठक की उससे प्रति रुचि न हो। इससे विपरीत ऐतिहासिक उपन्यास एक साहित्यिक विधा है। इसमें लेखक की रुचि केवल उपासकता ही नहीं करती बल्कि सुनने भी करती है। दूसरे शब्दों में इतिहास का सत्य केवल सत्य है और ऐतिहासिक उपन्यास का सत्य एक सुन्दर। उपन्यास-लेखक इतिहासकार की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्र है। डा० बृन्सनमान समा के शब्दों में 'जिन स्वभावों पर इतिहास का प्रकाश नहीं पड़ सकता उनका कल्पना द्वारा सुन करके उपन्यास-लेखक भूली हुई या खोई हुई सच्चाई का निर्माण करता है'। आचार्य चतुरमेध साहू के शब्दों में 'ऐतिहासिक उपन्यास आश्चर्यकता पढ़ने पर जान-बूझ कर इतिहास के तथ्यों की उपेक्षा कर सकता है। क्योंकि एक तो उनका पूर्ण ज्ञान समझ नहीं दूसरे उनका काम सांस्कृतिक चरित्रों की सूची देना न होकर सांस्कृतिक समाज प्रवाह का वेग दिखाना होता है।'

ऐतिहासिक उपन्यासकार का काम अपेक्षाकृत कठोर है जिस युग में वह रहना है उसकी भूलकर अतीत की सजीव कल्पना में आबसाहन करना सामान्य मनोयोग से संभव नहीं। इसीलिए अधिकतर ऐतिहासिक उपन्यास वर्तमान युग की समस्याओं की ही प्रतिबिम्बित करते चलते हैं। बहुत दिना तक ऐतिहासिक उपन्यास किमी भी पुरानी कहानी को लेकर उसके भीतर मनुष्य का जीवन चित्रित करते रहते थे। उनमें ऐतिहासिकता की अपनी कोई छाप नहीं थी परन्तु १८वीं शताब्दी से १९वीं में ऐतिहासिक उपन्यास की धृष्टि बदली और बीच के अन्तराल को धीरे-धीरे अतीत जीवन का एक सौक्य कलाकार का लक्ष्य बना। आज ऐतिहासिक उपन्यासकार का यह कर्तव्य समझ आता है कि वह उस जीवन का चित्रण उसी प्रकार करे जिस प्रकार कि किमी समकालीन लेखक ने किया होता। इतिहास का उपन्यास पर ध्यान नहीं होना चाहिए, बल्कि धीरे-धीरे अतीत उसी प्रकार चित्रित हों जिस प्रकार कि समकालीन जीवन का उपन्यास लिखते समय किये जाते हैं। उपन्यास जीवन का चित्र है बहनाथा का बिबरन अपेक्षा व्यक्तियाँ की घटनाएँ नहीं। जॉर्ज ए० बैकर ने ऐतिहासिक उपन्यास के तीन घन माने हैं —

- (क) उन काल की स्मृतियों उपन्यासकार के मागस पर इतनी मजबूत एवं स्पष्ट हो जाओ उसने स्वयं उस युग का जीवन भोगा हो और उन काल की किमी भी घटनाएँ से घटित करने वाले रीति रिवाज सामाजिक दशा आचरण तथा विचार उसके मनमें इतने स्पष्ट हों कि वह रीति रीति भी समकालीन व्यक्ति के मन में रहे होंगे।
- (ख) उन काल की विशेषताओं से परिपूर्ण मानव सामान्य जनता में उन

१ ऐतिहासिक उपन्यास और देता एडिक्टोव (नवे वने) जनवरी-मार्च १९५१

२ बैराली की नगर-कह

३ विद्वान्ता के दिग्दर्शक मणिराज बाल्य ६ १ १९०

स्वातकार का निकट सम्पर्क रहे साध ही विविध व्यक्तियों से भी वह परिचित हो ।

(ग) उक्त कथानक उपर्युक्त समस्त साधनों का पूरा उपयोग करता हो ।

ऐतिहासिक उपन्यास में व्यक्ति और समाज दोनों को उचित स्थान मिल सकता है परन्तु कलाकार की भावना उनके विषय में विशेषतः की भावना न होकर जन-सामान्य की भावना होनी । जिस प्रकार सामान्य व्यक्ति हुए बड़ा हुआ अतीत पर जब विचार करता है तब उसकी स्मृति में बन्दाने कम उनका प्रभाव अधिक पाता है व्यक्ति छूटती जाएँ उनके कर्म या जाने हैं उसे ऐतिहासिक व्यक्ति-समूह का ध्यान ही नहीं रहता उसी प्रकार ऐतिहासिक कलाकार तथ्यात्मक सचार्थ को विशेष महत्व नहीं देता । सर वास्टर स्टार ने 'केनिस्वर्थ' में रोम्सपीयर को पाश्चात्य प्रभाव कर दिया है यद्यपि कथानक के काल में सेक्स्टीयर एक सामान्य बालक था । बकिमचन्द ने 'घानगमठ' में मुड़ जब 'बीरममि' को दिखाया है जब कि यथार्थतः वह मुड़ उत्तरी बपाल में हुआ था और 'बीटिन एडवर्ड्स' का नाम बदल कर मेजर बुड कर दिया है । किछोरीलाल मोस्वामी ने 'पन्नाबाई' उपन्यास में पण्डितराज जयन्ताथ को मुपल शम्भर के दरबार में बुला दिया है जब कि उस समय पण्डितराज का जन्म भी न हुआ था । फिर भी घामोचकों ने उन तथ्यों का चित्रण सतोष न माना क्योंकि रचना में उस काम की आत्मा बची हुई है । 'जिस व्यक्ति में ठमिक और साहित्यिकता होगी वह यह न सोचेगा कि तथ्यों की पुनरावृत्ति से कोई उपन्यास ऐतिहासिक बन जाता है' । ऐतिहासिक उपन्यास का सबसे मुख्य मूल ऐतिहासिक वातावरण है जो उस रचना को लोक-सामान्य की दृष्टि प्रदान करने से होता है । लोक-सामान्य की दृष्टि का ही कारण ऐतिहासिक उपन्यास में रोमानी था जाती है । वास्टर स्टार का मत है कि रोमानी कल्पना को मन का स्वभाव है ऐतिहासिक उपन्यास में उच्चतम सफलता के लिए प्रायः अनिवार्य हो है इन उपन्यासों का मुख्य घटक प्रभाव ऐतिहासिक व्यक्तिओं के प्रति यथानुवर्तिक भाव को जभीरतर एवं बूढ़ बनाना है । ऐतिहासिक उपन्यास मिलाने वाले को अपनी रचना के प्रति लोक-सामान्य-दृष्टि ही रखनी पड़ती है और यह देखा जाता है कि लोक-सामान्य-दृष्टि किसी न किसी अंश में रोमानी होती है । लोक की दृष्टि प्रत्युक्तिपूर्ण

१ एच डी मिकर्सन सर वास्टर स्टार, पृ० १६

२ डे सी वाच डैमाली सिगरेट ५ १५४

३ किछोरीलाल मोस्वामी II पृ १००

जिन रोमण्डल इतिहासों का हम न हैं कि और पत्तर (हम भी ये मूल ड कोन डर) आरु मान्य विश्व हम योम्पोर इतिहास ड कि वास्टर स्टार का मत है कि विविध व्यक्ति भावें । कि वह, हर ऐनी डे डि डेवड बाक रित कलात ऑक वल सीम ड बी ड वलन एवर कम्पनी रि रिटीन ड आरु डिस्टांरिडल वलमिड ।

परी ५ २०२

५ वास्टर स्टार डि डिस्टांरिडल वलमिड हम वास्टर स्टार डि बीवुलर कम्पनीयम बाक डि

भाषा तथा स्वरूप है जो ऐतिहासिक उपन्यास का सफल आधार है।

श्रेष्ठतन्त्र-पूर्व काल में उपन्यास का मुख्य विषय सामाजिक तथा घटनात्मक था 'छिन्न भी मेखनों में ऐतिहासिक उपन्यास भी मिले' जिनकी मुख्य विशेषता थी इतिहास और उपन्यास की तराजू पर तुलना^१ जमा जागा—इतिहास की भी रक्षा और उपन्यास की भी। भारतेन्दु-मुख्य म गवार्धरसिंह ने बंकिमचन्द्र के प्रसिद्ध उपन्यास 'बुर्गेस नन्दिनी' का हिन्दी में अनुबा^२ किया। तब से बंकिमचन्द्र का प्रभाव हिन्दी-उपन्यास विशेषतः हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास पर पड़े जमा। 'बुर्गेस नन्दिनी' की रचना 'आधुनिक योरोपीय शैली' पर हुई थी। बंकिम से कुछ दशावधि या दूध सर बास्टर स्वाट (मन् १७७१ म १८३२ ई.) ने प्रथमी में ऐतिहासिक उपन्यास को एक नया रूप दिया था स्वाट ने कुछ समय बाद भारतीय इतिहास को लेकर भी प्रथमी में उपन्यास लिखे गये—विशेषतः होस्के का 'पाण्डुरंगहरि' (मन् १८२६) तथा बनन टेकर के 'कन्वेन्शन आफ ए डम' (मन् १८३१) 'टीपू मुसलान' (मन् १८४४) 'ठारा (मन् १८५३) 'रास्फ डारमेन' (मन् १८५३) तथा 'मीना' (मन् १८७३)। समकालीन भारतीय इतिहास का प्रथमी उपन्यास है। स्वाट ने प्रथमी का कहानियाँ सुना कर पात्रों के मन में यह भावना जगाई कि पुराने समय के लोग भी हमारे ही समान थे और जो कुछ उनके जीवन में घटित हुआ वह ठीक वैसा ही है जो यदि हम उस समय होते तो हमारे जीवन में भी घटित होता।^३ परन्तु टेकर ने इतिहास में पाठकों की रुचि जगाई। बंकिम के उपन्यास स्फोट और टेकर बोना का विधित का निचे हुए है, वे पात्रों को प्रतीत का इतिहास बतला कर बतमान का मुखार में प्रयत्नशील है। बंकिम का पात्रों में उन व्यक्तियों का ऐतिहासिक रूप नहीं मिलता 'ब' इनमें प्रत्येक है कि यदि घटना घटाने करके उनका देखा जाए तो उनमें कोई भी व्यक्ति नहीं है। उपन्यास की घटनाएँ बतल घटनाएँ हैं राजनीतिक आर्थिक तथा सामाजिक चर्चिया का स्वाभाविक परिणाम नहीं।^४ बंकिम का राष्ट्रीय आदर्श हिन्दू राज्य है। जो कुछ बंकिम के विषय में कहा जा सकता है वह किम्वदन्तीमास गोम्बामी के विषय में भी सत्य है। बंकिमचन्द्र स्वतन्त्र म प्रभावित न और उनके जमान ही रोमानी थे 'छिन्न भी उनकी रचनाओं में ऐतिहासिक विवरणों का भाव है प्रतीत का जीवन रीति रिवाज रण-क्षय का चर्चा नहीं'।^५

सम्पूर्ण: बरत कोषली छ तित की काउन्ड बैंड रिम पोर्नर म्प्रसम डब ड सम एम्पेटेड
ए रामनित्य बम।

१ 'उपन्यास' द्वारा विस्तर पत्रों बरत १० ११-८

२ दि हिन्दी आर दि इन्डिया जालेन कोषबम ७ १० ७६-८

३ एम म सी० मिर्चन सर बास्टर स्फोट १ ३८

४ छ भी बोन बंघनी मिर्चन १ १३१

५ मरी, १० १३२

हिन्दी के प्रथम मौलिक ऐतिहासिक उपन्यासकार किशोरीलाल मोस्वामी हैं, जिनका सर्वप्रथम ऐतिहासिक उपन्यास लारा वा शत्रु-कुल-कर्ममित्री सन् १९२२ में प्रकाशित हुआ था। उनके बाद बचना के लिए यथाप्रसाद मुक्त 'यमगामदास मुक्त' मन्त्राप्रसाद शर्मा 'अन्धेवप्रसाद मिश्र' गिरिमानन्द तिवारी^१ अजयगढ़ सह्याय तथा मिथ बन्धुमा दाहि के नाम दिये जा सकते हैं। सामाजिक धीर बटनारम उपन्यासों की भरमार में ऐतिहासिक उपन्यासों की इसी ग्युलता यह बतलाती है कि प्रेमचन्द पूर्व-काल ऐतिहासिक उपन्यास के लिए उपयुक्त नहीं था। इस काल में जितनी रचनाएँ हुईं वे इतिहास का महारा ही भरकर धपला काम बतानी रही। सामाजिक उपन्यास समकालीन 'मच्छी मछली' पर जीते थे और इतर उपन्यास संगीत की बातें सुनाकर मनोरंजन करते थे—'अश्वमेधा' उपन्यास का 'बुहार' और 'संघर्ष' का 'राष्ट्रास' दुर्ग बटनारमक रंग में इतिहास के छोटे हैं। जो उपन्यास ऐतिहासिक बनना चाहते हैं उनमें इतिहास तो बोझा-बहुल है परन्तु 'ऐतिहासिकता' नहीं। हाँ धर्मेतिहासिकता भी चिन्तित नहीं की गई। इतिहास के लिए इस काल के लेखक समस्त देश में घूमते रह 'कारमीर में हुनक्षत्र में कमप्रसाद की बुझा और सहील रत्ना बुहारबा की नीचता और धर्मीमत्ता की कूरता' चिन्तित है तो 'कमावती' उपन्यास में 'राजा प्रतापसिंह का पराजयी पक्ष की लड़ाई पर विचार करने वाला—आठव्या के हाथ से राजपूत का बिना सीनना' धादि का वर्णन है 'यादगामी उपन्यास में 'बीजापुर की जन लड़ाई का वर्णन है जो सन् १७५४ में हुई थी और आज तक 'युद्ध इतिहास' के नाम से प्रसिद्ध है तो 'पद्मावत' में 'सिक्कों और अंग्रेजों की जो जो भयानक लड़ाइयाँ हुईं जिन ठीकियों से अंग्रेजों ने पद्मावत को विजय किया है इन उपन्यास में उनका पूरा वर्णन है' ^२। मध्यकालीन इतिहास से प्रभावमानिनी बटनाभा को लेकर लेखकों ने जो उपन्यास लिख दिये हैं उनको ऐतिहासिक बतलाने का उन्होंने प्रयत्न किया है। सत्य तो यह है कि उस युग के उपन्यासकार की बुन-बिबस में कोई रचि नहीं थी वह बटनाभा से पाठक का मनोरंजन करता था। लेखकों की मुख्य प्रेरणा मध्यकाल का राजपूतों का मुसलमानों के साथ एक सङ्कट वर्ष का संघर्ष उपन्यास का वीरवपुर्ण आकषण है। अधिकतर उपन्यासकारों ने इसी का चिन्तन किया है। कर्मल दास हूत राजस्थान का इतिहास अनेक कथानकों का आधार बना पराजय में आत्मनिराज की रक्षा करने वाले पट्ट वीरों ने उपन्यास-लेखकों को प्रेरित किया। यही किशोरीलाल मोस्वामी के अतिरिक्त मन्त्राप्रसाद शर्मा अमरगामदास मुक्त अजयगढ़ सह्याय और मिथबन्धुओं के एक-एक

१ सुख रचना—'मृच्छिका' (सन् १९२४), 'धर्मिर' (सन् १९२४)

२ सुख रचना—'कामीर पञ्च' लारा वरिष्ठान ।

३ सुख रचना—'मृच्छिका वेग' (सन् १९२४) ।

४ सुख रचना—'कमारवती' (सन् १९२४) 'धर्मिर' (सन् १९२४) 'धर्मिराज चौधम' (सन् १९२४)

५ सुख रचना—'वर्धनी' (सन् १९२४)

६ बन्धुमा-दाहि-आदि पञ्चरस के विज्ञापन हैं ।

उपन्यास पर सामान्य प्रवृत्ति की दृष्टि से विचार किया जा रहा है।

आमोक्ष-काम के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में सबसे प्रथम पंडित बिछोरीलाल गोस्वामी का नाम है। इनके १५ उपन्यासों में से भाग्य को घनग-अनघ मिल कर जो दर्शन से अधिक उपन्यास ऐतिहासिक है। इनका प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास 'घाघरा रमणी वा हृदयहारिणी' है जो सन् १८८० में दैनिक पत्र हिन्दोस्थान में छपा था वहीं हिन्दी का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है जो पुस्तकालय सन् १९०४ में ही छप सका। गोस्वामी जी बंगाली प्रभाव से सबसे प्रथम समकालीन बंगाली इतिहास की ओर धावूट हुए थे। फलतः उनके प्रथम दो उपन्यास 'आदर्शरमणी वा हृदयहारिणी' तथा 'भरंगवन्ता वा धारणबाला' उसी भूभाग का चित्रण करते हैं। दक्षिण की हिन्दू राजीवता से प्रभावित होकर ही कदाचित् बिछोरीलाल गोस्वामी ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में मुसलमानों का महान् चित्रण किया है और उन्हीं के चरित्र का रहस्य प्रकट करने वाले कथानक रचना के लिए ग्रहण किये हैं। बंगाल के साध-आध उन्हींने आगरा बिली तथा लखनऊ के ग़ज़ों के भी उपन्यास लिखे और उनमें साधन के रहस्या का घनघनीपूर्ण कट्टाटन किया। उनका सबसे सफल ऐतिहासिक उपन्यास 'तारा वा लज्ज-कुल-कमलिनी' है जिसमें लखनू में अपना दृष्टिकोण भी स्पष्ट किया है। इन सबसे प्रथम इसी उपन्यास पर विचार करना अधिक समीचीन होगा।

बिछोरीलाल गोस्वामी के उपन्यास

तारा वा लज्ज-कुल-कमलिनी

'तारा वा लज्ज-कुल-कमलिनी' उपन्यास की रचना सन् १९०२ में हुई थी इसका दूसरा संस्करण सन् १९१४ में निकल गया था। इस उपन्यास के तीन भाग हैं जो घनग-अनघ बिन्दों में बँटते हैं। सबसे पहले 'तारा' को 'ऐतिहासिक उपन्यास' मुद्राबद्ध पर लिखा है। इन उपन्यास की बड़ी प्रशंसा हुई। पं० माधवप्रसाद मिश्र ने 'तारा' को पढ़कर पं० बिछोरीलाल गोस्वामी को एक प्रशंसात्मक पत्र में लिखा था —

'घाघरी तारा' के अक्षरबोधन से जो मुझ आनन्द प्राप्त हुआ उसे प्रकाश किसे बिना नहीं पूछा जाता। हिन्दी का इतिहास-रहित उपन्यासाध्यकार में स्वातिवदी 'तारा' घानी ओर रसिकों का चित्त धारण करेगी इसमें सन्देह नहीं। इनके नामरे भाग में भारती राठीरत्निकी ताराबाई की उम्र पवित्रा के पात्र में जो उमने बीराह पत्र पार्श्विक के नाम निम्नी की घाघरी काव्यबुधमता और मार्मिकता का भलोभाति परिचय मिलता है। इस प्रकार की आनन्दिकी एक तरह बलिता न केवल मनोविनोद ही का कारण है प्रत्युत इसमें आनन्दितमूल्य सेवा का उपकार भी हो सकता है।

'हिन्दी-बंगाली' में भी इस उपन्यास की सम्यक् ऐर्वा ही समीक्षा की थी —

१ बिछोरीलाल गोस्वामी रचित आदर्शरमणी (कटक) (१९०४) में एक निबन्धन से।

२ हिन्दी बंगाली ३ महीना सन् १९१४।

मुसलमान धामन में स्त्री-जाति की ओर दुर्दृष्टा हुई वह रोचक भी है और पवित्र भी ।^१ उस काम पर उपम्यास लिखने वाला उस बीषण से बच नहीं सकता । हम उपम्यासों में भी इसीलिए उन गम्भीरों की स्तुति मिल गया है । रहस्य ध्वनि (विस्मयकारी) के बीषण के हों या दातन की जड़ों (धुरेन बिज तिमिरम तहसाने पादि) के—इन उपम्यासों के प्राण हैं । सामान्यतः लोच-साहित्य का बीषण 'मुझ और प्रेम' है । परन्तु इन उपम्यासों में मुझ के स्थान पर छन-छन-जय जाने (तिमित्य सुरेन हया फल पाप्य ध्वनहार पादि) का लयी है और प्रेम के स्थान पर ऐत्रिय ध्वनिहार क्योंकि ये उपम्यास जिस काव्य के हैं उस काम में सबसे अधिक प्रीति हुई है ही बीषणों की ।

बहि किछोरीनाम अपने समय से पच्चीस वर्ष पहले होते यदि उनके युग तक सामाजिक धान्दोबान धामन हो गये होते यदि मध्ययुग के लोगों को मनरेला करके देस की दुर्दृष्टा का एस्माज कारण बँधेगी धामन को छुड़ाने की प्रथा चल गई होती यदि उपम्यास में बहि-किछोरीनाम को ही मुख्य महत्त्व मिल गया होता यदि वे पाठ्य के कारण मध्ययुगीन इतिहास के निष्कर्ष लगे होते तो उनके उपम्यासों में इतिहास का बहुत कम न मिलता या धामन उपलब्ध है । व्यवहारप्रसाद और बुम्बाबननाम बर्मा ने जिस इतिहास को चुना वह उनके स्वप्नों का काव्य है उनका मन उस काव्य के प्रति पाठ्य-बनत होना है और उन उनके मातावरण से रोमांचित हो जाता है । इसके विपरीत किछोरीनाम दोस्वामी उस समय के धर्म सामाजिक नेताओं के समान देश की प्रची-नति का कारण जोड़ते-जोड़ते मध्ययुग तक पहुँचे और इस्लामी शासन के विकारों को देखकर स्वयं भी धारधर्मचक्रित हो गये और पाठ्य को भी उनसे सावधान करने लगे । यही कारण है कि वे इस्लामी संरक्षित का बिषय सफलतापूर्वक नहीं कर पाये हैं । दोस्वामी धामन से रहने वाली धान्तिप्रिय प्रथा मिश्रित जीवन एवं वस्त्र कला के विद्यालय स्मारक एवं सुखी-निषिद्ध बरखारियों की ओर उनका ध्यान गया ही नहीं, और यदि गया भी तो निरास होकर लौट आया । यस्तु, बहि उनकी तुलना तक ऐतिहासिक उपम्यासकारों से की जाये तो उनका स्थान बहुत ठेका नहीं है । परन्तु यदि यह परीक्षा की जाय कि जिन रहस्यों का उन्होंने उद्घाटन किया है वे पाठ्य के मन पर स्थायी प्रभाव डालते हैं या नहीं तो वे सम्मलपूर्वक उत्तीर्ण हो जाते हैं । ऐतिहासिक उपम्यासों में भी कुछ का सन्देश देकर मानो वे राष्ट्र को आत्मनिश्चयी बना रहे हैं यही उनके ऐतिहासिक उपम्यासों का उद्देश्य था —

१. धामन उपम्यास के निवेदन में लिखे लगे ऐतिहासिक विवरण को देखिए—^१—महल में है से अधिक बान्नीय भी, लगे से दो बिलो से—बहुत बन्धन बँधे की वेस (या निराहिता होती भी), और दूसरी वे कि बिजली मिलती पहिली से बहुत ही निरास भी, केवल लोक-मिलास के लिए गुन-गुन कर रहती भी जाती भी । कभी-कभी बन्धे होते तो वह प्रेम के कारण ही घर छोड़ने जाये वे और राजबान्धियों को कि बन्धनी नहीं जाती भी प्रत्येक गरीबों का गलतारण के काय में लगी रहती भी ।

‘दुल-मुल मवा किमो का बगबर म्बिर गही रह मकता । जो कय मुची या धात्र उनके दुल का बारापार नहीं है और जो एक दिन बुकी जिनपाई देता था वह धात्र मवार में धरने से बहकर किमो को सुधिया नहीं समझता । बय गरी इस माया-मय मवार की मति है धीर इयम किमो का भी छुत्काग नहीं होता । ईश्वर सबको एसा ही मुची-किरमुचा करे । (ताग तागग भाग ५० पृ० ८३)

ताग का जन्म-कुल कमनिनी उगम्याम की कथा इतिहास प्रसिद्ध है । बगबर के नाम से ही राजपुत्र राजा धागरा और बिम्बो क मित्र और महायक बन गये थे । इनमें जोधपुर के महाराजा यशविह का नाम उल्लेखनीय है । के जहाँसीर के समग्र हिन्दी में । यशविह क वज्र पुत्र का नाम यमरविह था जिनका सम्बन्ध इस उगम्याम से है । रानी की मृत्यु के बाद यशविह ने दुमरा बिबाह किया छोटी रानी से जो पुत्र हुए यशोवन्तविह का माहित के इतिहास में ‘भाग-मृपय क लच्छक-का में प्रसिद्ध है और यशवन्तविह यशवन्तविह की मृत्यु बाप्यावस्था में हो गई थी । यशविह ने यमरविह होकर ज्येष्ठ पुत्र यमरविह को उत्तराधिकार में बंदिन कर दिया और उनका राज्य से निवान दिया । यमरविह पिता की धात्रा धात्रकर धवनी पत्नी (बूँदी की राजकुमारी) चन्द्रावती और धवनी ६ बय की कथा ‘ताग’ को माय लेकर पिता क राज्य में बाहर हो गये उनके माय कुछ बिबाधमया सरदार भी थे । इधर जहाँपौर की मृत्यु के बाद राजकुमारों में विहासन क विर भगता बनन लया । नृपजही बाहली थी कि उनका सामाह मद्र पर बैठे, परन्तु राजपूनों की महायता से बाह्यबाह्य शूरम शाहजहाँ के नाम से विहासन पर बैठ गया । इस क्षण कमल में यमरविह ने शाहजहाँ को विरोध महायता मितनी थी । शाहजहाँ ने उनको मीन हठार मवारों की मनमवहारी और बावीर दी यमुना के किनारे उनके निष्ठ एक महल भी बनवा दिया । तब से यमरविह शाहजहाँ के विदायराज बन गये यह देखकर लज्जा की ललावतनी उत्पन्न मन ही मन जपने लया । मुमताजमहल की मृत्यु के बाद सन्तत रीयनमारा और जहाँपौरा के हाथ में चलने लगी । रीयनपारा औरयजब से मिली हुई थी ललावन भी उमी विरोह में था । जहाँपौरा बाय के पक्ष में थी वह ताग की मरुती भी थी हकीम जलमनुना इनका महायक था । इस बीच ताग बड़ी हो गई थी और उनका बिबाह उदरपुर के मुदरय राजविह क नाम निविधन हो गया था । इधर ललावत और बाय दातों की तरा पर कुटुम्बि थी । धवनी गह्वरी रम्या की महायता से ताग ने दबनों को लूब धकाया और धागरा से यमरविह के साथ निवधन करने का जवाब दिया । ललावन इस प्रयत्न में बाधा डालना चाहता था । अन्त में यमरविह ने लज्जा के सामने ललावत के बनेने में बटार भौक की और इनकी बठार से शाहजहाँ पर भी धात्रमय किया । उग्र बटार के लपने से पत्थर से लंबे की एक कालिंग बिट्टी जड़ गई जिसका निधान धात्र ठक बना हुआ है । माप्याट बपाते हुए यशवन्तविह धागरा के किल से निवधन रहे थे कि उन पर धात्र-मय हुआ और जगता बोड़ा किये से बाहर कुत्ता हुआ माय गया धात्र भी उठ स्वयं पर एक पत्थर का बोड़ा लया है जिसको शाहजहाँ ने बनवाया था । शाहजहाँ की

जब सारी घटना की वास्तविकता का पता लगा तो उसको बहुत परचानार हुषा उसने धमरसिंह का नाम धमर करने के लिए उन फार्मक का नाम 'धमरसिंह का फाटक' रख दिया जिस पर उस राठौर-बीर ने मारकाट मचाई थी। बनवारी कवि (सन् १९४४ ई के समय) ने इस घटना का बड़ा रोमांचकारी वर्णन किया है —

धम्य धमर सिति छत्रपति धमर विहागे मान ।

माहजही की गोष में हुग्यो समावत जान ॥

+ + +

कई बनवारी बादमाही के लगत पाप

परहि परकि सोब साबिम सो धरकी ।

हिन्दुन की हू सब राखी है धमर सिंह

कर की कड़ाई कै बड़ाई बमबर की ॥

इस कथानक में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य है राज धमरसिंह का समावतछा को घरे दरबार में मार देना और स्वयं धनुषों के हाथ से मारा जाना। किन्तु कारण धमरसिंह समावत पर इतने क्रुद्ध हुए यह बिगड़रहित नहीं है। डा० बनारसीप्रसाद सचनेना लिखते हैं कि सन् १९१४ ई० में बहानेधारा के कानूनों में धाप लग गई जिससे वह स्वयं भी काफ़ी बल नहीं थी। धमरसिंह भी उन दिनों बीमारी के कारण दरबार से अनुपस्थित थे। २९ जुलाई को वे वापिस धाप तो समावत उनकी बाइछाह के पास में गया। धमरसिंह बायीं ओर लड़ के बाइछाह कोई हुकूम भिन्न रहा वा समावत दाबी ओर से नीचे उतर कर किसी अछसर से बात करने लगा। अकस्मात् धमरसिंह उसकी ओर बढ़ी निकाल कर थोड़े और समावत की बायीं ओर पूरी भीड़ कर उसको बड़ी माग डाला^१। लाहौरी के 'पाइछाहनामा' में लिखा है कि धमरसिंह को यह सब हुषा कि समावत उनके किछ जिनमत कर रहा है।^२ 'अब पारसी बानइमूख निस्तता है कि उक्त बग्गा ४ घमस्त सन् १९४४ ई को बोरहर के बाइ हुई थी और इसका कारण यह वा कि समावत का ने धमरसिंह से यह पूछ कर कि वह दरबार में इसके पहिले क्यों नहीं हाजिर हुए, उन्हें क्रुद्ध कर दिया वा'^३ बीमार होने के कारण या वैसा कि धमरसिंह के कवि बनवारी का कथन है छुट्टी से अधिक दिन व्यतीत करने पर किये गये जुमाने के बयान देने के कारण समावतछा बकपी ने दरबार में उसके लिए पकड़ा किया जिस पर इन्होंने रोष प्रकट किया। समावतछा ने इस पर इन्हें बंधार कहा जिससे क्रुद्ध होकर इन्होंने उसे मार डाला।^४

राज धमरसिंह अकस्मात् ही लड़ होकर समावत को मार बैठे हों ऐसा सम्भव नहीं मयना। उनका समावत से मनोमालिम्ब्य अथवा बल रहा होना कारण थीकानेर

१ दिल्ली काब सादरनाम् फाक दिल्ली १७६-७

२. बालूप २, १० १२० (अनुक्त का पुस्तक में बरतत)

३. बचपिचन बग्गा क्रुद्धोद ५० ७१

४. को ५ ७२

की भीमा^१ हो बसबा तारा । इस बटना के बाद कालीमुहनाह की घोर घर्जुन का घमरसिंह पर आक्रमण करना भी किसी पुराने बीर का शौनन करता है । घमरसिंह के साथियों को जब इस दुर्बटना का पता लगा तो उन्होंने बिहुनबास के पुत्र घर्जुन से घमरसिंह की मृत्यु का बदला लिया ।^२ उपन्यासकार का मत है कि इस बीर का वारस दुष्ट सत्तावत की राजकुमारी तारा पर कुदृष्टि थी ।

इस कल्पना का मुख्य आधार राजस्थान की घनुप्रतिमा^३ हैं । नर्मल टाड के अनुसार मुगल शाहजादे ने मारवाड़ के जयनगर की राजकुमारी की अपनी बेगम बमाना बाहा परन्तु स्वाभिमानी राजपूत-कन्या ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया और शीघ्रोद्वेषा राजसिंह को अपना प्राण समर्पित कर के उनकी गथा का सम्बन्ध कुन पुरो हिन के हाथ मजबूत किया । सम्बन्ध में कहा गया था कि बग हू खनी कमी बगुमे की साबित हो सकती है । क्या पकिन राजपूतनी कमी बगन का पति मजबूत नहीं है । यदि तुमने राजा न की तो मैं सतीत्व की रक्षा करती हुई प्राण-विमर्जन कर दूँगी ।^४ लेखक ने इस पत्रिका को ज्यों का त्यों दे दिया है और ऊपर कहा का बुझा है कि इसी मार्मिकता की सभी पात्रोबर्णों ने प्रशंसा की है । तारा मारवाड़ बम की ही थी उस पर शाह बादा बाघ कुदृष्ट रहता था । राजसिंह ने उसका उद्धार किया और उनको अपनी पत्नी बनाया । बारिख के 'पादपाङ्कज' के अनुसार इसी राज घमरसिंह की पुत्री का विवाह तारा के बेटे पुत्र मुत्तेमान सिंहोह के साथ सन् १६१४ में हुआ था^५ । इन सब दिक्कर हुए तथ्यों के प्रकाश में कोत्वापी भी की कहाना तथ्यात्मक मने ही कम हो परन्तु मावना में ऐतिहासिक ही है और राजपूती इतिहास का उज्ज्वल रूप प्रस्तुत करती है ।

बकिमबन्ध ने भी प्रसिद्ध उपन्यास 'राजसिंह' (सन् १८८२ ई) में इस इतिहास को अपने कथानक का आधार बनाया है । परन्तु उनकी कल्पना ने टाडरूप राजस्थान के इतिहास से बहुत सहामता भी है । मत्त नामिका का नाम बजबकुमारी है । वह जयनगर की राजकुमारी थी और संभव उसको प्राप्त करना चाहता था । वात्सामी भी ने इतिहास से महामता लेते हुए भी कल्पना को पर्याप्त स्वतन्त्रता दे दी है ।

उपन्यास की कथावस्तु का केन्द्रस्थल आगरा का राजमहल है और बिम उन् दो तीन बर्षों का है जब शाहजहाँ की जीवन से हताश जानकर उनके राजकुमार निहल-खन के लिए सुरु-छिप कर शीत-यौव जाता रहे थे । इतिहास की दृष्टि में तो दो बर्षाएँ मुख्य हैं—रोहनमारा तथा बहाममारा के शिरो-छिपे प्रबल और घमरसिंह का सन-वन पर रोव । इन दोनों बटनाओं की जोड़ने वाली कड़ी घमरसिंह के विद्रोही सत्तावत

१ गी. १ ७१

२ कलकत्ता एन्ड ऑरिएण्टलीन प्रेस राजस्थान १०० ११

३ कलकत्ता एन्ड ऑरिएण्टलीन प्रेस राजस्थान १०० १०१

४ सिद्धी प्रेस राजस्थान प्रेस दिल्ली, १०० ११३

का का रोशनघारा के बल से सम्बन्धित होना है। यह प्रसिद्ध है कि मुहम्मदगमह्व की मृत्यु के बाद साहजहाँ की दोनों भव्दिया बहालघारा और रोशनघारा अपनी अपनी शक्ति बढ़ाने का प्रयत्न करने लगीं वे दोनों शक्तिवादिनी थीं इसलिए उनका साथ प्रयत्न अपने को शक्तिशाली बना कर जीतने की लड़ाई बनाने का था। बहालघारा द्वारा की विहासन बिलाना बाहरी की द्वारा हिन्दू-संस्कृति से प्रभावित था इसलिए उस राजपूतों से सहायता मिलने की आशा थी। रोशनघारा और बहालघारा की राजा बनाता बाहरी की वह धर्म का पक्का था सत्ताशक्तता उसका मध्यस्थता का अन्त में रोशनघारा की जीत हुई। और मध्यस्थ कट्टर सुन्नी मुसलमान था वह दिन का कट्टर परम्परा करिब का प्रभाव था यह प्रसिद्ध है कि वह टोपियां भी कर अपनी जीविता कमाला था। धार्मिक बन कर धर्मरहित के लीटने भाई धर्मरहितहिन्दू जिनके कारण धर्मरहित को राजपूतपुत्र होना पड़ा था और बहालघारा के विस्वासापन्न धर्म यहाँ तक कि कई लड़ाइयों में उनको सैन्यपति बना कर भेजा गया। बहालघारा ने हिन्दुओं पर नृपति धर्मधारा किये परम्परा पुत्र रामगम की विद्वत्ता से प्रभावित हो कर उसने वायदा की भी और जिस मन्दिर के लिए बन दिया था वह देहधूम में धर्मरहित विद्यमान है। इनके विपरीत 'तत्ते तन्त्र का बाबरी इन्दौर द्वारा बना शक्तिमत्त प्रसन्नमय मिलनसार और कौशल' का कारण बहालघारा के मन्त्रित्व का अपने स्वभाव के कारण वह 'धर्मरहित धर्म का बिही धर्मरहित देहधूम' बन गया था। वह निश्चय है कि यदि द्वारा में मनोबल और प्रारम्भिक होता तो उत्तराधिकारी होते हुए और हिन्दुओं की सहायता करते हुए बहालघारा के शक्ति-धर्म में बहक कर अपने लक्ष्य से अन्त न हो जाता।

लेखक ने आगरा के अन्तपुर के युद्ध रङ्गमंचों का उद्घाटन करते हुए तमस्त मदनमय की कुञ्जी^१ बहालघारा और रोशनघारा के हाथों में दे दी है। साही आन्धान की मर्मावा की शिकार बनकर अपने मन की मछोले हुए, धर्म बाटकर व्यास बुझने का प्रयत्न करती हुई तत्कालित धर्म में प्रसन्नमय में व्यास धर्मिकाएँ बाबाबा को अपने रोष से शांत कर देने में कटिबद्ध रहती थी। 'धर्म' से घरे हुए झूठे धर्म में बाबा पढ़ने पर वह धर्म का धर्मपान का मही लगीका होता थी^२। ये दोनों साहजहाँ की उपस्था के अन्तर्पक्ष का आधार और साही मन्त्रों की राजकुमारियों की सामान्य प्रतिनिधि है। इनके विपरीत राजपूत-बाला द्वारा जो उपस्था की नामिका थी है इस रचना के अन्तर्पक्ष का आधार है। रोशनघारा और बहालघारा की करतुओं के दो पाठों में—

१ 'द्वारा अन्तर्पक्ष मदनमय धर्म धर्म'।

२. 'साहजहाँ—अर्थात्, अर्थात्'। इस वक्त मुसलमानों सत्तमत्त की कुंजी द्वारा हाथ में है। (द्वारा मदनमय धर्म धर्म)।

'जो कुछ वक्त सत्तम राममय मदनमय था, बहालघारा और रोशनघारा की के हाथ में थी वही दोर को अपने हाथ में करने के लिए रोशनघारा ने कौशल बाबा रचा था —।

(परी, इसका मन्त्र १ २)

३ 'द्वारा अन्तर्पक्ष, मदनमय धर्म धर्म'।

उनकी ईर्ष्या—तुम्हा और प्रतुप्त मानसा-वासना में—बेचारी तारा नित कर लड़ी
 क्षामत न निकल सकी। वह उपन्यास, यौस्वायी की के ग्रन्थ उपन्यासों के समान ही
 नायिका-बचान है। और प्रतिपाद में आकर सत् प्रसत् का संघर्षमय विषय बहा किया
 गया है, सत् (तारा) तुम्हा एकनिष्ठ एवं भाव्य है। उसकी सफलता भी इसी गुण की
 रक्षा में है। प्रसत् में कथमता असन्तोष एवं तुम्हा है। इसमिए उसके भीतर स्वयं संघर्ष
 है। उसके अनेक रूप हैं—बहानघारा रोचनघारा बारा सभाबत आदि, उन रूपों में जो
 सबसे अलक्षणी है वे (रोचनघारा और बहानघारा) नेतृत्व करते हुए दिखाई पड़ते हैं।
 उपन्यास के मुख्य-भाग उपासीन प्रपुत्र और मुकतियों के हाथ में बेलने वाले हैं। मुकदीन
 और नुरसूक अपने को कमरा बहानघारा और रोचनघारा का प्रेमी समझते हैं। बारा और
 औरंगजेब अपने को सिद्दासन का अधिकारी साहबहा अपने को बादशाह और सत्ताबत
 अपने को बख्शी समझता है। परन्तु है उनके सब बहानघारा और रोचनघारा के खिलाफ
 ही। तारा (नलका) प्रपुत्र एवं निरक्षर है। उसकी पुरक रम्मा है। जो मायाविमों से
 प्रपुत्र के लिए स्वयं मायाविमि बन जाती है। उसकी वास्तविकता का इस उपन्यास
 में इतना ही महत्त्व है। उपन्यास को मुकामत कह सकते हैं। क्योंकि सत् की वन तथा
 प्रसत् की पराजय हो गई। वह एक एकनिष्ठ तारा का गजबिह से बिबाह हो गया और
 रम्मा अन्धकार के साथ भुकी बन गई। यही जीवन का प्रवृत्ति पक्ष है जिसको लेखक
 ने प्रस्तुत बोले 'ता रे वा नी—' से व्यक्त किया है।

उपन्यास के तीन भाग हैं। पहिले में संघर्ष का प्रारम्भ दूसरे में प्रति और
 तीसरे में अन्तर्धान है। संघर्ष का प्रारम्भ बड़ा स्वाभाविक है। बहानघारा और रोचन
 घारा महस के नौकर-नाकरों के साथ छिा कर प्रेम-कीड़ाएं किया करती थीं। साह
 जहां को बहानघारा की नीसा का पता लग गया उसने मुद्दे तपी अहमारी से दो
 कुछ न बहा परन्तु उनके प्रेमपात्रों मुकदीन और मजीरबा को मरवा डाला। बहान
 घारा उत्तराधिकारी बारा की भी शिव बयस्ता भी उसने अपने कर्मक को बचाने के
 लिए बादशाह से रोचनघारा के प्रेम प्रपञ्च का हाल कह दिया। बादशाह ने रोचन
 घारा के प्रेमपात्र नुरसूक को भी इस्लाम के भीतर कत्ल कर दिया। 'यह ऐसी
 घटना है कि रोचनघारा बहानघारा ही की नहीं बल्कि साहजहां की पूरी-पूरी औरंग
 जेब गई और इस घटना ने औरंगजेब की तरफधारी में रोचनघारा के चित्त को बहुत

१ 'तारा'—उपन्यासों की लक्षणाएँ जयकि उनकी राखी एक से लकी हो जाती है। दो फिर दूसरे
 राखी के साथ राखी करने के निमित्तन से अपनी लाल हो देना औरत समझती है। (वरी

२० (२८)

२ 'रम्मा'—वैरी ऐसी लाल ने लाल करते हैं कि निम्न रात निम्न के लाल हुयों से दूरत अलक
 बचता हाकिम हो लाल है। (पुस्तक, दूसरा भाग पृ. २४)

३ वरी, तीसरा भाग, पृ. २०

को ना रोशनधारा के दण से सम्प्रभित होना है। वह प्रसिद्ध है कि मुन्नाममहल की मृत्यु के बाद साहजिक ही दोनों भक्तिवा जहानधारा और रोशनधारा अपनी अपनी दक्षिण बढ़ने का प्रयत्न करने लगीं वे दोनों भक्तिवाहिता भी बनलिये उनका साथ प्रयत्न अपने को दक्षिणधारी बना कर जोवन को सुखी बनाने का था। जहानधारा द्वारा को सिद्धांतन दिखाना चाहती थी द्वारा हिन्दू-संस्कृति से प्रभावित था इसलिये उसे राजपूतों से सहायता मिलने की आशा थी। रोशनधारा और रमजम की राजा बनाना चाहती थी वह वन का पकड़ा था सत्तावतला उसका महलवार का अन्त में रोशनधारा की भीठ हुई। औरपदेब कट्टर मुन्नी मुगलनाम का वह दिन का कत्तरे परम्पु करिब का प्रच्छन्न था वह प्रसिद्ध है कि वह टोपिया सी कर अपनी नीबिका कमाता था। धामे बन कर धमरसिंह के सीतेने भाई जमबन्तसिंह जिनके कारण धमरसिंह को राज्यभुक्त होना पड़ा था औरपदेब के विरवाधपात्र बने यहाँ तक कि कई लड़ाइयों में उनको सेनापति बना कर बैठा गया। बसकि औरपदेब ने हिन्दुधारा पर नृपस पत्ताधार क्रिये परम्पु कुछ रामराय की विद्वत्ता से प्रभावित हो कर अपने आग्रहाद ही भी और जिस मसिहर के लिए बन दिया था वह देहरादून में सबलक विद्यमान है। इनके विपरीत 'तल्ले तान्स का बाबरी हुकूमत द्वारा बड़ा आश्रित भक्तमन्त्र भिन्नसार और पैयाब' था परन्तु जहानधारा के मन्त्रित्व या धरने स्वभाव के कारण वह 'धम्मन रवें का बिही सुबगर्ज वैभूरीयत बन गया था। वह निश्चय है कि यदि दाएँ में मनोबल और धामरम होता तो उत्तरभक्तिवादी होते हुए और हिन्दुधारा की सहायता रखते हुए जहानधारा के शोक-नेत्र में बहक कर अपने लक्ष्य से भ्रष्ट न हो जाता।

सैबक ने सायरा के अन्त-पुर के युद्ध रहस्यों का उद्घाटन करते हुए समस्त घटनाचक्र की कुञ्जी^१ जहानधारा और रोशनधारा के हाथों में दे दी है। साही सान्धान की नयाहा की छिकार बनकर अपने मन की मसोछे हुए, धोन खाटकर प्यास बुझाने का प्रयत्न करती हुई तबाकभित प्रेम में असफल हैं क्षणिक प्रेमिकाएं बाबाभा को अपने रोष से बाध कर देने में कटिबद्ध रहती थी। 'युग्मा से भरे हुए मूँडे प्रेम में बाबा पड़ने पर कुछ प्रेम या प्रेमपात्र का यही मनीषा होता थी है'^२। वे दोनों साहजिकवा उपमास के अन्तर्पक्ष का आचार, और साही मनुष्यों की राजकुमारियों की सामान्य प्रतिनिधि है। इनके विपरीत राजपूत-बाला तारा जो उपमास की नायिका भी है, इस रचना के सर्व-वध का आचार है। रोशनधारा और जहानधारा की करतूतों के ही पाटी में—

१ 'जारा' कल्पित पहला नाम पृ० १३

२ साहजिक—आर्क्य लक्ष्यधारा। इस वक्त सुप्रसन्नानी लक्ष्यधारा की कुंभी लुप्त हो जाने में है। (द्वारा पहला नाम, पृ० ६०)

'जो कुछ लक्ष्य रामरम कल्पना का, कसकी दोर न्यानवाही ही के हाथ में थी इसी दोर को अपने हाथ में करके के शीघ्र रोशनधारा ने कीका बल रक्त था —।

(सही दूसरा नाम, पृ० ४)

३ दाएँ कल्पित, पहला नाम पृ० ४४

सनकी ईप्सा—तृष्णा और अनृत सामंसा-वासना में—बेचारी ठारा गिर कर लड़ी सत्तामय न निकल सकी। वह उपन्यास योस्वामी जी के अन्य उपन्यासों के समान ही नायिका-प्रधान है, और घटिबाह में जाकर सत् प्रसत् का संघर्षमय विजय यहाँ किया गया है। सत् (ठाण) बड़ एकनिष्ठ एवं धातु है। उसकी सफलता भी इसी धृति की रक्षा में है। प्रसत् में बलवता अधन्तोप एवं तृष्णा है। इसलिये उसके भीतर स्वयं संघर्ष है। उसके अनेक रूप हैं—बहानघारा रोशनारा धारा समानत धादि उन रूपों में जो सबसे बलवती है वे (रोशनघारा और बहानघारा) नेतृत्व करते हुए दिखाई पड़ते हैं। उपन्यास के मुख्य-पात्र उदासीन धनुष और मुक्तिपों के हाथ में खेलने लगे हैं। मुस्लीम और गुरसूक अपने को जमरा बहानघारा और रोशनघारा का प्रेमी समझते हैं। धारा और धीरंगमैत्र धरने को निहसन वा अधिकारी छाहबहा धरने को बादसाह और समानत अपने को बख्शी समझता है। परन्तु है उसके सब बहानघारा और रोशनघारा के खिलाफे ही। ठारा (मत्स्य) बालू एवं निरक्षर है। उसकी पूरक रम्या है जो मायाविर्गों से झूमने के लिए स्वयं मायाविनी बन जाती है। उसकी भावधारणा का इस उपन्यास में इतना ही महत्व है। उपन्यास को सुखान्त कह सकते हैं। क्योंकि सत् की ब्रम तथा प्रसत् की पंचमय हा गई। बड़ एवं एकनिष्ठ ठारा का राजविह से विवाह हो गया और रम्या बन्धनत के साथ मुसी बन गई। यहाँ जीवन का प्रवृत्ति बस है, जिसकी सैखक ने अन्तिम बोध 'ता दे वा नी—' से व्यक्त किया है।

उपन्यास के तीन भाग हैं। पहिले में संघर्ष का प्रारम्भ धुपरे में मति और धीर में अधमान है। संघर्ष का प्रारम्भ बड़ा स्वाभाविक है। बहानघारा और रोशन घारा महल के नीकर-बाकरों के साथ छिद्र कर प्रम भीड़ाई किया करती थीं। छाह बहा को बहानघारा की नीला वा पता लभ गया उसने मुँह लपटी छहवापी से तो कुछ न कहा परन्तु उसके प्रेमपात्रों गुरसूक और गजीरबा को मरवा डाला। बहानघारा उत्तराधिकारी धारा की भी प्रिय बयस्था थी। उनसे धरने कलंक को बचाने के लिए बाग्दाह में रोशनघारा के प्रम प्रपण का हस्त कह दिया। बादसाह ने रोशनघारा के प्रमपात्र गुरसूक को भी हुम्माक के भीतर बलन कर दिया। यह देवी बटना है कि रोशनघारा बहानघारा ही की गरी बरन् छाहबहा की पूरी-भूरी बैरिग बन गई और इस घटना ने धीरंगमैत्र की उत्तरादारी में रोशनघारा के चित्त को बहुत

१. ठारा—राजपूतों की लड़कियाँ जबकि कनबी ठाराी एक से पक्की हो जाती है तो छिद्र दूधरे शस्त्र के सब ठाराी करने के अनिस्तन से अपनी बल दे देना वैधरत समझती हैं। (परी

१. १५)

२. 'रम्या—देवी देवी सुन्य वे लोग करते हैं कि निमा १२ पिचा के सब दुष्टों से दस्तक करके बचाना मुश्किल हो गया है।

(धारा, धुपरा भाग १०० १४)

सहायता की^१। ऊपर बारा की निगाह सजायी तारा पर गई तो वह हम सरल सीन्धर्व पर मुग्न हो गया उसने सलावत जाँ से इस काम में सहायता माँगी। 'जग धर्मीक सुखरता को देखकर कामी सलावत उस समय ऐसा वायस हुआ था कि यदि वह धरती लक्ष्मी को भी इतना हसीन देखता तो वायस ही अपने ठई^२ मुखरस से सम्मान सकता'^३। 'इसकी बहीमत सलावत भी धीरे-धीरे का सहायक बन गया बारा की सकलता में सबसे बड़ी बाधा' जहलमारा की उसका प्रण था 'मैं घाड़ी हथियान होने लूँगी। तारा जैसी आभाक धीरे लुक्सूरत नाबनी के भागे बारा पर मेरी एक न जानेगी'^४। संघर्ष की गति दूसरे भाग में है। इस में आमुसी (जिसकी रोचनघारा के हाथ में मनाम है^५) ऐशारी (जिसके कारण रम्मा तारा की सहायता कर सकी^६) धीरे तिलिस्म के मनोहर चमत्कार हैं—बिस्ली के किने से घागेरे के किने के घग्गर तक चली जाने वाली सुरंग^७ सग्न सगमर की पटिया और बैहोपी के मोमे प्रभं ऐतिहासिक सत्य हैं। तीसरे भाग में मुबनरबा मिथ तारा का पत्र लेकर राजसिंह के पास जाते हैं। यह पत्र ९ पृष्ठ की कविता है जिसकी प्रशंसा का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। प्रान्त में राजपूत आमाओं का उठार हो गया मछपि राव समरसिंह दुष्ट सलावत को मार कर स्वयं भी छेद रहे। घायरा के सम्मान में साहजही का पत्राचार और धीरे-धीरे के उत्तराधिकार का संकेत धीरे दीप है। प्रान्तन परिष्कृत में राजसिंह-तारा एवं बगवानत रम्मा की सुखी एवं सान्त्व दिला कर उपग्राह का प्रान्त सुख में हो जाता है। उपग्राह की आधिकारिक कला तारा के संकेत और उठार की कहानी है इसलिए बड़ी नाबिका है धीरे रचना का नामकरण उसी के नाम पर है। प्रासंगिक कहाए हैं ही नहीं उनके संकेत मात्र मिलते हैं। मारग्न से प्रान्त तक पाठक की उत्सुकता खण्ड रहती है कबानक के आकार प्रकार, बलन एवं विमाजन को देखकर ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि वह तीन धंक के नाटक के लिए अत्यन्त उपयुक्त तथा सफल बन सकता है।

उपग्राह के पत्र जैसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है, दुर्गों के प्रतिनिधि हैं व्यक्तिगत की प्रतिपादनी। ई० एन कोस्टर के सन्धों का बरबहार करते हुए इन

१. ताउ अस्तम भाग ३० ५४

२. गही, गहल मग ३ ५३

३. टेंबा—बही कि बहानमारा ताही मग्न में अपनी से बग्नर किती कूपुरत नाबनी का नाबि-
कल रिम में गही बाहजी।' (गही अस्तम भाग ३ ३३)

४. ताउ इतरा भाग ३ ३३

५. गही पहला भाग ३० ३५

६. गही इतरा भाग ३० ३३

७. गही, गही ३-५

पानों को पकैट^१ कहा जा सकता है। प्राचीन लोक-साहित्य में प्रायः ऐसे ही पात्र होते थे। जिनका निर्माण किसी विशेष युग के बीच पर होता था उनका विकास नहीं दिखाया जाता प्रथम बार मिलने पर ही घाप उनको पूरी तरह समझ लेंगे। ऐसे पात्र पाठक को कभी आश्चर्य^२ में नहीं आसते। इनमें अन्तर्ग्रन्थ नहीं होता। किसी भी विशेष घटना से उनके स्वभाव में परिवर्तन नहीं आता। 'छारा' उपन्यास में मुख्य पात्र छारा, बहानाधारा रोहनधारा शारा सत्तागत रम्मा हैं। इनका पूरा रूप मिलता इस उपन्यास के लिए आवश्यक है चित्रित कर दिया गया है। अमरसिंह राजसिंह अन्तर्गत इलायतुल्ला धर्मन और अन्तर्गामी सामान्य पात्र हैं जिनका यथास्थान उपयोग कर लिया गया है। दाहबहाई औरंगजेब आदि सत्तास्त नहीं आते कुछ छोटे-मोटे पात्र साहूआदियों के प्रेम-पात्र ठूठी कुटिनी बामुस आदि हैं। इस प्रकार पात्रों की दृष्टि से इस उपन्यास में बड़ी कसावट है। लेखक न अतिशयिष्ठ हीन प्रकार से किया है—स्वयं अपनी बाबी से हमारे पात्रों के मुख से और पात्र न क्रियाकलाप से प्रथम हीनी अत्यन्त सफल और अन्तिम विपिन है। हिन्दू राजकुमारी और मुसलमान साहूआदियों को एक ही कसौटी—रूप गुण विवाह अरिज औरत विष्ठा आदि—पर कस कर मानो उनकी तुलना करत हुए एक को खेप और दूसरी को निहृष्ट सिद्ध कर दिया है। शारा और सत्तागत के व्यक्तिगत समाग होते हुए भी स्वतन्त्र है। अमृत को छोड़कर छाप हिन्दू पात्रों में राजपूती आशय का सामान्य गुण है। कबल रम्मा इसका अपवाद है। रम्मा का अरविन्दम लेखक का उद्देश्य नहीं परन्तु उस किछोरी में अतुराई एवं माया की समस्त विद्या दिखाकर मानो यह सिद्ध किया है कि साहूआदियों इस माया का अपनी वासना के लिए प्रयोग करती हैं और राजकुमारियाँ अपनी रक्षा के लिए विज्ञान एक ही हैं परन्तु पात्रमेव से उनका उपयोग असंग-असम होता है। लेखक ने ठी बहानाधारा क छानों में छारा को भी 'बाबाक और बूबसूरत'^३ बना दिया है। रम्मा पर तरस आने^४ वालों को वह भी जानना चाहिए कि छन-छिन्नों का ज्ञान और उनकी अपने अचीन करने की योग्यता अरिज का कोई बीच नहीं है। मायाविनों के बीच में रह कर उनकी जानें न लभभना मानसिक परिवर्तन है परन्तु छका कर अपनी रक्षा करना प्रतिभा का चिह्न है। सिम्ह की राजपूती मयकुमारी के समान दूसरी छनो बाताएं भी विचित्रियों का अग्रुप में कंस कर अपनी अतुराई से उनके सरदारों का लून बहावर बना स्वयं अपने तत्तीत्व की रक्षा नहीं कर सरी हैं ? लेखक

१ 'परवैस्तुल आक दि मावेत' पृष्ठ १३

इस विषय गुरैस्त जीव है और कनहूबदेह राजपूत प सिंगल आदिवा और कसालिटी ।

२ १ अम औररैत : परवैस्तुल आक दि मावेत पृ १०६

रम्मा पर तरस आने^४ वालों को वह भी जानना चाहिए ।

३ छारा दूसरा नाम पृ १३

४ हिन्दी-कल्पस ४ ८३

मे घपन एक उपन्यास 'लूनी घोरत' का सात गून् में एक किछोरी घोर-नासा को सतीत्व की रक्षा के लिए सात प्रशाधारियों के गून् की जगुआई सौपी है। इतिहास मेसाओं को राज्य के चरित्र पर आपत्ति हा सकती है ऊपर दिखाया जा चुका है कि राज्य को हिन्दू धार्मिकों की व्यवस्था समिति मिली होगी परन्तु उसमें मनोरस का घमान का घम्यवा बीच धमिकाटी होकर पिता और बहिन की सहायता एवं राजपूतों के सहयोग हैं भी वह सिहासन क्यों प्राप्त न कर सका। सत्य यह है कि घोरपनेव घोर राज्य की सुमना में इतिहास पहिसे को कट्टर परन्तु दुमरे को मुनामम पाता है, इससे अधिक कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

'किछोरीनाम न तारा' उपन्यास में इतिहास का जो रूप दिया है उसकी बर्चा ऊपर हो चुकी है। वैद्यकाल वा वातावरण की स्थिति इसी इतिहास से हुई है। वेस में उस समय सैती राजनीतिक परिस्थिति की उनका विषय तो इतिहासकारों को स्वीकार्य ही होगा क्योंकि उसमें कल्पना का विशेष सहारा नहीं दिया गया। धारति होती है याही राजमहल के भीतर बलने वाले घटना बचो पर। राजनीति बानो इन्द्रिय-निष्ठा और स्व-नीति बन गई थी। सात वातावरण भव घोर सत्य से भय हुआ था। जिस नामनीन पर बाह्याहू का घाह्यादा की मकर पक्ष बाठी वह फिर बमैर हरम में बाधित हुए नहीं रह सकती^१। घाह्यादिया के प्रेमी कियकर मुरम की राह स^२ हम्मान में पहुँच जाते और घपनी बान से हाथ बाँटते थे। बहुतरी मक्कारा दूती बन बासूची और भसे बर की हठीन घोरतों को निकाल जाने वा खराब करने का पेया भी करती थी^३। पुताओं और बूबमुरत बादियों का उस समय विषका था। घमाउड़ीन घकवर, बाहीगीर बाहे जिसको देखिए सभी कामुक और लम्पट थे। उनके दरबारियों का भी नहीं हाल था। घाह्याहू का घासनकाल तो घबाही के लिए प्रविष्ट रहा है। बनिबर का घाटोप है कि घाह्याहू का घपनी बाड़ी पुनी बहालघारा के साथ घबैब सम्बन्ध बा मनूची और ईमेतिबर मे इसी प्रकार की घम्य बात मिली हैं। बनिबर उच्च कोटि का मिहान् बा उसकी निरीक्षण-धमिति^४ बाड़ी सुखन तथा तीव्र थी। मनूची बहालघारा का विशेष कृपा-भाष था। घस्तु, इन मेसकों के विवरण न तो निरीक्षण की दृष्टि से सरोप जाने जा सकते हैं और न उन पर पछपाठ का बोप मपाया जा सकता है। घतएव स्मिन्न महोदय इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि घाह्याहू और उसकी बाड़ी पुनी पर जो खेब पूर्व बोप मपाये गये हैं उनको सिद्ध करना कठिन है परन्तु उनका लण्डन भासान नहीं।^५

१ घारा कल्पनास घाला बाग, १ १५

२ लो, १० ५१

३ लो, १० ५१

४ हिन्दी लोड टावज्जान लोड विही १ २०

५ लो १ २१६

भी बड़ा रोमाञ्चकारी है। सूर्यमन्दिर से 'रंगमहल' में हलाहल' इस सत्य का संकेत करता है कि जो व्यक्ति जीवन को हास विलास पीड़ा या रमरेमी मात्र समझ कर उस के निकट पहुँचता है उसे भवृष्टि का हलाहल पान करना पड़ता है जिसको सुधा समझ कर पान करने की सामझा होती है वह बस्तुन नरम सिद्ध होता है। ये दो घर्ष किछोरीसात के एतिहासिक उपन्यासों के दोनों उद्देश्यों के समर्थक हैं। स्पूस दृष्टि से तो किछोरीसात ने अपने एतिहासिक उपन्यासों में उन सनसनीपूर्ण रोमाञ्चकारी रहस्यों का विवरण किया है जो इतिहास-सम्मत होते हुए भी इतिहास की धार से छिपे हुए थे। यदि मन्मीरता से विचार किया जाय तो इतिहास के आवरण में वे पाठकों को जीवन का रहस्य समझा रहे हैं, काल की गति भाग्य का चक्कर सुन-बुन की धार मिचौनी घोर भावना एवं कलम्ब का संघर्ष उनके प्रिय विषय हैं। पहिले भाग के पहिले परिच्छेद और पहिले पृष्ठ पर 'दिस्ती में धूम' छीपक देकर लेखक के सफर का खेद—

हुयेया नवमला है ऐसा जमाना।

कि है भाव इसका कम उसका जमाना ॥

लिखते हुए कथा प्रारम्भ की है, और दूसरे भाग का उपसंहार वह पाठकों को उपदेश देता हुआ करता है—

'पाठक! देखा आपने रजिया के इरक का मजीजा देखा धारने।' चकरोस उस बैचारी ने अपनी जमानी मुफ्त छो दी और उनसे न सस्तनत का मजा उठाया और न जमानी का। (पृ० २३) उपन्यास को मुकाम्त मानने में पात्रोचकों का सकोच हो सकता है क्योंकि इसका प्रारम्भ रजिया के राज्याभिषेक से घोर अन्त उसकी वध से होता है। फिर भी इसे मुकाम्त ही माना जाएगा। मृत्यु से कोई रचना मुकाम्त या दुःखान्त नहीं बन सकती मृत्यु ऐतिहासिक सत्य है उसको नैन भिटा सकता है तब सत् और असत् के संघर्ष में सत् की असत् पर विजय मुझ की कसीदी है। रजिया के वध में वा असत् सातवा जग गई भी वह उसके जीवन का घन्ट करके भी बिचमिनी न हुई इसी लिए इन उपन्यास को मुकाम्त माना जाएगा। एक प्रश्न यह है कि असत् (रजिया) को उपन्यास में मुख्य स्थान देकर प्रधान नायिका क्यों बनाया गया। उत्तर यही होगा कि ऐतिहासिक दृष्टि से कबालक में सब में सक्तिपानी व्यक्तित्व रजिया का ही है सारा घटना-क्रम उसी के इव-विष बनता है इसलिए असत् की प्रतिमा होकर भी वही मुख्य पात्र या नायिका बनाई गई है।

उपन्यास का कथानक सुगठित है। इसमें एक ही कथा है रजिया बेगम के सामन की। सन् १२३६ ई. में रजिया बेगम दिस्ती के सिहामन पर बैठी यह मराना घोरत भी मारे राज्य का प्रबन्ध आप बेगमी घोर सबसे निस्सकोच भाव से मिलती-जुलती थी

१. 'देखा भाव में पत्नी को दुहरा कर इन पर जोर दिया गया है।

२. "—सत्य ही का नाम रजिया का जो उस कल्पक की प्रभाव व्यक्त है—"।

मे नज्जमी बहराम की लुकाछा निज कन्ने के लिए स्वामी अज्ञानत्व का भागमन भावमक समझ है बहराम जैसे निज्ज उपनिष योग का रहस्य नहीं जानते परन्तु उनका दुष्टयोग करके स्वयं गल्ल हो जाने हैं प्राकृतिक नियम के विरुद्ध इन व्यक्ति के प्रयोग करने में जोर प्रजिष्ट या विषमक उत्पन्न होता है और अगदीश्वर की दृष्टि के विरुद्ध यह प्रकृतिक कार्यान्वयणी होती भी नहीं^१। दूसरा महत्त्वपूर्ण दृश्य हिन्दू-मुसलिम भ्रमों का या जिसकी तुलना अय्यकरप्रसाद रचित स्वप्नदृष्ट गायक के चमूच घंट के उन दृश्य से की जा सकती है जिसमें बाबाय और बौद्ध प्राग्म में भ्रम होने हैं और जिसमें भावकर्म के भावों की छाया भी देखी जा सकती है। यह दृश्य एक छोटे से कविर वेपथारी रजिया के मुख से यह वक्तव्य कर कि हिन्दू कोम से बड़ कर दुनिया में सब बोलने वाली दूसरी बात नहीं है^२। लेखक के आत्मन्सारक विचारों को व्यक्त करता है दूसरी ओर रजिया की स्वायत्तियता का चोटन भी है।

‘मुस्ताना रजिया’ उपन्यास में भाषा उर्दू-मिथिल प्रचलन है परन्तु ‘तारा’ उपन्यास की प्रवेष्टा कम। इसमें लेखक ने उर्दू के दोर बहुत दिये हैं और फुल्लोट में यह लिख दिया है कि इस उपन्यास में उर्दू की कविताएँ जहाँ जहाँ आयें वे उर्दू भाषा की बनाई हुई समझनी चाहिए^३। संस्कृत-मिथिल सीरी के भी इस रचना में अच्छे उदाहरण हैं जिसमें लेखक का पठितकरण प्रकटता है^४। संस्कृत हिन्दी और उर्दू-हिन्दी दोनों पर लेखक का समान अधिकार इस उपन्यास के दो बर्णनों में देखा जा सकता है —

(क) संस्कृत-हिन्दी में रीतिकानीय परम्परा से बचन —

‘वे कलियाँ जो रात भर रगरगियाँ बना चुकी हैं ठकफा होते ही प्रमि लारिका नायिका की भाँति घनना मुह नीचा कर लज्जा से विमल आनी हैं किन्तु जो रात भर विरहिनि कुत्तबन् की भाँति संकुचित और उदास रहीं प्रातःकाल होने ही आगतारिका की भाँति फूली घोंगें नहीं समझीं और झिलझिला उठती हैं’ (पहला भाग पृ. २१)

(ख) उर्दू-हिन्दी का काम बनाऊ वातचीत में प्रयोग —

‘हम लोग अपना कैसला भार करते हैं किसी विषय बाबदाह की वहाँ नहीं करते यह मुकदिल हिन्दुओं का ही काम है कि जो दूसरों पर अपनी किस्मत के कैसले का भरोसा रखते हैं इसलिए उनका जहाँ भी जाये, हमारे बसिलाक नासिल कर्नाब किया करे’।

(पहला भाग पृ. ४४)

१ इसका भाग पृ. १३

२ पहला भाग पृ. ४६

३ पृ. १३३

४ (क) शैलेश्वरमोहिनी चरमवाणीना, मारवालीलरी पूर्वावृत्ति और कुमारी रमिका केम—।

(ख) ‘चमूच घंट’। उपन्यास प्रकाशक यह है कि गुन विस्तरे विस्तरे हो, कलक निज्ज पहले और लेते हो। (पृ. २४)

इस उपन्यास की सीधी मुख्यतः जनजातीय है। कबोरबन का 'तारा' उपन्यास की घोषणा कम महाराज किया गया है, ब्रजभाषा पद्य नहीं है। ऐतिहासिकीय गृह्यार्थी वर्णन का प्रभाव ध्यान देने योग्य है। मनी प्रधान पात्र सुप्रसन्न है। मत् और प्रमत् के प्रति निश्चि हित्नु और सुप्रसन्न पात्रों के स्थान पर सुप्रसन्नताओं में से ही दोनों को छोट कर एक दूसरे की तुलना में बड़ा कर दिया गया है। तिलिस्म ऐपारी और मामूली बहुत कम है। और जितनी है वह भी सुपरी। योग और तिलिस्म की धार्मिक मानक एक दृष्टि से देखने की कोशिश लेखक ने की है, प्रायः बचन कम है। 'मुस्लाना रजिना' उपन्यास में सबसे अधिक ध्यान आकृष्ट करने वाला गुण चरित्र-विकास का प्रयत्न है, जो दोस्ती की के उपन्यास के लिए नहीं बीज है। किसी भीमा तक चरित्र विवरण का आधार मनोविज्ञान भी माना जा सकता है। 'तारा' उपन्यास में लेखक ने प्यारसी भाषा की भाषा की सराहना की थी, यहाँ रवायी ब्रह्मानन्द हाथ हगिहुर गर्मा को प्यारसी और बंस्तुन विद्या का धर्म्याम^१ कराने से लेखक का प्यारसी के प्रति अनुपम भक्त जाता है।

प्रसंग 'इस उपन्यास में दोस्ती की के राजनीतिक और सामाजिक विचार भी प्रतिबिम्बित हुए हैं। राष्ट्रीयता से लेखक का परिग्रह सुप्रसन्नता से यह को स्वेतम्भ कराने का है। संघर्ष को निवारना नहीं। 'तारा' उपन्यास में अपने संघर्षी प्रत्यक्ष^२ की प्रमत्ता की थी कहा 'महाराज सत्यम एवम्भ के राजसिंहासन पर बैठने के समय दिल्ली दरबार में माट कज्ज की सवारी का अनुभव^३ प्रसन्नता बनकर घाया है। पहले घाय के प्रारम्भ में लेखक का ध्यान देश की सुरक्षा पर जाता है। ३। भारत-वष सदा से सारे पृथ्वी का मुकुटमणि बना था जिसकी शान तारा संसार मालता था और जो बिना बीरता और लक्ष्मी का एकमात्र विमानस्थान था वह आज हीन हीन और मनीन हो रहा है^४। इस दुदया का उपाय स्वामी ब्रह्मानन्द का राजस्थान के राजाओं को एकता के लिए समझना है जिसने 'अने देश की विमुक्त स्वाधीनता का पुनः उद्धार करना बहुत ही सहज और सुलभाय^५ हो सकता है। बीसवीं शती के प्रारम्भ में जितने सामाजिक आन्दोलन हुए उनका देखाडार का विशेषण जाति को बगा कर समता संघटन था इसलिए स्वामी ब्रह्मानन्द तक का ध्यान राजस्थान के राजाओं की ओर रहना था राष्ट्रीयता का नहीं। धारण ता गोपी की के नेतृत्व से ही विविध हुआ है। किसानोंताम की के सामाजिक विचारों में दण्ड की कठारता और योग का उपनय ध्यान देने योग्य है। इसी भाष्य में तो दण्ड कठोर या ही हिन्दू स्मृति

१. दुसरा भाग पृ० १

२. पहला भाग पृ० ५

३. तीसरा भाग, पृ० ३२

४. वही, पृ० १

५. पहला भाग पृ० १

भी दण्ड विधान करते समय समय नहीं रही। मिस्रक ने उनमें सहमति प्रकट की है — हमारी समझ से अंगराज की संख्या बढ़ाने जैसा कठोर दण्ड हेतु हो सचता है। वैसा सामारण दण्ड नहीं यही कारण है कि महामोक्ष ने अंगराजों के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था की है। इन सभी बातों को मानने हैं।^१ देश की सुरक्षा का सामाजिक कारण खोजते हुए निम्नक उस समय के कुछ विचारकों के समान हम मर पर पहुँचता है कि यदि महाभारत का युद्ध न हुआ होता तो हमने भीरो की शक्ति न हुई होती और बिदेसी जातिवा देश पर आक्रमण करने में सक्षम न हो पाती। मगधान ने अंगरेज की मोहकामी को अठार्षिक धारण करना करते हैं। 'बे ईश्वर के अंतर्गत उनके विचार अंगरेज उत्तम ही रहे होते परन्तु हम तो यही समझते हैं कि जब अंतर्गत अंगरेज से भारतवर्ष के भीरो की एक प्रकार समाप्ति होगी' इस कथन की सामोचना अभीष्ट नहीं जैसा केवल यह देखना है कि इन ऐतिहासिक उपन्यासों का उद्देश्य केवल मनोरंजन न होकर राष्ट्र को बचाना भी था।

हृदयहारिणी वा आदर्शरमणी

बंगाल के अन्तर्गत रंगपुरा राज्य के परिवार से सम्बन्ध हो उपन्यास किछोरीलाल घोषवासी ने लिखे हैं। 'हृदयहारिणी वा आदर्शरमणी' उपन्यास में राजा नरेन्द्रसिंह की पत्नी की और 'जयजयता वा आदर्शबाला' उपन्यास में राजा नरेन्द्रसिंह की बहिन की कहानी है। यह कथन उन चार पात्रों का है जब दुरात्मा शिराजुद्दीन के अत्याचारों से तब आकर बंगाल की जनता ने सन् १७६० की राज्यभ्रान्ति की और सीपानर अंगरेजों की बड़ भारत में आने लगी। 'प्रथम संस्करण' के 'निवेदन' के अनुसार 'हृदयहारिणी वा आदर्शरमणी' तथा 'जयजयता वा आदर्शबाला' दोनों उपन्यास सन् १८६ ई. में छपने लगे थे परन्तु इनका पुस्तकालय प्रकाशन सन् १९४ ई. में ही सम्भव हो सका सन् १९१९ ई. में इनका द्वितीय संस्करण निकल पड़ा था। निम्नक में इन उपन्यासों को एक ही योजना में रच कर 'हृदयहारिणी वा आदर्शरमणी' उपन्यास को 'जयजयता वा आदर्शबाला' उपन्यास का पूर्व भाग माना है और 'जयजयता वा आदर्शबाला' को 'हृदयहारिणी' उपन्यास का उपसंहार बतलाया है। फिर भी ये दोनों उपन्यास अलग-अलग भी अपने भाग में पुनः हैं।

'हृदयहारिणी' उपन्यास में उन्नीस परिच्छेद तथा नव्वसी पृष्ठ हैं। प्रत्येक परिच्छेद का धीकक है और सीपोज्जरम जी। इसका कथानक सुलभ हुआ एवं स्वल्प है। सन् १७५६ में शिराजुद्दीन बंगाल का गवाम बना। वह बरिजुद्दीन तथा दुराचारी था। दिन हिन्दू सेठों और जनपतियों में धर्मीयों के आसन को मुहुर बनाया था उनको भी गरी गवाम ने सुपसमान बनने के लिए बमकाया^२। शिराजुद्दीन के व्यवहार

१ पक्षी नाम ६ २६

२ हूरा नाम ६ ४

३ श्री सराज प्रेस इत्यादि।

४ डि केमिज शिराजि अक दि निवेद अण्यक बाँजूय ६ १० १३७

से न वो हिन्दू सन्तुष्ट थे और न मुसलमान। पटना का सामक रामनारायण मिथनापुर का प्रबन्धक रामाराम पूर्णिया का राजा धर्ममहि, राम कुमर सठ धर्मिष्ठ जगत सेठ और मीरजापुर सब मन्त्रिकों के विरोधी बन गये और अग्रजों की सहायता से विराजुनीला को नहीं न उतारने को तैयार हो गये। अन्ततः मन्त्रिकों का एक पक्ष में निष्ठा का कि नबाब की दुर्बलता और अन्धकारों के कारण मुघलशासक से इनकी अपेक्षा बरबाद और असह्य है कि जगत सेठ तथा मीरजापुर प्रायः बड़े-बड़े अधिकारियाँ न मुक्त रीति से अपने-आप सहायता माँगी है। विराज के मुख दुर्गुन हो वे—कोभी स्वभाव तथा इतिवृत्ति— अधिकतर हिन्दू इन्हीं के कारण जयते समस्त है। प्रस्तुत जगन्नाथ में कृष्णनगर और रणपुर के दो राजबंशों पर भी नशाब की कुदृष्टि पड़ी परन्तु रणपुर के कुमार नरेन्द्रसिंह के प्रयत्न से नबाब का पतन हुआ और इन राज बंशों की अन्तिम भाँति बिसने पर इनमें विबाह-सम्बन्ध स्थापित हो गया।

जगन्नाथ का नामक मुखराज नरेन्द्रसिंह है जो जेप ब्रह्म कर मुघलशासक से मुक्त समाचार आने के लिए बीरेन्द्रसिंह बनकर रहता है। नायिका कुमुम अपनी माता के साथ दुर्गिन बिठापी हुई आभाएँ बचकर अपना पालन कर रही थी। इसी प्रसंग में बीरेन्द्र (नरेन्द्र) से उसका परिचय हुआ। नायक ने सहायता के आग्रह से कुमुम को टोहियाँ बनाने का काम दिया। नबाब की कुदृष्टि बहा भी न बच सकी। उसने न पक की कहिन सचनमता को पकड़वा ममाया परन्तु हिन्दूओं से उसका उद्धार किया वह तथा दूसरे जगन्नाथ में है। अन्त में नबाब की सहायता से नबाबी नास्ति हुई, राज बंशों के दिन फिरे, और दुर्गिन-बन्धु नरेन्द्र तथा कुमुम विबाह-सम्बन्ध में बँधकर सुखी जीवन व्यतीत करने लगे।

उपन्यास का नाम नायिका के नाम पर न होकर उसके पुत्र पर है। नायक की 'हृदयहारिणी' नायिका उसकी उचित शिता से 'धारस रमणी' बन गई। 'उस नायिका के मुखई से लीमापन पहिनाये से बरिठावा रूप रंग से उत्तम कुल की महिमा और नाम से बबरगुह टपकती थी'। उसने मुघलशासक में 'मीरज के साथ अपने बर्मे को बचाये रखा मसलामों के लिए पावन सपुत्र बुराचारी विराजुनीला' उसका वृद्ध भी न बिबाह सहा। वह स्पष्ट नहीं है कि नायक ने नायिका को जीवन-भौ शिता की शिमके कारण बहू धारस रमणी बन लगी। संभवतः प्राचीन भारतीय धारस के साथ नाम नदीनश का स्वागत लेमठ का 'धारस' है। शिता के समान पतिव्रता नायिका का सनातन दुर्ग-निराशा होने के बाद नायिका में नवीन युग का स्वागतसम्बन्ध भी है—बहू

१. विराज नाम टीकै लार्ड क्लाइव सम्बन्ध १६ १६२

२. की ५ १५६

३. १० १६

४. ५० १

५. ६ २१

माता बनाकर घरवा टोमियाँ बैचकर अपने परिवार की जीविता बनाती है। सेखर ने नायक-नायिका के प्रेम को कुछ मया का हैकर उसकी कोर्टशिप के रूप में विवश किया है। वह इच्छा के बिना विवाह के लिये उद्योग को सहन नहीं कर सकती और उसका प्रण है कि यदि ऐसा हुआ तो 'पहिले ही मैं धात्री जाग दे डामूंगी या तुम्हारे घर से कहीं अपना कागज मूँद कर जाऊँगी और विवाह न करके सदा कुपारी ही रहकर अपनी मित्रगी बिता दूँगी। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह प्रण सावित्री के प्रण से भी कठोर है इनमें धायुनिष्ठता है—विरोध कर छोड़ कर निरस्त जाने में। सेखर ने इस 'आदर्श' रमणों में एक मनीषता और बतलाई है जो सेखर के स्वीकार न करने पर भी पवित्रमी प्रभाव से उत्पन्न है। अन्तिम परिच्छेद में 'सोहान-रात' का वर्णन करते हुए सेखर ने नायिका का रहस्य खोले हुए दिखा है कि 'कुटुम्ब विवाह के पहिले नरेश से बैचकर बातें करती हाथ परिहास करती गम से सिपट जाती और बातों को भूल भिया करती थी'। इस चित्रण को 'आदर्श मानना सबको आपसिजनक मया या बिपका उत्तर सेखर ने 'सर्वप्रसन्न' उपन्यास के निवेदन में इस सबका पुरातो सकीर के फकीर नहीं बने हुए हैं बिलकर दिया बा। जो भी हो समर्थन भले ही पुरानों से हो जाय यह प्रभाव मनीष ही है, जिसको प्रकट करते समय सेखर 'आदर्श' को भूल गया है।

नायक का चित्रण अधिक स्वस्थ है। उसमें अविशेषित कुछ समी है। उसका प्रेम-व्यापार भी संयत है। उसकी बीछा के प्रण में सेखर ने लिखा है कि 'दिना हिन्दुओं के ऐसी बाय बिद्या का परिचय मुमग्गल से और कील से सकता है? यदि हिन्दुमा में कुछ दोष है तो केवल यही कि इनमें एका नहीं है'। इसी प्रसंग में योत्सामी भी ने 'पुरावापी मन्नों' को छल कपट और भुर्खता के लिए बिकारा है 'मुसलमानों ने जब जिस देश को अपने मनीष किया उस कपट और पुराचार के कारण और वहाँ से गए, वहाँ मूट जसोट छुंरने जमाने बाहने उमाङ्गे सीही भुताम बनाने और हिन्दू मने सदा समाज को सत्यागाध करने ही में अपनी बहादुरी दिखलाई'। 'प्रदेशों ने मुसलमानों के प्रत्याचार से इस प्रसंगरे देश का पिण्ड छुडामा' इसीलिए प्रदेशों का देश में स्वागत हुआ। उस युग की राजमक्ति का मुख्य कारण प्रदेशों को हिन्दुओं का बाटा समझना ही है।

नायिका के 'आदर्श' के साथ-साथ सेखर ने इस ऐतिहासिक उपन्यास में कुछ सामाजिक विचार भी व्यक्त किये हैं। सती प्रथा का खमर्जन करवा हुआ वह लिखता है कि कमलादेवी ने 'पति के साथ बिदा पर चल जाती के लिए बड़ा हठ किया पर उस

समय बहु मर्मवर्ती की इसलिए सोमो ने उन्हें बसपूत्रक रोक रक्खा^१। नायक के पिता के नाम पर सेलक ने नाग बिगाह पर समझौता किया है। महाराज महेश्वर सिंह बाबू बिगाह के बोर विरोधी थे इसलिए अब तक महेश्वर सिंह बगारे के और इनकी ठेक और बरस की बहिन का भी बिगाह नहीं हुआ था^२। अठारहवें परिच्छेद में नायक ने 'बहू भूमिगत से पिता का बाबिक यात्रा किया और यह यात्रा बंगाल से ऐसा हुआ कि जिसकी याचा आज भी स्थिती ग्राम्य सीतों में गाया करती है'^३। मृत में विजय प्राप्त करने के लिए एक मास तक 'सहस्रचण्डी का अनुष्ठान' हुआ 'एक सहस्र काननों की नित्य भोजन कराया गया—और एक सौ छाठ कुमारी नित्य बिमाई'^४ गईं। 'सैंतीसवें दिन पष्टोत्तर सहस्र ब्राह्मणों और उतनी ही कुमारियों को भोजन कराकर बत्त और यथोचित बलिबा दी गई और महा अनुष्ठान समाप्त हुआ'^५। ये सब अनुष्ठान समाप्त होने की प्रतिष्ठा के लिए ही हैं।

इस ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास आवश्यकता से अधिक है कुछ परिच्छेद तो केवल इतिहास बताने के लिए ही हैं—वांछना और चौहानों परिच्छेद तो इनीतिव्य प्रत्यक्ष तीरस हैं। फिर भी जिस दो राजकुमों का वर्णन है वे इतिहास में प्रसिद्ध नहीं हैं। लेखक की दृष्टि ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर भी है और ऐतिहासिक तथ्यों पर भी। बिराजुदौला के दरबारियों का चित्रण पूर्वत ऐतिहासिक है। बगार के सामे औरजाफर, सेठ अमीचन्द और जगत सेठ की बटमाएँ भी तथ्यात्मक सत्य हैं।

इस उपन्यास की कतिपय श्रम विद्येपताएँ भी हैं। सबसे प्रथम इसकी भाषा प्रादि से भग्न तक एक-सी है। पठारती का अधिक प्रभाव उप पर नहीं पड़ा। दूसरे इसमें अस्वस्थ चित्र संकलित नहीं किये गये। बहूभाषा क हो चन्द तो हैं परन्तु उर्दू पेश की भरमार नहीं। किसी भी बहाने लेखक ने तिमिर या ऐयारी का चित्रण नहीं किया। कथानक छोटा एवं सरल है। इतिहास का वर्णन लेखक का मुख्य उद्देश्य रहा है। मुसलमानों के प्रति कुचा और छद्मजों के साथ असुरास्य बर्णित होता है। नाटकीय गति से 'प्रत्यक्ष' सीध में पाकर अगती नायिका की प्रसंगा कर जाता है—'यम उपन्यासके हृदयहारिणी तु यन्त्र है'^६। कुलान्त उपन्यास का अन्त विजय और 'सोहागराज' में हो जाता है नायक-नायिका एक दूसरे को 'मुप्रमाण' बोधकर बिगड़ से अलग हो जाते हैं, शाय उपन्यास के समान 'पुनः प्रेमोत्थप' तक लगक ने प्रतीक्षा नहीं कर्वाई।

लेखक का मत है कि 'उपन्यासों में नायक-नायिका क का क वर्णन करना भी एक आवश्यक बात यानी गई है'^७। इसलिए अगले नायिका के 'अग्रविषय' का विस्तृत

१	१० ६
२	१० १८
३	१० ८४
४	१० ८८
५	१० ८९
६	१० ९१
७	१० ९३

८	१० ८६
९	१० ९०

बचन किया है साथ ही मायक के नयनोपमा का सतिष्ठ चित्रण कर दिया है। लेखक ने 'मायक नायिका के रूप' को 'प्रेमाधार या प्रेम का निधान' माना है और प्रेम का भी भावुतापूर्ण बचन किया है।

समयसत्ता या आशयसत्ता

धामरा हिस्सी और सखनऊ से पहिले बंगाल के इतिहास ने किसीरीतात गोस्वामी को आह्वान किया। धामरा और हिस्सी पुरानी राजधानियाँ थीं उनका बँधव उजड़ चुका था। लेखक को एवम-बँधव में रुचि है, इसलिए उसने इन नगरियों के पुराने बँधवपूर्ण इतिहास से कथानक लिए, सखनऊ का वह इतिहास अप्रत्याशित आधुनिक है जो इनके उपन्यासों में आया है। बंगाल का भी अंग्रेजी सम्पर्क के बाद का इतिहास ही लेखक को अधिक आकर्षक एवं मनोहर लगा। उनसे कुछ प्रसिद्ध उपन्यास बंगाल की नवाबी की दृष्टि में रचकर निकले गये थे। सन् १८६ ई. में उनका प्रसिद्ध उपन्यास 'आदर्शरमणी या हृदयहारिणी' बैंगल पत्र 'हिन्दोस्थान' में छपा था उस समय प्रतापनाथय्य मिश्र उस पत्र के सम्पादक थे। इन उपन्यास की बड़ी प्रसिद्धि हुई, साहित्य मर्मज्ञ उपन्यास प्रेमियों ने 'आदर्श रमणी' के उचार चरित्र पर भक्ति प्रकट की। एक बग ने इन चरित्र को पसन्द नहीं किया उसको भारतीय रमणी का अंग्रेजी रूप पर निराह-पूर्व प्रेम पसन्द नहीं आया। लेखक ने उसी कथा को लेकर निकले गये धपन दूसरे उपन्यास 'समयसत्ता या आशयसत्ता' में उन धामोबकों को धपनी नायिका के विषय में बताया दिया। उसने यह नहीं माना कि उसकी नायिका का विवाह पूरा प्रेम नहीं सह्य का धपन है बल्कि 'पुराण और साहित्य' के अन्तर्गत 'ऊँचा सम्यन्ती विद्यावती उपती —आदि के कोमलप' से इसका समर्थन किया है। साथ ही कह दिया है कि —जो कुछ लिखते हैं विचार के अनुसार ही लिखते हैं क्योंकि हम सर्वथा पुरानी लकीर के लकीर नहीं बने हुए हैं।^१

'समयसत्ता या आशयसत्ता' उपन्यास का पुस्तकाकार प्रकाशन सन् १९४ ई० हुआ था। इसे 'हृदयहारिणी उपन्यास का उपसंहार मान' बतलाया गया है क्योंकि इस में भी उसी आशयसत्ता (वेदकाल) से कथानक लिया गया है। 'हृदयहारिणी' उपन्यास में हृदयनगर की राजकन्या कुमुदकुमारी के कारण बिना सँघर्ष अहमर ने धपने मित्र नरेन्द्रसिंह पर समानक बार किया था उसी नरेन्द्रसिंह की बहिन लक्ष्मणदेवी इस उपन्यास की नायिका है इस पर विराजुद्दीन उसी प्रकार कुमुद कुमारी का मित्र प्रकाश कि कुमुदकुमारी पर सँघर्ष अहमर। उस समय सारे भारतवर्ष में एक प्रकार से धराधस्ता सभी हुई थी—धीरे धप तो थी कि यदि उस समय यह सँघर्ष धनदेवी के हाथ में न आकर किसी दूसरी धर्याधारी जाति के हाथ में जाता तो धप दिन यही बातों

की बधा कैसी सोचनीय स्थिति को पहुँचती। इसके स्मरण-भाग से ही रोंपटे लदे हो जाते हैं^१। मुसिरामाच का नबाब सिराजुद्दौला 'बड़ा जोशी' हठी अत्याचारी तथा इन्द्रिय-परायण^२ था 'उससे नंगासी भाग का भी फिर गया था'^३ 'और उसका मर्मा बा मंपरेजों से वह भीतरी डाह रखता था और फाँसोसियों का पक्ष करता था' बल्क अपने यहाँ उन्हें नौकर भी रखने लग गया था^४। एमाच सिराजुद्दौला ने रंगपुर की राजकुमारी लक्ष्मणता से अपना प्रेम-निवेदन लगभग उसी ढंग से किया जिस प्रकार कि विद्यापति का कान्हू ने राही से किया था उसने बूढ़ा का रूप बना कर अपने एक मुसाहिब को लक्ष्मणता के पास भेजा परन्तु लक्ष्मणता के मन में नबाब के लिए उसने कोई जगह न पाई। तब नबाब ने बलात् राजकुमारी को बकड़ा कर 'हीरा भील' नामक महल में कैद कर लिया। वहाँ लक्ष्मणता का प्रेमी मदनमोहन स्त्री का बेश भारण कर उससे भिन्ना और उसका उद्धार भी किया। अत्याचारा की यह शृङ्खला चल रही थी कि प्लासी का युद्ध छिड़ गया और सिराजुद्दौला की समझ बरी दया हुई थी सोने की मंका में राजा राजन की हुई थी 'मलीखबिनाउकारी दुगाचारी व्यक्ति की स्त्रियों प्रायः अन्त में जैसी आपत्ति को भाँसती है कबायित् उन ममा (सिराजुद्दौला को सँकड़ों बैदमों) को भी उसी आपदा का सामना करना पड़ा'^५।

इस उपन्यास में ११३ पृष्ठ और १६ परिच्छेद हैं। प्रत्येक परिच्छेद का शीर्षक है और ऊपर संस्कृत का उद्धरण है। उपन्यास का उद्देश्य यह दिखाना है कि पाप स्वयं मनुष्य को का बाते हैं और जब बुरे दिन आने लग होते हैं तो मनुष्य को बुद्धि फिर जाती है। इन उद्देश्य की घोषणा मुखरूप पर महाभारत के धार्मिकपर्व में ली गई सूक्ति 'यथा करोति कर्माणि तथैव फलमश्नुते' भी है और भीतर भाषण का कथन जिस रूपाने विहित भी। ध्यान देने की बात यह है (जैसा कि पहले उपन्यासों में हमने देखा है) कि लखर इस उपन्यास में अस्सीस अध्यायों के अन्त में ध्वनित नहीं करता और न आचल बातावरण का ही क्या किम लीचना है। इन उपन्यास में भावा एक बातावरण पर इस्लामी प्रभाव अपेक्षाकृत बहुत कम है। स्त्री पात्र सभी अच्छे हैं लक्ष्मणता तो नायिका है सिराजुद्दौला की वैयक्तिक लुब्धकता भी एक परिणामरहित और उन्नत है उसे हताश होकर आत्महत्या करनी पड़ती है। सैबर ग्रहमर की बीबी और सिराजुद्दौला की बहिन मयीना वैयक्तिक भी अच्छी घोरतें हैं। इन प्रकार सभी स्त्रियाँ सामान्य से ऊँचे चरित्र वाली हैं। इनके विपरीत पुष्प-पात्र या तो गिरे हुए हैं या अशुभ हैं सिराजुद्दौला तो नायक है उसकी नीचता का क्या ठिकाना लक्ष्मणता का प्रेमी मदनमोहन भी पात्र की अधिक प्रभावित नहीं करता वह सामान्य राजपूत है सैयद ग्रहमर तो खराब है ही सेंट अमीयर ने नामच के

१ वही १ ६

२ वही, १ १०४

३ वही १ १

४ वही १ १७

५ वही १ १२३

छेर में बड़ अपने तारे धाव हागि पतुंवाई धीर कम्पनीवालों से उन्हें एक कीर्ति मिली ।^१ राजा धिक्प्रसाद को अंग्रेजों का खुदायदी धीर कताहन की कूर निश्चिन्ता गया है । इस उपन्यास में तिसिस्म धीर जागृती का स्थान डाकुओं के व्यवहार ने ले लिया है ।

उपन्यास की माधिका पाठक का ध्यान सबसे अधिक आकृष्ट करती है । उद्यम धीर गुप्त शोभा का पञ्जीत समन्वय है । लेखक ने 'गुम्हरी सङ्गमता के मण्डप का बर्मेन' धार्मिकारिक सीरी पर मग को मार कर सविष्ट ही किया है ।^२ प्रमी म मोहन जब उससे बहकी बाधे करने लगा तो लज्जामता ने उसको रोक दिया 'जि उन प्रम को मैं दूर ही से प्रमाण करती हूँ जिसमें दुरजना के बङ्गम धीर घावर माव न हो' ।^३ तब उसके प्रमी ने एक वाक्य में उसके कुणों का स्मरण किया 'व्य गुप्त समन्वय धीर पवी-निकी धावसंवाला' हो । तस्वीर वाली कुट्टिनी का निर करणे हुए सङ्गमता ने 'बाबू लेकर सिपायूहीला के पहर की नाक' धीम डाव अपने धाई को उसने समाह की कि वह 'बुरा समुक्त' करने वाले सदैव महमय की 'बकर पनाह' है । उस राजमन्दिनी का चरित्र इतना महान् है कि लेखक उसे 'पुष्टि से धावलोका' करने की पाठका से आशा रखता है धीर इमीलिए उस 'मावसं वासा' नाम दिया है । असुत घनापनी गोस्वामी पर वह धायसमाजी प्र है । वे वह अनुभव करते हैं कि मये गुप्त की पहिला को सम्मय धीम चतुर्पई उबारता से सम्मय होना चाहिए धीर वे गुप्त केवल सुप्रिया से ही आ सकते 'समन्वय धीर पवी निपी' लब्धा पर ध्यान देने की विशेष आवश्यकता है ।

बगामी नवमी के इस उपन्यास में इतिहास सामयिक ही है इसलिए उसे धीम महमय नहीं जिन पाया है । लवक एतिहासिक उपन्यास सिखते लिपते समान को प्र महमय देन लगा है उसकी नायिका सवपुमा की मूर्ति है उसका स्वकर निरिचर स्नष्ट है । वद्यपि चरित्र-विकास का अनुभव नहीं किया जा सकता परन्तु चरित्र-वि नहीं सफलता से दूर नहीं रहा ।

भक्तिवादेकी या वगसरोजिनी

सन् १९०४ ई में किष्करीलाल गोस्वामी ने बपीप इतिहास का एक उपन्यास 'भक्तिवादेकी व वगसरोजिनी' को मायो में लिपिकर प्रकाशित किया । इस उपन्यास

१. वही पृ २८

२. (क) लईग की मांग की उभ्या ही क्या को धायी लवक रसवा से लछर को पुछर कर रही है कि से धाय—को मिलके की में धावे हो गुप्त से धाय से ।

(ख) माक ने तो माक की ही माक काट ली है । (पृ २२)

३. वही पृ ४१

३. वही पृ ७८

४. वही ।

४. वही, पुष्टि ।

५. वही, पृ ४६

५. सुत्रक—विवक्षित मेष धायी ।

ऐतिहासिक उगम्यास

में बंगदेश की उस समय की बंगाल का बयन बड़ी उत्तमता से किया गया है जब दिल्ली के तख्त पर नेकनाम बाबरसाहू गयागुहीन बसबन बिराजमान था और बंगाल की बाग और एक महा घटनाकारी तुगरलता जैसे निर्य नबाब के हाक में थी सन् १२३६ ई० में बंगदेश में बड़ी भारी उमट-फेर हुआ था "वहाँ के नबाब के कारण और सबट उपस्थित हुआ तब दिल्ली से स्वयं शाहसाहू ने घाकर वहाँ शांति स्थापित की और अपने दाहबाबे को बंगाल का नबाब बनाया"। इस प्रकार इस उगम्यास में कई सौ वर्ष पहले के ऐतिहासिक रहस्य को निजि करने का प्रयत्न है। बंगाल की जन के घप उप-याव सौ-सौ सौ वर्ष का सामयिक इतिहास ही धकिन करते हैं उनसे यह उगम्यास प्राचीनता की दृष्टि से भिन्न घट धनिक महत्वपूर्ण है।

शरहबो घाजावी का प्रारम्भ ने ही बंगाल

और दिल्ली का घरीन

और दिल्ली के अमीनराज मन्ना सेम-राजाओं की यही पर धामन करने लगे। मुगल
 राज का कठोर शासन मयापुरी के बसबन जब बड़ा हो गया और एक और से राज्य पर
 मुगलों के आक्रमण होने लगे इसी और आन्तरिक विधिवलन मन्ना ने लगी तो सन्
 १२७६ ई० में बन्ना केनबाब तुगलक ने बाइसाह को कर देना बन्द कर दिया। दण्डवत्
 बन्ना ने प्रथम से अमीनराज को तुगलक पर आक्रमण करने की आज्ञा दी परन्तु
 अमीनराज पचकित हुआ और उनकी सेना के बहुत स अधिकारी तुगलक में जा मिले।
 वयं अपने द्वितीय पुत्र तुगलक को लेकर उसकी सेना भी तुगलक में मिल गई। फिर अमीन
 राजा की से तुगलक भाग गया बन्ना वीरता के साथ बन्ना पर बड़ा प्रयास।
 राजा मोह पर और विजि कि वह तुगलक की लाश में अपनी मर्तवा को
 तुगलक पर

राधा मोक्ष पर चोर दिया कि वह तुगरल की लाश में धनवी मना को बसाव । पन्थ
 में गैर प्रत्याश और मुकद्दिर नाम के दो भाग्य कौन काले-काल गङ्गा स्थान पर पहुँच
 वहाँ तुगरल धन विशिष्ट मैलियों के साथ विधाय कर रहा था । मुकद्दिर के बाप ने
 तुगरल का निर कट कर फिर गया जिस बागहाह के पास भेज कर छोड़ दिया ने विश्व
 की धौरया की । बाग्य सोठठे हुए बलवन न सलमावली न बाजार म दो मीन से
 प्रसिद्ध सभी सड़क पर तुगरल न महायकों को भाव की नौक से टैप-टैप कर मार
 डाला । देखने वालों ने घाते पीछे में कमी भी इतना कूर दुर म देना था धनेक
 बसक मर एवं भाउंक स मुकद्दिर हो गये । बलवन न धन पुत्र मुकद्दिर को यह दुर
 दिखाया और बंवास का पाछक नियुक्त करन हुए जैसे तीन बार बेतावनी की कि यह
 तुम सलमावली में रहो धने म म में यह बात या राधा कि निरु न विश्व दिखाह
 करने का बवाल को साहम रहा है ।
 उन्मयकार ने तुगरल की धन्यावली

अंगपालकार ने तुमरल की अत्याचारी क्रूर तथा दुष्ट विधि काट कर हिन्दू

१. लक्ष्मी औरत का साथ लूत बन्धन के बन्ध में दिये गये निशान है।
२. रि केमिअर रिण्टो मॉड हटिडवा, बॉम्बे इ. ए. ७१-५१

नरेशों के साथ उसके मुख को विशेष महत्व दिया है और सारे परिवर्तन का शेष भागसपुर राज्य के पुष्ट सचिव यदुनाथसिंह की पुत्री मासती को सौंप दिया है। मासती यवन श्रेय में फरहाद नाम से तुगरल के यहाँ रहती थी उसने मुबारक नरेन्द्रसिंह को अनेक प्रकार की सहायता दी और तुगरल की पुत्री सीरी का बसबन क पुत्र बुरमासा के साथ विवाह करा दिया। अर्याचासी तुगरल ने भागसपुर व महाराज महेशसिंह उनके प्रधान मंत्री बीरेन्द्रसिंह तथा पुष्ट सचिव यदुनाथसिंह धार्मिक को एक कुचरती पहाड़ी क अश्वर कैद बन लिया था। मुबारक नरेन्द्रसिंह ने तुगरल से मुख किया और उसे हरा लिया इसी बीच बसबन का धाकपग भी हुआ जिससे तुगरल के पैर बिलकल लकड़ मये बड़ छिग कर भाग गया और अन्त में उसी यदुनाथसिंह के हाथ से मारा गया जिसने हिन्दुओं के विरोध में उसे सहायता दी थी।

कमानव में मुख्य परिवर्तन तो 'मुहबीर' रस में विपुल गुंजार रस के मिलाने से^१ हुआ है। बसबन के पुत्र से तुगरल की पुत्री का प्रेम विज्ञाकर अन्त में उनका विवाह करा दिया गया है। इसी हेतु लेखक ने तुगरल को समा प्रवान कराई है और उसे फिर से नज़ाब बनाने का बसबन से निश्चय कराया है। दूसरा परिवर्तन तुगरल का मुरदिराओं के हाथ से न मर कर यदुनाथसिंह के हाथ से मारा जाना है। यदुनाथ सिंह मंत्री यदुनाथसिंह का सीतेसा भाई था वह तुगरल से मिल गया और उसे मासती को प्राप्त करने के लिए मञ्जुकाया अन्त में धारमस्सानि के कारण यदुनाथसिंह ने तुगरल से हस्त मुख किया और उसे मार दृश्य सन्धासी हो गया। यदुनाथसिंह कल्पित पात्र है परन्तु उसकी जलन स्वाभाविक है इतिहास में इस प्रकार के अनेक उदाहरण हैं। तीसरा परिवर्तन मासती कश्चित् पात्र का समावेश है। मासती ही अन्त में 'बंग सरोजिनी' घोषित की गई है।^२ वह अपने पिता की कैद से परिवर्तन के समय एक पुरुष-श्रेय में ही रहती है। कभी वह बसबन-मुखक करिहाव बनकर तुगरल की विवाह-यात्रा है कभी 'अपविष्ट' हिन्दु के श्रेय में मुबारक नरेन्द्रसिंह की सहायता दे रही है। उसका रहस्य सबसे मनोरञ्जक है। तुगरल ने पछुतान मान कर अपनी पुत्री से उसका विवाह निश्चय किया सीरी ने विवाह न कर उसको भाई बना लिया मस्किदादेबी के साथ प्रेमपूज व्यवहार करते हुए देखकर मुबारक कुछ गुण, अन्त में वह 'अपविष्ट' अर्थात् 'करिहाव' अर्थात् मासती भागसपुर की रानी और 'बंगसरोजिनी' सिख हुई। भागसपुर की उस पहाड़ी का भी कथा में विशेष महत्व है जिसमें भागसपुर के राज-परिवार को तुगरल ने कैद कर रखा था। 'सन् १३४८ ई' के सर्वकर मूर्ख ने जिसने बबरोस में महाप्रलय मचाया था भागसपुर की पहाड़ी को रसातल पहुँचा दिया और उसके साथ ही वह प्राकृतिक पार्वतीय मन्त्र भी भूधर्म में समाविष्ट हो गया। यद्यपि भागसपुर की पहाड़ी का जितना प्रसिद्ध विख्यात है तथा भी यहाँ का भी यहाँस नहीं है।^३

दूसरे उपायानों के समान महा भी कथानक की परिचयि पुनोपपन्न राजप्राप्ति तथा भक्ति में हुई है। 'बुद्ध दिनों में सीरी बालती मस्मिन्ना सुतीमा धीर सरसा ने पुनोपपन्न का परमानन्द प्राप्त किया और तब बुद्ध महाराज ने गेम्भस्सिह को सिद्धान्त पर बैठकर अपना समय ईश्वराराधना में ही समायो'।^१ सेतक में हिन्दू पार्श्वों को राजपूती आदर्श में डालकर उनका आदर्श चित्रण किया है। दोनों प्रकार की भाषा के उदाहरण हम उपन्यास में भी उतने ही स्पष्ट एवं आकर्षक हैं। उच्च कुल के मुख्य हिन्दू-गण जब बातचीत करते हैं तो सेतक की भाषा ब्रिजभाषा हो जाती है। 'कोटि ब्रिजकदम्बन की भाति यह बाक्य बिलोच के रोय-रोय में बिज हुया ने भग्म स भूमि में गिरकर अन्तु-बिसर्जन करते करते कहने लगे—'। इसके विपरीत सीरी और फल्गुदा की पक्षपाती सीरी और साहूनाये की बातों में कारसी की कण बिसरी पड़ती है। 'किन्ति इस कुमरा का नामून बराब तय हो सक्ता है जब मैं यही ह्यनाम औरतों की मुद्रावत पर लताऊ लेकिम ऐसा करना मैं इसलिए मुनासिब नहीं समझता कि मुझे इस बात का बर्कान है कि आप मुझे लहुरिम से प्यार करती हैं'। कथानक के बीच में घाने वाले अनेक दीर विषय के स्पष्टीकरण के बाव-साव सैयक की दीर प्रियता के भी चोटक हैं। हमने नाम के तृतीय परिच्छेद में जू की खेसी पर पोस्वामी की ने एक सुन्दर प्रस्तुत-बोबना की है जो नास्तिकता के कारण आकर्षक बन गई है। 'करासी पंखा बन रहा है और उसके हुक्के पर रखो हुई बिलम घाने स्वामी की दुर्भाग्यता पर आप ही आप बन कर बाक हुई जाती है।'^२

इतिहास से परिचित व्यक्ति की इस उपन्यास में सबसे घटकने वाली बात यह लगती है कि बलबन को कथानक में स्वान बैठे हुए भी उसकी प्रविष्ट कूट्या का सेतक में प्रत्यक्ष नहीं किया और कमस्वरूप सन् १२७६ ई० के परिवर्तन में वो निर्द्वय बाता बरन बबान में पौव घरा बा उसकी पम्ब भी इस रचना में नहीं है। यह ऊपर कहा बा चुका है कि ललनाबती का समानुपिक अस्वाचार जिसको देख कर ही अनेक व्यक्ति मुन्चिज हो गये थे इतिहास में बलबन के अस्मितत्व के लिए भी बबनाम बाता गया है उसका एक प्रमाण बंयभूमि से लताभिनों तक भारतक का प्रसार बा। सेतक को बन बन का चरित्त घमोष्ट न हो परन्तु यह नृसंग आतक ती प्रस्तुत कथानक में अनिवार्य है। धायब मुहम्मद और बिबाहों की भूमिधाम में दूटती हुई छाओं का कल्पन यह पुन नहीं बाबा। सत्य यह है कि जो कुछ इतिहास को बिबित है। सेतक की दृष्टि में उतना ही इतिहास नहीं है जो अविशित और अज्ञात है उसका चित्रण यह उपन्यास का कर्तव्य समझता है। दूसरे भाग के सन्नीमर्श परिच्छेद में कवि शारवि बा जो शनोक दिया गया

१ गी. १ २४२

२ इन्द्रमय ५ ३३

३ गी. १० ६२

४ गी. १ १०

हे यह मास्मादी जी के ऐतिहासिक उपन्यासों का एक मुख्य गुण माना जा सकता है। स्नोक का धर्म है कि कबि का ज्ञान बहुत सीमित होता है और राजाओं का जीवन स्वभावतः दुर्बोध एवं रहस्यमय है। इसलिए जयका ठीक-ठीक चित्रण सम्भव नहीं है।

इस उपन्यास पर कई प्रकार के सामयिक प्रभाव हैं। मामनी का चरित्र और ब्रजमपुर की पहाड़ी का रहस्य आसामी परम्परा में हैं। तिमिस्म न होते हुए भी यह पहाड़ी राजनीतिक कदियों को सुरक्षित रखने का कुप्त स्थान है। दूसरे भाग के नवम परिच्छेद में एक मुस्तकैसी मैदानी क्षण से बीजा लिए गहरा करती-करती तुंगरम क सिमिर में प्रविष्ट होटी है। जिसके प्रभाव से आकर 'तुंगरम का उल्लस कर भँवरों के चरणों पर दिर' पड़ता है। यह 'देवी बीमरानी' का प्रभाव माना जा सकता है।

लक्ष्मण महोदय ने नरेन्द्रसिंह का मस्मिका के साथ विवाह दिखवाते हुए कई सामाजिक विषयों पर धार्मी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्पत्ति दे दी है। नरेन्द्र-मस्मिका बिनोद-सुखीबा भयवा सीरी-सहृदयों के विवाह किस प्रकार का माना जाए। मुसलमान धर्म का विवाह तो भिन्न-प्रायश्च-जम्ब प्रम का सूर्योदय का प्रभाव माना जा सकता है। परन्तु पौराणिक मास्मादी जी के ज्ञान से प्रायश्च हिन्दु-धर्म का विवाह-पूज प्रम सब समय मास्मादी का विषय बन गया था जिसका उत्तर लेखक ने अपने दूसरे उपन्यास 'सबयसता का आदर्शवादी' में दिया है। प्रस्तुत उपन्यास में सबसे 'विवाह के पूर्व परस्पर मिला कर प्रम-संभाषण की वैदिक और पौराणिक काल के कोटिध्व के अनुसार' माना है। कोटिध्व स्वयं ही प्रकार की हो गई एक प्राचुरिक को वास्तव्य प्रभाव है और जिसमें हर कम्पा विवाह से पूर्व परस्पर में परिचय प्राप्त करके वैवाहिक सम्बन्ध स्वयं निश्चय कर लेते हैं। इसी कोटिध्व 'वैदिक और पौराणिक काल के अनुसार' है। इसकी दो विशेषताएँ हो सकती हैं—(क) विवाह का मुखजनों द्वारा निश्चय (ख) विवाह की बात सुनकर जयवा और संकोष का आ जाना। इस विशेषता का संकेत एक वाक्य से मिलता है 'किन्तु जब प्रत्यक्षों ने यह सुना कि अब विवाह धीमे होने वाला है। तब से न जाने क्यों एवं जिसका लज्जा तथा संकोष ने इनको 'अपने प्राचीन कर लिया' रक्षावित राज्य उल्लस विरूपताओं के आधार है। 'विवाह की संबारिबाँ बड़े घुमघाम से' हुई है। 'महर्षि और बारात' 'घुम मुहूर्त में मुनम' 'इके निधाम हामी भोज' 'सवार' आदि क साथ 'अपवित्रा मुगता हुमा' जाता है। 'प्रातिपत्ताही नावर्य और महामहोत्सव' का मनोहर वचन है। लेखक विवाह में इन सब बातों को प्राथमिक समझता है। सम्पत्ति की भीड़ों का चित्रण

१. बिसर्ग-सुखीबाक विनयता

२. नर भूखीनी चरित ११ अध्याय ॥

३. पृ० २२

४. पृ० २२४

५. दूसरा भाग पृ० १०१

६. पृ० १००

७. पृ० १०४

दूसरे उपन्यासों के ललित यहाँ भी कथालोक की परिचालि पुत्रीलक्ष्मी राज्यप्राप्ति तथा सन्निधित्व में हुई है। 'बृद्ध विनोय' की सीरी मासली मस्तिष्क मुचीना और सरमा ने पुत्रीलक्ष्मी का परमाण्व्य प्राप्त किया और तब बृद्ध महाराज ने नरेश्वरिणी की सिंहासन पर बैठकर अपना समय ईश्वराराधना में ही मगाया।^१ मेल्क ने हिन्दू पार्श्वों को राजपुत्री आदर्श में डालकर उनका आदर्श चित्रण किया है। शोभा प्रकार की भाषा के उदाहरण इस उपन्यास में भी उसने ही स्पष्ट एवं आकर्षक हैं। उल्लेख कुन के मुख्य हिन्दू-पार्श्व बल शक्तिशाली करने हैं तो मेल्क की भाषा पंडितानु ही जानी है। 'कोटि कुलिकहंयन' को आति यह बाबत विनोय के रोम-राम में बिड़ हूपा व बन्म से भूमि में गिरकर अशु-विनयन करते करते कहने मने—^२। इनके विपरीत सीरी और फलहार की अथवा सीरी और शाहजहाँ की बातों में फरसी की छटा बिली पड़ती है। 'मेल्क' इस पुनः का आत्मक बचन तब हो सचता है जब मैं यही इनजाम औरतों की मुद्रागत पर मगाऊ मेल्क ऐसा करना मैं हमसिग मुनासिब नहीं समझता कि मुझे इस बात का अर्थ है कि आप मुझे सहृदय से प्यार करती हैं।^३। कथालोक के बीच में आने वाले अनेक और विषय के स्पष्टीकरण के साथ-साथ मेल्क की और-विमता के भी उदाहरण हैं। दूसरे भाग के तृतीय परिच्छेद में उन्हीं की खोली पर बोस्वामी जी ने एक सुन्दर अस्तुन-बोस्वामी की है जो आत्मविमता के कारण आकर्षक बन गई है। 'कराँसी पंजाब' रहा है और उसके हुनके पर रखी हुई बिलम धरने स्वाामी की बुद्धिमत्ता पर आप ही आप जम कर आकृष्ट हुई जानी है।^४

इतिहास से परिचित व्यक्ति की इस उपन्यास में सबसे अटकने वाली बात यह लगती है कि बलवन का कथालोक में स्थान देते हुए भी उसकी प्रसिद्ध कूरता का लेखक ने प्रदर्शन नहीं किया और कमस्वक्य धन १२७६ ई० के परिचयन में जो निर्दय बाता बरन बलवन में मँन गया था उसकी बल भी इस रचना में नहीं है। वह ऊपर कहा जा चुका है कि लखनावली का अमानुषिक अत्याचार जिसको देख कर ही अनेक व्यक्ति मुन्निष्ठ हो गये थे इतिहास में बलवन के अविमल के लिए भी बलवान माना गया है उसका एक प्रमाण बलभूमि से अत्याचारियों तक आतंक का प्रसार था। लेखक को बल बन का चरित्र छोड़ न हो परन्तु यह गुणत आतंक ही प्रस्तुत कथालोक में अनिवार्य है। आपस मुद्रागत और विवाहों की ब्रूमण्य में दृष्टी हुई बातों का अन्वय यह सुन नहीं पाया। तब यह है कि जो कुछ इतिहास को विवित है लेखक की दृष्टि में उतना ही इतिहास नहीं है जो अविचित और अज्ञात है उसका चित्रण वह उपन्यास का कर्तव्य समझता है। दूसरे भाग के उन्नीसवें परिच्छेद में कवि आरति का जो स्तोक दिया गया

१. पृ. ५, १४०

२. पृ. ५, १४०

३. पृ. ५, १४०

४. पृ. ५, १४०

है वह पोस्वामी की वे ऐतिहासिक अवस्थाओं का एक मुख्य भूत माना जा सकता है। लोक का यह है कि कृषि का ध्यान बहुत भीमिन होता है और राजाओं का जीवन स्वभावः दुर्बल एवं शुष्कनय है। इसलिए उनका ठीक-ठीक बिजग सम्भव नहीं है।

इस अवस्था पर कई प्रकार के सामयिक प्रभाव हैं। मालगो का चरित और बनभुर की राजा की राज्य का राज्य का समुची परम्परा में है। त्रिभिन्न न होने हुए भी यह राजा की राजनीतिक शक्तियों की सुरक्षित रखने का दुष्ट स्थान है। दूसरे भाग के नवम परिच्छेद में 'एक मुक्तकेयी औरकी ह्राय में बीमा लिए मरार करनी-करती सुपरम के पिंर में प्रविष्ट होती है। जिसका प्रभाव में आकर 'सुपरम का उद्यम कर मरारी के करों पर पिर' पड़ता है। यह देखो बीषरानी का प्रभाव माना जा सकता है।

महाद यहादय ने मरेन्द्रविह का मल्लिका क साथ विवाह किया। किन्ताते हुए कई सामाजिक विषयों पर धानी अवस्था या अवस्था सम्मति दे दी है। मरेन्द्र-मल्लिका विनोद-मुनीषा दबहा गीरी-राजादे का विवाह जिस प्रकार का माना जाए। मुक्तम मल दमनि का विवाह जो किन-आर्य-अन्य प्रम का मुक्तियों का प्रभाव माना जा सकता है। पानु पीरपिक पोस्वामी की क ह्राय न आर्य हिन्दु-अन्य का विवाह-युव प्रम उस समय भारतीयता का विषय बन गया था जिसका उत्तर लेखक ने अपने दूसरे अध्याय 'महमदशा का आर्यकाला' में दिया है। प्रसुप्त अवस्था में रहने विवाह के पूर्व 'परस्पर विद्या कर प्रम-समापय की वैदिक और पीरपिक काल के कोर्टशिप के अनुसार' माना है। कोर्टशिप स्वयं ही प्रकार की ही थी। एक प्राकृतिक का बचपन प्रभाव है और जिसमें बर बन्ना विवाह से पूर्व परस्पर में परिचय प्राप्त करके वैवाहिक सम्बन्ध स्वयं निश्चय कर लेते हैं। इसी कोर्टशिप 'वैदिक और पीरपिक काल के अनुसार' है। इसकी दो विशेषताएँ हैं। पहली है—(क) विवाह का पुनर्वर्ण द्वारा निश्चय (ख) विवाह की बात मुक्तक नगमा और संकोच का भा माना। इस विशेषता का उचित एक वाक्य में विवना है 'हिन्दु जब प्रपयितों न यह सुना कि सब विवाह तीव्र होने वाला है। तब से न जाने क्यों एक विषयक लज्जा तथा संकोच ने इनको अपने भारतीय बर निवारित विवाहित राज्य उत्तम विशेषताओं के आधार हैं। 'विवाह की संवागिया बड़े धूमधाम में' हुई है। 'महकिन और बारात' 'धूम मुहूर्त में पुनः' 'इके निजाम शायी घोड़े नवार' आदि के साथ 'अपयिया मुदामा हृषा' जाता है। 'आगिवादी नगरम और मशमशम' का मनाहर वर्ण है। महाद विवाह में इन सब बातों का आधारक सम्मता है। सम्मति की बीषरानी का बिषय

१ विनोद-मुनीषोव बल्लभा

सं दुरीक्षा चरित सं अवस्था ॥

२ १०२२

५ गी. १ २०

३ ११ २२४

६ १ २४

४ दूसरा भाग १०२२

तो लखक ने नहीं किया परन्तु इस समय के लिए स्वयं यैद प्रकट किया है और पाठकों से क्षमा भी मांगी है—समाज की इस प्रकृति को वह पचछा नहीं समझता। 'येर है कि हम उन वाचस्पत्य के सम्पूर्ण रहस्य को गोमकर न निग सके इससे नराचित् हमारे रानीन पाठक कुछ हम पर चरकेने किन्तु क्या किया जाए, हम अपने समाज की जैसी वर्तमान अवस्था देग रहे हैं उसमें उन विषय का स्पष्ट न निगना ही वर्तमान हिन्दू-समाज के लिए समलकारण है। यह कहना कठिन है कि समाज की 'वर्तमान अवस्था' से येदक का अधिप्राय धार्यतमाजी प्रभाव है चरिचहीनता है पचका करमा मय स्थिति है—चायद प्रथम ही हो। धार्यतमाज के एक अन्य सुधार पुनर्विवाह पर श्री गोस्वामी जी ने जनता हुआ व्यग्य किया है। द्वितीय भाग के अष्टम परिच्छेद में विनोदसिंह से बात करते हुए सरमा ने परिहास किया कि वह अपने पति को छोड़ कर दूसरे व्यक्ति से भी विवाह कर सकती है —

सरमा— आजकल पुनर्विवाह की विधि प्रचलित हुई है।

विनोद—हाँ, यह क्या बोल सही।

सरमा—आप हमें स्मरण करके वहाँ जाए हैं न।

विनोद—तो इसमें पुनर्विवाह के प्रसंग की आवश्यकता क्या है?

सरमा—कहाचित् धार्यता ऐसा ही विचार हो। वस्तु, मैं सब भांति प्रस्तुत हूँ। (५ ४४)

यह कहना अनावश्यक है कि धार्यतमाज केवल विधवा के लिए पुनर्विवाह की धार्या देता है तबका और विधवा विवाह एक ही बात नहीं है। अपने सामाजिक उपन्यास 'भारत हिन्दू' में सज्जाराज सरमा ने विधवा-विवाह तथा ठसार्के को समान बता कर इसका लच्छन किया है। प्रस्तुत प्रसंग में भी नहीं तर्क भोक्त रहा है।

सोना और सुगन्ध का पन्नाबाई

कवि पद्याकर ने लिखा है कि स्वर्ण में सुगन्ध नहीं होती और सुगन्ध में सोना नहीं होना किन्तु उनकी नाबिकाने ये सोना और सुगन्ध दोनों का समुबं मोन है। किसी ऐलाल गोस्वामी ने इसी उक्ति से प्रेरित हो कर पन्नाबाई नामक एक ऐसी नाबिका की कथा लिखी है जिसके ऊपर मैं स्वर्ण की धार्या और पुन में सुगन्ध का मय है। इस उपन्यास को 'ऐतिहासिक उपन्यास' कहा गया है इसके दो भाग हैं प्रथम भाग सन् १९०२ में और द्वितीय भाग सन् १९११ में प्रकाशित हुआ था। अन्त्य ऐतिहासिक उपन्यासों की तुलना से सोना और सुगन्ध का पन्नाबाई उपन्यास की

१ ५ १०२

२ बहिला भाग ५ ११

३ सोने में सुगन्ध या सुगन्ध में सोना दो ही नामों से जाना जाता है सोना और सुगन्ध दोनों नामों से जाना जाता है।

४ द्वितीय भाग सन् १९११

तब वह पाक धीरे साक है धीरे उसके घायर उतनी ही जगह है जिनगी जगह में निरर्थक पना समा सकती है। भाग्य में उसका साम दिया जिनमें वह हीराचन्द के घर रहा, उसका आमाता बना धीरे लाहिनीप्रसाद तथा भकबर की पस पर कुपा रहो। उसका जीवन सुख-दुख की छाया का प्रत्यक्ष उदाहरण है जबका यह कह सकते हैं कि जो विल का साक धीरे तबिरत का नेक है उसकी सहायता ईश्वर भी करता है।

‘पम्पाबाई’ उपन्यास की कहानी मध्यमवीण मोक्ष-कृतानियों के कर्म में विलित है। रूप धीरे दुःख का अनुसंधान प्रेम का भाग्य को हिंसा देने वाला परिणाम संयोग की अनुभूत कराना उस कथानक से जमीर धीरे धमीर से पाक में विलित की घटना सर्वत्र दान बोस्ती का अनुकरणीय धारण यहां देखने योग्य है। धार्मिक दृष्टि से कथा में संकट धीरे समस्माए नहीं है। तुलना द्वारा चरित्र की महत्ता यहां प्रतिपादित नहीं की गई। इस उपन्यास में तिमिस्म का एक नया रूप मिलता है। ‘उस कमरे में कहीं पर राग-रागिनियों की बहो पर ‘कोक के बाहियात धीरे कोक बासनों की कहीं पर नायिका भेद की नायिकाया की बहो पर बीच कम ईराम तुकिस्तान मृतान धीरे कोहकाऊ की परियों की’^१ सुन्दर लक्ष्मीरें बनी हुई थी। वे तिमिस्म बादशाहों के दास बचाने से जिनमें वे अपनी सबसे कोमली बस्त्रों संविष्ट रखते थे ऐसे तिमिस्मी कारखानों के मेर को लोभ मकसर अपनी ओक या बैठों पर भी तब तक कभी जाहिर नहीं करते जब तक कि उनके बाहिर करने की जरूरत न समझी जाए^२।

मेसक ने जबरबस्ती से भकबर के दरबार में पंडितराज जनन्याय को बिना दिया है धीरे बादशाह से उनको बहुत-सा जग धीरे ‘नबनील-कोमलांभी’ धरनी धीरीबा को इनाम में विलभा दिया है। वह धायक यह बिकाना चाहता है कि एको-धायक की जिम्मेगी में हिन्दू मुस्लिम का भेद मिटा दिया धीरे भकबर के समाम उसके मजदम दरबाही भी प्रेमी को जुगले समय हिन्दू-मुस्लिम का भेद नहीं करते थे। इस इतिहास बिराड घटना के लिए उसने जो तर्क दिया है उसमें तनिक भी घलित नहीं। ‘जबकि कालिदास नाम के कई कवि जिन-जिन सनकों में हुए गाने जाते हैं तो पंडित-राज जनन्याय भी यदि वो मान लिए जाय तो क्या हर्ज है। उपन्यास में एक धीरे तो भकबर के ऐश्वर्य एवं सवुनुमी की जर्जा है दूसरी धीरे उसका मीत-बाजार वाला का भी बिलालाया गया है। ‘भकबर की इस बरमायी’ का पूरा वर्णन सम्पूज रखने के लिए पाठकों से ‘प्रताप’ नाटक पढ़ने की सिफारिश की है। एक मुख्य पात्र के चरित्रों में यह बादशाह जाहिरा में जितना जलाला धीरे बेहामी बनता है धम्बर ही धम्बर यह उनका ही ऐनास धीरे मफम-गरस्त है^३।

१. बही ५, ६८

२. बही ५, १२२

३. प्रथम पाग, ५०, ५७०

४. द्वितीय पाग, ५, ६२६

५. प्रथम भाग, ५०, ६३५

वस्तुतः यह रचना 'मास्मानी माहिब' का अनूठा किम्सा है। इसको ऐतिहासिक मानना बाधात्मक नहीं। इसका धरीर ऐतिहासिक है, रक्त और मांस नहीं। मेलाक रिमझरी में कह गया है, साहित्यिक गम्भीरता की धोर नहीं गया। माया छम्स है कबोरकबन कम है। सामाजिक समस्याएं कम हैं। विश्वास का बिज एसा नहीं। जितके कुपरिणाम को पढ़ कर मन स्वस्थ बने। नायक-नायिका सुन्दर हैं परन्तु उनके प्रति मन में शक्य नहीं आती। ऐतिहासिक प्रतिपादन केवल जोबाबाई का है। जोबाबाई बैगम के नाम से मशहूर है। वह परघसल जोबपुर के राजपराने की लड़की नहीं है। बल्कि काश्मीर से खरीदी हुई एक ऊँचे लेकिन तबाह घराने की लड़की है।^१। कट्टर मना उन पर्यो होते हुए भी किद्योरीनाम की धर्म-समाज के दुष्टि-आन्दोलन से सहमत दिख जाई पड़ते हैं। मना यह भी कोई बात है कि मुसलमानों को हिन्दुओं को मुसलमान बना लें लेकिन हिन्दू माई मुसलमानों को हिन्दू बनाना तो दूर रहा अपन उन भाइयों को भी हिन्दू न बनायें जो बबरल मुसलमान बना लिए गये हों^२।

गुलबहार का आवस भ्रातृस्नेह

मराठी प्रेम से सम्बद्ध बगानी केन्द्र का वृक्ष ऐतिहासिक उपन्यास 'गुलबहार का आवस भ्रातृस्नेह' सन् १९१६ ई० में प्रकाशित हुआ था। यह १२ परिच्छेदों और ४१ पृष्ठों का एक छोटा-सा उपन्यास है। इसमें बगान के अन्तिम तबान मीरकासिम की पुत्री 'गुल' और पुत्र 'बहार' के कल्ल प्रेम का वर्णन है। बगानक का विस्तार समयग १२ वर्ष का है। परन्तु पहिले का परिच्छेदों में विराज्जोला मीरकासर और मीरकासिम तथा उसकी पत्नी मैना बैगम का वर्णन है। फिर पृष्ठ ९ से १४ वर्ष बाद की कहानी प्रारम्भ होती है—यही उपन्यास का मुख्य बन्ध भी है। उपन्यास में दो ही पात्र हैं—एक छाम पदा होले नामे जाई-बहिन लखर ने बामक बहार को इस छोटे से उपन्यास का नायक^३ और मोली गुल को 'छोटे से उपन्यास में लिखी हुई बटमा की नायिका'^४ माना है। यदि मीरकासिम 'अन्नजों से मिल कर बनता तो प्रकाश ही में काल बचलित न होता और गुल तथा बहार की भी प्रकाश मस्तुन होती'^५ परन्तु 'और जाकर लो की लड़की और मीरकासिम की प्यारी बीबा मैना बैगम'^६ का अन्तिम दवान मेले-भठे मीरकासिम ने अन्नजों से सन् १७६९-४ में अन्तिम सड़ाई छोड़ी जितके बाद किमी ने बंगाल में मीरकासिम का मुक न देना^७। मरोम्मल धर्मजों के हाथ से धामुम

१. पृ. ६, १४

२. पृ. ६, १४६

३. पृ. १४

४. पृ. ११

५. पृ. ६

६. पृ. ४

७. पृ. ५

बच्चे 'मुम' और 'बहुर' भी सदा के लिए संसार से उठ गये। कन्साइन के ऊपर इस कथन ब्रह्म का बड़ा घसर हुआ उसने अपनी हाथी में^१ इस कथन प्रसंग को संकित किया है। मुनेर में आज भी उनकी कब्र बनी हुई है जिसको पुनःबार को मुसलमान मोम कुर्मी से सजाते हैं। इस चटना के बाद कन्साइन को अपने देश से बिट्टी मिसी जिसमें उसके 'मड़के' और मड़की के मरने की खबर थी^२।

उपन्यास का कथानक इतना छोटा है कि इसके आधार पर केवल एक कथन कहानीमिसी या सफ़ती है। मीरकासिम के दिनों का केर उसकी बेगम की सोराबसा दिनी मृत्यु तथाक धीरे उनकी दोनों सम्मानों का एक बूझने के लिए तड़पना मात्र में बाँटे हुए बहुर का प्रत्यक्ष या वस्तुतः मुरण के मुहाने पर मीरकासिम को देखकर नाबिक को किस्ती खबर से जाने को कहना परन्तु नाबिक का न मानना मुम का सोरु मीर कासिम का छिाकर अपनी सम्मान को खोजना परन्तु उनकी कब्र को देखकर आत्महत्या कर लेना आदि प्रसंग इतने हावक हैं कि लेखक को अन्त में 'मोश्मू' छान्ति' निकलकर पाठकों को धैर्य बघाना पड़ा है। इस कथानक की मुख्य प्रेरणा मुनेर की कब्र और कन्साइन की हाथी है। साथ ही इतिहास एवं जनधृति के विषय से भी कुछ प्रसंग आये हैं जैसे 'धीरे धीरे जब बोपी बीच चारा से आये बड़ी लक बहुर ने देखा कि मीरकासिम मुरण के मुहाने से बाहर निकल कर खड़ा है। यह देख उसने माँझी से किस्ती किनारे पर ले चलने के लिए बहुत कहा पर उसने एक न मानी^३, कोई-कोई ऐसा भी कहते हैं कि गुल के मरने की खबर सुनकर मीरकासिम फिर लौट आया या और अपने दोनों बच्चों के समानक परिधाम को देखकर उसने अपने सई भाप मार डाला था^४। लेखक ने कर्मफल में विश्वास दिखाते हुए कन्साइन के पुन-पुनरी की मृत्यु दिखा कर उपन्यास के अन्त को धीरे भी हावक बना दिया है। सर्वत्र सर्वव्यक्तिमान् काल की महिमा का विषय है—यही रचना के मुख्यपुष्प पर संकित भी था।

यह उपन्यास प्रायः ऐतिहासिक उपन्यासों से केवल आधार और मार्मिकता से ही निम्न नहीं भाषा सीली वर्णन आदि में भी कुछ चलन है। यद्यपि नाबिका प्रचलन है परन्तु वह सुनरी नहीं बालिका है, उसकी एक ही विशेषता है—'आत्स्नेह'। विमल बंभव शीव-सैव आदि की प्रावश्यकता ही नहीं समझी गई। कदवा का प्राचान्य होने से नहीं संस्थापन नहीं था पाया भाषा साफ-सुनरी वर्णन संयत है। यदि उपन्यास में उस को स्वात मिलना चाहिए तो यह यहाँ धक्कत निभ सकता है। बीच में जितने उद्धरण आये हैं वे ज्ञान-व्यास के हैं, श्रुतार आदि के नहीं। ऐसा लगता है कि लेखक जीवन के चलते किन चीजों में आस बोलचाल की उर्ध्व हिन्दी का उपयोग अधिक सम-

पड़ने पर किसी धीरस की भी धरत वह उनके काबू में आ सके। हाँ, गिर नहीं सोंगे धीरे उनकी आल-पाँव का मुनसक रपाम म कर उसे अपनी बीबी बना लें^१। इन 'एमास बादशाहों के महलों में धूमधूरत धीरसों का बड़ा रतना होता था धीरे व धीरों अपनी खूबसूरती के आइस बड़ी शानीसीरत के साथ महल म रहनी थी^२। धूमधूरती नमाकत मयकीनी बिस्मनी मजाक का सऊर गुणपू की मियाकत कुछ इसी ठाम्त पाने बजाने नाचने के बीसर घतरन बरैरह का जानना धीरे नाचनखरे मौरह महगार बिम नाचनी के पास होते बाबसाही बिम पर बड़ी कनह का सकती थी^३। 'मलनऊ का घाही महल इस किस्म की खूबसूरत नाचनिया का मोवा मुमाइममाह था। वहाँ पर एक से एक बकरर धूम-धूरत नाचनिया रहनी थीं धीरे धरने हुस्न का आनाबी के सबब बादशाह के बिम को अपनी भुट्टी में लिए रहनी थीं^४। इसी नाचनियों ने मलनऊ की बब ओर की धीरे घाहीमहल माना एक कबिस्तान बन गया।

'मलनऊ की कब का घाहीमहलसरा' उपन्यास में मैदाक ने उसी बिमानी राज महल का वर्णन किया है। यह उपन्यास कई भागों में सप्तक-सप्तक पर छापना रहा। 'उपन्यास' मासिक पत्रिका में इसका छापना प्रारम्भ हो गया धीरे सप्ताहबसर प्रकाशित करते हुए मैदाक ने सन् १२१७ में इसके ७ भाग पाठकों को दिये। सप्तम १२ बर के समय में ७ भागों का छापना इस बात का सूचक है कि जब कोई धीरे उपन्यास तैयार नहीं होता था तब मैदाक इसको छाप देता था। ध्यान धाकट करन का मुक्त विवेचना यह है कि प्रत्येक भाग की कथा इसी स्वतन्त्र है कि एक भाग को ही पढ़ने वाला उपन्यास को समुर्ण नहीं समझना शक्य है वृन्त धीरे घासमानी दो पात्रों द्वारा प्रत्येक भाग कुछ बाँटा है—किजली के दो तारों के समान ये दोनों अमाने पात्र उसकी पीठ को छूकर 'कब' की कथा की रोसनी से बमकाते हुए, अन्तिम भाग में पहुँच कर संकट पूरा कर लेते हैं। 'बहार बरैर' के किस्से का इस उपन्यास पर आबसकता से अधिक प्रभाव है कई बार इस किस्से की बर्नी आई है 'मुलिमदाने बराम' 'अलिफ बीना घादि का भी इसके वर्णनों में योगदान है। यह 'उपन्यास' नहीं है इसको किस्ता^५ ही कहना चाहिए, स्थान-स्थान पर 'किस्ता बोताह' लिखने से छिरी हुई बात ब्रकट भी

१. सोसरा बजा ६ ११

२. बीता मल ६ २८

३. गरी ६ १

४. गरी, ६ २८

५. 'कौट कम्मा बिस्ता सुगार, न तो क्कने ही पैर बौरा धीरे न येर ही बिम का वरजोन होनी'।

(संका बिस्ता ६ २)

'अ मलीकीम बीरर मेरे रस बिस्ते का बिताग है। (कम बिस्ता, ६ २)

'जब मैं लिखने की बैठी हूँ तो अपना किस्ता निजमुज लड़ी-लड़ी की निन्नी'।

(संका बिस्ता ६ २)

हा पर्य है। लेखक की दृष्टि में यह हिस्सा घाघिकी-माधुकी का बयान^१ है। इनके पाठक में मोय कल्पित किये गये हैं जिन्होंने 'घारसी और उरू' के महाहर महाहर माधुकी की बीबानें बकर ही देख जामी होयीं^२। इनको स्थान-स्थान पर 'मेहरबान माधुगीन' कह कर सम्बोधित किया गया है। उपन्यास की भाषा उरू हिन्दी है दोसी बिस्से की है पाठक उरू-घारसी पर्ये भोग हैं। आताबरम मुस्लिम है पात्र मुसलमान हैं। अन्य उपन्यासों से तुलना करते पर इसकी पहिमी बिमशगता जाया है। दूसरी पात्र गब बानाबान। इनके भाषो को 'हिस्सा और परिच्छेदों को बयान' कहा गया है। नीति-बिषयक सूक्तियाँ नहीं हैं, घाघिकी-माधुकी के दौर बहुत घबिक है। 'उपन्यास की बमोटी पर कठकर इसे हम घमउक पाठे है। लगता है कि यह साहिरप नदी या यत्रवार चलाने के लिए मरती थी। सातब हिस्से में इस रचना के उद्देश्य पर कुछ प्रकाश पड़ता है —

- (क) वह मेरी जिन्दगी का मच्छा गया है—जा पड़ने वालों और पड़ने वालियों को धायब घबछी ही नमीहन देवा।
- (ख) यह नई उरू कीनी खतरनाक होनी है। बबानी का जोश कैसा जहरीला होता है और नातबुद्धिकारी कैसी बुरी बन्ना जाती है।
- (ग) नासमझी का काम बकीर में क्या इनाम देना है और मोहवा की बहका बट बकीर में कैसा रंग मातो है।

इस 'कह में ये मय घग्गी कहामिया के प्रभाव से धाये हैं। बल्लुठ मारे बिस्से की केन्द्र-घक्ति तकबीर की जंजीर^३ है। बकीर तकबीर के एक तिनबा भी घपनी बनह से नहीं हट सकता। इस तकबीर की 'सुराबान करीम की मयघा ममझना चाहिए। तकबीर की ठोकरें जाने जाने बुमुक घाममानी बुलारी (मलका जमानी) मुस्तरी घादिजिग्गी भर सुराकाव करते रहते हैं। सबसे खतरनाक घाघमानी है जिसने बैनमों के रहस्यों को जान कर उनको छप-छप कर घपने कम्पे में कर रखा है। पात्र अपने में जान लेने क कैमते होते हैं^४। 'घपनी बहिन बैटियों से बचब^५ करवा जाना है। मारी जिन्दगी 'मटमारे की छरा' हिस्सा के बावकी ब बार या बूमरे घाड़ो पर बट की जाती है। दूर-दूर से निहायत हकीम और कमजिन नाबुलो बैची और गरीबी जाती है^६। सात बस्ताबरम पैमाधिक और हकीम आदतों से भरा हुआ है। परन्तु बिनास में नम बिम उपन्यास में नहीं है। उनका संकेत कर दिया गया है बजन नहीं बर्नन तो हमकंदों घरवाचारा, छिरे नमाना। बिषया की घरोद-घरोकन निनिम्य और मुरमों-मुसमों के है। यह सोचना कि दुनिया की सभी घोरते सराब होनी हैं। यह नम घवन घोर बाहिवाउ

१. सातवाँ हिस्सा १० ३८

२. वही वही

३. चौथा हिस्सा १० ६

४. बावनी बिरता १ २५

५. वही १० ३४

'परन्तु जो नीच होते हैं उनके 'पँदाइसी जून के ऐब—दिन ब दिन जाहिर होने—मगते हैं) धीर (उनकी) बरतमीजी बरजुबानी बरहजताजी धीर बरमापी से सभी जो नागों इन प्राप्ति जाता है धीर 'कच्ची छत्र के लड़को या लड़कियों का बरजात पीड़ी का पुसाय' जिसकुल सराब कर खाते हैं।

इस किस्से को ऐतिहासिक मानने में संकोच हुआ। हमने कई स्थलों पर सन् धीर सारीय का पूरा विवरण है सन् १८२९ ई० में बाबसाह माजिदकीन ईर के कमीते मद्रक मसीदरीन ईर की कुलारी क साब छापी उसकी घोषणा ऐमापी का पांच बिलासपी मुमाइयो का उसको अपने बरजो में कर सेना^१ पोपीदा बजाये निष्प हजारी मकानात का बाहू बेना प्राप्ति बरमाए ऐतिहासिक है फिर भी जिन हस्तों का इस किस्से में उल्थाटन है वे इतिहास से कोई विषय महत्व नहीं रखते। जब ही लेखक की इति वर्णन में धीर किस्सों में इतनी घबिह है कि वह पाठक पर विहास का कोई प्रभाव नहीं डाल पाता। यह सम्प्रदाय ही है कि इन किस्से से पाठक को तसीहत मिलती है या नहीं क्योंकि वे रहस्य जीवन के साधारण रहस्य ही हैं इतीलिए ये प्राचुरिक उपन्यास के लिए अप्रयुक्त भी नहीं हैं किस्से दिलचस्प परन्तु साहित्यिक एक समयामुक्त नहीं, इन से गोस्वामी जी की कीर्ति में कोई बि नहीं होती।

जनककुसुम का मस्तानी

(मर्चात् बाजीराव पेशवा धीर मस्तानी की कहानी)

बर्मामा के 'साहित्य नामक मासिक पत्र में बीजुन सखाराम महेरा बेइस्कर ने बाजीराव धीर मस्तानी' की एक छैन पृष्ठ का छोटा-सा लेख लिखा था जिस का प्रथममन्त्र लेखर किशोरीलाल मोस्वामी ने ६ परिच्छेद धीर १४ पृष्ठ का यह उपन्यास लिखा है। पुस्तक भारत के कटना-स्वत को साधार मान कर लिखा हुआ उनका यही एक मात्र ऐतिहासिक उपन्यास है। इनमें महाराष्ट्र धीर बाजीराव पेशवा धीर निबाम की घोषा की पूर्वपुत्री मस्तानी के प्रेम का मुकाम्त वर्णन है। रहस्यमय होने से इस प्रेम का महत्व है परन्तु मस्तानी के पुत्रों के कारण वह धीर भी मूस्मबान बन जाता है।

सन् १७२१ ई में पेशवा बाबाजी विशवनाथ के मरने पर उनके बड़ लड़के बाजीराव पेशवा की नही पर बैठये गये। सन्हीने धपनी कटनीति के बम से निबाम जैसे प्रबल बीरी के नी बाँट काट कर दिए। एक बार मुझ में बाजीराव पायल हुए, उस समय उसमान नामक व्यक्ति ने धपनी बही सेवा की। पृ ८ पर बताया गया है कि एक बराम लखार बाजीराव के पायल धरीर को ले गया। पृ १४ पर उसको कूद

१. बड़ा रिस्ता, १० ७१

२. बी १० २१

३. सात्य रिस्ता १ १९

४. बड़ा रिस्ता १० ७

सूरत मौजबान कहा है। उसकी आवाज भीठी धीर सुरीली बताई गई है। अन्त में उसमान की हकीकत माफूम हो जाती है। 'मेरी निवाह मर्दान है मगर फिर हकीकत में धोखे हैं। मेरी वास्तव पर जो कि निहायत ही हठीन और बेनबीर धीर है निजाम की बच निवाह पड़ी इसलिए उसने किसी डब से मेरे आनिश को भार मेरी वास्तव को अपने हुरम में बाधित किया। एक रोज मैंने अपनी वास्तव से इस घम में बाधपीठ की तो उन्होंने मुझे इस बात की सख्त कसम दे दी कि मैं निजाम की जान पर किसी तरह का खदमा न पहुँचाऊँ। मेरा नाम मस्तानी है और मेरे पाक-रामन में अभी तक किसी आदम ने संभली नहीं मगाई है।" सब को यकनबाजा के रूप और गुन पर बड़ा आश्चर्य हुआ और रानी काशीबाई के आग्रह से बाजीराव का मस्तानी के साथ विवाह हो गया। 'कनककुसुम' सप्तम परिच्छेद का सीपक है। प्रसन्न हो कर अपना बनाते हुए बाजीराव ने सेवक उसमान की सुझा पर यह बाँध दिया था।

इस उपन्यास में कल्पना कम है, ऐतिहासिकता अधिक। भाषा स्वच्छ है कथो-पकथन कम है। कथन सुन्दर है। व्यक्त की कविताएँ या उद्धरण नहीं रखे गए। इस उपन्यास का कथानक भी कहानी के लिए अधिक उपयुक्त है। मस्तानी का छद्मवेष पाठक की उत्सुकता को लगाता है। अन्त का एक्सपोज़ीटन उसे आश्चर्य में डबा देता है। महलों या बिलास-भोग आदि का वर्णन लेखक को धमीष्ट नहीं है। उसने एक सीमी-सारी प्रेम कहानी लिख दी है।

मस्तानी उपन्यास की नायिका है। उनका चरित्र सबसे स्पष्ट एवं प्रभावशाली है। अभाग्य बाप और कुबमूरत माँ की यह पुत्री अपने ही बल पर रोमान्स पर गुन पाती है। एक खौदागर से उसने बाजीराव की एक तस्वीर लीखी और उसे देखते ही हवा-बात से उन पर आघिक हो गई। उसने एक धोर अपने एकनिष्ठ चरित्र को रक्षा की वृत्ति धोर अपने अनोख एवं बुद्धिबल को सक्रिय किया। नायिकी के समान माता-पिता के सङ्गमत्त न होने पर भी जिसको मस्तानी ने अपना पति कुमारा बस्या में ही मान लिया था उसी बाजीराव को पाने के लिए उसने पुनरोक्ति साहस से काम लिया और अपने प्रेम साहस चरित्र सब एव निष्ठा के बल पर अरन बर को प्राप्त कर सकी। तीन स्त्री-पानों रानी काशीबाई मस्तानी और मस्तानी की माँ ने से मस्तानी सर्वोत्तम है। रानी का चरित्र-वर्णन धमीष्ट न था ने उदार बन बर अपने पति को मस्तानी के साथ विवाह करने की अनुमति देनी हुई देनी जाती है। मस्तानी और उनकी माँ में बड़ा अन्तर है। माँ अपने पति को मूल कर निजाम की मोय्या बनी रही 'धामब अपने धीर को दिल से मुपाकर निजाम पर मेहरबान हो गई' परन्तु बेगी ने जिसको अपना पति एक बार मन से मान लिया उसी को ऊर स्व मान कर प्राप्त करने में सकन हुई। माँ पर निजाम की नृदृष्टि पड़ी और वह हुरम न

साक्षि हो गई बटी पर भी न जाने कितने लोग की दृष्टि परी होनी परन्तु उसका पाकदामन धधुका था। जो व्यक्ति दृढ़ और एकनिष्ठ होता है उसकी बाधाएँ भी बचीझा लेकर, धनुषी बन जाती हैं।

इस उपन्यास में बुद्धबुधि तथा बलवर्धन के बिना है परन्तु तितित्तिम तोड़ने में लेखक ने समय गण्ट नहीं किया। वह निजाम का बिलासी जीवन भी बिभित कर सकता था परन्तु उसकी धार-यकता न लमभी गई। मस्तानी के रूप में एक पारदर्शी भारतीय गारी का बिभन लेखक का धनीप है। धीरे हिन्दु-मुसलिम एकता का इसमें हुस्का-ना प्रवल है। भले ही वह धार्यसनामी धुड़ि-वाग्योजन में प्रभावित हो। ऐतिहासिक उपन्यासों में वह सबसे कीमती बर्तक है। धनी की दृष्टि से साहित्यिक और प्रीड है।

मधुराप्रसाद शर्मा के उपन्यास

नूरजहाँ बेगम व जहाँगीर

प मधुराप्रसाद ने इस युग में लक्ष्य 'इतिहास' का चित्रण करने के लिए उपन्यास के क्षेत्र में कदम रखा। मन् १९३६ में रचित इस की 'नूरजहाँ बेगम व जहाँगीर' एक ऐतिहासिक कटना की विस्तार है। इसमें धक्कर के प्रिय पुत्र जहाँगीर और उस की प्यारी बेगम नूरजहाँ का हाल प्रेम का होना इत्यादि का साधोपालन कृतान्त जिला गया है। इसके पढ़ने से उन जमाने की तथा जहाँगीर और नूरजहाँ की प्रेमार्थिक की बातें धालों लगे हुए जाती हैं^१। मुकपुष्प पर लेखक ने 'न रचना की 'उपन्यास कृतमावा है।

प्रस्तुत पुस्तक के दो भाग हैं फिर भी यह ७० पृष्ठों में पूरी हो जाती है। प्रथम भाग में नूरजहाँ की जहानी बमके माता पिता के जीवन से प्रारम्भ हो कर मुख्य कथा की पूर्व-दृष्टि का दार करती है। द्वितीय भाग में जहाँगीर की कहानी है उसका और उसकी बेगम का जीवन धकित किया गया है। भारत के इस्लामी इतिहास में नूरजहाँ स्वयं एक माधुर्य केन्द्र बनी हुई है। उसके जीवन की चार परिस्थितियाँ बड़ी मनोरम हैं—उसका जन्म उसका प्रेम उसका विवाह और उसका बिलास। परित्यक्त होकर भी बालिका मेहर अपने माता-पिता को फिर मिल गई—यह सयोग ही तो है। उसका प्रेम बिम मोतेपन में प्रारम्भ हुआ था वह कबूतर वाली कटना अपनी स्वामाधिकता में ही रोमांसी है। धीरे धक्कर के साथ मेहर का विवाह दुर्भाग्य या संतोष की माया है। धान्त में अपने पति की मरु के बाद वह सलीम की मोय्या बन कर आनन्द-विश्राम का जीवन बिताती है। यह सदा विवाहपक्ष रखा कि धीरे धक्कर की हत्या में जहाँगीर का कृतमा हाथ था और उस हत्या का उद्देश्य क्या था इसके बाद अपने पति के हत्यारे के साथ मिलकर उसकी प्रबन्धी एवं मोय्या बनकर जिस

१ मधुराप्रसाद—उपन्यास-नूरजहाँ बेगम व जहाँगीर राजभाष, काशी।

२ मुख्या है।

मुरजहाँ म घमनबीन का जीवन बिताया उसका मम किस धानु का मना बा—उह मनो बिजान के घमनमन का बिपय है बिरोपत उम परिस्थिति में जब कि पहले पति म उसके एक सतान भी थी। मुत्तलमान खासम में ऐसी घटनाएँ धारकमंजमक मी। फिरोदीमान गोस्वामी द्वारा रचित कनककुमुम बा मस्तानी^१ उपन्यास^२ म नायिका मस्तानी की माता भी अपने पति के हत्यारे निजाम की भार्या बन गई बा। धीर उमा जीवन में सुखी रहने लगी थी। रजिया बेगम ने उस घस्तुनिया के साथ विवाह किया^३ जो उनके प्रेम-प्राप्त मायब का बहट्टर धानु एव मायक बा। घमाउहीन जिसको की मृगु के बाद उस मलिक मायब से बिपदा बेगम म बिबाह कर नियर जिसने घमाउहीन के तीनों लड़कों की धोखे निकलवाई^४। फिर भी मुरजहाँ का महत्व इसलिए है कि उसने बिरकान तक बादशाह के हृदय पर ही नहीं हिन्दुस्तान पर भी अग्रत्यक्त रूप म सामन किया।

इस रचना में इतिहास पर आशयकता से अधिक जोर है। कथा का बिभाजन परिच्छेदों या प्रकरणों में न करके मेखक बीच-बीच में शीर्षक देता जाता है। धीर उन घटनाओं के सत्यामत्य पर बिचार करता जाता है जो उन धीपक क घमनमन बर्णित हैं। फलतः बन्ध बिपय पर उपलब्ध समस्त सामग्री की परीक्षा भी सख्तन-मण्डन पूर्वक की गई है। मेखक तर्क पर तर्क देता है धीर सत्य की खोज का प्रयत्न करता है प्रथम तर्क यह है—होसरे यहि बहु भी मान लिया जाय—तीमरे यह भी मान लिया जाय—बीबे यह बात बहुत ही बिचार के योग्य है—यह सब बातें बनाबटी मूठ हैं धीर बितने कारण इस बिपय में दिखावे गये हैं वे सब निर्मूल हैं।

अपने निष्कर्षों को प्रमाणित करन हुए मेखक क पुनरे इतिहास-लेखन तथा उपन्यास-लेखकों की कड़ी आलोचना की है। 'मुरजहाँ जहागीरी एमफिस्टन रचिन 'इतिहास-हिन्दी' धिर्जा हिरत रचित 'ममानजमरी मुरजहाँ बेगम' के अतिरिक्त अनेक इतिहास-ग्रन्थों की सहायता लेकर जो ऊपर लिया गया है वह कई एक निरपेक्ष इतिहास-लेखकों के लेख का सार है^५। मेखक ने उन सभी बिबरणों का मण्डन किया है जो 'अपनी मनपसिद कल्पनाओं में फँसटल स्थापित करने के लिए' लिखे गये हैं। सबसे अधिक रोप उन्हीं के एक उपन्यास पर है जिसके लेखक ने इतिहास के माप बहुत स्वच्छन्द व्यग्रहार किया है। 'माहीर में एक उपन्यास 'मेहरनिमा बेगम के नाम से 'खारिम ए तालीम' प्रेम में रचा है—उसके बनाने वाले मुरी अहमदकुमेन ना बी ए हैं उन साहब ने स्वयं ही हिन्दुस्तान के सर बाहर फटाट बनाने की चट्टा की है इन उपन्यास में कुछ बंध प्रोफेसर आजाद के उन बिषयों का लिया है जो उन्होंने सलीम

१ रे १ २४०

२ रे इतिहास प्रेमम।

३ ईमम हिन्दी साफ इतिहास बीन्स १ ५ १११

४ ए २०

५ ५ १६

व नूरजहाँ के बारे में बर्णन किया है। पर मुसीबी ने खरिजी को इस तरह जमटा-जमटा है और ऐसी-एसी कपोल-कल्पनाओं की जोड़जाड़ की है कि उस पढ़ने से बुद्धि बचका जाती है और भ्रम में पड़ना होता है—भ्रमों को हिन्दुस्तान का सर बाह्यर स्फोट विधित करने के लिए और केवल टके कमाने के लिए किम ऊपटाय के साथ एक सच्चे इतिहास का रक्तपात किया। इतिहास प्रसिद्ध खरिजों में तो 'जमना-जमना' न करना चाहिए, परन्तु 'सच्चे इतिहास' का लिखना उपन्यासकार के लिए धारम्यक नहीं है। इसी प्रकार 'कहानियाँ' के लिखने वाले होकर भी इतिहासवेत्ता बनने का बाव^२ रखने वाले मिर्जा क़ैरत की भी कड़ी घालोचना स्थान-स्थान पर की गई है।

इतिहास के अतिरिक्त इस उपन्यास में अथक की दृष्टि 'ईश्वर की महामुल सीमा' पर भी रखी है जो 'प्रतिदिन एक नै रात' और विपुल सम्पत्तिधारी को सब के मिलाटी बना देती है। मिर्जा वयास की बीवनी से ललक नै पाठकों को सावधान किया है 'यह संघारी सुल पानी के बुलबुले के समान है न वीरा होते-देर धीरे न नाश होत'^३। जहाँगीर के जीवन से सर्मा की ने 'बोबबिभास में पड़ खूने वाले बिसासी पुरुषों को जमाया है कि वे मृत्यु का भय छाकर सच्चे-सच्चे काम करें। इस प्रकार इतिहास और उपदेश दोनों इस उपन्यास में हाथ में हाथ डाले दिखाई देते हैं।

लेखक की जापा सरल है, मुसलमानी इतिहास होने पर भी फरती का प्रभाव पड़िक नहीं है। बीच-बीच में जर्न के छर भी हैं और बजभापा के शोहे भी। बर्नन एवं कपोलकल्पनों का प्रभाव है। लेखक में कल्पना पर ठरक का प्रभाव है। इसलिए वह सृजन नहीं कर सका परीक्षा करता रहा है। 'नूरजहाँ मैम न जहाँगीर' एक ऐतिहासिक प्रबन्ध है। सफल ऐतिहासिक उपन्यास नहीं। कहानी सुनाकर पाठकों को इतिहास का ज्ञान कराना और कुछ दिखाएँ देना ही लेखक का समीष्ट है, जिसमें सफल रहा है।

जयरामदास गुप्त के उपन्यास

नवाबी परिस्तान का बानिदधसीज़ाह

बाबू नैमाप्रसाद गुप्त के उपन्यासों को पढ़कर^२ भी जयरामदास गुप्त ने उपन्यास लिखना प्रारम्भ किया। उनकी रक्त धों में तो 'कबमीर पठन' 'रोहनधारा और' 'नवाबी परिस्तान ऐतिहासिक उपन्यास है। प्रस्तुत पुस्तक की प्रेरणा भी नैमाप्रसाद

१ ए० १००

२ १ १

३ ५ ५

४ १ १

५ नमिध

गुप्त की 'नवाई हुई बाबिदघमी गाह' नामक किताब' है। साथ ही 'केमरबाय तबारीन' 'हिंदी भाषा प्रथम 'पथ मखनऊ' 'मुहताफ बीहग' 'वाई भाषा लखनऊ गार्बनस' भाषि पुस्तकों से भी सहायता ली गई है। 'नवाबी परिस्तान वा बाबिदघमीगाह' नामक उपन्यास में लेखक ने 'इस उपन्यास के प्रधान नायक अगतप्रमिद्ध बिपरी व बिनामी लखनऊ के अंतिम मराठ बाबिदघमीगाह' के जीवन के कुछ दृश्य उल्लिखित किये गये हैं। 'नवाब बाबिदघमीगाह' की ऐयाशी उनके जमान का रोमांच सजा कर उन बाना वृत्तान्त उनके कौतूहल-वञ्चक गुप्तनेत्र तथा उनके महल का रहस्य बेगमी की उस्ताना उनकी बहेलियों की भयाङ्क सीमा लोभहृषण बण्ड—उनके कमरबाय की सूर— 'घादि के बिचल में लेखक स्वयं बह गया है। उपन्यास के दो भाग हैं पहिल भाग में उवा छी घोर दूधरे भाय में पोने दो सौ पुष्ट हैं। उपन्यास की प्रत्येक 'प्रत्येक' एक नवीन परिस्थिति का चित्रण करती है।

लखनऊ की रैगमे घोर बिनामी नवाब इतिहास में अपना समय महत्व रखन है। बाबिदघमीगाह के समय में बिनाम घोर बेगम का इनका आधिक्य था कि देश भर का बदन घोर रूप बड़ा इनहुं हो गया। नवाब को परियों क बीच से घासत प्रबन्ध रैन के का अधिक भी समझाया नहीं था। महल के घन्टर कमरबाय नारियों के ईर्ष्या प घोर उग्रम्य पश्यन बनते रहते थे। निर्बन्धतापूर्वक हुम्मा लन प्रबंध द्वारा मनीस्य गद्य रहस्यगोपन के सिध धमूक्य उपहार उस बातवचन में सामान्य बात थी। लखनऊ का केमरबाय 'परिस्तान की टबर' का था। सबेरे में नाम तक नवाब का कामकाज परियों की महुल्लि में ही बीतता था। इसी बातवचन का लेखक बिनामीगाह गोम्बामी ने 'लखनऊ की कब' नामक प्रमिद्ध उपन्यास लिखा है। बिनाम 'आत्मानो' नामक मुन्दरी का ऐगाधिक बीहल रहस्य के रूप में चित्रित किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में भी वैसा ही प्रयत्न है।

इन उपन्यासों की बिगोपना यह है कि लखनऊ के अमाच में बातवचन का चित्रण केमरबाय का धमीष्ट बन गया है। अतः जो लोग उस युग के जीवन की भारी हेतने के लिए इन उपन्यासों को पढ़ते हैं उन्हें इनमें मन्तोष होता है। गोस्वामी जी की तुलना में गुप्तजी की सज्जनता कम मिमी है। बयाबि गोस्वामी जी अधिक कुशल बतावतार थे। परन्तु इन उपन्यासों की भाषा सरल है। काफ़ी में अधिक प्रभावित नहीं केमरबाय का बचन मनोरम है। कथानक मुगलित है। बिनामी रहस्य कुछ कम है। बचन घोर बिचल होने का कथानक में समान भाग है। गोस्वामी जी की रचना के ही समान इस उपन्यास में रहस्य है। बयाबि जीवन की भारी कम या रहस्य लखनऊ के परिस्तान का है बह किसी भी 'हरमनर' का हो सकता है।

प्रस्तुत उपन्यास में तीन नायिकाओं घोर दो मुख्य पुरुष-पात्रों का चित्रण है। नायिकाएं रोचनघारा जहानघारा घोर घायनानी हैं। मुन्दरी रोचनघारा के बाप-मा

शेनों मर चुके हैं और यहाँ पर केवल इसका एक भाई है जो इस बागह मीनू^१ है उसका नाम हरमहरा के रजिस्टर में लिखा था रहा है। दूसरी नारी अर्हानघारा है जो 'गवाह बाजिरघनीयाह की बहोती'^२ भी है और 'बहादुर गबमुवा घमसेरसिह पर धाधिक'^३ भी है। धरमाणी जैसे स्वल्प में मुन्बरी की धापरन में बैसे ही 'राधरी'^४ लौडिया नित्य घण्टी-घण्टी बचानों की धास्माणी की धास्मानुमार पचर कर में बाटी की जितने वह धपनी दिमी धारजू निकाला करती थी^५। इन बचानों में से किसी धमाये को धनी दे ही बाटी की किसी को कल कर दिया जाता था जिससे कि वह बाहर था कर रहस्य प्रकट न करे। एक कौठरी में चारो तरफ नीचे से ऊपर तक जुटीसे और मुकीस लम्बी-लम्बी छत्र धने हुए थे^६ जिसमें डाला हुआ मुक्क बिस्माता था तो 'लौडिया उसकी बीज की धावाय मुनने के साथ ही तेजी के साथ हूँने'^७ लपटी की जिसमें धावाय बाहर न पड़े। गमसरसिह एसा ही एक धमाणा मुक्क है परन्तु वह बीर है, वह इन पिछाचियों के ऊँचे से बच जाता है। इसी प्रकार रोशनघारा ने धपना धर्म बचाने के लिए धास्त्रहावा की और अपनी सच्ची पाचधामिनी की धीरती का धमूम्य रत है जिसलाई^८। इस प्रकार रोशनघारा तथा घमसेरसिह इन उपन्यास के धावर्ध पात्र हैं मुसलमान लडकी को 'सती सिद्ध करके लेलक ने उबारता का परिचय दिया है। 'उबार धमहो में डाकुर्मी के धयानक धाँों पर जुएखाने इस्वादि में बचकर लपाने'^९ पर भी यह उपन्यास धाधिक गवानक नहीं है। धिबध की दृष्टि से भी यह उपन्यास सामान्य कोठि का ही है।

अधून इन सहाय के उपन्यास

लासबीन

सन् १३२७ ई. में दक्षिण देश का बादशाह मुहम्मद द्वितीय मर गया और उसका बड़ा लडका ग्यामुहीन गद्दी पर बैठा। वह सत्तर वर्ष का इन्हीं एवं बिबेकहीन युवक था। तुर्की मुसलमों का सरदार तुगलबीन तुसबर्न का धातक और राज्य का प्रधान धाधिकारी बनना चाहता था परन्तु ग्यामुहीन ने उसको निषुरत न किया इस कारण तुसलबीन बादशाह का धनु नम गया। बरमे की राजता से तुषाम ने धपनी पुत्री के साथ मुक्क बादशाह को कया कर धपनी सुत्री में कर लिया और बचकर पाकर लडकी धाँों निकाल डाली और उसके मुन्य सहायकों को बोला हैकर मार डाला। धव तुगलबीन ने उसके लीपने भाई समतुहीन बाऊर को गद्दी पर बैठाया और स्वयं धासन करने लगा। इससे छाही लाज्वाग के लोग सतलुष्ट हो गये उन्होंने मुसलम और गये बादशाह के विरुद्ध संगठन किया और लाज्वागी से उन शैनों को कैद कर लिया। कीरोज

१ बहिला भाग १ ३७

२ बही १ २५

३ बही, १ २५४

४ इसरा भाग १ २४

५ बही, १ २

६ बही, १० १३२

७ बही १ २

८ बही, १ १५२

९ बही १ १५२

बाइसाह बन गया। समसुहीन की धाक निकाल कर उसे जेल में डाल दिया गया। यन्त्रे ग्यासुहीन को कंठ से निकाल कर उसके हाथ में तमबाक दे दी गई जिससे वह गुप्तसचीन के टुकड़े-टुकड़े कर सक। इस प्रकार बीस वर्षों में पण्डित नवम्बर पर सन् १९६७ ई० में आन्तरिक हलचल के उपरान्त तानुहीन फोरात्रगाह इतिहास का बाइसाह बना।^१

इस वृत्ति एक रोचक कथा को भी सज्जनग्न सहाय ने अपने ऐतिहासिक उपन्यास 'सासचीन' (सन् १९१६ ई.) में आधार बनाया है। यन्त्रास गुप्तसचीन की उन्मास का नायक सासचीन है। ग्यासुहीन और सासचीन में जो अन्तर है वह इस बात से है कि सासचीन ने आसानी से काम लिया और अपनी पुत्री की महायत्ना में कुर एव निरम कर्म के द्वारा बाइसाह बन कर दिया। उपन्यास में तानु पुत्र-प्राप्त मुख्य है। पुत्रों में सासचीन ग्यासुहीन तथा समसुहीन और नासियों में कमसुम तथा सुत्कुन्तिता के व्यवित्तत्व ध्यान देने योग्य हैं। पुत्रों के नाम तथा गुण का समर्थन इतिहास से होता है।

सासचीन इस उपन्यास का नायक है। वह गुप्तसचीन यन्त्र परन्तु कुर है। उसे आधा भी कि उसे बाइसाह से मुक्ति मिल जायगी। परन्तु यन्त्रास की कठिनाई है उसकी 'आधा को निकाल' कर दिया और सब ईश्वर द्वारा जोड़ दिया एक एक कर सासचीन के हाथ में अपना प्रसन्न बनाने लगे।^२ 'ग्यास के उन्मास का उत्तर दृष्ट संकल्प किया।^३ उसने अपनी गृहिणी कमसुम से परामर्श किया ता 'प्राक्तिक कर्म और विचारों में उसकी पूरी प्रवृत्ति' हो गई 'सत्य तथा कर्म के मार्ग पर चल कर तुम अपने बांझित पर पर कवायि नहीं पहुँच सकते हो'।^४ कमसुम का मन था कि 'परिष्कृत होने से कोई मरे तो विष देने का क्या काम। जिस प्रकार बारा देकर भीन को बनाया जाता है और जेल सेला कर उसे मारा जाता है उसी प्रकार आप ब्यास को फाँसिये।^५ यन्त्रास बचकर पाकर एक दिन सासचीन ने तत्त सीकचो को ब्यास की होनी आलो में अपने हाथों से मार दिया' और फिर 'सुसधान का नाम लेकर एक-एक कर प्रमाण उभराओ को अपने कृष्ण उनके घर से बुला कर उनका बच दिया'। सासचीन दुर्जन पात्र है उसकी प्रेरणा-सक्ति उसकी पत्नी कमसुम है मरते समय उसने स्वयं भी स्वीकार किया 'हो इस अविष्ट का भूल कारण मैं ही हूँ इससे सगैह नहीं'।^६ अन्त में पात्र का पड़ा पर गया और 'सासचीन के कंठ पर यन्त्रास ने हाथ देकर अन्तपूर्वक लक्ष्य द्वारा अपनी मर्त्य पर चार किया'।^७ यन्त्रास ने गुप्तसचीन के मन में बिपी हुई अग्नि का मनोईशानिक विमर्श से सकलतापूर्वक बाहर निकाला

१. डि के प्रथम विविध भाग ३३३। २. ३६५ ३. ३६५ ४. ३६५ ५. ३६५ ६. ३६५ ७. ३६५

१	२०१	३	१५	४	१५	२१
२	२०११	५	२०११	६	२	
३	२०१२	७	२०१२	८	२	

है 'दासों के साथ राजकुमारों का बर्ताव नहीं किया जा सकता किन्तु उनके साथ मनुष्य जसा व्यवहार करता तो उचित है' और 'स्वाधीनता से बढ़कर ठा मंहार में कोई नियामत नहीं है क्योंकि पराधीनता पतन की सूचक है और स्वाधीनता सम्पूर्ण की'।

स्त्री-पार्श्वों में नासचीन की पुत्री को इतिहास भी जलता है। उपन्यास में उसका नाम सुत्कुमिसा है। उसके दो प्रेमी हैं मयामुरीन और धम्मुरीन। 'हम तथा जीवन का संयोग का जो प्रभाव मानव-हृदय पर पड़ता है वही हम धर्मीकिक सौम्य का प्रभाव धर्म के हृदय पर पड़ा किन्तु इसमें कुवासना का भेद-भाव नहीं था'। 'धर्म उसे प्रेम मरी आशों से बेधता है और गयास कुवासना-जनित दृष्टि से'। सुत्कुमिसा गयास से घृणा करती है परन्तु उसको धरना बिकार बना कर पिता के हाथों सोपने में वह किमायील है। उसे धर्म से प्रेम है परन्तु वह शासन नहीं चाहती धर्म पर मैं धरने प्राप्त निष्ठावर कर चुकी हूँ किन्तु हम नहीं की स्वामिनी बन मैं बैमम नाम बराना नहीं चाहती। पिता जो समझने नहीं जिस दिन मेरा विवाह धर्म के साथ होगा उनी दिन धर्मोप अधिक बड़ जायगा'। वस्तुतः मुताम की पुत्री होने पर भी सुत्कुमिसा अपने धर्मों में महान् है। वह एक और नारी के मुता की मूर्ति है दूसरी और राजनीति में दस धाने चलकर पाप से बच कर धर्मोप का जीवन बिताता उसका उद्देश्य बन गया। जब नासचीन मार डाला गया और धम्मुरीन की आशों निकाल ली गईं तब भी सुत्कुमिसा ने जिसने निर्मल उद्गार प्रकट किये 'हाथ से राजदण्ड छूटा आप का धर्म बचा'। 'मे राज्य नहीं चाहती की किन्तु आपकी सहा चाहती रही'। यह नारी करिब उपन्यासकार की उन्नत सृष्टि है।

कमानक का निश्चित संकेत लेखक ने इतिहास से लिया है। दोनों मुख्य पात्र इतिहास में भी इन्हीं युगों का आभास देते हैं। परन्तु कथना के द्वारा ही व्यक्ति का सम्पूर्ण प्रत्यक्ष लक्षण के कीर्तन से समग्र हुआ है। स्वामी द्वारा बनाकर, प्राचाओं पर घुपाघपात पत्नी की प्रेरणा और स्वर्गवसर नासचीन के पतन के कारण है। वह कहना कठिन है कि लेखक स्वातंत्र्य की भावना से अधिक प्रभावित हुआ है धर्म कीनता-धर्म के सिद्धान्त से। जो धर्म से बात है उसका पुनर्प्राप्त उसे धार्मिक शास नहीं देख सकता और मार्ग में जो बाधाएं पाती हैं उनको नष्ट करने के लिए उसकी शास भावना प्रखर हो उठती है। सुत्कुमिसा के विषय में लेखक ने वह नहीं बतलाया कि कूर पिता और पितापित्री माता की सज्जन होकर भी वह इतनी समझ-

१	५	२
२	५	४५
३	५	१५
४	५	२१
५	५	१५५
६	५	२११
७	५	२१२

घर घोर संतुलित क्यों बन गई थी। सामान्य विज्ञान में ऐसा समझा है कि मच्छर का मारक के प्रति सहानुभूति है उसकी बुद्धनता को स्वाभाविक मानना इसका मच्छर नायक को हीन चित्रित नहीं करता। प्रत्युत उसकी प्रशंसा त प्रशंसा का अर्थ उसकी पक्षी में दिखाकर उसे सामान्य से ऊंचा निष्ठ कर देना है।

'नामचीन' उपन्यास १७ परिच्छेदों में ८५० पंक्तियों में पूरा हुआ है। इसका भाषा सर्वत्र एक सी है। सभी पात्र सुपुनमान हैं। चरित्रों का भाषा व्यवहार विशेष रूप से उपन्यास में समाविष्ट नहीं हो सकती थी। भाषा में एक ही चरित्र का ही है। बनें लम्बे-लम्बे भी हैं। कई स्थानों पर स्वयं ही उल्लेख है। म. म. के पनि लेख की रचि नहीं है। पृष्ठ २२६ पर एकत्र एक ही चरित्र का ही है। म. म. के निष्ठका विशेष महत्व नहीं है। सामाजिक समस्यया का चित्रण — म. म. के निष्ठ है। मच्छर की दृष्टि इतिहास घोर राजनीति पर रहता है। चरित्रों का ही है। प्रत्यक्ष भाषा है। जैसे पृष्ठ बारह पर नायक माधव उषा उषा व. रचना है। 'उषा' इसमें अपनी मुहिमी से तो परामर्श कर म. म. का ही चरित्र प्रोत्साहन कर रहा हो। लच्छर ने नायक का नाम सामान्य 'उषा' है जब कि इतिहास में म. म. 'चीन' है। यह परिवर्तन नाम का विकल्प भी हो सकता है।

इस उपन्यास की 'मुमिका' की धारणा अलग अलग दिशा में। म. म. उपन्यास पर तथा प्रसंगत 'हिन्दी-उपन्यास' पर व. प्रकाश पड़ा है। म. म. का ही है कि 'हिन्दी-साहित्य' में उपन्यास के प्रायः ना ही 'इस' समझ है। म. म. को मनोरंजन करना घोर हमारे कोई उपन्यास व. धारणा धारण प्ररित करना। म. म. 'उषा' उपन्यास में चरित्र का चित्रण ही प्रधान रखा गया है। परिस्थितियों का कारण व्यक्ति किस प्रकार बदलता है। इसका ज्ञान केवल अनुभवी मच्छर का ही ज्ञान है। फलतः, किन्तु धारणा में पड़कर स्वामिमर्श नायकीन स्वामिद्रोहो बन जाता है। घोर किन्तु प्रकार रक्त की प्यासी धरती स्त्री की उत्तजना में मच्छर वह धारण रक्त की धारणा करने पर उद्यत होता है। घोर किन्तु भाषा व. उद्यत ज्ञान व. म. म. निष्ठानाकट धम्म का विरसकार करती है। घोर किन्तु राउपपुन होन में उषा का धारणा है। धारि स्थिति के चरित्र पर परिस्थितियों का प्रभाव निम्नान है। म. म. की इस स्वाधना से सभी पाठक सहमत होंगे घोर प्रस्तुत उपन्यास का एक नया एक उपन्यास मार्ग स्वीकार करेंगे। वस्तुतः इसकी रचना सामान्य म. म. उषा म. म. का पाठक के लिए ही हुई है।

'मुमिका' की दूसरी स्वाधना है कि इस उपन्यास से 'एक पृष्ठ राजनीति' का उपरेत मिलता है कि किन्ती देश में मुगलान्तर उत्स्थित करने से उषा देश का कुछ लाभ नहीं होगा—'और कोई धारणा देश का सच्चा हिन्दी हो वह केवल कमसीय परिवर्तन का प्रयत्न करे, मुगलान्तर का कदापि उपाय न सोचे। सम्भव है इस स्वाधना में लेखक स्वयं भी सहमत रहे हों। गणामुहीन मुगलों को सन्तुष्ट कर देना चाहता था। इसविधि उपन्यास बना सर्वकार विरोध हुआ। उत्तर भारत में भी बसबन (साम्प्रदायिक म. म. १२६२

स (१२८५ तक) न समी मुसामी का ध्वज प्रारम्भ किया था और मुसामों को घसतुप्य भी कर दिया था। यह सद्गुण स्वीकार कर लेता नहीं है कि सासनीन का अस्तित्व समस्त वैसाविकता के लिए उत्तरदायी नहीं है केवल 'महत्वा' में ही सब कुछ कराया है। मध्यकालीन मुसलमान-शासन में इस प्रकार की वैसाविकता अनेक बार देखने का मिलती है। सन् १३११ ई. में अमाउहीन की मृत्यु के बाद उसके विद्यवासाय मासिक मास में एक-एक करके उसके तीनों पुत्रों का घालें निकलवा डाली थी और उनके मरवा डाला था। इस प्रकार की बटनाओं में इतिहास भरा पड़ा है। यह मुसामी की छटपटाहट ने सासनीन से यह सब कुछ कराया ऐसा स्वीकार करना निर्विवाद नहीं है। यदि इस उपन्यास में अत्यन्त यह सिद्ध करना है कि कालिदास केय की राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन वांछनीय नहीं है। उसके लिए कालिदास परिवर्तन ही अभीष्ट है। जो इसमें सेवक को लक्ष्मणता नहीं मिली क्योंकि उपन्यास को पढ़कर वह भावना पाठक के मन पर नहीं बसती।

किशोरीनाम मोस्वामी के ऐतिहासिक उपन्यासों से तुलना करने पर इस उपन्यास की कतिपय विशेषताएँ लक्षित होती हैं। दोनों का सम्बन्ध इस्लामी शासन से है परन्तु उनमें अमलमानों के दुर्गुणों का विषय है। इसमें मुसलमान के भीतर के मानव का चित्रण। उन उपन्यासों के कथानक इतिहास की छोट में छिपे हुए रहस्य हैं। इसका कथानक इतिहास द्वारा अनुभावित है। किशोरीनाम ने अपनी कल्पना के इतिहास में बना परिवर्तन कर दिया है। अन्ततः सहाय की कल्पना इतिहास से अलग नहीं होती। उन उपन्यासों में पात्रों का वर्णन चित्रण है। इसमें उनकी व्यक्तित्व विशेषताएँ अंकित मिलती हैं। किशोरीनाम के उपन्यासों में अतिरिक्त का विषय जो मिल जाता है परिस्थिति-अर्थ विकास नहीं जो इस उपन्यास की एक मुख्य विशेषता है। मोस्वामी जी की भाषा प्रायः पानानुसार परिवर्तित हो जाती है। परन्तु सहाय जी की भाषा एक-सी है। अन्त सेवक ने समझती विचारों का प्रचार तथा बम की बम प्रपला लक्ष्य बनाया था जो इस सेवक में प्राप्त नहीं। किशोरीनाम कम तथा मोस्वामी के अन्ततः सहाय सेवक तथा विचार-रक्त अन्त-ऐतिहासिक परम्परा का जो निर्वाह समझें है। उसकी गहराई भी नहीं मिलती। ऐतिहासिक वातावरण का संक्रमण दोनों में से किसी में प्राप्त नहीं हुआ। मोस्वामी जी सामाजिक उद्देश्य से इतिहास के निष्कर्ष बने थे और सहाय जी मनोवैज्ञानिक प्रेरणा से। यह उपन्यास सामान्य से उच्च स्तर का है। हिन्दी-उपन्यास की परम्परा में एक निश्चित विकास का संकेत है।

१ पूर्व-अन्तर्गत नारायण १० १ १ तथा १ ८

२ मेडियम विरही अन्त इतिहास आशुपुत्र १, १ ७६ और ७७

३ ५६ १ ११६ ११०

मिथवन्धुओं के उपन्यास वीरमणि

मिथवन्धुया में 'पुष्पमिथ' विजयविरह और वीरमणि नाम के ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की है। 'वीरमणि' मध्यकालीन मुस्लिम-शासन का ऐतिहासिक उपन्यास है। इसका प्रकाशन सन् १९१७ ई. में हुआ था। यह २१३ पृष्ठ और १८ अध्यायों की पुस्तक है। इसके ऊपर लेखकों का नाम क्यामबिहारी मिश्र मुकुन्ददेवबिहारी मिश्र छपा हुआ है।

इस उपन्यास की प्रेरणा बही है जो कश्मीरवासी सभिकनाम मुन्गी के भयवान् कीटिहर्ष उपन्यास में मिली है। उत्तरीय भारत में वीरपाण्डव नाम के बड़े नायकानाम में गोराबरी के निज वीरमिथनाथ बिपानी नामक एक काव्यबुद्ध बाह्यम हान में उनके '४५ साल के सुहमों के सम्बन्ध एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ'। यही वीरमणि उपन्यास का नायक है जिसके व्याजम्बर सेनक में तपस्वी मेघावी धर्मप्राण काव्यबुद्ध बाह्यम का पुरातन इतिहास संकित किया है।

उपन्यास के कथानक का सम्बन्ध असाउहीन बिपानी के शासन-काल से है और मुख्य घटनाएँ बितीह के प्रसिद्ध युद्ध में घटित होती हैं। बिन्नी के घचीन लीराबाद का नबाब बना बिसामप्रिय का उसकी कृष्ण वीरमणि की पत्नी मलिकी पर पड़ी। वीरमणि अरमल सम्मयनसीम और गम्भीर का इयलिय मलिकी उसमें प्रसन्न रहती थी उस धर्मप्राण में उसका ध्यान बाप परिचय के ललित पर गया और वह उसकी प्राप्त करने के लिए व्याकुल रहने लगी। नबाब ने सबक देखा और मलिकी के पास पहुँचाने के बहाने मलिकी को पकड़वा कर अपने पास बना लिया। मलिकी का उत्तर हुआ और ललित के उत्तर में उसने अपना धर्म बचा लिया—यह ललित की भाई मानम लगी। इसी बीच बितीह का युद्ध छिड़ गया। मलिकी का मृत्यु भी हो गई। अन्त में पचा वीरमणि की पत्नी बनी। इसकी मन्तान काव्यबुद्ध-विरोधमणि समझी जाती है।

सन् १३ २३ में बितीह पर आक्रमण करके असाउहीन ने रत्नमिह के माध विरवासधान किया और सन् १३०२ में बितीह का प्रसिद्ध जीहूट-हुआ। इस दो वर्षों में उत्तर भारत में हमला मच गई बितीह का यह युद्ध राजपूनी धर्म्य की परीक्षा की घनेक जाने-घनजाने लोगों ने हम युद्ध में भाग लिया। ललित ने जिस आनादरण का चित्रण किया है वह अत्यन्त स्वाभाविक है। इतिहास में असाउहीन अपने बुराबाद के कारण बदनाम है उसमें हर प्रकार के हिन्दुओं को मर्द करने का प्रयत्न किया है उसका बमबादी भी वैश्व ही दुष्ट है। यही लीराबाद का नबाब भी बगान का निरा सुहोपा बन गया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। अन्त-मुसलमानों का जैसा चित्रण हम उपन्यास में किया गया है वैसा इतिहास-सम्मत है।

हिन्दुओं के चित्रण में लेखक ने भीतिहता का परिचय दिया है क्योंकि उनके मुख्य हिन्दू-नाम बाह्यम है शक्ति नहीं अन्त उसका स्वरूप इतिहास में उल्लेख नहीं

होता । नायक बीरमणि धार्ष्ण्य काहाण्य है वह ब्रह्मविद्या में दक्षप्रतिष्ठ होकर मोक्ष-उपलब्ध-मुक्त पर ध्यान नहीं देता । फलतः उसकी युवती पत्नी उषला का धनुस्त्र करती है जिसके लिए पति ही सर्वस्व है वह बचने में पति को केवल धपने में धनुरस्त दैतना चाहती है । नलिनी के मन में एक खोर भी वा वासकपन वा साची ललित पति से उपेक्षित होकर वह ललित के स्वप्न देखने लगी । उपन्यासकार ने दुर्बल लारी का मनो-वैज्ञानिक विश्लेषण किया है । नलिनी पाप पर उठर गई तो ईश्वर ने उसको दण्ड दिया वह ललित के समीप न पहुँच कर मन्दाकिनी की बाँझी बन गई । ललित के उपदेश से नलिनी के प्रेम का उच्चातीकरण भी एक मौलिक एवं नवीन चरण है । दोनों दुःख पात्र बीरमणि और ललित महाम् है पौराणिक धार्ष्ण्य के धर्षार्थ नायिक । हिन्दू मारियों में नलिनी पापिनी है खोर पद्मा चर्मप्राणा एक दुर्बल है दूरी दृष्टि केवल ने नलिनी को हीन दिवाने के लिए ही पद्मा की सृष्टि की है । कहने की आवश्यकता नहीं कि नायिका के सिर पर ही सारा बोध बचने में केवल की सनातनी दृष्टि उत्तरदायी है ।

इस ऐतिहासिक उपन्यास में कुछ महत्वपूर्ण सामाजिक प्रश्नों पर विचार किया गया है जिससे हिन्दू-धर्म की अस्पष्टता प्रतिगठित होती है । हिन्दू धर्म सनातन है किसी व्यक्ति विशेष का बनाया हुआ सम्प्रदाय-मात्र नहीं इसमें धार्मिक अवधारणा और महत्त्वपूर्ण धर्म हैं एक नहीं वह विधेयता धर्म प्रचलित धर्मों में नहीं है 'पृथ्वी पर हिन्दू, बौद्ध ईसाई और मुसलमान नामक चार प्रमाण मत् हैं जो इससे से तीनो प्रतिम धर्मों के बनाने वाले एक-एक महात्मा के विस्तृत हिन्दू मत का प्रवर्तक कोई नहीं हो सकता' । हिन्दू-धर्म में परमात्म के तीन मार्ग माने गये हैं—ज्ञान धर्म और उपासना उपासना भी दो प्रकार की है निर्गुण निराकार ब्रह्म की प्रकृति सबका साकार, प्रकृति ईश्वर की । लक्ष्मणों का मत है कि निर्गुण धर्म सबके लिए सुख नहीं है इसलिए सामान्य जनता के लिए मूर्तिपूजा ही एकमात्र साधन है 'जो लोग निर्गुणोपासना सम्बन्धी उक्त विचारों को भी हृदयगत नहीं कर सकते वे प्रतिमा से लाभ क्यों न उठावें ?' इस स्थापना में मुसलमानों को ही उत्तर नहीं दिया गया धर्मसमाजिक से भी समझोते का प्रयत्न है । कर्मफल में विश्वास हिन्दू-धर्म की एक विशेषता है जिसको इस उपन्यास में नवाच और ललित की जीवन में प्रत्यक्ष ही दिया गया है और जिसकी वैज्ञानिक चर्चा भी कर दी गई है 'जब मनुष्य सर्वत्र इसी जन्म के कर्म का फल भोगता है ? यदि उस जन्म में न जाने कौन से कुर्म किने के जिनके फल आज भोग रही हैं ?' ।

। मुसलमानों के सम्पर्क से हिन्दू-समाज में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गईं जिनमें से एक-दो पर इस उपन्यास में विचार है । राजा सीता को बुराकर से मया परन्तु राम ने सीता को पवित्र मानकर उसका धारण किया मध्ययुग में भी धर्म-महिलाएँ मुसलमानों द्वारा बुराई गईं और उनके चरवालों ने उनका उच्चारण किया और उनको पवित्र

माना'। कालान्तर में हिन्दू-समाज निर्बल बन गया और ब्रम्हा भ्रष्ट व्यक्ति को धन नामे में मानाकामो करने लगा। फलतः अनेक व्यक्तियों को धनिच्छा में मुसलमान बनना पड़ा। मलक ने हिन्दू-समाज की इस प्रवृत्ति पर खेद प्रकट किया है। मनिनी कहती है 'बस एक बार मैं दुश्मन के साथ हाथुओं द्वारा धपने पर से निकलती या चुकी हूँ तब फिर वही जाने की मुझे इच्छा नहीं होती मैं धपने पति के मूल में कसक लगाना नहीं चाहती'। मुसलमान तो हम बात को जानते ही हैं कि 'हिन्दू ऐसे कम धन्य हैं कि जब कोई धारमी किसी तरह हम लोगों में एक मर्त्यवा मिल जाये या हमारे साथ कामा या भेजे तो उसे भी वे धरने लोग में नहीं रख सकते और न बागिम भनचते हैं'। हमारी समस्या परों की है। हिन्दुओं में नमी पढ़ी नहीं रहा वरन् धसम्ब बिदेसिया की कुतुहल से बचने के लिए महिलाएँ वनों में रहने लगीं वे ताब धपनी प्रवृत्ति को धनी भाति मयक है और धपने देवतामिवा की कुल्लाया का भी निरन भुमनन धाये हैं तो धपनी महिलाया की तो पिअरबल पतिवा की भाति बन्ध रखते हैं और दुमरो की बहु ईदियों को तरते हैं'। मध्यकामीन इतिहास हम बात का प्रमाण है कि जयन्ती भुमन मानो ने धपनी बर्बरता का प्रयोग धपनाओ और बन्धों पर किया परन्तु हिन्दू लोग धरा धम का पापन करते रहे। मलाक क सखी में धने नेरी धाबकरेबी म कोई बसर नहीं उठा रली सजिन फिर भी तुने देरी बीबी की इम्बत रख ली'। धपने सम्मान की रक्षा के लिए हिन्दू-महिलाओं ने बीहुर का सहारा लिया और वे सती होने मयीं इस उपन्यास में सती-प्रथा को निम्न मही ठहराया गया। निछोपीनाम गोस्वामी के समान विचारात् इस निष्कष पर पहुँचे हैं कि एका के धनाथ में मुसलमान हिन्दुओं को पराजित कर सके धम्बका सम्मता की दृष्टि से वे बहुत विघ्न हुए हैं 'वपवृद्धि करके इन्होंने हमें धर्मकम के कारण पराजित तो कर दिया है किन्तु राज्य-धामन-प्रधानी मनुष्यों के धधिकार धारि विचारों में इनकी धिना बहुत धातूर्ण है। हिन्दुओं में विवाह एक संस्कार है वह एक धम्म वा ही नहीं बम्ब-जम्म का बम्बन है। इस उपन्यास में संस्कन में ही विवाह को पूर्ण मान लिया गया है, वह धारिवर्तनीय है 'भानमिक भाव से वह मेरी स्त्री हो चुकी है और इस भाव का लौकिक ध्यवहारमान धय है' और 'मनुष्य का धम्म तो एक ही होता है वह बाजार का धोग नहीं न ऊँचे से ऊँचे धानों पर बीसाव होता है'।

१. ६० 'नरपतत्रा उपन्यास की नायिका का विवरण।

२. ६० ७२

३. ६० ६०

४. ६० ७४

५. ६० ६२

६. ६० ७०

७. ६० ६६

८. ६० ६८

९. ६० ६०६

‘बीरमणि’ उपन्यास में कला की दृष्टि से विनी बिकास की सूचना नहीं मिलती। स्त्री की रक्षा में प्राण धर्य करने वाले नायक बीरमणि को बीर मारा के साथ दिखाने में ऐतिहासिक भटना का पुन है। बातावरण प्रचल्य इतिहास से अनु-मोहित है। भाषा बोना प्रकार की है—भाषा के अनुकूल। मेमको में उद्देश-वृत्ति को अधिक धरमाया है जिससे कला में कौतूहल की भाषा कम रह पाई है। जामुनी का भाग परम्परा के कारण है। भाषा का ब्राह्मण का चित्रण बीर ममावैज्ञानिक विषयक नये कदम हैं। नायक बीर नायिका का चरित्र सचन तथा मोहित है। मरुत बड़ भाषा और उर्दू के शब्द ग्रीक-बीक में पा ही गये हैं। समस्त चित्र स्वस्थ है परन्तु अधिक मनोरंजक नहीं। भाषा का एक सदाहरण ऐसा जा सकता है —

‘दुःख या मृत चित्त में होगा है किसी पदाध में नहीं जाहे वह कीगा ही बुना स्पष्ट या ललित क्यों न हो। (पृष्ठ ७६)

इस उपन्यास की किनोरीनाल गोस्वामी के उपन्यासों से तुलना आवश्यक है। दोनों सेलक सनातनी ब्राह्मण हैं उन्होंने मुस्लिम इतिहास का चित्रण करते हुए हिन्दुओं को प्रार्थ और मुसलमानों को नीच धर्मित किया है। परन्तु गोस्वामी भी मुसलमानों की बुराई दिखाने में अधिक मिश्रित हैं और मिश्रण हिन्दुओं की बुराई प्रदर्शित करने में। उनसे हिन्दू राजपूनी पादस के लक्ष्य हैं इनके सम रक्षक ब्राह्मण। ऐतिहासिक सूत्र के सहारे सामाजिक-सामाजिक समस्याएं बोना धर्मित करते हैं परन्तु वे बहुर हैं वे उदार—इन्होंने जिन प्रमाणों का ठीक समझ है उनकी चर्चा करती है लखन में समय मष्ट नहीं किया। ऐतिहासिक दृष्टि से बोना सेलको का एक ही स्थान प्राप्त होगा परन्तु कलात्मकता यहाँ बहुत कम है। इस उपन्यास में नायक-नायिका चरित्रचित्रण सामान्य जीवन की एक प्रारम्भ स्वाभाविक समस्या तथा प्रेम का सहासीकरण सहासीय है। धर्म की बय दिखाने में मिश्रण गोस्वामी भी के निकट हैं और ब्रजनन्दन सहाय से दूर। यह उपन्यास गोस्वामी की के उपन्यासों में अधिक साहित्यिक है।

घटनात्मक उपन्यास

नवयुग से पूरुब की परम्परा

बंगला घोर हिन्दी में 'उपन्यास' नाम से जो साहित्य प्रचलित है उनके दो वर्ग हैं। एक वर्ग में वे पुस्तकें आती हैं जिनकी परम्परा निश्चय ही पारंपार्य प्रभाव का परिणाम है इनको 'सामाजिक' तथा 'ऐतिहासिक' उपन्यास कहा जा चुका है। दूसरा वर्ग उन पुस्तकों का है जो पारंपार्य प्रभाव के उल्लंघन रचित होने के कारण 'उपन्यास' तो कहाँ परन्तु उनकी परम्परा इस प्रभाव से पूरुब की है। इस वर्ग की रचनाओं को 'घटनात्मक उपन्यास' की संज्ञा दी जाती है। श्री श्री सी० घोष^१ के अनुसार इस वर्ग में तीन प्रकार का कथा-साहित्य आता है—रोमान्स रजन-कथा (टेन) तथा नीति कथा (फैबल)। ये रूप यूरोपीय प्रभाव से पूरुब हिन्दू तथा मुसलमान दोनों जातियों के साहित्य में विद्यमान थे।

नीतिकथा (फैबल) की परम्परा बहुत पुरानी है। बल्गुन इसका जन्म भारत में ही हुआ था और 'जातक' कथाएं इसका सबसे पुराना रूप हैं। धारमफोर्ड इतिहासकारों के अनुसार फैबल की मुख्य विशेषता पशु-पक्षियों को पात्र बनाकर उनके माध्यम से मानव की नीति का उपदेश देना है इस विशेषता का समकालीन कथाकारों से भी होता है। प्रेमचन्द-युग-काल में ऐसी कहानियाँ भी लिखी गईं जिनमें पात्र पशु पक्षी हैं 'छोटा कलानी' (सन् १९२८) इस प्रकार की रचना का एक प्रसिद्ध उदाहरण है। परन्तु उस युग की प्रवृत्ति पशु-पक्षियों की कहानी के पक्ष में नहीं थी 'उपन्यास' नाम के लिए मानव की कहानी का पात्र बनाना आवश्यक था। 'कुलबाइना' उपन्यास में क्रिश्चोरीमान गोस्वामी ने 'छोटा कलानी' के वर्ग की रचनाओं को हाफ्ट टाइम्स में 'उपन्यास' वर्ग से बाहर निकाल दिया है 'अगर दिसबस्की के साथ हो साथ मझ को अस्त्रियार किय हूप पाटक सोन इस ऐतिहासिक उपन्यास की खोज का पात्र पक्षी बने जायेंगे तो आमा है कि उनका भली भाँति मनोरंजन होगा और हमारा भी साथ परिष्कृत होगा। कारण यह कि यह कुछ छोटा कहानी का है नहीं बल्कि उपन्यास है और उपन्यास भी कोई सामूहिक नहीं बल्कि ऐतिहासिक विषयों का संग्रह है। इसलिए यह उनी वर्ग में मिला जाएगा जिस तरह कि हमका सिखा जामा इतिहास और उपन्यास की तराजू पर तुलना जायगा'^२। यह कुछ छोटा-कहानी तो है नहीं

१. मैसोनी मिस्टेकर रिवालेट पृ० १५२

२. इस्लामिस्ता पंथवा वचन पृ० १३५

बहिष्कृत उपन्यास हैं' वाक्य से यह तो स्पष्ट ही है कि उस युग में 'उपन्यास' को 'तोता कइमी' भाषा की तुलना में उच्च साहित्य समझ जाता था साथ ही इन सत्य का भी समझना होता है कि 'उपन्यास' संज्ञा प्राप्त करने वाली कलाओं में पात्र मानव ही हो सके थे—ये काव्यमय लोक के ही (घटनात्मक उपन्यासों में) वर्तमान परिस्थितियों के ही (सामाजिक उपन्यासों में) ध्वजा धरीत जीवन के ही (ऐतिहासिक उपन्यासों में)।

'रोमान्स' और 'रंजन कथा' 'घटनात्मक उपन्यास' के दो रूप हैं। ये यूरोपीय प्रभाव के अन्तर्गत रचित हुये पर भी उक्त प्रभाव से पूर्व की परम्परा में हैं। इनकी सामान्य विशेषता यह है कि इनमें जिस जीवन का चित्रण किया गया है वह उन सिद्धान्तों द्वारा साक्षित नहीं होना जो हमारे जीवन पर लागू हुये करते हैं यद्यपि इनमें हमारे प्रत्यक्ष जीवन की यथावत् छाया नहीं पाई जाती। रोमान्स में पात्र मुख्य एवं घटनाएं सामान्य जीवन से दूर के (डिस्टेंट फोम एण्टी-के-साइड) होते हैं—घटित-विविध प्रारंभ एवं अन्त्य। रंजनकथा (टेन) में कल्पना का इतना अधिक सासन होता है कि उस पर विश्वास या अविश्वास का प्रश्न ही नहीं उठता—उसका उद्देश्य तो मनोरंजन है सूरजमान बीस्य रचित 'कटा हुआ तिर' (सन् १९१९) एक ऐसी ही रंजन-कथा है जिसमें बिचित्रपुर का राजा अपनी पुत्री का विवाह उस स्वाम के साथ कर देता है जिसने राजा के महल से बहुत बड़ी चोरी की थी और जो राजकर्मचारियों से चाला किया दोन-दोन कर उनके बंधुओं से साफ बच गया था।

रोमान्स की परम्परा ने आलोच्य काल को 'चित्र-विचित्र बटनाघोरे मे मरे हुए' "जासूसी विचित्रता ऐयादी के हंग के अगुठे उपन्यास" बिये। इन उपन्यासों को रोमान्स की परम्परा में मानना निर्विचार नहीं है क्योंकि रोमान्स जिस प्रकार की अद्वयता का पक्षपाती है ठीक वही ही इन उपन्यासों में नहीं पाई जाती। रोमान्स में अतिमाननीयता होती है परन्तु ये उपन्यास बटना-बक पर ही जीवित रहे हैं। फिर भी डा० श्रीकृष्णमान ने 'अन्धकार' उपन्यास तथा उसकी परम्परा को 'मास्कुलर' भाषा बीरकालों की दृष्टिकोण परम्परा में माना है^१ जो उचित ही है, क्योंकि इस परम्परा के प्रवर्तक देवकीनन्दन खत्री के सम्बन्धित मनोरंजन के साह-साध राजपूती जीवन का आदर्श भी था जो उनकी रचनाओं में मनी भाँति प्रतिफलित हुआ है। सामान्य रंजन कथाओं से तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि चित्रस्त्री जासूसी और ऐयादी के उपन्यास कलात्मक हैं इनको लोक-साहित्यमान नहीं माना जा सकता कथा का निर्वाह वर्णन की प्रचुरता सुतहल को अपना आदर्श की स्थापना आदि कवियत्र विशेष-वार्य प्रतिभा एवं विशेषज्ञता के बिना नहीं निर्माई जा सकती। चित्रस्त्री जासूसी तथा ऐयादी ये तीनों शब्द पुराने हैं और इस्तेमाल प्रभाव से भारतीय साहित्य में आये हैं। इनका प्रयोग करता हुआ सामान्य पाठक यह समझता है कि 'चित्रस्त्री उपन्यास'

१ 'राजपूतानी' उपन्यास के अन्त में दिनेश ने निष्पादित है।

२ आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास पृ० १६४

‘जासूसी उपन्यास’ तथा ‘ऐयारी के उपन्यास’ से तीन भेद प्रथम-प्रथम है। परन्तु यथाप यह नहीं है। ऐयारी तो साधन है, इसका उपयोग तिलस्मी के लिए होता है घट सभी तिलस्मी उपन्यासों में ऐयारी प्रचलन मिलेगी। जासूसी भी तिलस्मी उपन्यासों में प्रचलन बन कर जाती है—सभी तिलस्मी उपन्यासों में जासूसी के चरित्रकार हैं परन्तु कुछ उपन्यास ऐसे भी हैं जिनमें जासूसों की चतुराई ही चित्रण का विषय बनी है। सत्य तो यह है कि जब तिलस्मी उपन्यासों का बनना ने स्वागत किया तो उनके चतुर जासूसों का नई परिस्थिति में काम कर तिलस्मी से भिन्न कार्यों के लिए भी उनका बलन किया गया—इस परम्परा के उपन्यास अपराध का पता लगाने के लिए जासूसों का उपयोग करते हैं यह घटनात्मकता पर पारस्परिक प्रमाण है। अस्तु, रामानी परम्परा के घटनात्मक उपन्यासों के दो वर्ग माने जा सकते हैं—तिलस्मी तथा जासूसी प्रथम पर पारस्परिक प्रमाण नहीं है परन्तु द्वितीय यूरोपीय प्रभाव से जन्मा घोर घट पर बल रहा है प्रथम के प्रवर्तक बेकनन नाम के घोर द्वितीय के गोपालराम गहमरी।

रामनका की परम्परा में जो उपन्यास मिले पर्यं हैं उनकी न कोई मरना है घोर न रूप रखा। उनका एकमात्र मुन तिलस्मी है पात्र मानव है परन्तु चलाए हिम की चढ़क से चमकी है। वास्तविक साक्ष्य-साहित्य तो यही है किम न कोई साहित्यिक छाप है घोर न ‘सिद्ध समाज’ की श्रद्धा। लेखक भी घटिधिन से घोर पाठक भी। कही किसी लेखक ने घमर ऊंचा घास रचना बाहर तो घमर में कोई उद्देश्य दे दिया प्रत्यक्ष रवीश सावनिवां भवन या कीठ घर कर अपनी पुस्तक का पूरा कर दिया ‘मिड जोहरा’ (सन् १९१३) उपन्यास में निहालचर बर्मा न ‘जानो किन्तु की दिन चस्पी’ के बाद ‘मत्तल की बाते’ समझते हुए पाठक को समझ दी है कि ‘घात लोग अपनी प्यारी लड़कियों के कोमल हृदय पर बेदर्शी तथा स्वतन्त्रता का बल न डालें दो ‘हिस्मत का खेल उपन्यास में विद्वत्साध नामर उपदेश देने हैं कि ‘सदा ब्राह्मण के भक्त होकर रहना उनको कष्टानि मारना न करना भिन्नो की महति (सन् १९१२) में बाँकेसाल चतुर्दशी ने प्रथम के बिना ही घमर में घटिधिन की लहर से जाती है—‘बैरागी मारत में बड़ घमर भील माँकर जाते हैं घाति।

अस्तु घटनात्मक उपन्यासों के सामान्य तीन वर्ग हो सकते हैं—

- (क) तिलस्मी उपन्यास
- (ख) जासूसी उपन्यास
- (ग) घट्मून उपन्यास

‘घट्मून उपन्यास’ नाम तथा नहीं है। संभवता में रामचरण घट्मूनार्य ने सन् १८६१ में ‘घट्मून उपन्यास’ की रचना की जिससे ‘घट्मून रसालमक उपन्यास’ की परम्परा चलन लगी। शिन्धी में जो विद्वत्-विश्व उपन्यास मिले गये उनको सामान्यतः घट्मून भी कहा गया। उपोतिपी हर्द्वेयप्रभा मुद्रिम के ‘मूरचमुनी उपन्यास’ की पीठ पर जिस ‘अबीन छपे हुए घट्मून उपन्यास’ साहित्य का चित्रान्न है उनक

विषय है—'एक सभ्राज्य भर की कतला की धूम्रुत कहानी' 'जबुर धोर में किस तरह पुनिस को बोधे में डाला' 'एक कपटी मित्र का कपट धीर कामीजनों की दुर्गता' 'ठगा के साथ बड़े-बड़ चरित्र' आदि। विविधतापूर्ण संभरे हुए ये उपन्यास पुनिस में धूम्रुत होने के ही कारण सामान्य पाठक का मनोरंजन करते हैं। प्रस्तुत प्रबंध में चटनात्मक उपन्यास के तीनों भेदा पर विस्तार-पूर्वक विचार करना आवश्यक है।

तिसस्त्री उपन्यास

सन् ७११ में छह हजार बीस धीर भी हजार ४४ लेकर मुहम्मद न सिन्ध पर आक्रमण किया तभी से हमारे देश का इतिहास एक भये का में दिखनाई देना है। सगंधय एक हजार वर्ष तक हिन्दुओं के साथ मुसलमानों का संघर्ष बना अन्त में सन् १७२० की प्लासी की लड़ाई में इस्लामी साम्राज्य का सबसे बड़ा क सिंग बल गये। संघर्ष का यह युग ऐतिहासिक और चटनात्मक दोनों प्रकार के उपन्यासों का प्रभावित करता रहा है। इन बीच में भारत के राज्यों विघटित राजपूतों ने जिन बीरता का परिचय दिया है उसकी तुलना विश्व इतिहास में बहुत छोड़ने पर ही कहा जा सकता है। एक और बर्बर आक्रमणकारी स्त्रिया धीर बचवा पर नृपति अत्याचार करते पराजिता का धम भय करके उनका प्राण हस्त प्राण लगाते प्रजा को सूटने छत्र छिद्र का प्रयोग करते और आत्मक लड़ाते थे। दुसरी धोर धीर सभी बचवुद्ध करते हुए अपनी रक्षा कर रहे थे। उस संघर्ष में लड़िया ने हजारों की सखा में मिसकर देता-बर्षों पर अपने प्राण निष्पन्न कर दिये। सर विलियम म्यूर^१ का लिख्य है कि सिन्ध के मुल का इस्लामी राजनीति में एक विशेष महत्त्व है जो लोग इस्लाम को स्वीकार नहीं करते उनका ही बर्ष मान लिये गये एक बर्ष में पैगम्बरी मल है और दूसरे में मूर्तिपूजक पराजित होने पर पैगम्बरी मल के अनुयायियों (ईसाइयों यादूगियों) को जजिया देने पर जीवित रहने दिया जाता था परन्तु मूर्तिपूजकों के लिए प्राणदान के अतिरिक्त दूसरा मार्ग सुमनमान बन जाना ही था। अस्तु, हमारे देश का मध्ययुगीन इतिहास जोहरो से भरा पड़ा है। प्रमथन्द-पूर्व-काल में राष्ट्रीयता का आदर्श एक हजार वर्ष की बर्बरता से देश को मुक्त करना था जिसका विषय उपन्यास-क्षेत्र में सर्वप्रथम बंकिमचन्द्र ने किया। मध्यकालीन संघर्ष की विवेकता यह है कि जो कयस्क सभी पराजित होकर भी जीवित नहीं बचे दिवसों जलकर स्वाहा हो गई धीर पुन्य भारकट मचाते हुए बचप्राप्ति हुए।

धार्मिक युग का इतिहास इस दृष्टि से कुछ भिन्न है। सन् १७२० से विदेशी सौदागरों के भारत में पैर जमाने से धीर विदेशी सैनिक भारतीय पक्षों में लोगों और से सम्मिलित होने लगे। प्लासी का युद्ध अंग्रेजों और फ्रांसीसियों दोनों के सम्पर्क का फल था। सन् १७६३ में कम्पनी को बंगाल में बीबीगी का अधिकार मिल गया। इसके पूर्व मराठों ने भीबीबारों से कस करक कर तो बमूल किए थे परन्तु उनकी जीवित के

संस्था बङ्गी बनी यई धीर हैरतबाद से घबरा तथा मुन्नेलबाद से राजपुताना तक समस्त मध्यभारत में इन गुप्त हथारों को अपने कारनामों बिछाने का पूरा घबरा मिता^१। सैपटीमेट जनरल मैक्डोनाल्ड इनमें के अनुसार सन् १८३७ की तारीख में बतुर्ग दल को अपनी भावना तथा शक्ति के कारण विशेष बाधक था उन लोगों का था जिनके लिए अंग्रेजों की सत्ता था जाने पर राजनीतिक उद्यमपुरुष एवं सैनिक शौर्य के द्वारा अपनी महत्वाकांक्षा का पूर्ण करने के पुराने मार्ग बन्द हो गए थे^२। परन्तु मध्यकाल से चिन्तित आधुनिक काल में पराजित राज्या के सैनिक बीबिका-बिहीन हो कर अपने शौर्य का कुम्भकोष करके असम्मानित जीवन बिछाने पर बाध्य हुए। सैनिक-वृत्ति छिन गई थी व्यापार समाप्त हो रहा था व्यावसाय की सी सीकरियाँ की नहीं थीं वे लोग न सकते थे। अतः शास्त्रजीवियों का अरुण प्रकाश की रक्षा के लिए न उन का उन लोगों पर चलने लगा जो या तो इनके अनुबन्धन इनको मार्ग देना चाहते थे अथवा कुकर्मों से इन संघर्ष करके गुमछरें उड़ा रहे थे।

इस शास्त्रजीवी वर्ग ने समयकालीन साहित्य को दो प्रकार की प्रेरणा दी—एक में विदेशीय दृष्टि की धीर दृष्टि में देशीय। विदेशीय दृष्टि से कर्नल टेम्पर ने अंग्रेजी में जो कहा है सिद्धी उनमें 'कम्पेण्डसु धाक ए ठा' (सन् १८३६) का विशेष महत्त्व है। हिन्दी में इसका अनुबाद श्री रामकृष्ण वर्मा ने सन् १८८६ ई. में 'ठा बुत्ताम्-नामा' नाम से किया इसमें ठा और पिठारिया के भयकर उपद्रवों तथा और हत्याकाण्डों का बचन है। यह पुस्तक कुछ समय तक लोकप्रिय भी रही होती परन्तु साहित्य में इस सृष्टि का अनुकरण उपन्यास-लेखकों ने न किया। आगे चलकर 'पुनिस बुत्ताम्-नामा' तथा 'कॉम्पेण्डस बुत्ताम्-नामा' प्रकाशित हुईं जिनमें उक्त पुस्तक की वर्णनारम्भ काट है। 'कहानी जिस्ते' और 'अद्भुत उपन्यास' से बढ़कर इन मालाओं का मुख्य नहीं था। देशीय दृष्टि से शास्त्रजीवी वर्ग ने 'विलस्मी उपन्यास' को प्रेरित किया। 'विलस्मी उपन्यास' के पात्रों में अंग्रेजी अस्वाचार के सनाए हुए बीबिका-बिहीन आचार शास्त्रजीवी तथा मध्यकालीन संघर्ष में बनकर हुए धीर अन्धी के गुणों का मिश्रित प्रतिफल है। यद्यपि नायक एवं प्रतिनायक दोनों ही प्रायः हिन्दु हैं और पारस्परिक संघर्ष में श्रेष्ठ तथा आत्मसम्मान दोनों की रक्षा कारण बनी है फिर भी पात्रों को मध्यभारत के बीहड़ बनों और कर्म राशियों और ऊँची-नीची पहाड़ियों से नाम-रूप बहस कर जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है वे समयकालीन शास्त्रजीवियों के जीवन से प्रभावित हुईं होती—वीरकाव्य परम्परा में उनका वर्णन उपलब्ध नहीं है। 'इन्दुपती या बल-विहंगिनी' (सन् १९१९)

१ डेयोडिकस सी बीस्लेर : लार्ड मिन्टिवेन रॉयल ५ १६ :

२ दि सिपील रिपोर्टर, ५० ८८

'एच ० कोर्ब' धर रोसाली डेव्हरस प्रोफेसर रिचर्ड बरह फर्बो वान कोर्ब धर कोर्ब, न्यू क रोड एड दि फ्लोमिंग जाल श्रोन् आउटलेट्स और फनीराम, बरह दि बीस माल रोन् बीरन्नुतिरीन कौट लार्ड मालमैड भू-रोमिडिकल इन्डिय और मिन्टिवेन रोवेस ईड ईड रोन् करीब जाल कोड'।

‘ऐतिहासिक उपन्यास’ में किछोरीलाल मोस्वामी ने एक ऐसे लक्ष्मी का वर्णन किया है जो मुसलमान बादशाह की नीचता से मुठ मोल लेकर धीरे-धीरे उसमें विजयवंशिन हाकर घनातबास के लिए बन में जमा जाता है तथा जिसकी प्रशिक्षा है कि जो धीरे-धीरे पुष्प दुष्ट बादशाह से बहला भया उसके साथ बहू धरती एतमाज पुत्री इन्दुमणी का विशाह कर देना। इस प्रकार के उदाहरण मध्यकालीन इतिहास में प्राप्य तो हैं परन्तु संख्या में अधिक नहीं क्योंकि अधिकतर लक्ष्मी तो मुसलमान में प्राप्य रगत बैठे थे। बस्तो से दूर रहकर संघटन करते हुए मर्यादितों ने बकिमचन्द्र के ‘घानासुत’ उपन्यास में भी राजनीतिक आशोपन किया था परन्तु वह भी निजस्मी शीघ्र में मिश्र है। किछोरीलाल मोस्वामी ने ‘कटे मुठ की दो-नो बाते’ उपन्यास में निजस्मी का स्वामी बताने का डाक है जिसने जमुर्द पहाड़ी पर अपना गुप्त महल ‘नीममहल’ बना रखा था और जिसे अफगानी सेना ने नष्ट किया था। इसी प्रकार ‘अनुकाला’ उपन्यास में लामिका को लेकर राज-परिवारों में जो बडमुन बैर बड़ा उसका बहला भेन के लिए अहमदनगर घनातबास में जमा गया और ‘अनुकाला सननि’ में अनेक घटनाओं का कारण बना। मार्गगत यह कहा जा सकता है कि निजस्मी उपन्यास पर बाह्य आश परम्परा एवं समकालीन घटनाओं-जीवन का सम्मिलित प्रभाव प्रभाव है।

तिसस्म

‘तिसस्म’ शब्द हिन्दी भाषा का नहीं है। डॉ. सफोर्ड हिन्सन एक अनुसार पुरानी ग्रीक भाषा का ‘टिसेस्मा’ शब्द धरती भाषा में ‘तिसस्म’ बना अफगानी में उसका रूप ‘टिसस्मन’ है इसके सामान्यतः दो अर्थ हैं—ताबीज तथा जादू के लक्ष्य या जिसके अधिकार में हों उसको लाल पहुँचाने हों। हिन्दी-आक्षिप्त शब्द के अनुसार ‘यूनानी शब्द टिसस्माने से तिसस्म शब्द निकला है जिसका अर्थ है इन्डाल जादू असीबिक कारणों’। श्री अहमदनगर का अनुसार ‘तिसस्म शब्द का अर्थ है—ऐसी आश्चर्यजनक कल्पना जो जिसलाई न पड़े कोप के रक्षण नियत की गई मयावनी शक्ति या कुछ दबावों तथा मर्जों के मेल से कोप पर बाँधा हुआ राज आदि। यह शब्द धरती में भी यूनान से आया हुआ जान पड़ता है। प्राचीन ग्रीक भाषा में ‘टिसेस्मा’ शब्द लक्ष्य-उत्तर के लिए प्रयुक्त होता था जिससे अफगानी शब्द टिसस्मान बना है’। अस्तु ‘तिसस्म’ शब्द का आक्षिप्त यूनानी के ‘टिसेस्मा’ तथा धरती के ‘तिसस्म’ से माना जा सकता है। सन् ७११ में अब मुहम्मद ने सिन्ध पर आज़ाई की और वह बल्ल मगर पर पैरा डाने पड़ा था तो मगर का एक पुकारी मुहम्मद से मिल गया। उसने बताया कि आज़ादों ने एक तिसस्म बना कर मगर भेजे के नीचे रख दिया है। उसको नष्ट करने के लिए मुहम्मद विजय प्राप्त नहीं कर सकता है। मुहम्मद ने अपने अस्त्रागोहियों को महारत से पहुँचे उस तिसस्म को नष्ट किया फिर मगर को जीत दिया। भारत में ‘तिसस्म’

१. हिन्दी-उपन्यास १, ४२

२. बेनिज रिपरी अहमदनगर, बी-५५ २ ५

घाटे साग्रत में एक मड़का प्रगती होया बल्कि उसकी जगहगी भी निग कर नंगर कर देन है। उमी क माम म लज्जागी और धरुध धरुधी कीमती चीजा को ग्वाग उम पर तितस्म बोधत है।

मात्रकम लो तितस्म बाधने का यह कायना है कि बाडा बहुत गजाना ग्वाकर उमका द्विजजन क लिए दो-एक बाधना को बलि दे देन है। वह प्रेन मा मार हा कर उमकी त्रिधाजत करता है और वहे गुण बाधमी क विबाध दुपरे को एर पमा नन गजा देना मगर पहिले यह कायना मही या। पूगन जमान क राजा का जह निमम्स बाधन को बकरन पवती भी ता बड़े-बड़े उजोतिपी-नजुमी बँध बागागर और नात्रिक मोम हकट्टे किये जाते थे। उही लोगों के यह मृताधिक निमम्स बाधने के लिए जमीन सारी जाती थी उमी जमीन क बाधर बाजाना ग्वा कर ऊपर निमम्स-इमारन बनाई जाती या। उनमें उजानिपी-नजुमी बध बापीगर और नात्रिक माम अपनी-अपनी तासन मृताधिक उनका धिराने की बन्धित करन थे मगर माध ही उनके लसत्र और प्रहा का भी बधान ग्वादे थे त्रिमक निग यह लज्जाना रक्का जाता या।^१

नामान्तर त्रिमके मन्ताम मही हानी यह अपनी धरिप नन जमीन में हवाकर मर जाता है और एना विदवाय किया जाता है कि एप बनकर यह उमकी गसा करना पड़ता है। धर्मिक अनवान् नाम गुल स्वाता पर अपनी कोय मुर्गाजन ग्वाते हैं और कमी कमा उनका पृथ्व मन में धिराये हुए ही मवार म बध बनन है। मध्यपुत्र म धनक राजा-मन्त्राज्या मन्त्रुधो म बधाने और धातस्वान म महायना मेन के निग अपनी कोय गुल स्वानों पर रक्कन थे इसका पना किसी एक विदवन्म मन्त्रा को ही होना या। बर्हि बाधतो पुर्ननी गजाने क विपय में राजा का भी न बधारा जाता या। मन्त्रनड के मन्त्रावी लज्जान की ऐसी बाध कई बार हा चुकी है। निमम्स ग्वाध धर्मिक महत्त्व की वस्तु है। त्रितना धर्मिक ऐहिक उनके बाधर दिया होगा उनका ही उस निमम्स का महत्त्व मम म्ना बाधिर एमे निमम्स सैकडा धधका हमारो बनों में कही निमन है। और उमकी या तोता है बन्ध बडा लज्जगी और भाग्यगानी हाता है। बीर-इतिह में लो चुनार का का तितस्म नाडा या परल्लु इस हवाक बर क बाधर कोई लेना राजा महीं हुधा त्रिमन निमम्स तोना हो^२। किसी भी लज्जहर को देख कर जानने बाध अनुमान मगा मने ह कि यह 'कोई पुराना त्रिमम्स है' 'मैंने अपने उस्ता' से सुना या कि मनेत्र विद्वानों जहा मगर बड़े समयमना कि बहो अकर कोई लज्जाना या लज्जाने की बाकी है^३। धस्तु त्रिमम्स का मन्त्रग्य ऐहिकय स है इसही विषय के माध मन्त्रति मया मया बानी जुद गए हैं।

नितस्म बाधने में उजानिपी बँध (रागापनिक) बापीगर (पिहो) तथा धात्रिक (मन्त्रविज धात्रि) की महायज्ञ भी जाती है। त्रिमकी लो धरनी कमा मे

१. बीरा दिग्गा धर्मको बधन।

२. बन्धधना लज्जति पृथग द्विगु ग्वाता बधन।

३. बन्धधना, बीरा दिग्गा, बाहीनको बधन।

सुख सर्वप्रथम उसी दिन धारा होगी उससे पुत्र संकट दूरि जायागी म उसे कुछ धीर कहते होंगे ।

'तिलस्म' बाबू सन् ७११ में धारा परन्तु तिलस्मी बिधा का उपयोग भारत में पहले से ही चल रहा था । हो सकता है मुगली धक्का धमीरियन जातियों के सम्पर्क से धारवी धीर सम्पूर्ण लोगो भाषाओं एवं उनके बोलने वाला म यह धार धीर इसका उपयोग साथ-साथ ही धारो हों । मूल 'तिलस्मा' धार धारवी भाषा में तो अधिक परिचित न हुआ—उसे 'तिलस्म' कहने लगे परन्तु संस्कृत में इसका अंतिम अक्षर 'मा' ही रह गया जिसमें धारो चल न 'मा' धक्का भाषा धार लक्ष्मी इन्द्रजाल जादू टोना छल-कपट धारि धारो म व्यवहृत होने लगे । यहाँ यह बिचलन सम्भव न होया कि धक्का के इन्द्रजाल भाषा धारि पर विदेशी प्रभाव है या नहीं । परन्तु यह निश्चय है कि रामायण-काल के धमुर लोग भाषा बिधा में इस से धमुर मारीच ने राम को धमने के लिए मृग का रूप धारण कर लिया धीर सचमुच पुरुषात्मा राम उनके पीछे अनुप-जाल मकर चल विधे—'मरीचिका' के ऐसे उदाहरण धक्का के उपन्यासों में भी मिलते हैं 'अष्टावक्रा' सत्यति म इन्द्रजीतसिंह को विरफला करने के लिए धक्कासिंह के ऐवार छोर का रूप धारण करके जल में डुबाकर फिरते थे । धमुरो ने दूसरा छल सीता के साथ बिधा कि राम धीर लक्ष्मण के साक्षात् रूप के दो मिर लाकर सीता को विश्वास दिलाया जाहा कि राम लक्ष्मण मारे गये । 'अपला' उपन्यास में भी अपला के मानने उससे प्रमी की बनावटी बनाई लाकर उसे देना ही विश्वास दिलाये का प्रयत्न किया गया है । इस धासुरी बिधा के लिए धमुर-लोक भाति भाति के अनुष्ठान करते धीर धक्का का धक्कासिंह करते थे । यदि बिधीपक्ष में राम को धेर न बताया होता तो राक्षस के सिर कटत रहते धीर साव ही लप लपते रहते उनका मरना सम्भव न था कनाकि माकारचित्र विरो के कटने से भाषावी का कुछ नहीं बिगडता । 'बन लखोबिनी' उपन्यास में लखोबिनी ने मुझ करके लुपल का सिर काट लिया धीर कुछ देर बाद अपविष्ट को बिधाया तो उसकी सम्मति मान कर गरम पानी से धोने से वह विरलुपल का न निकला । राम ने भी सावधान होकर एक भाषा-सीता का निर्माण कर लिया था जिससे धमुर धन करें तो भी धक्का सीता का कुछ न बिधाव सकें । ये लारे अमलार ध्यारी के अन्तर्गत भाते हैं परन्तु इसका प्रादुर्भाव धमुरों की 'मा' 'मामा' धक्का धमीरियन जातियों के 'तिलस्मा' से ही है ।

'अष्टावक्रा' उपन्यास में सिद्धबाबा से जब सुरेश्वरसिंह ने यह पुछा कि तिलस्म किस कहते हैं धीर क्या बनाया जाता है ? तो उन्होंने तिलस्म का सिद्धान्त इस प्रकार समझाया

तिलस्म वही धक्का तैयार करता है जिसके पान बहुत माल-माला हो धीर कोई धारि न हो । तब वह धक्के-धक्के ज्योतिषमो-ज्योतिषों से दरपान करता है कि उनके मा उसके भाइयों के धान्दान म कभी कोई प्रतापी धीर लायक पैदा होया या नहीं । धारि ज्योतिषी धीर लक्ष्मी इस बात का पता धोते हैं कि इसने दिन के बाद

घातके साधन में एक सड़का प्रतापी होगा बल्कि उसकी बन्धनभी भी बिल कर ठेकार कर देते हैं। उसी के नाम से लज्जाना और धक्की धक्की कीमती चीजों का रखकर उस पर तिलस्म बांधते हैं।

‘धार्मिक तो तिलस्म बांधने का यह कामका है कि मोठा बहुत सजाना रसकर उसकी हिफाजत के लिए दो-एक धार्मी को बलि दे देते हैं। यह प्रैत या साप हो कर उसकी हिफाजत करता है और कहे हुए धारमी के सिवाय दूसरे को एक पसा सेने नहीं देता मगर पहिले यह कामका नहीं था। पुराने जमाने के राजा को जब तिलस्म बांधने की जरूरत पड़ती थी तो बड़े-बड़े ज्योतिषी-जन्मी वैंध कागिर और तान्त्रिक लोग इकट्ठा किये जाते थे। उन्हीं लोगों के कहे मुताबिक तिलस्म बांधने के लिए जमीन सोड़ी जाती थी उसी जमीन के घन्धर सजाना रख कर ऊपर तिलस्म इमारत बनाई जाती थी। उसमें ज्योतिषी-जन्मी बंध कागिर और तान्त्रिक लोग धपनी-धपनी ताकत मुताबिक उसके सिराने की बन्धिस करते थे मगर साथ ही उसके नशान और चहों का भी खान रखते थे जिसके मिये वह सजाना रक्सा जाता था।’^१

सामान्यतः जिसके सम्मान नहीं होती वह अपना धर्मित बन जमीन में दबाकर मर जाता है और ऐसा बिबिध किया जाता है कि सप बनकर वह उसकी रक्षा करता रहता है। धर्मिक बनवान् लोग धुप स्थाना पर धपना कोप सुरक्षित रखते हैं और कभी कभी उनका रहस्य मन में छिपाये हुए ही सवार स बन बनने हैं। मध्ययुग में धनेक राजा महाराजा धनुषों से बजाने और धातुकाम में सहायता सेने के लिए धपना कोप धुप स्थानों पर रखते थे इसका पता किसी एक बिबिध धपनी को ही होता था कई बार तो पुस्तकों के पत्रों में राजा को भी न बताया जाता था। मसनऊ के मन्त्री सजाने की ऐसी धोज कई बार हो चुकी है। तिलस्म इनस धर्मिक महार की बरतु है। जितना धर्मिक ऐसकें उनक घन्धर छिपा होगा उतना ही। उन तिलस्म का महार सभ फला बाहिर, एन तिलस्म लैकडो धपवा ह्वारों बपों में कही मिलते हैं और उनका बा लोइदा है वह बड़ा नयमी और मायसापी होता है। बीरेन्सिह ने तो चुनार का का तिलस्म ठोड़ा था परन्तु इस ह्वार बर्व के घन्धर कोई ऐसा राजा नहीं हुआ जिसने तिलस्म ठोड़ा हो^२। किसी भी लैकहुर का इस कर जानने वाले धनुषान सना सेत है कि यह ‘कोई पुराना तिलस्म है’ यैने धपने उस्ताव से सुना था कि मुन्दे बिर्दिया जहा मजर पड़े समझना कि कहीं जरूर कोई सजाना था सजाने की चाबी है^३। धन्तु तिलस्म का सम्बन्ध परबर्ष से है इसकी बिजय के साथ सम्पति तथा सन दोनों जुड़ हुए हैं।

तिलस्म बांधने में ज्योतिषी वैंध (रासायनिक) बरीयर (घिरी) तथा तान्त्रिक (मंत्रविद धारि) की सहायता भी जाती है। सिम्पी तो अपनी रक्षा से

१. बीरा दिता सेनका बधन।

२. ब्रह्मन्ता सगति, ब्रह्मा दिता ब्रह्मा बधन।

३. ब्रह्मन्ता बीरा दिता, बरीरका बधन।

उसकी मजबूत सुरक्षित दुर्ग से तथा रहस्यपूर्ण बनाता है। रासायनिक तरह-तरह के मोलों से उसकी सामग्री को नई-नई बर्ण तक काम करने वाली बना देता है। ज्योतिषी और तांत्रिक उसका भविष्य निश्चय कर देते हैं कि यह जिस व्यक्ति को प्राप्त होगा उसका क्या नाम होगा और उसका जीवन क्या रहेगा। तिसस्म की सुरक्षा दो प्रकार की होती है। एक तो उसकी बाँधकर उसकी कुंजी किसी ठेस के पास में रखने से जिसकी मिलना चाहिए उसे स्वतः कंजी प्राप्त हो जाती है। दूसरे किसी बरोगा की निबुद्धि से यह बरोगा अपनी सत्ता की इसका रहस्य परम्परा से सिखना कर प्रायः स्वयं काल तक इस गुप्त रहने देता है। पहिला साधन रसामन तथा ज्योतिष पर ग्रहिक विश्वास करता है। दूसरे में इस प्रकार का व्याम रखा जाता है कि यदि भ्रम बिकायी किसी शत्रु से तिसस्म को तोड़े तो वह स्वयं नष्ट हो जाय।

तिसस्म जिन प्रकार बोधा जाता है उसी प्रकार तोडा भी जाता है। तैजोवह ने ज्योतिषी की से कहा—“आप रमल और मजूम से पता लगाइए कि यह तिसस्म किस तरह और किसके हाथ से दूटेगा”। रातभर ज्योतिषी की रमल फेंकने और विचार करने में लगे रहे। प्रातः काल उन्होंने कहा—“रमल ॥ मामूम होता है कि इस तिसस्म के सोने की तरीक एक पत्थर पर खुदी हुई है और वह पत्थर भी इसी बंजर में किसी जगह पर पड़ा हुआ है। जगह को देखते-भावते सब लोग जबूतरे के पास जाने जिस पर पत्थर का धावनी हाथ में किताब लिये खोया हुआ था। ज्योतिषी ने कहा—“तुम एक कागज पर इसकी नकल उतार लो”। वे लोव धूम-धूम कर घाठ पहन का खम्भा या बबूतरा तलाश करने लगे। ज्योतिषी की ने कहा—“बस यही खम्भा है, इसी का पता उस किताब में लिखा है इसी के नीचे जमा-पूजी वाली वह पत्थर जिसमें तिसस्म सोने की तरीक लिखी हुई है गड़ा है। यह भी मामूम हो गया कि यह तिसस्म कुमार के हाथ दूटेगा क्योंकि उस किताब में जिसकी नकल कर लाये हैं इसका अन्वय ६ हाथ ३ धनुष लिखा है सो कुमार ही के हाथ से पूरा हुआ इससे मामूम होता है कि यह तिसस्म कुमार ही के हाथ से फलू होना।” ज्योतिष और किताब के बिना न ऐयारी सकन होती है और न तिसस्म दूटता है। यह किताब सांकेतिक भाषा में खरी की भाषा जानबुझियों के साथ-साथ किताब को अपने हाथ में करने की भी एयार भोव कीदिक क्रिया करते थे। “मुन्नाब” उपन्यास में प्रभाकरसिंह ने रामदास से बोला जामा उधने ऐयारी के बटुये में से बड़ी साबनाली से बहोली की दवा निकाली और प्रभाकर सिंह को सुंवा की जब उसे विश्वास हो गया कि वे बहोष हो गये तो उनकी शैव में से वह निताब निकाली थी जिसमें इस तिसस्म का कुछ हास लिखा हुआ था।^१ सिद्धनाथ बाबा को मामूम हो गया था कि “यह पहाड़ी एक छाटा-सा तिसस्म है और कुमार के इलाके में भी कोई तिसस्म है जिसके हाथ से यह दूटेगा उसकी बाड़ी जिसके साथ होती

१ अन्वय-आ दूसरा हिस्सा, ऐयारों वधन।

२ यही चौथीतथा वधन।

३ तीसरा हिस्सा चौथरा वधन।

उसी के बैठने के सामान पर यह तिलस्म बंधा है और घाही होने के पहिले ही वह इसकी मासिक होगी^१ ।

पुस्तक के अतिरिक्त तिलस्म बीमने (पुरुष के हाथ से विधस्म टूटा है, मारी के हाथ में यह कुमता है) का पुनरा मार्ग तिलस्म की कुंजिया प्राप्त करना है । जब सिद्धबाबा ने बीमाल की जाँ के गुरास से सफेद मोटिया को निकालते देखा तो उसको विश्वास हो गया कि बीमाल या सवान की कुंजी उसी छिद्र में है । उसने कमर से खजर निकाल कर कुमारी अम्बकान्ता के हाथ में दिया और कहा कि तुम इस बीमाल को लोभो हाथ ही भर के बाब काँच की छोटी-सी हाँडी निकाली जिसका झूठ बन्ध बा' उसके भीतर किसी किस्य का तेल भरा हुआ था जो हाँडी के टूटने ही बह गया और एक तापी का गुच्छा उसके धम्बर से गिरा^२ । उस गुच्छे में लीस टानिया थी जिनसे टीसों टाने कुमते थे । इस प्रकार के तिलस्म की विशेषता यह है कि जिसके हाथ कुमना होता है उसके सहायक को वेशयोग से इनके रहस्य का पता लग जाता है । शीघ्र का प्रभाव होने के कारण इस प्रकार के तिलस्म का वर्धन कम है ।

तिलस्म का बटोया धपने धापमें एक विशिष्ट व्यक्ति है । इस पत्र पर दो प्रकार के लोग नियुक्त होते हैं । एक तो वे जो पंचिक परम्परा से तिलस्म की रक्षा करते हुए कुण्ड स्वान पर साधु साहि के शेष में रहें हैं । दूसरे वे जिनकी मौकरी इन पत्र पर होती है वे रसक या स्वामी नहीं होते । हाँडी में भूतनाथ की निगाह एक साधु पर पड़ी जो बुढ़ा और ठपस्वी जान पड़ता था उसके सिर धीरे बाड़ी के सफेद बाल बहुत घने और लंब थे । साधु ने कहा— अगर तुम इस घाटी में धपना करता बनाये रहोगे और तुम्हारी जान बलन धक्की देखना तो एक दिन तुमको उस तिलस्म का दारोगा भी बना दूँगा क्योंकि जब वे बहुत बुढ़ा हो गया हूँ और तिलस्म के नियमानुसार धपने बाद के लिए किसी न किसी को दारोगा बना देना बहुत बकरी है ।^३ साधु की बात सुनकर भूतनाथ बहुत ही प्रसन्न हुआ । वह जानता था कि तिलस्म का दारोगा बनना कोई मामूली बात नहीं है उसके कच्चे में बमन्दाव बीमल रहती है और उनकी ताकत तिलस्मी सामान की बीमलत मनुष्य की ताकत से कहीं बड़-बड़कर रहती है । — तिलस्मी दारोगा होने के कारण ही इन्द्रदेव बीसे बीम धीरे धाराम के साथ रहता है दुश्मनों का उसे डर भी डर नहीं है और वास्तव में उसके दुश्मन उसका कुछ भी बिनाई नहीं सकते ।^४ 'बन्ध बाप्ता सन्तति में चिक्कसिंह के पैवार ने बाबाजी का शेष धारण कर इन्द्रजीतसिंह को पनाथ के लिए धपने को तिलस्म का बटोया बनमाया : 'मेरे परदादा दादा और बाप उसी तिलस्म के दारोगा थे जब मेरे पिता का देहावत होने लगा तब उन्होंने उनको

१ अम्बकान्ता बीमल तिलस्म बीमल रहता ।

२ अम्बकान्ता बीमल तिलस्म बीमल रहता ।

३ भूतनाथ इनका तिलस्म बीमल रहता ।

४ बीमल ।

तापी मेरे मुँह पर कर मुझे उसका दारोवा मुक़र्रर कर दिया । अब वह बचत था गया है कि मैं उसकी तानी तुम्हारे हथाने कर्क बघोकि वह तिमस्म तुम्हारे ही नाम पर बाबा गया है और तिसाय तुम्हारे काई दूसरा मानिक नहो बन सकता" । दारोवा का पद बहुत ही उत्तरदायित्वपूर्ण है अपने जीवन कास में उस गया व्यक्ति समाधि कर सेवा पढ़ता है जो तिमस्म की रखा को अपना पवित्र अर्पण्य मान कर बतमान दारोवा की मृत्यु के साथ उस बाग को अपने ऊपर ल सक । यह व्यक्ति दारोवा का पुन भी हो सकता है तथा अन्य कोई योग्य अधिकारी भी । दूसरे प्रकार के बाबा जो नीकरी करने हैं अपने जीवन-काम के लिए ही नियुक्त होते हैं वे न मानिक हैं और न इनके कोई विशेष अधिकारी ह । ये ऐसे तिमस्म के रक्षक होते हैं जिनका स्वामी स्वयं जीवित है । 'भूतनाथ' उपन्यास में जयानिया तिमस्म का दारोवा इसी प्रकार का है जो विश्रामपात्र तथा बाबाक होने के कारण इस पद पर नियुक्त किया गया है । दारोवा का पद स्त्री को भी मिल सकता है 'चन्द्रकान्ता सम्पत्ति' में एक धीरत जो मायाजना के नाम से पुकारी जाती है उस तिमस्म का रक्षक करती है^१ ।

यद्यपि तिमस्म कोप की विशेष बाप ठक रखा के लिए बनाया जाता है फिर भी वह केवल पढ़ाने की बीडटी-मात्र नहीं है । तिमस्म एक किले के समान है जो घाने घाय में सब सुविधाओं से पूर्ण होता है । मनुष्य-जाति को उन्नत नहीं होती सेप सभी बाते एक सुन्दर नगर के समान होती हैं । मोठ पानी की नहर पत्राक नल साक-मुचरे स्वाम धर्मस्थ रत्न राशि सब कुछ उसके अन्दर मिल जायगा । तिमस्मी इमाछ कितने दोषकर्म में हो सकती है इसका अनुमान नठिन है, क्योंकि वह तो एक बड़ा नगर है—नगर से भी बड़ा जिसमें पहाडिया और नहरें भी होती हैं । इमाछ इस प्रकार की बनी होती है कि उसकी किनारे अपने साथ पुन जाती और बन्द होती रहती हैं पीछे न पानी स्वयं सगता रहता है, सफाई हुई ही रहती है । नगर के तिमस्म का बचन देखिए

"मीने एक लम्बी बीड़ी कोठड़ी नगर घाई जिसके बीकट में किबाड़ के पस्ते नहीं थे । पहिले जपला में खूब गौर करके बैठा फिर अम्बर पड़ी । दरबाजे के भीतर पैर रखत ही ऊपर बायीं बीकट के बीकट-बीक से एक लोहे का लला बड़े जोर के साथ गिर पडा । जपला में बीक के पीछे बैठा तो दरबाजा बन्द पाया ।"

"भूमते भूमते जपला का पैर एक छोटे से नड्डे में जा पडा साथ ही उसके एक आबाज हुई और दरबाजा खुल गया और कोठड़ी में जागरा भी पहुच गया । यह वह दरबाजा नहीं था जो पहिले बन्द हुआ था बकि यह दूसरा दरबाजा था ।"

ध्यानिए उस दरबाजे की राह से कोठड़ी के बाहर हो एक बाप में पहुची देता कि छोटे-छोटे फुलों के पेड़ों में रंजविरन के फूल खिले हुए हैं । बाप के एक तरफ से

१. दीपा मिस्ता, जलता नकम ।

२. दीपरा हिरता ।

३. कटप दिस्ता रंजना अग्र

छाटी नहर के जरिये से धमर पानी पहुंच कर बाग में छिड़काव का काम हो रहा है।
मगर क्या रीति उसमें की कोई भी दुक़्त नहीं है।”

जैसे-जैसे रात बीगती जाती है बारूदरी की चमक भी बड़ती जाती थी।
धन बीमार, जमीन जमे सब चमक रहे थे। कोई जगह उस बारूदरी में ऐसी नहीं थी
जो दिखाई न पड़ी हो। बल्कि उसकी चमक से सामने वाला बाग हिम्मा बाग का
भी उजाला हो रहा था।

धमर के को देखने के लिए जाता उसके पास गई। मंगमर के पत्थर पर
दीर रक्ता ही का कि धीरे-धीरे उस धमर में हम खीचना शुरू किया कि वह एक
तेजी से उसने हम को काटि चंपा का पैर न हम सका। वह लिचकर उन पैर में
बसी गई साथ ही जान न बहोता भी हो गई।”

प्रमाकरनिह जिन नियम में पहुंचे वह धीरे भी बिबिध था। कई काठिया
में कुमठे फिरे थे एक ऐसी कोठरी में पहुंचे जो लम्बाई-चौड़ाई में बड़ा की सब कोठ-
रियों से बड़ी थी। बड़ा चारों तरफ की दीवारों में बड़ी-बड़ी बारूद धानमारिया बनी
हुई थी और उन सभी के ऊपर लम्बर लगे हुए थे। सात लम्बर की धानमारिया उन्हां
किमी गुप्त रीति से लोनी और उनके धमर चमक पड़े। नीचे उतर जाने के लिए
सीढ़ियां बनी हुई थी धस्तु उमा राह से प्रमाकरनिह नीचे उतर गये धीरे एक बागान
में पहुंचे। देखा कि बागान बहुत छोटा है और यहां की जमीन में बहुत-सी माछे की
नासिया बनी हुई है जो मकक का काम देने के लिए हैं तथा उन पर छोटी-छोटी बहुत
सी माछियां रती हुई हैं जिन पर निक एक धान्यी के बैठने की जगह है।

प्रमाकरनिह एक घाटी के ऊपर लम्बर हो गये जिसकी पीठ पर चन्द्र निम्ना
हुया था। सवार होने के साथ ही गाड़ी चमक लगी। दातान के बाहर हो जाने पर
मामूम हुआ कि वह किसी मुरंग के धमर जा रही है। जैसे-जैसे वह घाटी धामे बढ़ती
जाती थी तैसे-तैसे उसकी चाल भी तेज होती जाती थी और हवा के धपेटे भी धधकी
तरह लग रहे थे।

“घाब बंटे एक तेजी के साथ चले जाने के बाद गाड़ी एक ठिगान पहुंच कर
रुक गई। प्रमाकरनिह ने धामें लौटकर देखा तो उजाला मामूम हुआ। जब प्रमाकरनिह
गाड़ी में नीचे उतर पड़े तो वह गाड़ी पीछे की तरफ उगी तेजी से साथ लौट गई जिस
तेजा से यहां धाई थी।”

इस वर्णन से यह निश्च है कि उन नियम के धमर चमक-चमक २ भीस की
सकक तो एक रही हो होगी जहां पहुंचने में तेज चलने वाली बिजली की गाड़ी धाधा
पंटा लेती थी।

नियम के समान ही रहस्यमयी कुछ हमारा है या नियमों की पीठरी से ही

१. धमर धीमर दिना हमरा चमक।
२. धमर धीमर दिना धीमर चमक।

भनाई जाती है। इनका तिलस्म से एक तो यह घन्टर है कि इन में सजाना नहीं होता और दूसरा यह कि इनका किसी विशेष व्यक्ति के हाथ से टूटना आवश्यक नहीं। तिलस्म से इन इमारतों की एक ही समानता है कि तिलस्मी कारीगरी के कारण ये रहस्यमयी होती हैं और इनका मार्ग भी किसी पहाड़ी सड़हर, या बन-बीहड़ से मिलता है। 'तिलस्मी दीपमह्य' उपन्यास में क्रिश्चोरीलाल गोस्वामी न भोगाल राज्य की जिस बसुरत पहाड़ी का वर्णन किया है वह 'तिलस्म' नहीं है—'तिलस्मी' मात्र है। अधिकतर उपन्यास-लेखक तिलस्म और तिलस्मी इमारत का भेद नहीं कर पाए, परन्तु खेचडीलम्बन खत्री की दृष्टि में दोनों अलग-अलग हैं। 'अष्टकान्ता सन्तति' उपन्यास में 'बड़े-बड़े ताजुब के खान और प्रभुग बाबा' को दिखाते हुए भल्लक ने पाठकों के समझने पर स्वयं समझे किया है और उनको बतसा दिया है कि यह वर्णन तिलस्म का नहीं है। इस अर्थ यह ही प्रसूत बाबा को पढ़कर आप ऐसा न समझें कि यह तिलस्म है और इसमें ऐसी बातें छुपा ही करती हैं। "इस सन्तति के चार हिस्सा में तो तिलस्म का नाम भी न मिले"। जो बतल किया गया है वह चारों तरफ से चार बसुरत पहाड़ियों से घिरी हुई लक्ष्मण ह्वार पक्ष बीबी और इतनी ही नहीं बनीम का है जहाँ कुदरती बगीचा भरले और फला के बूत हैं। बीचों बीच में एक घासी-घान इमारत बनी हुई है इसमें पन्द्रह-बीस बीजबान और बसुरत घोरों का डेरा है। इस प्रकार की इमारतें प्रायः दो कामों में आती हैं—बन्धी घर तथा जिलास भवन। क्रिश्चोरीलाल गोस्वामी के 'मस्मिकावेधी या बंसरोबिनी' उपन्यास में महाराज महेन्द्र सिंह को कैद करके तुंगरल में यह घोषित कर दिया कि वे मर गए हैं। बनारसपुर की पहाड़ी में यह कैदखाना था। पहाड़ी में आसकोस एक बराबर ऊँड़नाबड़ पगडडियों में बसकर एक धँसी की छुछ आती थी जिसके अन्दर बाहर लीबाल पर अजगर की राटफरी हुई मूर्ति बनी मुम्बर बनी थी। फरहाद ने एक तामी उस अजगर की चमकती हुई आँख में पड़ा कर गुमाई छिर वह तामी लीबकर वह कुछ पीछे हट गया और कुछ ही क्षण के उपरान्त एक ठडाके का दबड़ हुआ और उस अजगर के नीचे की एक पत्थर की पटिया न जान बिबर अन्तर्गत हो गई। फिर वहाँ जो छीछिया बिलनाई बेतो पी जह्नी के द्वारा सब कोई बारी-बारी से नीचे उतर गए"। 'राजकुमारी' उपन्यास में बीबान ने राजा को एक ऐसे तिलस्मी मकान में कैद कर लिया था जिसका मा पीम के पेड़ पर से था। 'कमर से तामी निकाल कर उस कोठरी के पूरब घोर बामी दिवार में बनी हुई साँप की आँख में तामी बडाकर कई बार दहने-बाए गुमाई बिपसे एक ठडाके की आवाज के साथ उस बीवार की एक पटिया जो कि स्नाह परबरी से बनी हुई थी अलग हो गई और एक घावगी के तुस आने भावक राह बन गई।

योगी कटोर घोर तानी का मुञ्छा लिए हुए दीवान कमरे घुस गया^१। बिनाम-मदन वाली इमारत का बगन 'बन्धुवन्धु' उन्मत्त में था है। जब बीरगन्धि की नीव गुरी तो ब घबरे डेरे पर नहीं थे बल्कि दृढ़ मज्जे हुए कमरे में पकड़ हुए थे 'यह एक बहुत भारी दीवान्शाना है जिसके तीन तरफ नयनमय की दावार चौका तरफ बड़े-बड़े लकड़ गुरुत दरवाज हैं जो इस समय बन्द हैं। ऊपर चारों तरफ बड़ी-बड़ी लकड़गुरुत घोर इमीन घोरतों की तस्वीरे लटक रही थीं। 'कुमार की गिराह तमाम तस्वीरों पर न शीशवी हुई उस बड़ी तस्वीर पर आकर घटक गई^२। किन्ती नामान गाम्भीर्य ने 'पन्नाबाई' उन्मत्त में धावर की एक निरस्ती बिजघाना^३ का बगन फिटा है जिसमें नाबिकानेह के उदाहरण से घनेक बिजघों के बामनोत्तक बिज घने हुए थे। बस्तुन बिनाम-मदन वाली इमारतें रस्मों न घबन ब्यक्तिगत मनोरञ्जन के लिए बनवाई थी इनमें प्रबल की धाम्ना किसी बुरे व्यक्ति को नहीं थी।

तिसस्म क कुछ नियम हैं जिनका पालन प्रत्येक ब्यक्ति का कर्तव्य है। जो उनका पालन नहीं करता उस पर दीवी अनिष्टाएं आ गिरती हैं। सबसे प्रथम यह है कि तिसस्म का रक्षक घरन ब्यक्तिज जीवन में चाह जिनत छत्र-चिह्न कर परन्तु तिसस्म की छतों क नामने उभे मनुष्यमक होना चाहिये। मान लीजिए कि किना रक्षक क मन में पाप आ गया घोर वह ब्यक्तिजों के हाथ न तिसस्म का बचा कर घरन बचा किना धर्म्य ब्यक्ति क हाथ और बना बागता है तो उनसे बड़ा पाप किया जा किमी की घरोदुर पचा लन या मज्ज करन से होना है घोर ईदवर उन रक्षक को कटोर दण्ड देगा। इनीजिए बागेमा माय बड़ी पवित्रता में ध्यान कर्तव्य का पालन किया करन है। 'बन्धुवन्धु सत्तति' में कमनिनी की मया बलिम मागारना क मन में ऐसा ही पाप आ गया था। 'हमारे तिसस्मी बिनाब में मागन हुआ है कि कुपर इन्जीनरिह घोर घानरुविह उस तिसस्म को ताहेम कराकि तिसस्म ताइन बाबा क जो सज्जन उन किताब में लिखे हैं ब सब इन होना चाहया में पाए न न हैं। बस्तु माया रानी चाहती है कि तिसस्म दूरन न पाव घोर इमा लक बर होना हमारों को घबन र्द में रखन घबका पार होनने का उद्योग कर रही है'। बर्मांनी यह जानती थी कि तिसस्म बनाने बाबों क बिनाक बनने घोर न होनों चाहया में हुम्माना रखन का नतीजा बगला न होना। घबन में मायाशानी की पराजिन होना पड़ा घोर तिसस्म बनान बाबा को इच्छातुमाग हो। कुमारों क हाथ में हा तिसस्म दु।। हुमना तिसस्म यह है कि तिसस्म पर कोई भी धर्म लम्ब बाहु-बिटा ३ तान-लक बान नहीं करता य बाबों तिसस्म की मज्जाक है उपर बिगीय में लकन नहीं हो मक। उदाहरन क लिए घगर बाई घाचना रखन फा कर यह पता लगना चाहे कि इस तिसस्म को

१ इन्जीनर बरतौह • १

२ तीव्रता तिसमा आरररर बरन।

३ प्रथम बग

४ दण्डा तिसमा बररर बरन।

तोड़ने की युक्ति कहीं धँकित होती तो रमल केवल उस समय सफल हो सकता है जब रमल छेड़ने वाला उस व्यक्ति की धात्रा से धीरे-धीरे सन्ध हृदय से उसी के नाम के मि पठा कर रहा हो जिसके हाथ से तिलस्म का टूटना बाँधने वाले की धमकी है। कुमार ने ज्योतिषी जी से कहा कि घाय रमल से शिवरत्न के छूने का हान बनाइए ज्योतिषी जी बोले—'जी नहीं तिलस्म य रमल काम नहीं करता धीरे-धीरे वह तड़का तिलस्म है जिसमें महाप्राजा शिवरत्न कैय किण मए थे'। तीसरा नियम यह है 'जिसके हाथ से तिलस्म का टूटना धमकी है उसके हाथ से टूट ही जाना चाहिए। किसी कारणवश वह उसको नहीं तोड़ता तो उस पर एसी आपत्तियाँ धाँकी जाँ तिलस्म तोड़ने को बाध्य कर देंगी। 'चन्द्रकान्ता' उपन्यास में चन्द्रकान्ता इसी सिद्ध हो जाती है कि श्रीरामसिंह उस तिलस्म को तोड़ें कल्प जब वे धाम्य पत्र ऊपर निम्नहाय मायिका को बचरण बेचन है तो उनमें तिलस्म तोड़ने का जोर जाता है किसी धमामात्र धीरे-धीरे धुप पर आपत्तियाँ धाँकी ही इसीलिए है कि उस हान से कोई बहाना कार्य सम्पादित होगा चाहता है। शिखराय योगी के धर्मों में धर्म में कुमारी का बहा से निकालकर घायके पास पहुँचा देता तो कुमार उस तिलस्म तोड़ना बन्द कर देते धीरे-धीरे का बहाना भी यो ही रह जाता'। कई बार एक तिलस्म का सम्मग्न घुमरे तिलस्म से होता है धीरे-धीरे एक तिलस्म या उसके कछ बा टूट जाता है तभी धुप टूटना है उसने पूर्व नहीं। इस प्रकार का उत्सर्जन स्वयं तिलस्म का तोड़ने वाला भी नहीं कर सकता। इसका समाव उस तिलस्म से बा नि कमाल ने तोड़ा है वह तिलस्म या उसके कछ हिस्से धगर न टूटने तो यह तिलस्म (चन्द्रकान्ता बाया) कभी न सुनवा'। लगाववाले तिलस्म या तो उनके नाम से होते हैं जिनका धायस में बिनाह होगा है (जैसे 'चन्द्रकान्ता' में) प्रबवा उनके नाम से धारवन्त ही निष्कट सम्बन्धी पिता-पुत्र का माई-माई (जैसे 'चन्द्रकान्ता सन्धि' में) हो इस प्रकार एना लगता है कि तिलस्म तो प्राकृतिक नियम धरवा धर्म का ही एक घुस पर्याव बन गया है—घपने धाय से पूर्व धमर्ध ध्यामी धालक धादि धुपों से सम्पन्न।

तिलस्म के सम्मग्न में पाठकों के धन में सदा यह धवन उठता रहा है कि वह यह सरय है क्या यह संभव है। इसमें दो मत नहीं कि तिलस्मी धर्मन कवि कल्पना ध सुम्न है। परन्तु प्रब यह है कि वह कल्पना धर्मधर्म बीडती फिरनी है प्रबवा किम निश्चित सिद्धान्त से धनुधामित होती है। वेधकीमन्धन धनी ने इस प्रस्न का उत्तर धपनी रचनाधों में कई धवर्धों पर दिया है। 'चन्द्रकान्ता' उपन्यास को समाप्त कर हुए बीधे हिस्से के धीधने धपान में उम्होंने सिद्धांत धोपी धीरे-धीरे सुरेन्द्रसिंह की धाधधी के बहाने इस प्रस्न का उत्तर दिया है कि तिलस्म किसे कहते हैं धीरे-धीरे बनाया जाता है। उसी प्रमर्ध से उम्होंने निना है कि 'एक-एक धाध को बूब धीरे से सोनिया तो धा

१. चन्द्रकान्ता तोड़ता हिस्सा मौल नाल।

२. चन्द्रकान्ता मौल हिस्सा धन्धीधर्मा नाल।

३. चन्द्रकान्ता मौल हिस्सा, धीधध धन्धन।

ही मामूम हो जायगा कि ज्योतिषी नम्रूयो जारीमर और इसनदात्म (-उग्र) को जानने वाले क्या-क्या काम करते थे। 'चन्द्रकान्तामन्त्रति' में वे वर्णन करने पर कहते हैं कि 'इसी तरह हमारे पाठक महात्म भी राज्यभूष करते और सोचते होंगे कि यह तमाशा समझ है या धर्ममय मगर उन्हें समझ रखना चाहिए कि दुनिया में कोई बात धर्ममय नहीं है जो धर्म धर्ममय है वह पहिले जमाने में संभव थी और जो पहिले जमाने में धर्ममय थी वह आज संभव हो रही है। इन कथनों में संस्कार का यही धर्म प्राय है कि जिन बातों का वर्णन किया गया है वे सत्य तो नहीं हैं परन्तु संभव धर्ममय हैं। धागे चलकर सभी भी मे घांती दृष्टि का विस्तारपूर्वक विवेचन किया है जो सामान्य सभी तिसस्मी उपन्यासों पर साम्य होने के साथ-साथ घटनात्मक उपन्यास की समीक्षा के लिए एक संतुलित मापदंड प्रस्तुत करता है। सभी की 'सन्नि' के अन्त में लिखते हैं —

मित्रों मे संभावना है कि इस विषय का ध्यानमान उठाया था कि इसका अन्तर्गत समझ है कि धर्ममय। मैं नहीं समझता था कि यह बात क्यों उठाई और बढ़ाई गई? जिस प्रकार पञ्चमय हितोपदेश आदि ग्रन्थ बालकों की शिक्षा के लिये लिखे गये उसी प्रकार यह भाषा के मनोविनोद के लिये 'पर यह संभव है कि धर्ममय इस विषय में कोई यह समझ कि चन्द्रकान्ता और बोर-नम्रूयो इत्यादि पात्र और उनके विविध स्वभावों में ऐतिहासिक हैं तो बड़ी भारी गलत है। कल्पना का संसार बहुत विस्तृत है और उनका यह एक छोटा-सा मन्त्र है। अब रही सम्भव-धर्ममय की बात। इसका विचार प्रत्येक मनुष्य की योग्यता और वेष्ट-काम-भाव से सम्बन्ध रखता है।"

मन्त्र का निष्कर्ष तीन है—(१) यह ग्यना मनोविनोद के लिए है (२) इसमें ऐतिहासिक सत्य नहीं है (३) जिन वस्तुओं का हमें वर्णन है वे आज सम्भव नहीं परन्तु भविष्य में हो सकती हैं और धर्मीय में रही हों तो शीघ्र जायता है। वस्तुतः विचार का अन्त तो अन्तिम निष्कर्ष ही है जिसमें वेष्टा न सम्भावना को स्वीकार किया है। किशोरीयाम मोरचाभी के सम्मुख भी यही प्रश्न धाया था जिसका उत्तर उन्होंने अपने ऐतिहासिक उपन्यास सीता और सुगम्य का पन्नाबाई में दिया है। तिसस्मी की दुःख बात का कुछ निष्कर्षों में मिली या चुकी है नहीं जो दुःख है और वे हिंस्रता की कारीगरी से ग्यानी नहीं हैं। उन्होंने तिसस्मी की दूराकृत सुसना मोम में की है और बह-बह तिसस्मी का सम्भव प्राय योगियों में दिया दिया है। 'राजकुमारी उपन्यास में योगिराज सबसे मामने 'अज्ञायकधर' का रहस्य बतलाने लगे धात्र से दो सौ वर्ष पहले में ज्योतिषी का काम करता था और शिष्य विद्या में मेरी बड़ी रुचि थी। संयोग से काशी में तुम्हारे परशदे में मेरी भेंट हुई और उन्होंने मेरी पन्नाइ स यह अज्ञायकधर आदि जारी हमारे बचवाई।" वस्तुतः गोम्बादी जी ने सभी की मे स्वतन्त्र कोई बात नहीं कही योग बीच में धा गया है धर्मका ज्योतिष

* पन्नाबाई प्रथम पृष्ठ १ ११२

* ऐतिहासिक परिचय २ १७२

एवं सिम्बलिषा के समीप से ही तिसस्य सेमार होता है—ताम्रिक विद्या एवं रसायन-विद्या को सिम्बलिषा का एक विद्वैत सहायक मान कर ।

संभावना' के प्रश्न का जो उत्तर लभी जी ने दिया है वही कलाकार को देना भी चाहिए । यदि बोलायस सिन्धु के 'गुल्लिबर्ग ट्रैवेल्स' (मनु १७२६) में समकालीन लोगों की तुच्छता पर व्यंग्य है तो लभी जी का 'अग्रकांक्षा' समकालीन सुबकों को उत्साहित करने में सफल है—इस विषय पर विस्तृत विचार आगे किया जायगा । विज्ञान के समस्त पुराना प्रश्न आज भी नवीन बना हुआ है । परन्तु विज्ञान के नित्य नये आविष्कार एवं इतिहास की निरन्तर प्राचीन लोभ इस संभावना को उस काम की अपेक्षा प्रायः अधिक स्वीकार करा सकते हैं । मिस्र देश में राजा के मरने पर उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति उसके साथ धूमि में पाड़कर जो पिरामिड बनाया जाता था उसकी परीक्षा करने पर भी आज का विज्ञान यह नहो जान पाया कि परबरा का इतना बड़ा पिण्ड बनाया कैसे जाता था । इटली में जो कुराई हुई है उससे लोग समझते हैं कि प्रागैतिहासिक युग के निवासी सिम्ब एवं कला में आगे विद्यमान थे कई गुना अधिक आगे थे । पीम्पाई नगर की धुराई से सब आश्चर्यचकित हो गये कि इतने बड़ों से पत्थरी के भीतर किया हुआ यह मगर इतना ठीक-ठाक निकल आया । कुराई १९३४ की 'सरस्वती मासिक पत्रिका' के अनुसार पंजाब में एक तिलस्म बाबा यमा का जितनी रक्षक एक मूर्ति थी 'जो आज भी उस मूर्ति के पास आता है उसे वह पकड़ कर टुकड़े टुकड़े कर डालती है । 'भीरे-भीरे लोगों ने समझ कि पुण्ड्र विद्या की कल्पना निराधार नहीं थी संभव इतनी दूर बैठकर भी कुछ कह सकते थे । प्राकाशवादी सुनी जा सकती है कोई भी व्यक्ति प्राकाश-मार्ग से दीख सकता है चाप तय सकती है प्राचीन जा सकती है । विज्ञान ने यह विश्वास दिला दिया है कि अपने आप बरबाद होना संभव है । चाप प्रहार करने वालों तो अपने आप बन्द भी हो सकता है । सुरों तो अनिश्वास की वस्तु पहिले भी मानी रही । अतः यह सम्भव है कि किसी भी दिन हमको यह विश्वास आ जाय कि मारीच हिरण बनकर राम के सामने से दीख सकता है । कहने का ठारार्य यह कि तिलस्म ने जितनी वस्तुओं पर जितना विश्वास लभी जी के सामने किया जाता रहा होगा उससे अधिक की संभावना आज दिन-प्रतिदिन होती लभी जी की रही । अतः केवल एक है कि व्योमिय का महान् तिलस्म ने स्वीकार करना आज पहिले की अपेक्षा कठिन है । विज्ञान प्रकृति को सब जानकर अपने समस्त सिद्धांतों को सब मान लता है वह नहीं जानता कि बाइ के भीतर भी बहुत सिद्धान्त व्याप्त हैं उसकी दृष्टि में किया का फल है । भावना का नहीं । अतः विज्ञान ने जहाँ तिलस्म को अधिक सम्भव बना दिया है वहाँ उसके श्रेष्ठ सिद्धांतों में अनिश्वास भी पैदा कर दिया है ।

ऐयार

तिलस्मी उपन्यास का प्राण ऐयार है । 'अग्रकांक्षा' उपन्यास में मारक भीरेन्द्र सिंह को तो सिर्फ अपनी ताकत का भरोसा है परन्तु ऐयार तैजसिंह को अपनी ताकत

घोर ऐयारी दोनों का^१। प्रारम्भ में पाठक का ध्यान नायक की अपेक्षा ऐयारों पर अधिक जाता है क्योंकि नायक की समस्याएँ अधिक उमके ऐयार ही हैं। शिवजी के गणों के समान मारा काम ऐयार ही करते हैं नायक तो मारो केबल कम मोचना-मात्र रह जाता है। जरी जो के अनुसार ऐयार उसको कहते हैं जो हर एक पन जानता हो चपल बदलता घोर बीडना उसका मुख्य काम है^२। बस्तुन ऐयार लम्ब का घम पीछ गामी' घमबा 'बपम' है जो व्यक्ति मौलिक एवं मानसिक दोनों दृष्टिया में बपम बदला जाता है जो उसे घरबी भाषा में 'ऐयार' कहते हैं। ऐसे लोगों का सामाजिक महत्व हो गया जिस राजा के पास जैम ऐयार होने वैसे घोर उनकी ही उमकी घमि होयी। जिसके पास ऐयार नहीं है उसको मारी घमि घम है क्योंकि ऐयारों का बचाव बिना ऐयार के कोई नहीं है मरना के सोप बड़े जानाक घोर फलानी होते हैं हजार-पाँच मी की जान से मना उन लोगों के घावे कोई बात नहीं है^३। इसलिए राजदरबारों में ऐयार (जानाक) भी लौकर हुमा करने थे जो कि हकूमतीला जाने सूरत बदलता बहुत सी बचावों का जानना गाना बजाना बीडना घम बनाना जामुनों का काम देखना बरहर बहुत सी बातें जाना करन थे। जब राजाघरा में लड़ाई होती थी तो वे लोग घमनी जानाकी से बिना जून मिरग जो पलटना की जान गवाए लड़ाई खरम कर लेते थे। इन लोगों की बड़ी कबर भी जानी थी^४। एयार और जामूम एक ही बात नहीं है ऐयार लोग जामूमी कर मचते हैं परन्तु जामूमी न किए ऐयारी जानना घाबरमक नहीं है। उक्त उद्धरण में लखी जी ने एयारों का एक नाम 'जामूमी का काम देखना' भी बताया है 'कम्बुबान्ता सम्पनि' में राजा कोरेन्मिह के राज्य का बणन करते हुए लेखक ने ऐयार और जामूमी को घमय-घमल समान दिया है 'ऐयार और जामूम लोग छिपे छिप रिघावा के दुल्ह-मुल का हाम माजूम करने घोर राजा को हर तरह की लबर पहुँचाते थे'^५।

ऐयारी एक विद्या (हुनर) है जिसका मूल मूल है धाना देना। एयार तजनिह और बबीनिह के मड़क 'भरोनिह और तारासिह ऐयारी के पन में बड़ हा तेज और जानाक निजम इनकी ऐयारी का इन्तिहान बराबर लिया जाना था। बीजनिह (तजनिह के पिता) का हुनर था कि बीरासिह और तारासिह कुछ ऐयारों का बरि घमन बाव (जा स्वयं बहुत बड़ा ऐयार था) तक जो योग्य बन की कोजि करें और इसी तरह पन्ना साम बरहर ऐयार भी उन दोनों मड़क को भुलावा दिया करें^६। तजनिह ने ता स्वयं

१ बहना रिस्ता, बहना बपन।

२ बरी पुटमाह।

३ बहल तेरवा बपन।

४ बहलकनन मरा (हिन्दी उपन्यास में पृ. ६६ पर उद्धृत)।

५ पन्पक रिस्ता लपन बपन।

६ समुति बहना रिस्ता, बहना बपन।

अपनी पत्नी तक से बोला किया था। धीरे धीरे से छुड़ी लेकर लिङ्गनाथ योगी बन गये थे। जब बोला देते हैं तो लाते भी हैं। 'ऐसा कोई ऐयार दुनिया में न होगा जिसमें कभी बोला न खाया हो हम लोग कभी बोला देते हैं कभी स्वर्ण बोले में घा जाते हैं'। परन्तु यह बोला बिरहासपात नहीं है। खाना भी के ऐयार जितन सच्चे एक स्वामी भक्त हैं उतने भारतीय लोग ही हो सकते हैं। धर्म भाग नहीं। एक बार 'जनेऊ धीरे ऐयारी का बटुमा डाक में लेकर कलम का के' जिस स्वामी की सेवा स्वीकार कर ली ऐयार उस स्वामी का 'धीरे' उसका खानदान का मोकर हुआ ईमानदारी धीरे मेहनत में अपना काम अपनी जान पर खेल कर भी वह करता जायगा। जो लोग हम सच्चाई का पालन नहीं करने के 'पूरे बाकू हैं' उनका ऐयारी में नया बास्ता^१। 'ऐयार बाड़े केना भी बेईमान क्या न हो अगर मासिक के मास ऐसा करेब कभी नहीं करेगा'। इतना ही नहीं 'अपने मासिक की मलाई के लिए उछाव करना' ऐयार का धर्म है। हम धर्म के लिए बहुत बड़े-से-बड़ा पाप कर सकता है। मरतुन एयार के लिए मासिक के प्रति रिक्त छंदार में कुछ नहीं है उसका धर्म ऐयार का एक मास रहस्य है। यदि ऐयार यह अनुभव करे कि उसका मासिक अर्थ की धीरे का रहा है तो वह उनकी सेवा से बिरत हो सकता है। धीरे जिसी भी धर्म स्वामी की सेवा में जा सकता है—जैसे ही नया स्वामी पुराने स्वामी का छपु हो 'अच्छाकास्ता' में सिबबतसिंह के एयार उनको छोड़ कर बीरेन्द्रसिंह की सेवा में घा जाते हैं। धीरे उतनी ही ईमानदारी तथा तत्परता से नये स्वामी की सेवा करते हैं।

ऐयारी का धर्म तो यमल है ही। इसका नियम भी कुछ यमल है। इनमें से मुख्य यह है कि ऐयार लोग जान से मारने योग्य नहीं होते बल्कि कैद करने योग्य होते हैं^२। अगर किसी ऐयार को कोई ऐयार पकड़ता है तो सिवाय कैद करने के जान से नहीं मारता^३। 'ऐयारी का यह मतलब नहीं कि वह बकसूरों के कुल से अपनी जीवन की पवित्र बाहर में भगा भगाए'। 'हिन्दोस्तान भर में कोई बसिष्ठ हिन्दू ऐयार को कभी जान से न मारेगा। हाँ वह ऐयार को अपने बाबड़े से बाहर काम करेगा जरूर

१ अन्धकास्ता, बीरा हिन्दा देरहा कमान।

२ 'समस्त' जन्मा हिन्दा बीरा कमान।

३ अन्धकास्ता, बीरा इरहा, बीरा कमान।

४ नहीं

५ नहीं बीरेन्द्रा कमान

६ भूतनाथ शक्ति बिरहा कमान कमान।

७ नहीं बीरेन्द्र हिन्दा पवित्र कमान।

८ नहीं कमान कमान।

९ अन्धकास्ता, पवित्र हिन्दा बीरेन्द्रा कमान

१० भूतनाथ बीरेन्द्र हिन्दा बीरेन्द्र कमान।

आन स माय बायगा^१ । अस्तु, जो सुरदा राजपूत का व्यावसायिक अधिकार है वह ऐयार को भी प्राप्त है । क्योंकि ऐयार तो नौकर है उसका कर्तव्य स्वामी का हित है उसकी नियमानुक्रम कार्यवाही उसको वश नहीं दिया सकती ।

ऐयार जोय माया के उपासक होते हैं । आपस में मिलते हुए व लोग 'अय माया की' कहकर अभिवादन करते हैं । इनके पास एक बट्टा होता है जिसमें मोमबत्ती बहोषी की बुझनी होश में माने का ललसला धाईया सूरत बचसने क रासामनिक पवारं जाने की कुछ मेधा होती है । ऐयारी की बुझाया पर दूसरा सामान दाओ धादि मिल जाया करता है । जब ऐयार बिरपतार होता है तो नियम यह है कि उसका बट्टा झीनकर रख लिया जाय परन्तु उसकी सलाही न सी जाय । बाहर निवसकर पटा नहीं कब जितना खच करना पड़े इसमिए ऐयारी का जितना पयादे खच होता है उठना ही लालच करते हैं^२ । सफुम में उसका बिचबाम होता है छीक धादि ना व ध्यान रखते हैं मैं छीक से नहीं डरा मगर छीकने जाने से भी घटकता है^३ । 'स्नान पूजा'^४ में वे नियमित रहते हैं । ऐयार जब किसी को गिरपतार करता है तो उसकी मुर्कें बांध एक आबर में गटडी कस थोठ पर लाव^५ अपना रास्ता लेता है । ऐयारी की एक दुष्ट माया होती है जिसको केवल ऐयार ही समझ सकता है ।

मोक समझते हैं कि बहुत से चमत्कार याग स संभव है या मूठ-प्रेत धादि ऐसी बातें करतें हैं जो हमारी समझ में नहीं जाती परन्तु 'जा काम धादमी क या ऐयारी के क्रिये नहीं हो सकता' उसे योगी भी नहीं कर सकता । क्योंकि मसार में 'मन प्रेत कोई चीज नहीं जादू-माग सब जल-जहानी है जो बुझ है ऐयारी ही है'^६ । इसी के कारण धान्नी घेर का कम भारण कर सकता है (सतति पहिला हिस्सा दूसरा बयान) केहरे पर भिस्सी बड़ा कर धादमी कुछ का कुछ बन जाता है । अगर तिन धादि चिह्नों का ज्ञान न हो तो ऐयार को बहानी हुई सूरत में पहिचानना असंभव है । ऐयार के पान तिसस्मी पून होते हैं जो अनेक गुणों की धान है किसी से भुग्य नहीं समती किसी से धम्बरे में भी दिखसाई पड़ता है (अग्रकाण्डा दूसरा हिस्सा पञ्चवीसवा बयान) ।

ऐयारी बड़ा कठिन काम है । इस धन में सब से भारी हिस्सा जीबन का है । जो ऐयार जितना डरपोक होगा उतना ही जल्द बहु धनया^७ । किसी भी धादचय

१ अग्रकाण्डा चौथा हिस्सा चौदहवां बयान ।

२ अग्रकाण्डा दूसरा हिस्सा पाँचवां बयान ।

३ सतति पहिला हिस्सा छठवां बयान ।

४ वही, अग्रकाण्डा बयान ।

५ अग्रकाण्डा दूसरा हिस्सा जन्मोसवा बयान ।

६ अग्रकाण्डा पहिला हिस्सा, चौथवां बयान ।

७ वही चौथा हिस्सा बीसवां बयान ।

८ वही, दूसरा हिस्सा पैंदहवां बयान ।

९ संतति चौथा हिस्सा ।

जनक घटना के होने पर 'बुजदिसों का मृत श्रेष्ठ धीर पिदाच का ध्यान'^१ पाता है- परन्तु एमार उसके रहस्य को जागने का प्रयत्न किया करता है। जीबट के कारण ही एमार हजार घादमियों में धक्के फमकर काम करते हैं^२ और एक-एक एमार इस इस राग्य गारठ कर बैठने की सामर्थ्य रखते हैं^३। फमत एमारों के लिए कोई रोक-टोक नहीं होती 'बाहे में समय-कुसमय जब महस में मुस बायें और वहाँ बाहे वहाँ पहुँचें महस में उनकी खातिर और उनका मिहाज उतना ही किया जाता था जितना पन्हु बर्ष के लड़के का किया जाता'^४। राजा के बाब एक और दीवान साहब और फिर बड़े-बड़े बहादुरों का स्थान मिलता था परन्तु 'बाब उसके दोनों तरफ नीम बुलियों पर एमार लोग बिदाजमान'^५ होते थे 'धमीर मोहबेदार लोग' इसके बाब बैठते थे।

जिस प्रकार एमारी का काम धारम्भ किया जाता है उसी प्रकार छोटा भी जा सकता है। बूढ़ बीतसिंह को एमारी को छोड़े मुरत हो चुकी थी। धन्तु एमारी एक ऐसा व्यवसाय है जिसमें क्षत्रियोचित पुर्षों का मग्नपूर पालन होता है। जिस राजा के पास धन्ते एमार हा उते युद्ध की कोई घाबरेपनता नहीं बह बिना लड़े हीं अनेक राज्यों को अपने बध में कर सकता है। धरुबम्ब के युध में एमारी उतनी अनिस्वसनीय भी नहीं रही।

अश्वकान्ता उपन्यास

'परीसा दुब और 'गोशान' के समान 'अश्वकान्ता' हिन्दी-उपन्यास-साहित्य की समर रचना है। जिसकी लोकप्रियता इस उपन्यास को मिली है उतनी हिन्दी के धर्म किसी उपन्यास को नहीं। एक और इसने हिन्दी में तिलस्मी उपन्यासों की परम्परा बनाई दूसरी और अपनी कहानी से साक्षुष्ट करके अनेक पाठकों को हिन्दी सीखने को प्रेरणाहित किया। 'अश्वकान्ता' उपन्यास के लेखक देवकीनन्दन खत्री की प्रतिभा अनुमत्त थी। जनार के जंमलों का ठेका लेकर जब वे उनकी सफाई कराने लगे तो उनकी सोहो से नीतर कई विविध तुर्रों बरबाने लहजाने मिले। इन मन्तावरीयों से उन्होंने तिलस्मी की बड़ी मनाइए एक युष्मिष्ट कल्पना की। इसकी स्मरण-शक्ति अनुमत्त थी, जो इनकी रचनाओं के पूर्वपर प्रथम से ही प्रत्येक पाठक के समक्ष प्रमाणित हो जाती है। स्व प्रेमचन्द जी का अनुमान है कि तिलस्मी उपन्यास की बौद्धिक प्रेरणा खत्री की तिलस्म होसना से मिली होगी। यह प्रकवर के बरबारी कवि कैली की सिखी हुई पुस्तक प्यरली में है जहाँ वे भी इसका अनुशास हुआ था। खत्री की प्यरली और जहाँ जानते थे। सम्भवत उन्होंने 'तिलस्म होसना' को पढ़कर अपनी कल्पना के

१. धीरे, हुम्ता हिस्सा आरबना बगल
२. अश्वकान्ता, दुसरा हिस्सा तीसरा बगल।
३. सचच बीबा हिस्सा बगल बगल।
४. सचच दुसरा हिस्सा सचच बगल।
५. अश्वकान्ता, दुसरा हिस्सा तीसरा बगल।

माया पर हिरी में इस प्रकार के उपन्यास लिख जाये हों। 'तिनस्म होशब्दा' की कुछ बातें—जैसे बिबिया में बेहोशी की बुकनी रख कर किसी को बेना घोर उसकी सोनते ही बुकनी के उड़ने से उसका बहोश हो जाना भीम पर दबा मम बेने से उसका एठ जाना जम्मा का नाम घोरतों क परे (भुग्ग) के परे को बन मे भूमते हुए बेस कर प्रेम करना नज्मी-रम्मा से पता सगाता—ऐसी हैं जिनका 'जम्माकास्ता' तथा उसकी 'संतति' में बराबर उपयोग किया गया है। ए सारों का सामन घाईना रखकर रूप बरसना भी इसी से लिया गया है।^१ फिर भी यह समझना भूल है कि 'तिनस्म होशब्दा' को पढ़कर ही लेखक न 'जम्माकास्ता' 'जम्माकास्ता संतति' और 'भूतनाथ' जैसे बड़े उपन्यास लिख जाये। 'तिनस्म होशब्दा' को न जाने कितने सोणा ने पठा होगा परन्तु किसी दूसरे पाठक को इस घोर सफपता न मिली। बस्तुन लखी जो ने तिनस्म होशब्दा की कुछ ऐयारियां ही सी हैं वे भी घनेक सजोमना के साथ। फारसा की उक्त पुस्तक न बाबू के जमल्कार है परन्तु लखी जी की रचनाओं में बाबू का मेघ भी नहीं है। उसमें पात्र मानवेतर मूठ प्रेम जिन घाति भी हैं लखी जी के सभी पात्र मानव है मानव-व्यक्तियों से परिपूर्ण—भूत-प्रेत घाति का उन्होंने खंडन किया है। ईजी का मुग प्रति मानवीय व्यक्तियों में बिश्वास करता हुआ उसकी पूजा करता था। इसलिये उस समय के मुसलमान लखका ने अपने प्रति-मानवा की व्यक्ति हिन्दुधर्म क देवी-देवताओं से व्यक्ति चित्रित करने के लिए मिल-मिश्र प्रकार की कहानियां लिखी फँसी की रचना भी उसी दिशा में एक प्रयत्न है। 'उमन घपनी कहानी' में सभी जादूगरों को हिन्दू काफिर माना है और उन्हें होम करते तिनक लमाते त्रिमूस लिए घाति क्यों ही न चित्रित किया है तथा उन सबके मर्गों तथा जादुओं को मुसलमाना क 'इस्म घाजम' की लूँक से उड़वा दिया है।^२ लखी जी की सारी रचनाएं बिमान एवं योग की संभावनाओं पर आधारित हैं। तिनस्म तोड़ने और ऐयारी को माया मे लत्रा जा न जिन पात्रों को सफल लिखाया है न घामिक सञ्चारिक एवं मनस्वी है और जो घमकस रहत है वे दुष्ट कुञ्चरित एवं पोष्टेबाज हैं—ये हिन्दू भी हैं और मुसलमान भी। घस्तु लखी जी के हावों तिनस्मी बिद्या तथा ऐयारी की माया वैज्ञानिक तथा आचारनिष्ठा बन गई है। यह उसकी सबसे बड़ी मौमिकता है, जिनका अनुसरण भी अपनी सफपता मे लखी हो पाया।

बुनार राग्य में जो पुरान तिनस्म से जिनको किसी प्रतापी राजा न बधवाया था। इनमे से आ बड़ा था वह बुनार का तिनस्म कहलाता है। छाटे तिनस्म की पत्त यह थी कि यह उग लखी के हाव से लुगेगा जियका बिबाह बड़े तिनस्म तोड़ने बान न साथ होमा—बस्तुतः छाटा तिनस्म बहज की मन्त्रालि पर बंधा था। बाबान्तर में बड़े तिनस्म का ताडन बाम बरजिन न लखज और गुना म मन्त्राल एव पुन का लीगज की रानी न जग्म दिया। लीगज से पांच बोम दूर बिजयपट की राजकुमारी बनकर मायिका

१ हिरी जम्माक संहिता. ५ ५

२ बरी, १० ५

ने जन्म लिया। ये ही बीरेन्द्रसिंह और चन्द्रकान्ता प्रसूत उपन्यास के नायक-नायिका हैं। यदि वे सोच सामान्य राजकुमार राजकुमारी होते तो इनका विवाह बड़ी आसानी से हो जाता। परन्तु इनके हाथ से बड़े-बड़े काम होते हैं। इन आगस में बहुत अधिक प्रेम होने पर भी इनके विवाह में कतिपय बाधाएँ उपस्थित थीं जिन पर विजय प्राप्त करने के प्रयत्न में जो कम-सीसह्य मिलता उसका वर्णन प्रसूत उपन्यास में है। विवाह में पहिली परन्तु अस्वाधी बाधा स्वयं राजकुमारी के पिता से वे भीम के राजा को इतना बड़ा न समझते थे कि उनके घर अपनी पुत्री है—हिन्दुओं का विशेषतः धर्मियों का यह सामान्य दृष्टिकोण है। दूसरी बाधा विजयनर के मंत्री का पुत्र कर्मिह का जो राजकुमारी पर मुण्ड का धीरे-धीरे सत्-बल से उद्ये हस्तगत करना चाहता था। राज्य में कूर के सहायक का दृष्ट मुसलमान थे जिनको यह विश्वास था कि उनकी सहायता से राजकुमारी को अपने अधिकार में करके कर्मिह मुसलमान हो जायगा और अन्तर्गोत्रवा विजयनर मुसलमानी राज्य बन जायगा। मंत्री बनने के लिए कूर ने अपने बाप का मरवा दिया, और राजा से भी कुछ छुन किया। फलतः राजा ने कूर तथा एक साधियों को राज्य से बाहर निकाल दिया। इस घटना से एक धीरे-धीरे कूरसिंह ने चुनार जाकर राजा सिवदत्तसिंह को विजयनर का धनु बना दिया। दूसरी धीरे परिस्थिति के कारण भीम और विजयनर राज्यों में मिलता हो गईं भाव चलकर सिवदत्तसिंह ने मनु-कन्या चन्द्रकान्ता का अपनी पत्नी बनाने के प्रयत्न से भीम राज्य को भी अपना धनु बना लिया। यही सिवदत्तसिंह और बीरेन्द्रसिंह की धनुता हो गई जो बच-परम्परा से धारी तक लगी। सिवदत्त के साथ बीरे होने से ही चुनार का तिलस्म टूट सकता था। धनु धनेक कठिनायियों को सहते हुए नायक ने अपने बिस्वस्त धियारों की सहायता और अपने भुवबल से चुनार के तिलस्म को तोड़ा। अन्तर् नायिका ने भी छोटे तिलस्म को खोल लिया। अन्त में नायक-नायिका का विवाह हो गया।

‘चन्द्रकान्ता’ उपन्यास का यह कथानक बहुत ही सुलभ हुआ है। हमने एक ही मुख्य कथा है जिसका विकास उत्तरोत्तर होता चला जाता है। यदि काम्य में नायक राम और नायिका सीता के प्रेम का विवचन करने के लिए कवि ने विवाह के उपरान्त उन पर आपत्तियाँ बुलाकर उनके प्रेम का महत्त्व सिद्ध किया है। संस्कृत के क्लासिक नाट्य में दुष्पथ और अकन्तता गाम्भीर्य विवाह कर लेते हैं परन्तु उनका इहलोक जीवन आपत्तियों को पार करने से पूर्व धारम्भ नहीं होता। यम्बुय का नाट्य विवाह से पुत्र आपत्तियों से मुक्तप्रेम करण प्रेम की परीक्षा लिया करता था। यही पिछली प्रवृत्ति प्रस्तुत उपन्यास में भी देखी जा सकती है। ‘कथन बीरेन्द्रसिंह और राजकुमारी चन्द्रकान्ता की मुहूर्त बाधाएँ न थीं वे दोनों एकल हो रहे थे’ फिर भी जब तक उन पर आपत्तियाँ आकर उनकी सत्कीर्ण न बना दें तब तक उनके हृदय का मुहूर्त ही क्या होता। इस भावना से सज्जक ने उनके मान में आपत्तियों के पर्वत बना दिये हैं, ‘बिठनी मेहनत पर जो बीज मिलती है उन के साथ उठनी ही

यही लुखी में जिरगी बीतती है^१। दूसरी बिघेपता यह है कि मध्ययुगीन बीर-गाथा साहित्य में नायक अपनी प्रेयसी का सन्देश प्राप्त करके उनका विगुण से हृष्य कर लेता था और उसकी सज्जता परती के कम-बामा से भी प्रीति प्राप्त करती थी परन्तु प्रस्तुत कथानक प्रारम्भ में पिता का अस्वास्थ्य बाधा बिनाकर प्रागे सर्वत्र सप्तनायक को एक-मात्र धनु सिद्ध कर देता है—अन्धकान्ता के पिता तो ब्रह्मिणी के पिता के समान नायक के हितों के साथ सहायक है। तीसरी बिघेपता यह है कि मध्ययुगीन कथानक में केवल नायक को प्रयत्नशील दिखाना जाता था परन्तु इस कथा में नायक भी नायिका होना ही प्रयत्नशील है अतः प्रेम-वर्जन की अपेक्षा प्रयत्न बिना ही बहुत अधिक बिना मिलता है। वर्जन की प्रचुरता के ही कारण इस उपन्यास में प्रासंगिक कथाओं को स्थान न मिल सका। बीरेन्द्रसिंह और शिवदत्तसिंह की बीरता तथा उनके एगरो की भासा किमी ही पात्रों को प्रागे बढ़ाये नहीं जाती है। उन्हे न समाज का स्थान प्युता है न प्रकृति का न बहु भाषा पर रीति का चाहता है और न मन-सिद्ध-वर्जन पर। कथानक जिस प्रकार एक बिन्दु से विकसित हुआ था उसी प्रकार एक बिन्दु में ही उसका पतन हुआ है। 'अन्धकान्ता' उपन्यास में नायिका अन्धकान्ता की उसके अपने प्रेमी कुमार बीरेन्द्रसिंह के साथ बिबाह की कहानी है परन्तु इस कहानी का प्रासंगिक नायक-नायिका की प्रेम नहीं प्रत्युत उनकी बीरता एवं बिजय है।

इस उपन्यास में मुख्य पात्र तीन हैं—नायक बीरेन्द्रसिंह नायिका अन्धकान्ता और अन्तर्नायक शिवदत्तसिंह। बीरेन्द्रसिंह मध्ययुगीन क्षत्रिय बीर है उनके व्यक्तित्व में बीरता एवं मत्तचित्ता का ही बिघेप महसूस है। वह जानता है कि हमको तो सिर्फ अपनी छावनी का प्ररोमा है^२। वह शिवदत्तसिंह ने अन्धकान्ता को प्राप्त करने के लिए दूत भेजा तो बोध के कारण बीरेन्द्रसिंह की भावों के मायन धैर्य का छावना से हाथबोड़ कर पिता की बोले 'मुझको लम्बाई का बड़ा हीसभा है और यही हम लोग का धर्म भी है फिर ऐसा मौका मिल न मिले इसलिए धर्म करता हूँ कि मुझ का हुक्म हो तो अपनी पीठ से कर आऊँ और बिजयगढ़ पर जड़ाई करने के पहिल ही शिवदत्त को कैद कर लाऊँ^३। पुनार के जिले में कैद नायक ने 'ओर म अन्धका बेकर हथकड़ी तोड़ जाती उसी जोड़ में एक लाठ नीलक वाले बिबाह में भी मार पम्मा पिछ शिवदत्त के पास पहुच।^४ लेखक ने नायक को उस युग के सबसे बीर क्षत्रिय का रूप में बिजित दिया है। नायक का ठीक बिपरीत शिवदत्तसिंह है वह कम और बीरता में तो किसी से कम नहीं उनके ऐगार भी अपने दुर्गों में अस्मिणीय है। परन्तु शिवदत्त बिजयगढ़ीन राजा है। वह राजा की प्रतिमा है। जो अपने पक्षियों के कारण अपनी विलसती लंका (पुनारगढ़) का बिट्टी में बिना देता है। उनके ऐगार भी सन्तुष्ट नहीं 'करता के दुख-

१ बीरा हरता पक्षी का नाम।

२ बिना बिना बिना बिना।

३ बीरा बिजयगढ़ीन राजा।

४ दूसरा बिना बिना बिना।